Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112526

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तसिन्धु

भारतीय साहित्य में दोहद वर्णन	........डॉ० रणजीत सिंह	१
दशमग्रन्थ का रचयिता अन्तर्साक्ष्य का आधार	...डॉ० ...दीप सिंह	६
रथ का अविष्कार औ... निर्माण	...ीन्द्र कुमार ...ार	२६
छायावाद पर पाश्चात... प्रभाव	......प्रो० टेक चन्द शर्मा	३४
कथा विवेचन	........श्री ओ० पी० भारद्वाज	४०
कविवर बालकृष्ण शर्मा, नवीन	........प्रो० रा०प्र० द्विवेदी 'रामेश्वर'	५०
कामशास्त्रीय नायक विवेचन का भारतीय नाट्य परम्परा पर प्रभाव	........श्री राजेन्द्र भनोत शील	५४
डॉ० राम कुमार वर्मा के एकांकी	.. ....श्री पी० एल० चावला	६१
कला और नैतिकता	........श्रीमती इन्दुबाली	८०
जन जागृति की कलाकृति 'भैरवी'	........प्रो० लीलाधर 'वियोगी'	८५
नन्ददास शृंगारी कवि के रूप में	.. सुश्री कमलेश कुमारी अरोड़ा	८९
सूर का विरह-वर्णन	........कु० अनीता तिवारी	९५

गस्त १९६६

५० पैसे

112726

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सब कलाओं से ऊपर है और मैं यह भी घोषित करता हूँ, कि जो व्यक्ति जीवन में पूर्णता लाने का प्रयास करता है, वह एक महान् कलाकार है।

—म: गांधी

जीवन कर्म का ही दूसरा नाम है। वह जो कर्म नहीं करता उसका अस्तित्व है, किन्तु वह जीवित नहीं।

—हिलार्ड

हम इस प्रकार जीवन व्यतीत करें, कि हमारे मरने पर हमें दफनाने वाले भी दो आंसू बहा दें।

—पेट्रार्क

मनुष्य जीवन का अधिकांश भाग यही विचारते–विचारते निकल जाता है कि मैं अब जीवन को नाश से बचाऊँगा, फलतः जीवन नष्ट हो जाता है और हम जीवित रहने के उपक्रम में व्यस्त रह जाते हैं।

—इमर्सन

स्वाभिमान, आत्मज्ञान और आत्मसंयम ये तीन ही जीवन को अलौकिक शक्ति की ओर ले जाते हैं।

—टेनीसन

अधिकांश अवसरों पर साहस की परीक्षा जीवित रहना होती है, मरना नहीं।

—अल्केरी

एक व्यर्थ जीवन ही शीघ्र मृत्यु है।

—गेटे

जीवन एक गतिशील छाया मात्र है।

—शेक्सपीयर

पत्तों के ऊपर नृत्य करती हुई ओस के समान अपने जीवन को भी समय के दलों पर नृत्य करने दो।

—रवीन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू ने कहा था

किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय में किसी पर निर्भर रहना सम्भव नहीं है। मनुष्य को अपनी जीवन-यात्रा एकाकी करनी है ; दूसरों पर निर्भर रहना निराशा को आमंत्रित करना है।

आदमी का व्यक्तित्व उसकी अपनी कमाई है।

विलम्ब के लिए बहानों में मेरी दिलचस्पी नहीं। मेरी सिर्फ इसमें दिलचस्पी है कि काम पूरा हो जाए।

कर्म प्रभावकारी हो, उसके लिए आवश्यक है कि उसे स्पष्टता-पूर्वक कल्पनाबद्ध लक्ष्यों की ओर केन्द्रित किया जा सके।

कर्म के बिना विचार और विचार के बिना कर्म निपट मूर्खता है।

कठिनाई मुझे ताकत देती है, असम्भव मुझे जिन्दगी देता है। मगर क्षुद्रता, छोटापन, मेरे लिए जहर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त सिन्धु

(मासिक प्रकाशन)

वर्ष १३ अंक

सम्पादक—

डॉ० परमानन्द

डायरैक्टर, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला ।

परामर्श समिति

श्री कृष्ण मधोक
(सहायक निदेशक, अनुवाद)

श्री त्रिलोकी नाथ रञ्जन
(सहायक निदेशक, कोश)

श्री ओम् प्रकाश भारद्वाज
संयोजक
(सहायक निदेशक, विकास)

श्री गुरुदत्त शर्मा
(सहायक निदेशक, अनुवाद)

श्री हरिचन्द पाराशर
(सहायक निदेशक, अनुवाद)

हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112 726

भारतीय साहित्य में दोहद वर्णन

डा० रणजीत सिंह

प्रत्येक भाषा के साहित्य में कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनके अर्थ की पूर्ती अन्य शब्दों द्वारा नहीं हो सकती। यदि इस प्रकार के शब्द कालान्तर के उपरान्त साहित्याकाश से अदृश्य हो जाएं, तो इन शब्दों के अर्थों की पूर्ति साहित्यकार व्यंजना के सूक्ष्म तार द्वारा करने का यथाशक्य प्रयास करते हैं। इस प्रकार के दुर्भाग्यशाली शब्दों में "दोहद" भी एक शब्द है। इस शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में विशेषण मानसिक दशा एवं शारीरिक सौन्दर्य के उभार के लक्षणों के प्रस्फुटीकरण में हुआ है।

हिन्दी साहित्य में जहां नखशिख वर्णन, बारहमासा वर्णन, षड्ऋतु वर्णन तथा विरह वर्णन की रसधारा प्रवाहित हुई, वहां "दोहद" शब्द अपने आपको इस योग्य नहीं बना सका कि उससे भी कवि कामिनियों की कामकेलि में कुछ सेवा ले सके। स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने अवश्यमेव एक दो स्थलों पर दोहद शब्द के आसपास वाला विचार प्रकट किया है। वन में वृक्षों को सींचती हुई सीता के 'सीताफल को देख कर राम श्लेष की आड़ में कह उठा :—

यह सीताफल जब फले तुम्हारा मन चाहा।
मेरा विनोद तो सफल हंसी तुम आहा ।।१

उर्मिला शत्रुघ्न का परिहास भी हमें दोहद के समीपवर्ती वातावरण की झिलमिल झांकी देता है :—

लाई सखी मालिनें थी डाली उस बार जब,
जम्बु फल जीजी ने लिये थे, मुझे याद है।
मैंने थे रसाल लिये देवर खड़े थे पास,
हंस कर बोल उठे निज निज स्वाद हैं ।।२

विवाह सूत्र अथवा प्रणय बन्धन में बन्धन से पूर्व लावण्यमयी ललनाओं के दोहद पूर्ति के कथानक हमें लोक-कथाओं में भी मिलते हैं। हरयाणा की लोक-कथाओं में इस प्रकार की दोहद घटनाओं का अक्षय भण्डार है। जिन में मौसी की कथाएं ३तथा सुन्दरियों

१—साकेत नवम सर्ग।
२—साकेत नवम सर्ग।
३—राकेश "हिन्दी मासिक" बोली बोली ए बांसरी" डा० रणजीतसिंह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कथाएं विशेष महत्व रखती हैं। मौसी अर्थात् विमाता पूर्व पत्नी की सन्तान के रक्त में स्नान करने के उपरान्त ही सुरत के लिये तय्यार होती है। सुन्दरियां एकान्त स्थानों से फूल अथवा रत्न पाने पर ही अपने आपको नायक के वशवर्ती बनाने का संकल्प करती हैं। किन्तु लोक-कथाओं की नायिकाओं की इन इच्छाओं को हम शुद्ध दोहद नहीं कह सकते। इनमें रक्त स्नान की अभिलाषा दोहद न होकर प्रतिशोध इच्छा है। इसमें कामासक्ति अथवा प्रणयाभिव्यक्ति की अपेक्षा पूर्वपत्नी के अस्तित्व को मूल सहित उखाड़ फैंकने की अमर्यादित ईर्ष्या है। दूर देश से फूल अथवा रत्न पाने की इच्छा भी दोहद नहीं कही जा सकती। क्योंकि इस इच्छा का नायक से अहेतुक प्रेम नहीं। प्रेम का केन्द्र तो फूल अथवा रत्न है। इसमें दोहद का कारण सरल, सात्विक प्रेम न होकर अतृप्त इच्छा ही प्रधान है।

संस्कृत साहित्य में दोहद शब्द का का प्रयोग लालसा १, संभार २, तथा अकाल पुष्प दर्शन३ आदि भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। लालसा अर्थ में प्रयुक्त दोहद शब्द का अर्थ बड़ा विस्तृत है। इसमें पशु, पक्षी, मनुष्य और वनस्पति जाति के स्त्री पुरुष दोनों सम्मिलित हैं। दोहद की लालसा को केवल अवन्ध्य स्त्री ही जान सकती है अन्य नहीं। यह विचार बल्लाल कवि का है :—

सुकवेः शब्द सौभाग्यं सत्कविर्वेत्ति नापरः।
वन्ध्या न हि विजानाति परां दोहद संपदम्॥४

अर्थात् दोहद की संपदा को केवल सौभाग्यवती स्त्री ही जानती है, वन्ध्या का उससे कोई सम्बन्ध नहीं।

कालिदास ने दोहद शब्द का प्रयोग संभार एवं लालसा दोनों अर्थों में किया है। दोहद संभार अर्थ में केवल गर्भाधान के उपरान्त ही प्रयुक्त होता है, ऐसी धारणा संस्कृत साहित्याकारों की रचनाओं के अध्ययन से प्रकट होती है। दोहद संभार यद्यपि दुखशील होता है तथापि स्त्री इस दुखशील दोहद में भी अनन्त सुख-शालीनता का आनन्द अनुभव करती है। दोहद संभार के कारण स्त्री वस्तुतः विश्व कल्याण की प्रतिमूर्ति बनने की दिशा में अपने अस्तित्व को अपर के लियें आहूत कर देती है। जयशंकर प्रसाद की श्रद्धा

१—दौर्हृदं, श्रद्धा, लालसा इति हेम चन्द्र।
२—दोहदं—संभारं भोज प्रबन्ध बल्लाल ११वीं शती।
३—अहमपि अस्य चिरायमाण कुसुमोद्गनस्य तपनीयाशोकस्य दोहद निमित्तं देव्यै विज्ञापयामि, मालविकाग्निमित्र कालिदास।
४—भोज प्रबन्ध, बल्लाल कवि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ये गुण विश्वम्भरा के रूप में उस समय और भी अधिक विकसित हुए जबकि वह मानव को गर्भ में धारण किये हुए थी। दोहद संभार से प्रचीयमान अवयवा नारी का सुन्दर चित्रण कालिदास ने बड़े मार्मिक ढंग से किया है। वे लिखते हैं :—

क्रमेण निस्तीर्य च दोहदव्यथां प्रचीयमानावयवा रराज सा ।।
पुराण पत्रापगमादनन्तरं लतेव सन्नद्धमनोज्ञ पल्लवा १।।

अर्थात् दोहद व्यथा को क्रम से पार करके कृशांगी सुदक्षिणा रानी उस लता के समान शोभित हुई जो कि पुराने पत्ते छोड़ने के बाद नूतन पल्लव धारण करती है।

दोहद गर्भिणी स्त्री के मनोरथ२ को भी कहते हैं। गर्भवती स्त्री अपने गर्भ की सम्पूर्णता के लिये नाना प्रकार की इच्छाएं करती है। गर्भिणी स्त्रियों के दोहद मनोरथ को पूरा करने के लिये अनेक प्रयत्न किये जाते थे। इस प्रकार का वर्णन हमें संस्कृत साहित्य में मिलता है। सुदक्षिणा के गर्भ दोहद को पूरा करने के लिये राजा दिलीप ने कसर न उठा रखी थी।

उपेत्य सा दोहद दुखशीलतां यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम्।
नहींष्टमस्य त्रिदिवे पि भूपतेरभूदनासाद्यमधिज्य बन्धनः३ ।।

अर्थात् सदा सर सन्धान वाले राजा दिलीप के लिये स्वर्ग में होने वाली कोई भी वांछित वस्तु अप्राप्य न थी। अतः रानी अपने दोहद के निमित्त जिस किसी पदार्थ की इच्छा करती थी, वह उसे तुरन्त मिल जाता था।

गर्भिणी स्त्री के दोहद को पूर्ण करना शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से उत्तम होता है। इसी विचार को मल्लिनाथ ने रघुवंश की टीका में लिखा है :—

देयमप्यहितं तस्मै हितोपहितमकल्पम् ।
श्रद्धा विघाते गर्भस्य विकृतिश्युतिखे ।।

अर्थात् दोहद चाहे अहित साधक भी हो, तो भी उसकी पूर्ति होनी चाहिए, अन्यथा विकृति होने की सम्भावना बनी ही रहती है। और कभी कभी तो दोहद के अपूर्ण रहने पर गर्भच्युति भी हो जाती है। इसी की पुष्टि याज्ञवल्क संहता से भी निम्न प्रकार होती है :—

दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमावाप्नुयात् ।
वैरूप्यं मरणंवापि तस्मात् कार्य प्रियं स्त्रियाः

गर्भिणी स्त्री का यह दोहद सामान्य से सामान्य भी हो सकता है। बड़े-बड़े सम्पन्न घरानों की स्त्रियां सर्व पदार्थों के हस्तामलकवत् सुलभ होने पर भी गर्भावस्था में मिट्टी खाती देखी जाती हैं। राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा भी इसका अपवाद

१—रघुवंश, कालिदास ।
२—दोहदं आकर्षं ददातीति । गर्भिण्याभिलाष :। शब्द कल्प द्रुम ।
३—रघुवंश, कालिदास ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न थी । रानी सुदक्षिणा के मृत्सुरभित ग्रानन को एकान्त में सूंघ कर राजा दिलीप ग्रतृप्त ही पाया गया । इसको कालिदास ने रघुवश में इस प्रकार लिखा है ।

तदाननंमृत्सुरभि क्षितीश्वरो र स्युपाघ्राय
न तृप्तिं मायया ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचि
व्यपायेवनराजि पल्लवम् ।।

जिस प्रकार मदमस्त हाथी वर्षा की प्रथम बूंदों के सम्पर्क से उठने वाली भूमि की सौंधी सुगन्ध से बार-बार सूंघने पर भी ग्रतृप्त ही रहता है । ठीक इसी प्रकार राजा दिलीप भी सुदक्षिणा के मृत्सुरभित ग्रानन को सूंघ कर भी ग्रतृप्त ही रहा ।

दिङ्गनाग ने गर्भिणी राजरानी सीता के भगीरथी दर्शन करने की इच्छा ग्रपनी रचना में निम्न प्रकार लिखी है "सीतया चाहं गर्भिणीभाव सुलभेन दोहदेन भागीरथी दर्शन प्रार्थितः"१ । ग्रर्थात् गर्भिणी सीता ने भागीरथी दर्शन का दोहद प्रस्तुत किया है ।

यहां तक का विवरण स्त्रियों की दोहद वार्ता से पूर्ण है । ग्रब ज़रा पुरुषों के दोहद की भी बानगी देखिए कि वे ग्रपने दोहद की पूर्ति किन-किन साधनों से करवाने में तत्पर एवं उत्सुक दिखाई पड़ते हैं । दोहद विषय में स्त्रियों की ग्रपेक्षा पुरुष किंचित् ग्रधिक ग्रातुर ग्रौर ढीठ दिखाई पड़ते हैं । मालविका जब ग्रशोक ताड़न के लिये ग्रपने चरणों को ग्रागे बढ़ाती है तो ग्रग्नि मित्र भी ग्रचानक दृश्य स्थल पर ग्रा टपकता है ग्रौर कहता है :—

धृतिपुष्पमपमपि जनो न बध्नाति तादृशं
चिरात्प्रभृति ।
स्पर्शामृतेन पूरय दोहदमस्याप्यनन्यरुचेः।।२

हे मालविका ! चिरकाल से यह जन भी धृति रूप पुष्प धारण नहीं कर रहा । ग्रतः ग्रपने स्पर्श रूपी ग्रमृत से इसका दोहद भी पूरा करो ।

पुरुष के दोहद को पूरा करने में नारी के जहां ग्रन्य ग्रंग कार्य करते हैं, वहां वाम चरण तो इनका मुखिया है । वाम का ग्रर्थ सुन्दर भी होता है, परन्तु संस्कृत साहित्य में वाम सुन्दरता के साथ सम्बन्ध रखता हुग्रा भी वाम चरण का ग्रपरिहार्य वाचक बन गया है । इसीलिये तो नायक सदा वाम चरन के ग्रभिलाषी दिखाई पड़ते हैं ।३ ग्रग्निमित्र मालविका

१—कुन्दमाला, दिङ्गनाग ।
२—मालविकाग्निमित्र, कालिदास ।
३—ग्रमरू शतक ८। "कान्ता पाद तलाहितस्तव, मुदे तद्वन्माप्यावयोः मालविकाग्नि मित्रकालिदास" ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वामचरण का प्रसाद लेने को व्यग्र है और प्रार्थना करते हैं । :--

नवकिसलय रागेणाग्र पादेन बाला स्फुरित
नखरुचा द्वौ हन्तुमर्हत्यनेन ।
ग्रकुसुमितमशोकं दोहदापेक्षया वा प्रणिहित
शिरसं वा कान्तयार्द्रापारधम् १ ।।

हे बाला ! तुम ग्रपने नव किलय के समान ग्ररुण ग्रौर कोमल चरणों से केवल दो को ही प्रताड़ित करने में समर्थ हो । एक तो ग्रकुसुमित ग्रशोक तरु को तथा दूसरे मुझ राजा को ।

वाम चरण "दोहदपूरण" में नर्म साचिव्य का कार्य करता है । बड़ी बड़ी दासियां ग्रौर दूतियां जिस ललित कामि-साधारणता दोहद को सम्पन्न कराने में ग्रसमर्थता प्रकट करती हैं, वहां वाम चरण क्षण भर में ही उस दोहद को पूर्ण करने में समर्थ हैं । काम तृप्ति (दोहद) में वाम चरण को ब्रह्मास्त्र मान कर कहा गया है "रूषा ब्रह्मयास्त्रं मे शिरसि निहितो वाम चरण:" २ ।

भगवान कामदेव जी भी वाम चरण को धारण करने में महान् गौरव ग्रनुभव करते हैं । यदि वह वाम चरण सालक्तक तथा सनूपुर हो तो सोने में सुहागे का काम है । इस विचार की पुष्टि में ग्रमरू का निम्न श्लोक पर्याप्त है :--

सालक्तेन नवकोप कोमलेन पादेन नूपुरवता
मदनालसेन ।
यस्ताड्यते दयितया प्रणयापराधात्
सोङ्गीकृतो भगवता मकरध्वजेन ३।।

मदन से ग्रलसाई, नवकोप की ललाई से कान्तिमती दयिता के सालक्तक ग्रौर नूपुरवाले चरणों से जो ताड़ना दी जाती है उसे मकरध्वज बड़े ग्रानन्द से ग्रंगीकार करते हैं । स्त्रियां भी प्राचीन काल में पुरुषों को दण्डित करती हुई वामचरण को उपयोग में लाती थीं इसका प्रमाण राजशेखर है । उन्होंने लिखा है "तेन च ते मुखं चूर्ण्यतां येनाशोकतरू दोहदं लभे"४ ग्रर्थात् जिससे ग्रशोक वृक्ष दोहद प्राप्त करता है उस चरण से तेरा मुख चूर-चूर होवें ।

मनोविज्ञान के ग्राधार पर स्पृहणीय व्यक्ति से की गई मार पीट कामासक्ति में उर्वरक का कार्य करती है । ग्रतः एव बहुत सी भारतीय प्रथाग्रों में स्त्री, पुरुष के ग्राभुक्त होने से पूर्व ताड़न के निमित्त "ताड़न केलि" नामक खेल का उपक्रम ग्रब भी किया जाता है । हरयाणा में

१--मालविकाग्निमित्र, कालिदास ।
२--ग्रमरु शतक ।
३--ग्रमरू शतक ।
४--कर्पूर मंजरि राजशेखर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह के उपरान्त जब वधु वर के घर प्रथम बार आती है, तो उस समय दोनों के हाथों में "कमचियां" अर्थात् पतली-पतली हरी-हरी कोमल लकड़ियां दे दी जाती हैं। जिससे वे एक दूसरे को पीटते हैं। इसके अतिरिक्त होली के उपरान्त आने वाला अगला दिन हरयाणा में "दुलहनड़ी" नाम के त्योहार से पुकारा जाता है। इस दिन स्त्रियां लाठी और रस्सी लेकर पुरुषों को पीटती हैं। पुरुष किसी भी प्रकार की "ननु न च" न करके इस माल को सहर्ष स्वीकार करते हैं।

अकाल पुष्प दर्शन में भी दोहद शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में सुतरां पाया जाता है। अकाल पुष्पदर्शन में दोहद एक विशेष रसायनिक द्रव्य का नाम है :—

तरुगुल्मलतादीनां अकाले कुशलैः कृतम्।
पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात् तु तत्क्रिया १

इस द्रव्य का प्रयोग राजा अपने आरामों की रमणीयता एवं कमनीयता को सुरक्षित रखने के लिये करते थे। इस द्रव्य की प्रक्रिया से उनके आरामों में सदा पंचशर वसन्त के साथ सेवा के लिये उपस्थित रहता था। इस प्रकार के संकेत हमें हर्ष के नाटकों में उपलब्ध होते हैं :—

इयं खलु सा निरन्तरोद्भिन्न कुसुम शोभिनी भर्त्र्या परिगृहीता माधवी लता। एषाप्यपरा नवमालिका लता यस्या अकाल कुसुमसमुद्गत श्रद्धालुना भर्तानुदिन-मायास्यत आत्मा।२

अनुदिन के सन्ताप को दूर करने के लिये रत्नावली के नायक ने श्री पर्वत से आने वाले खण्डदास नामक साधू से अकाल पुष्प दर्शन के निमित्त दोहद की शिक्षा ली थी :—

अथकिल भर्ता श्री पर्वतादागतस्य श्री खण्डदास नामधेयस्य धार्मिकस्य सकाशाद का कुसुमंजनन दोहदं शिक्षित्वात्मनः परिगृहीतां नवमालिकां कुसुमवृद्धि शोभितां करिष्यतीति"३

इसी दोहद की शिक्षा के परिणाम स्वरूप महाराज की नवमालिका ने अकाल पुष्प दर्शन दिया और देवी की माधवी लता को पुष्प चनौती में अतिक्रमित कर दिया। अपनी नवमालिका के अकाल पुष्प दर्शन को देख कर महाराज हर्षोत्फुल्ल लोचन हो गये :—

एष खलु प्रियवयस्यस्तस्य दोहदस्य लब्धप्रत्ययतया परोक्षा मपि तां नवमालिकां प्रत्यक्षमिव कुसुमितं प्रेक्षमाणः हर्षोत्फुल्ल लोचन इव इतेवागच्छति।४

१—शब्दार्णव।
२—रत्नावली, हर्ष।
३—रत्नावली, हर्ष।
४—रत्नावली, हर्ष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षों में जीव मानने वाले जीवशास्त्री यह कहते हैं कि वृक्ष आदि भी मानव की भांति सुख-दुख का अनुभव करते हैं। संगीत की सुमधुर ध्वनि से लताओं तथा वृक्षों में उत्कम्पन एवं सिहरन का उद्घाटन देखा गया है । कनक छड़ी सी कामिनी के सम्पर्काभिलाषी तरू भी देखे जाते हैं । राज शेखर कहते हैं "तरवोऽपिरूप रेखा-रहस्पेन विकसन्ति न पुनः रति रहस्यं जानन्ति १ । अर्थात् तरु भी रूप रेखा के रहस्य से विकसित हो जाते हैं, यद्यपि वे रति रहस्य को नहीं समझते ।

कबीर ने "जातन की झांई पड़े, अन्धा होत भुजंग" लिख कर केवल स्त्री के कृष्ण पक्ष का ही उद्घाटन किया है, किन्तु सुन्दरी का शुक्ल पक्ष उन्हें न लुभा सका। इस शुक्ल पक्ष का समुचित विवरण हमें संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता है। जिस प्रकार पुरुष अपने दोहद के निमित्त वाम चरण, स्पर्शामृत आदि के इच्छुक होते हैं, उसी प्रकार वृक्षादि भी कामिनी के विभिन्न अंगों के सम्पर्क से फूल उठते हैं। यह सम्पर्क कहीं चरण से, कहीं नेत्र से, कहीं आलिंगन से, कहीं गण्डूष से, कहीं नर्मवाक्यों से, कहीं हंसने से, कहीं मृदुगीतों से तथा कहीं नाचने से दोहद के उद्देश्य को पूरा करता है। शब्द कल्प द्रुम में लिखा है कि :—

स्त्रीणां दर्शनात् प्रियङ्गु विकसति, वकुल शीधु गण्डूष सेकात्,
पादाघातशोकस्तिलक कुरबकौ वीक्षणा-लिङ्गनाभ्याम् ।
मन्दारो नर्म नर्मवाक्यात् पटुं मृदुं हसनात् चम्पको वक्रवातात्,
चूतो गीतान्नमेरु विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकः ॥

अर्थात् स्त्रियों के दर्शनमात्र से प्रियङ्गु लता खिल उठती है, वकुल सुन्दरी से शराब का कुल्ला पाकर२ फूलने का अवसर पाती है । चरणों के ताड़न से अशोक३, तिलक४ और कुरंटा५ क्रमशः

१—कपूरमंजरी, राजशेखर ।

२—मदकलितकामिनी गण्डूष सीध सेक पुलकित वहुलेषु ॥ बाण, कादम्बरी ।

३—(क) अनेन तनुमध्यया मुखर नूपुर राविणा,
नवामम्बुरूह कोमलेन चरणेन सम्भावितः ।
अशोक । यदि सद्य एव कुसुमैर्न संपत्स्यते,
वृक्षा बहसि दोहदं ललित कामि साधारणम् । मालविकाग्निमित्र, कालीदास

(ख) कुसुमकृत दोहदस्त्वया, यदशोकोऽयमुदीरमिष्यति । रघुवंश, कालिदास ।

४—कुरबक तिलकाशोका, आलिंगन दर्शनाग्रचरणहताः ।
विकसन्ति कामिनीनां ततेषां देहि दोहदकम् ॥ कर्पूरमंजरी, राजशेखर !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने और आलिंगन करने से मन्दार (कल्पद्रुमों में से एक) नर्म वाक्यों से मृदु हंसी से चम्पा, मुख की तिरछी वायु से ग्राम, गीत से नमेरू और सम्मुख नाचने से कर्णिकार का वृक्ष फूल उठता है।

इन तरुओं और लताओं के विकसित होने में प्रत्येक प्रकार की स्त्री दोहद का कार्य नहीं कर सकती । इनके पुष्पित होने के लिये अनिन्द्य सुन्दर स्त्री ही कारण होती है। इन सुन्दरियों की अवस्था वय: सन्धि की देहरी के झूले पर इतस्त: चंक्रमित होनी अनिवार्य है। अकाल पुष्प दर्शन कामशास्त्र की दृष्टि से भी अनिवार्य माना गया है। पुष्पित हुए बिना स्त्री का सम्पर्क काम शास्त्र की दृष्टि से गर्हित माना गया है । अत: केवल उन कुमारियों से अकाल पुष्प दर्शन की विधि सम्पन्न कराई जाती थी, जिनमें राजा के प्रणय सम्बन्धी अंकुर पनपते दिखाई पड़ते थे रानी ऐसी कुमारियों का राजा से सम्पर्क न होने पावे इस बात का सदा ध्यान रखती है । सम्पर्क न होने से राजा तथा कुमारी में उत्सुकता एवं उत्कट अभिलाषा का उद्रेक निरन्तर अन्तर्गति धारण करता हुआ अकाल पुष्प दर्शन में प्रणय का पोषक हो जाता था ।

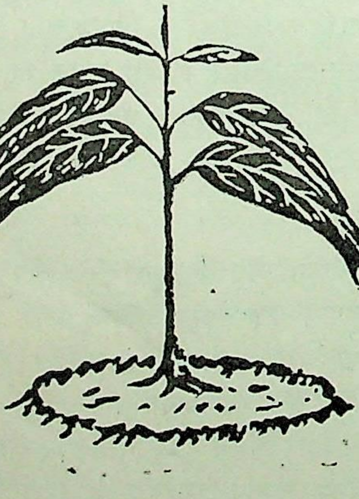

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशमग्रन्थ का रचयिता—अन्तर्साक्ष्य का आधार

डा० महीप सिंह

किसी भी प्राचीन रचना की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिये बहुधा दो ढंग अपनाये जाते रहे हैं—पहला, बहिर्साक्ष्य—दूसरा, अन्तर्साक्ष्य। वस्तुतः बहिर्साक्ष्य की अपेक्षा अन्तर्साक्ष्य का महत्व ही अधिक होता है क्योंकि रचना में समाहित प्रमाण बाहर से एकत्र किये गये प्रमाणों की अपेक्षा अधिक तर्कसंगत एवं विश्वसनीय होते हैं।

दशम ग्रन्थ के कृतिकार का निर्णय करते समय भी उक्त दोनों ही पद्धतियों का आश्रय लिया गया है। ये दोनों आधार दशम ग्रन्थ में संग्रहीत सभी रचनाओं को गुरु गोविन्द सिंह द्वारा विरचित होना सिद्ध करते हैं। इस लेख में प्रमुखतः अन्तर्साक्ष्य को आधार बना कर कुछ विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

दशम ग्रन्थ में दो प्रकार की रचनाएं है एक वे जिनमें किसी कवि-नाम का उल्लेख नहीं है। जैसे—

विचित्र नाटक (आत्मकथा) जाप, अकाल स्तुति, चंडी चरित्र (प्रथम द्वितीय और पंजाबी) शस्त्रनाम माला, स्फुट पद, कवित्त और सवैये।

दूसरी वे रचनाएं जिनमें श्याम, राम, काल और गोविन्द नाम प्राप्त होते हैं। जैसे—रामावतार, कृष्णावतार तथा अन्य अवतारों की कथा, चरित्रोपाख्यान। इनमें श्याम नाम का प्रयोग सब से अधिक हुआ है और गोविन्द नाम का प्रयोग केवल एक बार रामावतार के अंत में हुआ है। उदाहरण स्वरूप—

(१) ईह बिधि मारि विराध को बन में धंसे निसंक।
सुकवि स्याम इह बिधि कहयो रघुवर जुद्ध प्रसंग॥

(२) घनु सायक लै रिसि भूपतिके तन घाइ करै ब्रिजराज तबै॥
पुनि चारों ही बानन सो हय चारो ही राम भनै हन दीन सबै॥
तिल कोट्कि सियदन काटि कियो, घनु काट दियो करि कोप जबै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृप प्यादो गदा गहि सन्मुखे गयो अति
जुद्ध भयो कहि हों सु अबै ।।
(कृष्णावतार १८७२)

अछल छैल छैली छल्यो इह चरित्र के संग ।।
सुकवि काल तब ही भयो, पूरन कथा प्रसंग ।।५२।।
(चरित्रोपाख्यान, चरित्र २१७)

यहां तीन विभिन्न रचनाओं, रामावतार, कृष्णावतार और चरित्रोपाख्यान में तीन विभिन्न कवि नाम--स्याम, राम और काल मिलते हैं। रामावतार के अंतिम छंद में गोविन्द नाम का प्रयोग इस प्रकार है–

सगल दुआर को छाडिकै गह्यो तुहारो दुआर ।
बांहि गहे की लाज अस गोविन्द दास तुहार ।।
(रामावतार ८६४)

ऐसे भी अनेक स्थल हैं जहां एक ही रचना में एक से अधिक कवि नामों का प्रयोग हुआ है। कृष्णावतार के जिस छंद को ऊपर उद्धृत किया गया है उसमें "राम' नाम का प्रयोग हुआ है। प्रसंग कि यह है कि युद्ध-भूमि में कृष्ण ने जरासंघ के रथ के चारों घोड़ों को मार गिराया है और उसका धनुष काट दिया है। नृप (जरासंघ) पैदल ही हाथ में गदा लेकर कृष्ण के सम्मुख युद्ध के लिये आ गया। आगे जो युद्ध हुआ अब कवि उसका वर्णन करने की बात कहता है --

अति जुद्ध भयो कहि हौं सु अबै ।"

इसके बाद के छंद में, जिसमें जरासंघ अपनी गदा के प्रहार से कृष्ण के रथ के चारों घोड़ों और सारथी को मार कर रथ को चूर-चूर कर देता है, 'श्याम' कवि--नाम का प्रयोग हुआ है --

पाइन धाइकै भूप बली सु गदा कहु धाइ हली प्रति झार्यो ।।
कोप हुतौ सु जितौ तिह मैं सब सूरन कौ सु प्रतच्छ दिखार्यौ ।
कूद हली भुअ ठाढ़ो भयो जसु ता छबिको कवि स्याम उपार्यो ।।
चारो ही अस्वन सूत समेत सु कै सबही रथ चूरन डार्यो ।।
(कृष्णावतार १८७३)

'चरित्रोपाख्यान' में तीनों कवि नाम (श्याम राम और काल) बड़ी प्रचुरता से प्रयुक्त हुए हैं:–

भेद अहीर न कछु लह्यो आयो अपने गेह ।
राम भनै तिन त्रिय भए अधिक बढ़ायो नेह ।।१४।।
(चरित्र २८)

जूझि मरी पिय पीर त्रिय तनिक न मोर्यो अंग ।।
सुकवि स्याम पूरन भयो तबही कथा प्रसंग ।।२२।
(चरित्र--१२२)

अछल छैल छैली छल्यो इह चरित्र के संग ।।
सुकवि काल तब हीं भयो पूरन कथा प्रसंग ।।
(चरित्र--२१७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशम ग्रन्थ से ऐसे अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। इनसे यह तो स्पष्ट ही है कि ये तीनों नाम एक ही कवि के हैं, जिसने मौज में आकर जहां मन चाहा वहां वह प्रयुक्त कर दिया। अब प्रश्न रह जाता है कि क्या वह कवि स्वयं गुरु गोविन्दसिंह हैं और ये सभी उन्हीं के उपनाम हैं? दशम ग्रन्थ की रचनाओं का ध्यानपूर्वक किया हुआ अध्ययन यह स्पष्ट कर देता है कि यद्यपि रचनाएं देखने में भिन्न-भिन्न प्रगट होती हैं परन्तु उनमें एकसूत्रता है और उनकी सुसम्बद्धता के सूत्र स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े हैं। उदाहरणस्वरूप दशम ग्रन्थ की रचना विचित्र नाटक (आत्मकथा) को गुरु गोविन्द सिंह की रचना कहने में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि यह उनकी स्वयं की अधूरी कथा है, यद्यपि इस रचना में एक भी स्थान पर उन्होंने अपना नाम प्रगट नहीं किया है। इस रचना की निम्न लिखत कुछ पंक्तियां पढ़ कर ही यह कहा जा सकता है कि इनका संबंध गुरु गोविंद सिंह से है –

अकाल पुरख वाच

मैं अपना सुत तोहि निवाजा ।।
पंथ प्रचुर करबे को साजा ।।
जहां तहां तै धर्म चलाइ ।।
कुबुद्धि करन तैं लोक हटाइ ।।२९।।

कवि वाच

ठाढ भयो मैं जोरि करि बचन कहा सिर नियाइ ।।
पंथ चलै तब जगत मैं जब तुम करहु सहाइ।।३०
इह कारनि प्रभु मोहि पठायो ।
तब मैं जगत जनमु धरि आयो ।।
जिम तिन कही इनै तिहं कहि हौं ।।
अउर किसू तै बैरन न गहिहौं ।।३१

(षष्टम अध्याय)

मुर पित पूरब कियसि पयाना ।
भांति भांति के तीरथ नाना ।।
जबही जात त्रिवेणी भए ।।
पुन्न दान दिन करत बितए ।।१।
तही प्रकास हमारा भयो ।।
पटना सहर बिखै भव लयो ।।
मद्र देस हमको लै आए ।
भांति भांति दाइअन दुलराए ।।२।।

(सप्तम अध्याय)

राज साज हम पर जब आयो ।।
जथा सकति तब धरम चलायो ।।१।।
देस जाल हमते पुनि भई ।
सहर पांवटा की सुध लई ।।२।।
फतेसाह कोपा तब राजा ।
लौह परा हम सों बिन काजा ।।३।।

ये कुछ ऐसी पंक्तियां हैं जो कवि के उद्देश्य, उसके पिता की पूर्व की यात्रा, पटना में उसके जन्म, देशचाल आने पर पांवटा नगर की ओर प्रस्थान, फिर राजा फतेहशह से युद्ध आदि ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करती हैं। आगे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यायों में अपने वंश युद्ध तथा अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन इसे गुरु गोविन्दसिंह की आत्मकथा सिद्ध करती है, क्यों कि सभी घटनाएं ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकाश में स्पष्ट हैं।

इस आत्मकथा के अंत में कवि ने अब तक के किये हुए कार्यों तथा भविष्य की योजनाओं की ओर संकेत किया है --

अब जो जो मैं लखै तमासा ।।
सो सो करो तुम अरदासा ।
जो प्रभु कृपा कटाच्छ दिखैहै ।।
सो तव दास उचारत जैहैं ।।३।।

इन पंक्तियों में प्रभु की कृपादृष्टि की आकांक्षा है। यदि वह प्राप्त हो जाए तो कवि सृष्टि के इस देखे हुए तमाशे का वर्णन करता चला जाएगा।

आत्मकथा लिखने के पूर्व गुरु गोविन्द सिंह अनेक अवतार कथाएं लिख चुके थे। एक चंडीचरित्र की भी रचना कर चुके थे। उसी क्रम को आगे बढ़ाने की बात उन्होंने आत्मकथा के इस छन्द में की है --

जिह जिह बिधि जन्मन सुधि आई ।।
तिम तिम कहै गिरन्थ बनाई ।।
प्रथमे सति जुग जिह बिधि लहा ।।
प्रथमे देबि चरित्र को कहा ।।१०।।
पहिले चंडी चरित्र बनायो ।
नख सिख ते क्रम भाख सुनायो ।।
और कथा सब प्रथम सुनाई ।।
अब चाहत फिरि करौं बड़ाई ।।११।।

इन पंक्तियों में कुछ अवतार कथाओं को लिख चुकने की ओर संकेत है। 'प्रथमे देबि चरित्र' को कह चुकने की बात है। कवि पुनः चंडी का चरित्र लिखना चाहता है। चंडी चरित्र (द्वितीय) की रचना इसी आकांक्षा को पूर्ण करने के लिये लिखी गयी होगी।

दशम ग्रन्थ के रचयिता ने विभिन्न अवतारों की कथा का प्रारम्भ करते हुए एक विशेष प्रणाली अपनायी है। 'अब मैं अमुक अवतार की कथा कहूँगा', यह वाक्य लगभग सभी अवतारों की कथा के प्रारम्भ में आया है और यही क्रम आत्म-कथा के साथ के साथ भी अपनाया गया है, जैसे ये सभी रचनाएं एक ही शृंखला की कड़ियां हैं। उदाहरणस्वरूप--

१--अब चउबीस उचरौं अवतारा ।
जिहि बिधि तिन का लखा अखारा ।
सुनियहु संत सभै चित लाई ।
बरनत स्याम जथामति भाई ।।१।।१
२--अब मैं कहौं राम अवतारा ।
जैस जगह मौं करा पसारा ।।१।।२
३--अब बरनौं कृस्ना अवतारू ।
जैस भांति बपु धरा मुरारू ।।३

१--चौबीस अवतार--दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १५५
२--रामावतार--दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १८८
३--कृष्णावतार--दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४––अब बाईसवो गनि अवतारा ।
जैस रूप कह धरो मुरारा ।।१।।१

५––अब मैं महासुद्धि मति करि कै ।
कहौं कथा चित्त लाइ बिचरकै ।
चउबिसवौं कलकी अवतारा ।
ता कह कहौं प्रसंग सुधारा ।।१।।२

इसी क्रम में––

अब मैं कहौं सु अपनी कथा ।
सोढि बंस उपजया यथा ।।८।।
अब मैं अपनी कथा बखानी ।
तप साधत जिह बिधि मुहि आनो ।।१।।३

वर्णन की इस शैली से यह स्पष्ट है कि अन्य अवतारों की कथा रचने वाला और अपनी कथा का नायक एवं रचयिता एक ही व्यक्ति हैं ।

पुनरुक्तियां एवं अभिव्यक्ति साम्य

दशम ग्रन्थ में संग्रहीत विभिन्न रचनाओं में बड़े स्वल्प अंतर से अनेक पुनरुक्तियां भरी पड़ी हैं । इसी प्रकार अभिव्यक्ति साम्य भी स्थान-स्थान पर दिखाई देता है । यथा––विचित्र नाटक (आत्मकथा) के प्रथम अध्याय के ९२वां छंद और चरित्रोपाख्यान ग्रन्थ के प्रथम चरित्र का ४७वां छंद बड़े स्वल्प अंतर से एक जैसा ही है ––

मेर करो त्रिण ते मुहि जाहि गरीब निवाज न दूसर तोसों ।।
भूल छिमो हमरी प्रभ आपन भूलन हार कहूँ कोउ मोसों ।।
सेव करी तुमरी तिनके सभही गृह देखीअत द्रब भरोसों ।।
या कल मैं सभ काल कृपान के भारी भुजान के भारी भरोसो ४ ।।

चरित्रोपाख्यान का छंद यह है–

मेर कियो त्रिण ते मुहि जाहि गरीब निवाज न दूसर तोसों ।।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन भूलन हार कहुं होउ मोसों ।।
सेव करै तुमरी तिनके छिन मैं धन लागत धाम भरोसों ।।
या कलि में सभ कालि कृपान की भारी भुजान को भारी भरोसों ५ ।।

दृष्टव्य यह है कि आत्मकथा का सवैया 'काल' को संबोधित करके कहा गया है और चरित्रोपाख्यान 'कालि' (चंडी) को । छंदों में स्वल्प अंतर केवल रेखांकित भाग का ही है ।

१––नरावतार––दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५७०
२––निहकलंकी अवतार दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५७१
३––विचित्र नाटक दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ५४
४––दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ४५ ।
५––दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८१३ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार आत्मकथा के द्वितीय अध्याय का दूसरा छंद और चरित्रोपाख्यान के प्रथम चरित्र का ४३वां छंद लगभग समान हैं——

मूक उचरै शास्त्र खट पिंग गिरन चढ़िजाइ ।
अंध लखै बधरौ सुनै जो काल कृपा कराइ।२।१
मूक उचरे शास्त्र खट पिंग गिन चढ़ि जाइ ।।
अंध लखै बघरो सुनै जो तुम करो सहाइ।४३।२

अकाल स्तुति में कवि कहता है——

कई राम कृष्ण रसूल
बिनु भगति को न कबुल ।।८।।३८।।

थोड़े से अन्तर से इसी बात को वह ब्रह्मावतार में कहता है——

कई राम कृष्ण रसूल ।
बिनु नाम को न कबूल ।।१२।।

अकाल स्तुति में कवि कहता है——

किते कृष्ण से कीट कोटे उपाए
उपारे गढ़े फेरि मेटे बनाए ।।६।।६६।।

विचित्र नाटक में इन पंक्तियों का रूप यह है ——

उपारे गढ़े फेरि मेटे उपाए ।२६।
किते कृष्ण सै कीट कोटे बनाए ।२७।

विचित्र नाटक का निम्न छंद ईश्वर की स्तुति में कहा गया है, जिसमें भक्त अपने सामर्थ्य को क्षीण पा रहा है ——

कागद दीप सभै करिके अरु सात समुद्रन की
मसु कैहों ।
काट बनासपति सगरी लिखबे हु कै लेखन
काज बनैहों ।।
सारसुती बकता करिकै जुगि कोटि गनेस
के हाथ लिखैहों ।।
काल कृपान बिना बिनती न तऊ तुमको
प्रभु नैक रिझैहों ।१०१।

चरित्रोपाख्यान में थोड़े से अंतर के साथ इसी छंद द्वारा मूर्तिपूजा का विरोध किया गया है——

कागद दीप सभै करिकै अरु सात समुद्रन
की मसु कैयै ।।
काटि बनासपति सगरी लिखबै हुकौ
लैखन काज बनैयै ।।
सारस्वती बकता करिकै सभ जीवन ते
जुग साठि लिखैयै ।।
जो प्रभु पायतु है नहि कैसे हूँ सो जड़
पाहन में ठहरैयै ।।१४।।
(चरित्र——२६६)

भाव एवं अभिव्यक्ति साम्य की रचनाएं तो दशम ग्रन्थ की विभिन्न रचनाओं में स्थान-स्थान पर ढूंढी जा सकती हैं । युद्ध प्रसंगों की बहुलता, अवतारवाद, बाह्याडंबर और आचार क्रियाओं का खंडन एवं 'काल' 'अकाल' कालि' 'खड्गपाणि' आदि वीर भावोत्पादक ईश नामों के प्रति आस्था सम्बन्धी अभिव्यक्तियां लगभग सभी रचनाओं में उपलब्ध हैं ।

१——दशम ग्रन्थ, पृष्ट ४७ ।
२——दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८१३ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णावतार का एक छंद है—

का भयो जो बक लोचन मूंद कै बैठ रहिउ
जग भेख दिखाए ।।
मीन फिरिउ जल न्हात सदा सु कहा तिहकै
करि में हरि आए ।।
दादर जो दिन रैन रटै सु बिहंग उड़ै तन पंख
लगाए ।।
स्याम भनै इह संत सबै बिन प्रेम कहूँ
ब्रिजनाथ रिझाए।।
(२४८६)

देखिए, अकाल स्तुति के निम्न छंद से इसका कितना भाव और शब्द साम्य है—

कहां भयो दोऊ लोचन मूंद कै बैठि रह्यो
बक ध्यान लगायो ।
न्हात फिर्यो लिये सात समुद्रन लोक गयो
परलोक गवायो ।।
बास कीयो बिखिग्रान सो बैठ के ऐसे ही
ऐस सु बैस गवायो ।।
साच कहौं सुन लेहु सबै जिन प्रेम कियो
तिनही प्रभु पायो ।।९।।२९।।

कृष्णावतार के इसी क्रम में आए अनेक छंद अकाल स्तुति के छंदों से भाव और अभिव्यक्ति की समता रखते हैं ।

ईश्वर के रंग, रूप, निवास, वेश, नाम आदि के सम्बन्ध में कवि ने लगभग एक ही प्रकार की शब्दावली में अपनी अनभिज्ञता अनेक रचनाओं में प्रगट की है—

नहीं जान जाई कछू रूप रेखं ।
कहा बास तोको फिरै कउन मेखं ।
कहा नाम ताको कहा के कहावै ।
कहा मैं बखानो कह मो न आवै ।।१४।।
(विचित्र नाटक—अध्याय १)

नहीं जान जाई कछू रूप रेखं ।
कहा बास तोको फिरै कउन मेखं।
कहा नाम ताको कहा कै कहावै ।
कहा कै बखानी कहै मैं न आवै ।।९३।।
(अकाल स्तुति)

नहीं जान जाई कछू रूप रेखं ।
कहा बास ताको फिरै कउन मेखं ।।
कहा नाम ताको कहा कै कहावै ।
कहा मैं बखानो कहै मैं न आवै ।।६।।
(ज्ञान प्रबोध)

नहीं जानि जाई कछू रूप रेखा ।।
कहा बास ताको फिरै कौन मेखा ।।
कहा नाम ताको कहा कै कहावै ।
कहा के बखानो कहे मो न आवै ।।८७।।
(चरित्रोपाख्यान—२६६वां चरित्र)

गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी पंजाबी रचना 'चंडी दी वार' में सर्वत्र सिरखंडी छंद का प्रयोग किया है । युद्ध चित्रण के लिये यह छंद उन्हें बड़ा प्रिय लगा है । 'चंडी की वार' का एक छंद इस प्रकार है—

भन्नै दैत पुकारे राजे सुंभ थे ।।
लोचनधूम संघारे सणे सिपाही आ ।।
चुणि चुणि जोधे मारे अंदर खेत दै ।।
जापन अंबरि तारे डिग्गनि सूरमे ।
गिरे परबत भारे भारे बिज्जुदे ।।
दैंतां दे दल हारे दहसत खाइकै ।
बचै सु मारे मारे रहदे राइ थै ।।२९।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि ने रामावतार और निहकलंकी अवतार के युद्ध प्रसंगों में भी इस छंद का प्रयोग किया है --

बज्जे संगली आले हाठां जुट्टीआं ।।
खेत बहे मुछाले कहरत तारचे ।।
डिग्गे बीर जुझारे हूगां फुट्टीआं ।।
बक्के जाण मतवाले भंगां खाइके।।४६८।।
(रामावतार)

बज्जे नाद सुरंगी अणीआ जुट्टीआं ।।
पैरे धार पवंगी फउजां चीरकै ।।
उठै छैल छलंगी छालां पाइआं ।।
झाड़ झड़ाक झड़ंगी तेगां वज्जिआं ।।१८१।।
(निहकलंकी अवतार)

आत्माभिव्यक्ति

दशम ग्रन्थ की विभिन्न रचनाओं में, विशेष रूप से उन रचनाओं में, जिनके कृतित्व के सम्बन्ध में संदेह उठाया जाता है, गुरु गोविन्द सिंह स्पष्ट आत्माभिव्यक्ति सभी प्रकार के संदेहों को समाप्त कर देती है । कृष्णावतार के अंत के एक छन्द में वे अपना परिचय देते हुए कहते हैं--

छत्री को पूत हों बामन को नाहि कै तपु आवत है जो करौं ।।
अरु अउर जंजार जितो गृह कै तुहि त्याग कदाचित तामै धरौं ।।
अब रीझ कै देहु वहै हम कउ जोउ हउ बिनती करजोर करौं ।।
जब आउ की अउध निदान बनै अति ही रन में तब जूझ मरौं ।२४८९
(द. ग्र. पृष्ठ ५७०)

'कृष्णावतार' में कवि कृष्ण से वर मांगता है--मुझे रीझ कर यह दो कि जब आयु की अवधि समाप्ति पर आए तो मैं वीरगति को पाऊं । यही आकांक्षा चंडी चरित्र (प्रथम) में कवि ने इस प्रकार व्यक्त की है –

देह शिवा बर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहुं न टरौं ।।
न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं निसचै करि अपनी जीत करौं ।
अरु सिख हों अपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरौं ।।
जब आउ की अउध निदान बनै अति ही रन में तब जूझ मरौं ।।२३१
(द. ग्र. पृष्ठ ९९)

अंत में रण में जूझ करने की उनकी आकांक्षा अनेक स्थानों पर व्यक्त हुई है। कृष्णावतार के ही एक छंद में वे कहते हैं-- हे रविरूप, हे शक्तिरूप, हे करुणानिधि मेरी बिनती सुनो । मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहता,जो हृदय में चाहता हूँ वही दो । (चाहना क्या है ?) शस्त्र युक्त होकर युद्धभूमि में जूझ मरूँ (जिससे) संसार में संतों की सहायता हो सके ।१

१—हे रवि हे ससि हे करुणानिधि मेरी अबै बिनती सुन लीजै ।।
अउर न मांगत हउं तुमते कछु चाहत हउ चित में सोई कीजै ।।
सस्त्रन सिउ अति ही रन भीतर जूझ मरों कहि साच पतीजैं ।।
संत सहाइ सदा जग माहि कृपा करि स्याम इहै बरु दीजै ।(१९०० द.ग्र.पृ.) ४९५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवियों की रचनाओं में व्यक्त की गयी आकांक्षाओं तथा उक्त आकांक्षा का अंतर बहुत स्पष्ट है। रीतिकाल के किसी हिंदी कवि ने धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिये रण में जूझ मरने की आकांक्षा व्यक्त की है? रीतिकालीन कवि अपने लौकिक आश्रयदाता चाहे उसका आदर्श कुछ भी हो, की प्रशस्ति गाते अघाता नहीं। भोग-विलासी लम्पट और कामुक राजा की तुलना भी वह युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम से करता है उसे धन देने वाला यदि कुछ गांवों का स्वामी कोई छोटा मोटा राव भी है तो कवि उसकी धन सम्पन्नता कुबेर और दानशीलता में कर्ण को भी लज्जित करता रहता है। कालिदास त्रिवेदी जैसे कवियों ने तो हिन्दू जीवन के कट्टरतम शत्रु औरंगजेब की प्रशस्ति में भी कुछ कसर उठा नहीं रखी।[1] गुरु गोविन्द सिंह दरबारी कवि भी रीति कालीन वातावरण के प्रसूत कवि हैं। निस्संदेह गुरु गोविन्दसिंह ने अन्य आश्रयदाताओं की तरह उनसे नायिका-भेद नहीं लिखवाया, उनकी एक एक शृंगारिक उक्ति पर मोहरें नहीं लुटाईं और न ही अपनी काम वासना की तृप्ति का उन्हें साधन बनाया। गुरु गोविन्दसिंह अपने युग के सबसे बड़े लोक नायक ही नहीं थे, वरन् एक महान दूरदर्शी राष्ट्र निर्माता थे। उन्होंने अपने आश्रित कवियों को काम दिया, वह काम जो संकट के समय राष्ट्र जीवन में प्रेरणा का नव संचार करता है और भावी पीढ़ियों की अमर थाती बन जाता है। उन्होंने अनेक कवियों को महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों को 'भाषा' में अनुवाद करने का कार्य सौंपा और इस कार्य के लिये उन्हों ने दिल खोल कर धन दिया।

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (पृष्ठ २४१) में लिखा है कि कालिदास त्रिवेदी गोलकुंडे की चढ़ाई में औरंगजेब की सेना में किसी राजा के साथ गए थे। इस लड़ाई का औरंगजेब की प्रशंसा से युक्त वर्णन इन्होंने इस प्रकार किया है—

गढ़न गढ़ी से गढ़ि, महल मढ़ी सै मढ़ि,
बीजापुर ओप्यो दलमलि सुघराई में।
कालिदास कोप्यो वीर औलिया अलमगीर,
तीर तरवारि गहि पुहमी पराई में।
बूंद ते निकसि महि मंडल घमंड मची,
लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई में॥
गाड़ि के सुझंडा आड़ कीनी बादसाही ताते,
डकरी चमुंडा गोलकुंडा की लराई में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन आश्रित कवियों ने उनके पौरुष, दानशीलता और जीवन का प्रशस्तिपूर्ण वर्णन किया है। कवि अणिराय उनके पौरुष की प्रशंसा करता हुआ कहता है--

बान कपिध्वज भीम-भुजान,
कृपान सु मानस को मरदाने ।।
मार के मीर अधीर किये,
नित यों डरपै कवि राय बखाने ।।
श्री गुरु गोविन्द सिंह चढ़े,
अरिके सुनके हियरे थहिराने ।।
तेज के त्रास ते यों तरफें,
थरके थिरिआ जिउं पारद पाने ।।३।।

महाभारत के सभापर्व का अनुवाद करने वाला अमृतराय कहता है--

जाहीं उर जाऊं अति आदर तहां ते पाऊं,
तेरे गुन गन कउ अगाऊ गनै शेष जू ।
हीर चीर मुक्ता जे देति दिन प्रति दान,
तिनै देख देख अभिलाखत घनेश जू ।
गुनन में गुनी कवि अमृत पढ़ैया मेरो,
जब इनै हेर्‌यो प्यार कीजे अमरेश जू ।
श्री गुरु गोविन्दसिंह छीर निधि पार भई,
कीरत तिहारी तुमै कहिके संदेस जू ।

इसी प्रकार 'गुरु शोभा' के रचयिता सेनापति, कर्णपर्व के भाषानुवादक हंसराम द्रोण पर्व के भाषानुवादक कुवरेश, शल्य पर्व के भाषानुवादक मंगल तथा सुदामा, आसासिंह, चंदन, धन्नासिंह, सुन्दर, आलम, शारदा, सैणा, रोशन सिंह, भाई नंद लाल, हीर, टहिकण आदि अनेक कवियों ने गुरु गोविंदसिंह की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है, परन्तु दशम ग्रन्थ में आए कवि नामों श्याम, राम अथवा काल ने अपनी किसी भी रचना में किसी लौकिक पुरुष की प्रशंसा में एक भी शब्द नहीं कहा है। कृष्णावतार के रचयिता को धन की आवश्यकता नहीं क्योंकि देश देशान्तरी में उसके गौरव की इतनी प्रसिद्धि है कि अपार धन तो बिना कहे ही वहां से खिचा चला आता है। अन्य किसी प्रकार की रिद्धियां-सिद्धियां वह चाहता नहीं। उसके सम्मुख तो महत् उद्देश्य है संतों की रक्षा, दुष्टों का दलन, धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश। वह अपने इष्ट देव से इन्हीं की पूर्ति का बल मांगता है --

जउ किछु इच्छ करों धन की तउ चल्यो
धनु देसन देस ते आवै ।
अउ सब रिद्धन सिद्धन पे हमरो नहिं नेकु
हीया ललचावै ।
अउर सुनो कछु जोग बिखै कहि कउन इतो
तपकै तनु तावै ।
जूझ मरो इन मै तजि भै,तुम ते प्रभु स्याम
इहै बरू पावै ।

(कृष्णावतार---१६०१)

गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में ऐसा कौनसा कवि है, जो देशदेशान्तर में इतना प्रसिद्ध है कि इच्छा करते ही वहां से उसके लिये धन चला आता है, रिद्धियों-सिद्धियों पर उसका मन ललचाता नहीं, योग की साधनाओं की ओर जिसकी विशेष रुचि नहीं। वह तो भय त्याग कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मयुद्ध में जूझ मरने का ही वर प्राप्त करना चाहता है ।

गुरु गोविन्द सिंह का प्रत्येक आश्रित कवि अपनी रचना में इस बात का उल्लेख करता है कि अमुक रचना उसने उनकी आज्ञा से रची है।१ परन्तु दशम ग्रन्थ की किसी भी रचना में इस प्रकार की कोई पंक्ति नहीं है कि इसकी रचना किसी लौकिक पुरुष की आज्ञा से हुई है । चंडी चरित्र (प्रथम) के अंत में कवि कहता है कि इसकी रचना उसने अपने कौतुक के लिये की है और हे चंडिका, जिस निमित्त इसकी रचना की गयी है, वही वर तुम मुझे दो--

कउतुक हेत करी कविने सतिसैया की कथा
इह पूरी भई है ।
जाहि नमित पढ़ै सुनिहै नर सौ निसचै करि
ताहि दई है ।।२३२।।
ग्रन्थ सतिसैया को करिउ जा सम अवरू न कोई
जिह नमित कवि ने कहिउ सु देह चंडका
सोइ ।।२३३।।

और कवि की ग्रन्थ रचना का निमित्त तो अनेक स्थानों पर प्रगट हो चुका है । कृष्णावतार के अंत में तो वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि भागवत के दशम अध्याय को मैंने लोकभाषा में बनाया है उसके पीछे मेरी और कोई आकांक्षा नहीं है, केवल धर्मयुद्ध का चाव है । युग-युगों से पीड़ित, आत्म-सम्मान और स्वत्व गौरव से विस्मृत जनता अपने पूर्वजों की वीरगाथाओं को पढ़ कर धर्मयुद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाए, कवि केवल यही चाहता है –

दशम कथा भगौत की भाखा करी बनाइ ।।
अवर वासना नाहि प्रभु धरम जुद्ध को चाइ ।।
(कृष्णावतार–२४९१)

कृष्णावतार में कवि ने युद्ध प्रसंगों का वर्णन अन्य प्रसंगों की अपेक्षा कहीं मनोयोग से विस्तृत रूप में किया है । कारण भी स्पष्ट है । उसकी रुचि युद्ध में है, धर्मयुद्ध में, और इसी युद्ध प्रेरणा के लालच में ही (किसी सांसारिक सम्पदा

१—ताको आयस पाइके करण परव मै कीन ।।
भाखा अरथ विचित्र करि सुन सु कवि परबीन ।। (हंसराज)
गुरु गोबिन्द मन हरख ह्वै मंगल लियो बुलाइ ।
शल्य परब आज्ञा करी लीजै तुरत बनाइ ।। (मंगल)
संबत सत्रह सै अधिक बावन बीते और ।
तामे कवि कुवरेस यह कियो ग्रन्थ को डौर ।
गुरु गोबिन्द नरिन्द है तेग बहादर नंद ।
जिनते जीवन हैं सकल भूतल कवि बुध ब्रिंद । (कुवरेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लालच से नहीं) वह इतनी रुचि से युद्ध प्रसंग का चित्रण करता है—

कृष्ण जुद्ध जो हउ कह्यो अति ही संग सनेह ।।
जिह लालच इह में रच्यो मोहि वहै वरु देह ।।१८६६।।

दशम ग्रन्थ की सभी रचनाओं में कवि ने अपनी आस्था अलौकिक शक्ति, विशेष रूप से उसके वीर रूप, के प्रति ही व्यक्त की है । अन्य दरबारी कवियों के समान उसकी कृतज्ञता किसी लौकिक पुरुष के प्रति व्यक्त नहीं करता । वह विचित्र नाटक (आत्मकथा) में ग्रन्थ का प्रारम्भ करते समय कहता है—

नमस्कार स्री खड़ग को करौ सु हितु चितु लाइ ।।
पूरण करो ग्रन्थ इह तुम मोहि करहु सहाइ।१।

कृष्णावतार के गोपी-उद्धव संवाद प्रसंग की समाप्ति को वह 'खड्गपान' की कृपा का फल मानता है—

खड़गपान की कृपा ते पोथी रची बिचार
भूल होइ जहं तहं सु कबि पढ़ी अहु सभै सुधार

चंडी चरित्र (प्रथम) के प्रारम्भ में वह 'कृपासिन्धु' की कृपा की आकांक्षा करता है—

कृपासिंधु तुमरी कृपा जे कछु मोपरि होइ ।।
रचो चंडका की कथा बाणी सुभ सभ होइ ।।२।।

रामावतार की समाप्ति पर वह कहता है कि 'भगवद्कृपा' से ही उसने इस ग्रंथ को पूर्ण किया है—

साध असाध जानो नहीं बाद सुबाद विवाद ।
ग्रन्थ सकल पूरण कियो भगवत कृपा प्रसादि ।।८६२।।

इसी प्रसंग में अपने इष्टदेव से प्रार्थना करता हुआ वह अपना वास्तविक नाम भी प्रकट करता है—

सगल दुआर को छाडिके गह्यो तुहारो दुआर।
बांहि गहे की लाज अस गोबिन्ददास तुहार ।।८६४।।

चरित्रोपाख्यान में प्रारम्भ ४८ पदों में 'काल पुरुष' की नारी शक्ति 'कालि' की स्तुति करता है और उसी का ध्यान कर वह ग्रन्थ रचना का प्रारम्भ करता है—

प्रिथम ध्याइ स्री भगवती बरनौ त्रिया प्रसंग ।।
मो घट मै तुम ह्वै नदीं उपजहु बाक तरंग।४६।

चरित्रोपाख्यान में अनेक संकेत इस प्रकार के मिलते हैं जिनके आधार पर यह बड़ी सरलता से निश्चित किया जा सकता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता गुरु गोविन्द सिंह ही हैं । निम्नलिखित संकेत इस मत की पुष्टि करते हैं—

उनचासवें उपाख्यान में कवि ने एक दुश्चरित्र नाइन की चर्चा की है । कवि कहता है कि उस नाइन का मूर्ख पति हमारे यहां पड़ा रहता है और उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी अनेक पुरुषों से सम्बन्ध रखती । जब वह घर आता तो वह (नाइन) उसकी बड़ी प्रशंसा करती और कहती कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका पति तो बड़ा भाग्यशाली है, इसे कलियुग की हवा तक नहीं लगी । मेरा पति तो गुरु का भक्त है और निशिदिन ईश्वर नाम में ही डूबा रहता है। यह वचन सुन कर वह मूर्ख पति फूल जाता और वह दुश्चरिता अपना काम किये जाती है ।१

इस उपाख्यान में कवि का यह कहना कि वह नाई सदा हमारे आश्रय में रहता था और उसकी पत्नी उसे गुरु-भक्त बताना स्पष्ट करता है कि कथा के रचयिता 'गुरु' स्वयं हैं ।

इकहत्तरवें उपाख्यान में पांवटे की एक घटना का वर्णन है। पांवटे के निकट यमुना तट पर 'कपाल मोचन' नामक एक तीर्थ स्थान है। तीर्थ स्थान के निकट ही लोग मलमूत्र कर देते थे । गुरु ने अपने सिखों को आज्ञा दी कि ऐसे लोगों की पगड़ियां उतार ली जाएं जो तीर्थ स्थान की पवित्रता की अवहेलना करते हैं। इस उपाख्यान का वर्णन लेखक ने प्रथम पुरुष में इस प्रकार किया है —

नगर पांवटा बहु बसै सार मोर कै देस ।।
जमुना नदी निकटि बहै जनुकपुरी अलिकेस ।।१।।
नदी जमुन के तीर में तीरथ मुचन कपाल ।।
नगर पांवटा छोरि हम आए तहां उताल ।।२।
खिलत अखेटक सूकर मारे ।।
बहुते मृग औरे हनि डारे ।।
पुनि तिह ठां को हम मगु लीनो ।
वा तीरथ के दरसन कीनो ।।३।।
तहां हमारे सिख्य सभ अमित पहूंचे आइ ।।
तिनै देन को चाहियै जोरि भलो सिर पाइ ।।४।।

नगर पांवटे बुरियै पठए लोक बुलाइ।।
एक पाग पाई नहीं निहफल पहुंचे आइ ।।५।।
मोलहि एक पाग नहि पाई ।।
तब मसलति हम जियहि बनाई ।।

१—आनंदपुर नाइन इक रहई ।। नंदमती ताको जग कहई ।।
मूरख नाथ तवन को रहै ।। त्रिय कह कछू न मुख ते कहै ।।१।।
ताके धाम बहुत जन आवैं । निस दिन तासों भोग कमावैं ।।
सो जड़ पड़ा हमारे रहई ।। ताको कछ न मुख ते कहई ।।२।।
जब कबहूँ वह धाम सिधावैं ।। यो ता सों त्रिय बचन सुनावै ।।
या कह कलि की बात न लागी ।। मेरो पिया बड़ो बड़भागी ।।३।।
निसुदिन सबदन गावही सभ साधन को राउ ।।
मो पति गुरु को भगति है लगी न कलिकी बाउ ।।४।।
यह जड़ फूलि बचन सुनि जावै ।। अधिक आपु कह साधु कहावै ।।
वह जारन सौं निसुदिन रहई ।। इह कछु तिनै न मुख ते कहई ।।५।। १।।
(दशम ग्रंथ पृष्ठ ८९२–७३)

११२७२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाहि इहां मूतहि लखि पावो ।।
ताकी छीन पगरिया ल्यावो ।।६।।
जब प्यादन ऐसे सुनि पायो ।।
तिही भांति मिलि सभन कमायो ।।
जो मनमुख तीरथ तिह आयो ।।
पाग बिना करि ताहि पठायो ।।७।।
रात बीच करि आठसै पगरी लई उतारि ।।
आनि तिनै हम दीह मैं धोवनि दई सुधारि।८।
प्रात लेत सभ धोइ मंगाई ।।
सभ ही सिख्यन को बंधवाई ।।
बची सु बेचि तुरतु तह लई ।।
बाकी बची सिपाहिन दई ।।९।।
बांटिक पगरी नगर को जात भए सुख पाइ।।
भेद मूरखन ना लह्यो कहा गयो करि राइ ।।१०।।१।।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि लेखक के अनेक सिख हैं, जिन्हें वह 'सरोपाव' देना चाहता है। पगड़ियां उतारने की आज्ञा देने वाला भी स्वयं है। यह घटना निस्संदेह गुरु गोविन्द सिह के जीवन से सम्बन्धित है क्योंकि अनेक परवर्ती लेखकों, सुक्खासिह, संतोष सिह आदि ने भी अपनी रचनाओं में इस घटना का वर्णन किया है।

इक्कीस, बाईस, और तेईसवें उपाख्यान में एक ही कथा है जिसमें एक कामातुर स्त्री द्वारा 'राय' नामक सच्चरित्र पुरुष को असफल काम निमन्त्रण देने का वर्णन है। यद्यपि इस घटना का वर्णन कवि ने अन्य पुरुष में किया है परन्तु 'राय' के व्यक्तित्व को जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है और उसने अपने आत्म परिचय मे जो कुछ कहा है उस से यह समझने में कोई संदेह नहीं रह जाता कि वह स्वयं गुरु गोविन्द सिह ही हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि चरित्रोपाख्यान की रचना उस काल में हुई थी, जब अभी सिख समुदाय को खालसा का रूप नहीं दिया गया था और गुरु गोविन्द सिह उस समय तक 'गुरु गोविन्द राय' थे। इन उपाख्यानों के नायक 'राय' का नाम 'गोविन्द राय' का ही संक्षिप्त रूप लगता है। इस कथा का सारांश इस प्रकार है--

सतलुज के किनारे काहलूर में आनंदपुर एक नगर था। वहां 'राय' नामक एक पुरुष रहता था। दूर-दूर से उसके सिख आते थे और मुंह मांगा वर पाते थे। नूपकुंवर नाम की एक धनवंती स्त्री उस नगर में आई। 'राय' को देख कर वह कामातुर हो उठी। उसने मगनदास नाम के एक व्यक्ति को कुछ धन देकर राय को उसके घर लाने के लिये कहा। धन के लोभ में मगनदास ने राय के पास जा कर कहा कि तुम जिस मंत्र को सीखना चाहते हो वह मेरे हाथ में आ गया है, तुम मेरें साथ चलो। राय ने मन में भगवती का स्मरण किया और वेश बदल कर उसके साथ हो लिया। उसे देख कर उस स्त्री ने फूल, पान और शराब का प्रबन्ध किया और सुन्दर शृंगार करके उसके पास आई। स्त्री ने उसके सम्मुख काम प्रस्ताव रखा तो राय के मन में बड़ी चिंता हुई। उसने सोचा मैं तो मंत्र लेने आया था, यह तो कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ही निकला । उसके मन में धर्म का प्रबल भाव जागृत हुआ और उसने उस स्त्री से कहा कि तुम्हारा प्रस्ताव मान कर और धर्म का त्याग करके मैं नर्क का भागी नहीं बनना चाहता ।१ मेरी ब्याहता पत्नी है । उसे छोड़ कर मैं तुम्हारे साथ भोग कैसे करूँ ?२ उस स्त्री के आग्रह करने पर उसने कहा—तुम मेरे पांव पड़ती हो, मुझे पूज्य कहती हो । मुझी पर रीझ कर काम प्रस्ताव करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ।३

नृपकुंवर अपने आग्रह पर डटी रही और अनेक प्रकार के तर्क देकर उन्हें काम-केलि के लिये प्रेरित करती रही । राय ने कहा—एक तो ईश्वर ने मुझे क्षत्री कुल में जन्म दिया, दूसरे मेरे कुल को अधिक प्रतिष्ठा दी और मैं लोगों के बीच बैठ कर अपने आपको पूज्य कहलाता हूँ । यदि मैं तुम्हारे साथ संभोग करूं तो नीच कुल में मेरा जन्म होगा ।४

परन्तु वह स्त्री तो कामान्ध होकर काम का आग्रह तो करती ही रही । राय ने कहा—'मेरे पास तो देश देशान्तरों से स्त्री पुरुष आते हैं । लोग मुझे गुरु मान कर शीश झुकाते हैं और मन वाँछित वर

१—धरम करे सुभ जनम धरमते रूपहि पैये ।।
धरम करे धन धाम धरम ते राज सुहैये ।।
कहयो तुहारो मानि धरम कैसे कै छोरों ।।
महां नरक के बीच देह अपनी क्यों बोरों ।।१६।।
(दशम ग्रन्थ पृष्ठ ८३९)

२—कहयो तुहारो मानि भोग तोसों नहि करिहो ।।
कुलि कलंक कै हेत अधिक मन भीतर डरिहो ।।
छोर ब्याहता नारि केल तोसों न कमाऊं ।।
धरम राज की सभा ठौर कैसे करि पाऊं ।।१७।।
(दशम ग्रन्थ पृष्ठ ८३९)

३—पाइ परत मोरे सदा पूज कहत है मोहि ।।
तासो रीझ रम्यो चहत लाज न आवत तोहि ।।१९।।
(दशम ग्रन्थ पृष्ठ ८३९)

४—प्रथम छत्रि को धाम दियो बिधि जनम हमारो ।।
बहुरि जगह के बीच कियो कुल अधिक उजियारो ।।
बहुरि सभन में बैठि आपु को पूज कहाऊं ।।
हो रमो तुहारे साथ नीच कुल जनमहि पाऊं ।।३२।।
(दशम ग्रन्थ पृष्ठ ८४०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करते हैं । मैं अपने सिखों को पुत्र और स्त्रियों को पुत्री मानता हूँ । हे सुन्दरी कहो, मैं तुम्हारे साथ भोग कैसे करूँ ।१

कामान्ध नृपकुंवर जब अपने मन्तव्य में सफल न हुई तो उसने राय को लांछित कर देने का भय दिखाया । राय पर उस सब का भी कुछ प्रभाव न हुआ और राय उसके मायाजाल को सफलतापूर्वक तोड़ कर निकल आये ।

इस उपाख्यान में 'राय' के चरित्र को देख कर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, वह गुरु गोविन्दसिंह के अतिरिक्त और कोई नहीं । आनन्दपुर में उसका रहना, दूर-दूर के उसके शिष्यों का आना, सबका उसे गुरु मान कर पूजना, अपनी स्थिति का उसे भली प्रकार बोध होना आदि बातें इस मत की पुष्टि करती हैं । अन्यथा गुरु गोविन्द सिंह के ही जीवन काल में उन्हीं द्वारा बसाए गये नगर में इतना प्रभावशाली व्यक्ति कौन हो सकता है ?

इसी प्रकार सोलहवें चरित्र में एक कामान्ध स्त्री द्वारा गुरु को काम निमन्त्रण देने का वर्णन है । इस कथा में नायक का नाम 'राय' है । और इसे अन्य पुरुष में लिखा गया है किन्तु कथा के अन्त में अन्य पुरुष प्रथम पुरुष में बदल जाता है जिससे यही प्रगट होता है कि लेखक स्वयं इस कथा का नायक है —

तबे राय गृह आय सुप्रण ऐसो कियो ।
भले जतन सों राखि धरम अब में लियो ।
देस देस निज प्रभु की प्रभा बिखेरिहौं ।
हो आनि त्रिया कह बहुरि न कबहूँ हेरिहों ।
वहे प्रतिज्ञा तदिन तैं व्यापत मो हिय माहि ।।
तां दिन ते परनारी को हेरत कबहूँ नाहि
।।५०।।१।।

(दशम ग्रथ पृष्ठ ८३३)

ग्रन्थ की समाप्ति पर लेखक श्री 'असिकेतु' से वर याचना करता हुआ ग्रन्थ रचना की तिथि, स्थान आदि की सूचना इस प्रकार देता है —

हमरी करो हाथ दै रच्छा ।।
पूरन होइ चित की इच्छा ।।
तव चरनन मन रहे हमारा ।।
अपना जान करो प्रतिपारा ।।३७७।।
हमरे दुस्ट सभै तुम धावहु ।।
आप हाथ दे मोहि बचावहु ।।
सुखी बसै मेरो परिवारा ।।
सेवक सिख्य सभै करतारा ।।३७८।।

१—बाल हमारे पास देस देसन त्रिय आवहि ।।
मन वांछत वर मांगि जानि गुरु सीस झुकावहि ।।
सिख्य. पुत्र त्रिय सुता जानि अपने चित्र धरियै ।।
तो कहु सुंदरि तिह साथ गवन कैसे करि करियै ।।५४।।

(दशम ग्रन्थ पृष्ठ ८४२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मो रच्छा निज कर दै कारिये ।।
सभ बैरिन को आज संघरिये ।।
पूरन होइ हमारी आसा ।।
तोरि भजन की रहे प्यासा ।।३७९।।
तुमहि छाड़ि कोई अवर न ध्याऊँ ।।
जो बर चाहौं सु तुमते पाऊं ।।
सेवक सिख्य हमारे तरियहि ।।
चुनि चुनि सत्रु हमारे मारियहि ।।३८०।।
(दशम ग्रन्थ पृष्ठ–१३८६)

अब मेरी रच्छा तुम करो ।।
सिख्य उबारि असिख्य संघरो ।।
दुष्ट जिते उठवत उतपाता ।
सकल मलेच्छ करो रणघाता ।।३९६।।
(दशम ग्रन्थ पृष्ठ–१३८७)

खड्ग केत में सरन तिहारी ।।
आपु हाथ दै लेहु उबारी ।।
सरब ठौर मो होइ सहाई ।।
दुस्ट दोख ते लेहु बचाई ।।४०१।।
संबत सत्रह सहस भणिज्जै ।।
अरघ सहस पुनि तीन कहिजै ।।
भाद्रव सुदी अस्टमी रविवारा ।।
तीर सतुद्रव ग्रंथ सुधारा ।।४०५।।
(दशम ग्रन्थ पृष्ठ–१३८८)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रंथ की रचना सं० १७५३ वि० में सतलुज नदी के तट पर (आनन्दपुर) में हुई । रचयिता अपने हृदय की इच्छा की पूर्ति के लिये ईश्वर से वर मांगता है। उसके अनेक सेवक और सिख हैं, जिनकी रक्षा के लिये वह याचना करता है। साथ ही उत्पत्ति करने अपने शत्रुओं और म्लेच्छों की मृत्यु वह रणक्षेत्र में मांगता है। 'खड्ग' केतु के अतिरिक्त वह अन्य किसी की शरण नहीं लेता ।

इन उद्धरणों से किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता कि सं० १७५३ वि० में सतलुज नदी के तट पर म्लेच्छों को युद्ध की चिनौती देने और अपने इष्टदेवों से उनके विनाश की प्रार्थना करने वाला सिखों का गुरु कौन था ।

इन सभी प्रमाणों और उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि दशम ग्रन्थ में संग्रहीत सभी रचनाएं किसी आश्रित कवि की नहीं, स्वयं गुरु गोविंदसिंह द्वारा रचित हैं । गुरु गोविन्द सिंह जी ने ही अपनी कुछ रचनाओं में श्याम, राम और काल उपनामों का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनकी माता गुजरी उन्हें श्याम और राम नामों से पुकारा करती थी । षष्टम गुरु हरिगोविन्द गुरु गोविन्द सिंह के पितामह और माता गुजरी के श्वसुर थे । भारतीय महिलाएं अपने पतिगृह के ज्येष्ठ पुरुषों का नाम नहीं लिया करतीं । गुरु हरिगोविन्द और गुरु गोविन्दसिंह में 'गोविन्द' शब्द उभय होने के कारण माता गुजरी उन्हें श्याम या राम नाम से संबोधित किया करती थीं । सभी रचनाओं में श्याम नाम अधिक मिलता है और वह गोविन्द का समानार्थक भी है। संभव है इसी कारण गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी रचनाओं में इन नामों का प्रयोग किया हो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथ का आविष्कार और निर्माण सर्वप्रथम आर्यों ने किया

अवनींद्र कुमार विद्यालंकार

"आत्मानं रथिनं विद्धि"–आत्मा को रथी जानो और शरीर को रथ––"शरीर रथमेवतु"यह वैदिक उपमा इस बात का प्रमाण है कि इस देश में रथों का व्यवहार अत्यन्त प्राचीन काल से हो रहा है। परन्तु वेद के प्रमाण को प्रमाण न मानने वाले भी मानेंगे कि समय और दूरी पर विजय पाने के प्रयत्न में पहिये या चक्र का निर्माण महत्त्वपूर्ण है, और यह इस बात का प्रमाण है कि मानव प्रकृति से पराजय मानने को उद्यत नहीं है। विवशता शब्द उसके कोश में नहीं। वह गतिमान है। वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट नहीं है। पहिये या चक्र का आविष्कार उसकी इसी उद्दाम इच्छा का प्रबल महत्त्वाकांक्षा का सूचक है। इस आविष्कार ने ही बच्चे की गाड़ी से लेकर विमान तक का बनना सम्भव बनाया।

समय और दूरी को विजय करने की दिशा में रथ दूसरा प्रयत्न है। रथ सुख वह भोग की भी वस्तु है। यह ऐश्वर्य का सूचक है। सम्मान और प्रतिष्ठा का भी सूचक है। स्कूलों व कालेजों में पढ़ाये जाने वाली इतिहास की पुस्तकों में यह वाक्य बड़ी प्रमुखता से पाया जाता है :–

ईसा से ३२५० से २००० वर्ष पहले भारत खण्ड में जब अत्यन्त उन्नत सभ्यता फल-फूल रही थी, उत्कर्ष को प्राप्त हो रही थी, तब गौरांग, नीली आंखों वाले और ऊंची नोकीली नाक वाले उछलते-कूदते घोड़ों पर चढ़ कर और पहियों वाली गाड़ियों, सवारी गाड़ियों पर बैठ कर मध्य एशिया से आर्य सिन्धु और सरस्वती घाटी के मैदान में आये। यह ऐतिहासिक रथ शब्द का व्यवहार नहीं करता, परन्तु वह कहना यही चाहता है। आर्यों के जीवन के साथ रथ का व्यवहार अनुस्यूत है!

रथ शब्द संस्कृत का है। यह शब्द ही मूलरूप में सर्वत्र पहुंचा है। यथा लेटिन में रोटा, लिथूनियन में रोटास, पुरानी 'हाई ज़र्मन' में रेड और कैल्ट में रोथशब्द। ऋग्वेद का रथ शब्द इस रूप में यूरोप की इन भाषाओं में पहुंचा। ये सब भी आर्य वंश के माने जाते हैं। मध्य एशिया से आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग कब फैले, इस तिथि की खोज होनी अभी शेष है। भारत में आर्य बाहर से आये, यह बात ही साधारणतः भारतीय नहीं मानते। लेकिन भारत में लगभग दो करोड़ वन जातियों के लोगों का होना क्या इस मान्यता की दृढ़ता को कमजोर नहीं कर देता। वत्सर जिले की वन जातियों का जीवन क्या सूचित करता है? ये लोग आर्य संस्कृति धारा में क्या विलीन नहीं हुए? इनके शब्द संस्कृत में आये हैं। संथाल, गोंड़, मुंडा आदि वन जातियों में रथ का व्यवहार आज भी नहीं होता, क्या यह एक आश्चर्यजनक चीज़ नहीं है। ठीक है वह लोग जंगलों में रहते हैं, पर्वतों पर निवास करते हैं। वहां रथ के लिये मार्ग नहीं है। पर मार्ग तो बनाया जा सकता था। जीपों के लिये मार्ग बनाया नहीं? असम के जंगलों में भी जीपें दौड़ रही हैं। इन वन जातियों का रथ का व्यवहार न करना क्या कुछ भी सूचित नहीं करता? इसलिये आर्यों का मूल देश मध्य एशिया या अन्यत्र मानने में संकोच करने में क्या कोई लाभ है? यह बताता है कि मध्य एशिया न चीन का है और न रूस का बल्कि भारत का है। भारत की उत्तरीय सीमा मध्य एशिया होनी चाहिए। रूस और चीन का विग्रह शांत करने और इन दो महाशक्तियों को टकराने से बचाने के लिये और विश्वशांति की दृष्टि से भारत की उत्तरीय सीमा मध्य एशिया तक बढ़ानी चहिए। सुमेरु पर्वत वहीं है। वही भारत की सीमा है। क्या हम इस सत्य को अनुभव करेंगे ?

रथ का व्यवहार आर्यों ने कब किया? यह आज का ज्ञात इतिहास बनाने में असमर्थ है। ऋग्वेद का काल अभी निर्णीत नहीं हुआ। परन्तु यह माना जाता है——लोक मान्य तिलक और प्रो०जैकोबी इससे सहमत है कि ६००० ई० पू० से बाद इसका काल नहीं ले जाया जा सकता। रथ का व्यवसहार युद्धों मे ही नहीं होता था जैसा कि रथी, हारथी—शब्द से सूचित होता है। यह मोटरकारों के समान विवाह शादियों में भी होता था "सूर्या-सूक्त" में वधु सजे हुए रथ में पतिगृह ले जाई जा रही है। इस वास्ते यह मानने में कुछ संकोच न होना चाहिए कि ईसा से ६००० साल पहले भारतीय जीवन का रथ एक सामान्य अंग हो गये थे। इलाहाबाद के इक्के, गोरखपुर के इक्के, पटना की टम-टम, पेशावर, के टांगे, दिल्ली और लाहौर के टांगे आदि उसी के अवशेष हैं। रथ में घोड़े होते थे। बैलगाड़ी से रथ सर्वथा भिन्न है। रथ के साथ प्रतिष्ठा और सम्मान का भाव भी जुड़ा है। अति सामान्य लोग शायद राजा की सवारी आने पर रथ पर नहीं बैठ सकते थे। पुरानी रियासतों में राजा के आने पर राजा के देव-दर्शन के जाने पर साधारण नागरिकों को सड़क खाली कर देनी पड़ती थी। भले ही मन्दिर नगर से कई मील बाहर हो। इसलिये यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए कि रथ सामाजिक और आर्थिक विभेद की एक सीमारेखा भी था।

परन्तु प्रश्न तो शेष ही रह जाता है कि यह रथ पहले-पहल बना कब ? और जब कभी बना आर्यों ने ही बनाया ? आर्यों ने ही सब से पहले बनाया, यह तो असन्दिग्ध है। क्योंकि मानव सभ्यता प्रारम्भिक इतिहास इस बात का साक्षी नहीं देता कि उनको रथ का ज्ञान था या रथ का वह व्यवहार करते थे।

यूरोप के ऐतिहासिक मिश्री सभ्यता को प्राचीनतम मानते हैं। पिरामिडों की ओर वह झट अंगुली उठा देते हैं। परन्तु मिश्री लोग घोड़े तक से अपरिचित थे। असीरियन लोग आर्यों की ही एक शाखा माने जाते हैं। असीरियन घुड़सवार सेना जब मिश्र पहुंची, तब मिश्री लोग समझ ही नहीं सके, यह क्या नई बला है। फलतः मिश्री पराजित हुए विश्व इतिहास में घोड़े की महानता असीरियनों की मिश्री विजय ने सिद्ध कर दी।

रोम साम्राज्य बहुत विस्तृत माना जाता है। आज भी उसका डंका बजाया जा रहा है। रोमन लॉ, आज भी किसी ने किसी रूप में सभ्य जगत् में स्थान बनाये हुए हैं। रोम के विजेताओं में जुलियस सीजर सबसे बड़ा विजेता माना जाता है। परन्तु यह सीजर भी ब्रिटेन को नहीं जीत सका था। सीजर ब्रिटेन से भाग कर आया था। सीजर ब्रिटेन के लोगों का मुकाबला ही नहीं कर सका। रोम से बुलावा आने के कारण वापस नहीं लौटा था, बल्कि इसलिये वापस लौटा कि वह यह समझ नहीं सका कि वह ब्रिटेन के लोगों से कैसे लड़े ?

राम-रावण का युद्ध होने के समय रावण को रथ पर बैठा देख कर युद्ध-क्षेत्र में आते देख कर वानर सेना चिन्तित हो उठी। क्योंकि राम पैदल थे। श्रीराम निर्भय थे और निश्चिन्त थे। परन्तु युद्ध की दृष्टि से रथी रावण का अरथी राम से युद्ध होना वानर सेना को विजयी बनायेगा। यह विश्वास सुग्रीव और हनुमान को न था। इसी समय मातली रथ लेकर आ गया। प्रभु राम उस पर अनुग्रह करके बैठे और रावण के रथ के सामने उनका रथ मातली ने लाकर खड़ा कर दिया। परन्तु सीजर के लिए कोई मातली रथ लेकर नहीं आया, फलतः सीजर को रोम वापस लौटना पड़ा। रोम के लगों ने इससे पहले रथ को देखा तक नहीं। इसलिये रोम के महान वक्ता सिसरो ने रोम की सीनेट में बोलते हुए कहा था और कुछ नहीं होता, तो ब्रिटेन के लोगों से टूटा रथ ही ले आओ। उसको देख कर हम लोग रथ बना लेंगे।

सिसरो का यह भाषण बताता है कि सीजर ब्रिटेन को जीत नहीं सका क्योंकि ब्रिटेन लोग रथों पर थे। सीजर की सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदल थी । पैदल सेना रथों सेना के साथ कैसे लड़ सकती थी । अतः सिसरो ने सुझाया था कम से कम एक टूटा-फूटा रथ तो ब्रिटेन से ले आओ ।

आर्यों ने इसी रथ की बदौलत अपना साम्राज्य सारी दुनिया पर फैलाया था । रथों पर बैठ कर वह आर्य संस्कृति का प्रसार करने और दिग्विजय करने निकले थे । इस सत्य को पुरातत्व की अवशेष वस्तुएं ही नहीं प्रत्युत लिखित इतिहास भी बताता है ।

घोड़े ने आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं सामाजिक क्षेत्र में भी एक क्रान्ति कर दी । शक्ति का मापक आज भी अश्व है । शक्ति और बल प्राप्त करने की औषधियों का एक नाम आयुर्वेद में 'वाजीकरण' है । जीवन में घोड़े का महत्त्व इसस प्रकट है । आर्यों ने घोड़े और घोड़े जुते रथ के बल पर विश्व-विजय किया । सीजर के पास रथ नहीं था, अतः वह ब्रिटेन को नहीं जीत सका । यह एक ऐतिहासिक सत्य है ।

रथ सवारी का ही साधन नहीं है । यह एक हथियार भी है,यह सीजर को सर्वप्रथम अनुभव ५५ ई० पू० ब्रिटेन में ही हुआ, ब्रिटेन लोगों के रथ के धुरे में हंसिया व दरातियां लगी हुई थीं । कम्यूनिज्म के लाल झण्डे पर हंसिया अंकित है । हंसिया का मानव इतिहास में क्या महत्त्व है , यह इसमे प्रकट है । तेज दरातियां या हंसिया पक्की फसल ही नहीं काटती, मानवता को भी काट देती है । सीजर ने अपनी पैदल सेना को रथों द्वारा मरते देखा । सीजर और सीजर के सैनिक रथ को देख कर यदि विस्मित हुए थे तो उसकी ज़ोरदार घड़घडाहट सुन कर कांप उठे । उन्होंने इससे पहले भयानक शब्द ही नहीं सुना था । इस बात को लेओनार्ड काटटेल ने इस प्रकार कहा है; उन्होंने सीजर के सैनिकों के सम्मुख रण कौशल और युद्ध पट (स्ट्रेटेजी) की ऐसी विकट समस्या उपस्थित कर दी कि सीजर को ब्रिटेन जीतने का अपना संकल्प त्यागना पड़ा । क्योंकि ब्रिटेन को विजय करने और उस पर रोमनों का प्रभुत्व स्थापित करने के लिये सीजर को हर्टफोर्ड शायर के वनों में रथों से लड़ना पड़ता । क्योंकि कास्सी-वेल्लीया यूनस लोग रथों पर बैठ कर लड़ते थे। अतः सीजर ने ब्रिटेन को जीतने और वहां रोम-साम्राज्य स्थापित करने का विचार त्याग दिया । रोम के सैनिकों के लिये रथ नई और अद्भुत वस्तु थी जैसे वन में पले लव-कुश के लिये अश्वमेध का छुटा घोड़ा एक अद्भुत वस्तु थी ।

रथ का आविष्कार सूर्यवंशी आर्यों न किया होगा । इस अनुमान एक कारण है । आकाश में घूमते सूर्य को देख कर ही सूर्यवंशी आर्यों ने रथ बनाया । सूर्य की सात किरणों को उसका घोड़ा माना जाता है । काल की वैदिक कल्पना है :—

"कालो अश्वो वहति सप्त रश्मिः,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितः
तस्य चक्रा युवनोति विश्वा ।।'
"सप्त चक्रान् वहति काल एषा
सप्तास्य ना भीरभूतंन्वक्षः ।
स इमा विश्वा युवनान्यञ्जत्
कालः स ईयते प्रथमो न देवः ।।"

काल के सात चक्र हैं, सात रश्मियां हैं, फलतः सूर्यवंशी आर्यों ने रथ के साथ भी सात घोड़े जोते । सात घोड़ों से खींचे जा रहे रथ को देख कर स्वपक्ष जहां आल्हादित होता होगा, वहां पर-पक्ष के प्राण सूख जाते होंगे । रथ के साथ घोड़ ने जुत कर मानव-इतिहास में भी निर्णायक परिवर्तन किये । यदि सीजर रोम के लोगों का प्रभुत्व ब्रिटेन पर स्थापित करने में सफल होता तो क्या केल्ट, गाल आदि कबीले रोम पर आक्रमण करने का साहस करते ? तब क्या रोम की दूसरी राजधानी कांस्टेंटीनोपल बनती ? तब क्या रोमन लोग लन्दन को एक राजधानी न बनाते ? परन्तु इस सम्भावना का ही कास्सीवेल्लीयायूनस लोगों के रथों ने ही अन्त कर दिया । सिकन्दर के लम्बे भाले जो न कर सके, वह रथ ने कर दिया । रोमन, कार्थेजेनियन, मिश्री और ग्रीक विजेताओं ने ज्ञात विश्व को विजय किया । परन्तु इनमें से किसी एक के पास भी रथ नहीं था । इनके सेनापति रथी नहीं थे । परंतु बाद में इन्होंने सुन्दर रथों का निर्माण किया । उन पर हाथी दांत की नक्काशी और सोने की पच्चीकारी की जाती थी। उनको सोना से मढ़ा जाता था । रत्नों से वे जड़ित होते थे । सेनापति सजे हुए रथों पर बैठते थे । विजयी सेना के साथ राजधानी में सजे रथ पर बैठ कर प्रवेश करते थे ।

अलंकारों से मण्डित रथ रखने का भारी बोझ राजा लोग ही उठा सकते थे। राजा लोग भी सदा उनका व्यवहार न करते होंगे । वह उनकी साज और वैभव के प्रदर्शन का एक माध्यम था । सामन्तगण इन पर बैठ कर शिकार करते थे, रथों की दौड़ में भाग लेते थे । ग्रीस के ओलम्पिक मेले में रथ दौड़ का खेल "बड़ा भयानक और जोखिम भरा" होता था।" राजा के शव के साथ रथ भी दफनाया जाता था । तूता खामेन में एक फेरोआ १८ साल की कम उम्र में ही दफनाया गया था । इसके ऊपर उलटे हुए रथों का ढेर पड़ा है । ये सोने की चमक से चमक रहे हैं । मुद्राओं पर भी रथ को स्थान दिया गया । ईस्वी पूर्व पहली शती के मध्य बेलगाए के सिक्कों पर रथ का चित्र अंकित है ।

रथ प्रगति का, उन्नति का प्रकर्ष का प्रतीक माना जाता था । प्रश्न यह है, यह कल्पना कहां उत्पन्न हुई ? ईसा से तीन शती पहले के प्रथम भाग में मार्ने (यूरोप) के आक्रान्ता रथ लाये । मार्ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रान्ताओं ने ही ब्रिटेन में रथ का सूत्र-पात किया। मिश्र में घोड़ा और रथ १७०० ई० पू० से पहले तक नहीं आया। मिश्र में घोड़ा और रथ लाने वाला कबीला हिक्सोस था। यह एशिया माइनर का रहने वाला था। उपाख्यान कथा—ट्रोजन युद्ध (११८० ई० पू०) की लड़ाई के वीर योद्धाओं में हिक्सोस कबीला का उल्लेख होमर ने किया है। ग्रीक लोगों ने रथ बनाना और रथ चलाना अभियावन राजकुमार से सीखा। यह राजकुमार अपने पिता के द्वारा १६०० ई० पू० ग्रीस भेजा गया था। यह राजकुमार इस नये शस्त्र की शिक्षा देने के ही वास्ते ग्रीस भेजा गया था।

दांतों वाला रथ भयानक शस्त्र था। इससे विजेता भी घबराता था। इसकी भयानकता को देख कर चीन और ग्रीस में युद्धों के अंदर रथों का व्यवहार निषिद्ध और वर्जित किया गया था। चीन और ग्रीस में दो हज़ार ईस्वी पूर्व से पहले रथ का सूत्रपात नहीं हुआ। ग्रीकों ने ईसा से ४०० वर्ष पहले रथों का पुनः व्यवहार करना प्रारम्भ किया। साम्राज्य निर्माता रोमन तो और देर तक रथों के व्यवहार का साहस नहीं कर सके।

यही कारण है कि जब सीजर के विरोध में ब्रिटेन रथों पर लड़ने के लिए आए तो इटली में एक नई उमंग पैदा हुई। एक नई लहर आई। सिसरों ने ब्रिटेन में लड़ रहे सैनिकों से अपील की कि दो रथों को पकड़ो और उसको जल्दी से जल्दी रोम पहुंचा दो। यह था रथ का प्रभाव। सिसरो ने यह भी कहा कि ब्रिटेन को जीतने का विचार त्याग दो।

ऐतिहासिक दृष्टि से यूरोप और अफ्रीका में जब युद्धों में रथ का व्यवहार प्रारम्भ हुआ, तब यह सम्मान का सूचक था। सेना की शक्ति को बढ़ाना मुख्य बात नहीं थी। रथ वही योद्धा रख सकता था, जो उच्च कुलोत्पन्न हो, सामन्त व सरदार का रिश्तेदार हो। रथ के बारे में भारत में इससे भिन्न प्रथा शायद नहीं थी। महाभारत युद्ध में महारथी अर्जुन का सारथी श्रीकृष्ण थे और ये दोनों चचेरे भाई थे। श्रीराम को अयोध्या से तमसा नदी के तट तक रथ पर पहुंचाने वाला सुमंत राजा दशरथ का एक मंत्री था। वीर कर्ण अर्जुनजब से लड़ने को चला तो उसका सारथी पाण्डवों का मामा शल्य था। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में भी रथ सम्मान सूचक था।

परन्तु ये संज्ञाएं—रथी, अतिरथी महारथी आदि बताती है कि भारत में रथों का व्यवहार मुख्यतः सैनिक शक्ति को बढ़ाने के विचार से किया जाता था। हाथी की सवारी सम्मान सूचक होने के साथ हाथी का सामरिक महत्त्व भी था। किले के फाटकों में लगी लम्बी कीलों की परवाह न करके किले के फाटक को सिर मार कर तोड़ने और किले के अन्दर सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रवेश करने का मार्ग बताता था। परन्तु राजा की सवारी शहर में हाथी पर ही निकलती थी। हाथी के ही समान रथ भी भारत में सम्मान-आदर और प्रतिष्ठा का सूचक होने का साथ चतुरंग सेना का एक अंग था। रथी पैदल और अश्वारोही की अपेक्षा अधिक ऊंचा स्थान रखता था।

मुख्य प्रश्न यह है, रथ का आविष्कार ईरान में हुआ या भारत में ? क्योंकि भारत और ईरान इन दोनों देशों में सर्वप्रथम आर्य आकर बसे। यह भी एक कल्पना है। ईरान पहले भारत का एक प्रान्त था, जैसे अफ़गानिस्तान औरंगजेब के समय तक भारत का एक प्रान्त था। और जैसे अगस्त १९४७ से पहले पाकिस्तान भारत का विभाग था। इस कल्पना को पुष्ट करने वाला विचार एरियन प्रान्त की स्थिति है। यह अफ़गानिस्तान और ईरान की सीमा पर स्थित है। यहां आये जन का का ही नाम आर्य पड़ा। जना या ट्राइब्ज़ का नाम आर्य यहां आने के बाद ही पड़ा।

यह असंदिग्ध है कि रथ संस्कृत का शब्द है। दूसरी बात है कि रोमन शासन के प्रति विद्रोह करने वाली ब्रिटेन लोगों की रानी आसिया रथ पर बैठ कर रोमनों से लड़ने आई थी। ब्रिटेन लोगों की इस रानी के ही नहीं प्रत्युत अन्य रथों पर भी स्वस्तिक का चिह्न खुदा हुआ था। यह रथ के हरने कैप पर अंकित था। स्वस्तिक चिन्ह भी भारत का है, यह असंदिग्ध है।

यह सौभाग्य और सुख का प्रतीक है। यह सौभाग्य श्री का यह देवता है। रथ का नाम आज भी विद्यमान है यह इस बात का प्रमाण है कि रथ का निर्माण सर्वप्रथम भारत में हुआ ! वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना में कहा गया है :—

आब्राह्मण ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्
आराष्ट्रे राजन्यो शूर इषवोऽतिव्याधी
महारथो जायताम्।

सूर्य के पति-गृह में आगमन का वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार किया गया है :—

मनो अस्याः अनः आसीत्
दयो आसीद् उत्त छदिः।
शुक्रौ अनड़ाहौ आस्तां
यद आयात् सूर्या गृहम्।"

यहां रथ के वास्ते अन शब्द का प्रयोग किया गया है।

शुची ते चक्रे थात्याः
व्यानो अक्षः आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्य्या
आरोहत प्रयती प्रतिम्॥"
सुकिं शुकं शल्मलिं विश्वरूप
हिरण्य वर्ण सुवृत्तं सुत्तक्रम्।
आरोह सूर्ये ! अमृतस्य लोकं
स्योनं पत्ये वहतुं कृणुस्व।"

रथ सोने के रंग वाला पुष्पों सुशोभित था। अच्छे पहियों वाला सू का रथ था। यहां सूर्या के मन रूपी रथ उपमा लौकिक रथ से दी गई है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा जा सकता है कि भारतीय जीवन में रथ का व्यवहार बहुतायत से होता था ।

ऐश्वर्यशाली सिन्धु नदी नद के प्रवाह का सुन्दर वर्णन देखिए ।

"सु अश्वा सिन्धु सुरथा सुवासाः
हिरण्ययी सुकृता व जिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावती,
उत्ताधि वस्ते सुभगा मधु वृधमा ।"

सिन्धु नदी का यह वर्णन सुन्दर घोड़ों वाली सुन्दर रथों वाली कह कर किया है ।

ऋग्वेद की प्राचीनता असन्दिग्ध है। ऋग्वेद में रथ का वर्णन होना जहां इस बात को सूचित करता है कि ईसा से ५-६ हजार साल पहले भारत में रथों का निर्माण किया गया था, वहां वेद की लौकिक दृष्टि से भी प्राचीनता सिद्ध करता है ।

इसके वाद भी इसमें सन्देह करना क्या उचित है कि सर्वप्रथम भारत ने रथों का निर्माण किया और भारतीय सभ्यता के फैलने के साथ रथ सर्वत्र पहुंचे ?

झगड़े मिट जाते हैं, किन्तु मुँह से निकले शब्द कभी नहीं मिटते ।

–सियरा लियोन

ज्ञानी वही है जिसे अपने अज्ञान का भान है ।

–सुकरात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावाद पर पाश्चात्य प्रभाव

O

प्रो० टेक चंद शर्मा

अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक जीवन में नवीन चेतना का संचार हुआ फिर भला हिन्दी साहित्य प्रभावित हुए बिना कैसे रह जाता। पाश्चात्य सम्पर्क के कारण उसके प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जो पूर्ववर्ती साहित्य से सर्वथा भिन्न थे। हिन्दी साहित्य पर आंगल प्रभाव की प्रतिक्रिया १९वीं शताब्दी के पूर्व में दृगोचर होने लगी। आंगल काव्य प्रवृत्तयों का आंशिक अनुसरण तो भारतेन्दु युगीन कवियों की उन रचनाओं में उपलब्ध होता है जो उन्होंने ब्रिटिश शासकों के स्वागतार्थ तथा उनके निधन पर शोक प्रकट करने के हेतु सोनेट, ओड़, शोकगीत, संबोधनगीत, व्यंग्य काव्य तथा आत्मचरितात्मक काव्यादि लिखे। द्विवेदी युगीन काव्य में तो वह प्रभाव और भी स्पष्ट दीख पड़ता है। वर्डस्वर्थ द्वारा गद्य-पद्य की भाषाओं की एकरूपता का समर्थन किये जाने की भांति द्विवेदी युगीन कवियों ने भी गद्य-पद्य के क्षेत्र में एक ही भाषा का प्रयोग किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने तो अंग्रेज़ी और संस्कृत ग्रंथों से साहित्य सामग्री लेनें के लिये कवियों को प्रेरित किया था।

"इंगलिश का ग्रंथ समूह बहुत भारी है
संस्कृत भी सब के लिये सौख्यकारी है।"
इन दोनों में से अर्थरत्न ले लीजे
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजे।"

द्विवेदी जी इसी प्रेरणा के कारण इस युग के कवियों ने गोल्डस्मिथ आर्नल्ड शेक्सपियर, मिल्टन, शैले, वर्डस्वर्थ आदि की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद और इस प्रकार हिन्दी साहित्य पर आंगल साहि[त्य] का प्रभाव दिनानुदिन बढ़ता गया।

छायावाद पर भागवत पाश्चात्य प्रभा[व]

द्विवेदीकालीन कविता की भां[ति] हिन्दी की छायावादी काव्यधारा [भी] आंगल साहित्य से पर्याप्त अंशों में प्रभावि[त] रही है। अंग्रेज़ी के Romantici[sm] का प्रभाव इस पर अत्यधिक परिलक्षि[त] होता है। रोमांसवाद मन की उस प्रवृ[त्ति] का नाम है जिसके द्वारा वह बाह्य सं[सार] से संबंध विच्छेद कर अपने ही आन्त[रिक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्वों की ओर उन्मुख होती है। इसी कारण रोमांसवादी कवि बाह्य जगत् के पदार्थों का वर्णन भी इस रूप में कर पाया है कि मानो वे उसकी आन्तरिक अनुभूति के परिचायक हों। कवि की वैयक्तिक अनुभूति का उद्घाटन करने के कारण रोमांटिक काव्य मूलरूप में आत्माभिव्यक्ति प्रधान होता है। छायावादी कवियों पर आंगल साहित्य का प्रभाव दो रूपों से आया प्रतीत होता है :–प्रथम बंगला के माध्यम से तथा कुछ प्रत्यक्ष रूप से। यदि भावपक्ष पर दृष्टिपात किया जाय तो चार मुख्य प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। सौन्दर्यवाद, मानवतावाद तथा आदर्शवाद निराशावाद, रहस्यवाद। संक्षेप में छायावादी रचनाओं की भी यही विशेषताएं हैं।

सौन्दर्यवाद :–रोमांटिक कवि सौन्दर्य भावना से अनुप्रेरित होकर प्रकृति अथवा नारी सौन्दर्य का साक्षात्कार कर अपनी सौन्दर्यानुभूति को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। अधिकांश छायावादी रचनाओं में यह सौन्दर्याभिव्यक्ति दीख पड़ती है। आंगल साहित्य के सौन्दर्यवादी कवियों (कीटस, शैले, गोल्डस्मिथ, वर्डस्वर्थ, स्विनवर्न आदि) से छायावादी सौन्दर्यचेतना अत्यधिक प्रभावित है। द्विवेदी युग को 'अनुवाद' भी कहते हैं। क्योंकि इस काल में पाश्चात्य साहित्य का विशेष रूप से रोमांटिक रचनाओं को अनूदित भी किया गया वहां से उपयुक्त प्रेरणा प्राप्त कर छायावादी कवियों ने सौन्दर्याभिव्यक्ति को अपनाया। श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'ट्रैवेलर' हर्मिट के 'डेजर्टेड विलेज' को अनूदित किया था और इन रचनाओं से प्रभावित होकर पन्त, प्रसाद, निराला महादेवी ने प्रकृति का उन्मुख चित्रण किया। पंत का स्थान तो हिन्दी के सौन्दर्यवादी कवियों में अद्वितीय है। बाल्यावस्था से ही उन्हें प्रकृति के कोमल रूप के प्रति अगाध प्रेम रहा है उनके शब्दों में, "कविता करने की प्रेरणा मुझे पहले–प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही मुझे अधिक लुभाया है, प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रुचता है।" आ० क० पृष्ठ १–३ पंत शैले तथा वर्डस्वर्थ के प्रकृति प्रेम से अधिक प्रभावित हैं। उनकी 'बादल' 'एकतारा,' 'नौकाविहार,' 'प्रथम रश्मि,' 'पर्वत प्रदेश में पावस,' 'अलमोड़े का वसंत' प्रमाण है, पन्त की 'बादल' शैले की "The Cloud" में बहुत साम्य है। प्रसाद भी प्रकृति के अनन्य प्रेमी रहे हैं। चित्राधार, काननकुसुम, झरना, लहर आदि काव्य संग्रहों में प्रकृति के अनेक स्वतंत्र चित्र रूपायित हैं। निराला तथा महादेवी भी इस क्षेत्र में मौन न रहे। निराला की 'जूही की कली' तथा 'परिमल' और 'गीतिका' की अन्य कविताएं उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृतिप्रेम के ज्वलंत उदाहरण हैं। महादेवी की 'निहार', 'रश्मि', 'सांध्यगीत' में परोक्ष रूप में प्रकृति चित्रण है तो 'हिमालय' में प्रत्यक्ष ।

मानवीकरण रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषता है जिसका छायावादी रचनाओं में आधिक्य है । यह कहा जा सकता है कि हिन्दी में प्रकृति चित्रण की यह प्रणाली कुछ अंशों में रोमांटिक काव्य से अवश्य आई होगी । वर्डस्वर्थ शैले की नांई छायावादी कवियों ने प्रकृति को हंसते हुए तथा बातें करते हुए चिर सहचर रूप में देखा है। शैलेकी Skylark तथा Ode to the westwind के प्रभाव स्वरूप पंत ने भी मधुपकुमारी से मधुर गान सीखने की विनय की 'सिखादो हेना मधुपकुमारि मुझ को भी अपने मीठे गान' । तथा

Teach me half the gladness
that thy brain must know
such harmonious madness
from mylips would flow.
(Skylark)

प्रसाद, निराला, महादेवी के काव्य में भी मानवीकरण के राशि राशि उदाहरण प्रस्तुत हैं । 'जूही की कली' तो उत्कृष्टतम होने से बहुचर्चित है ।

अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों ने प्रकृति की भांति नारी के माध्यम से भी सौन्दर्याभिव्यक्ति की है । नारी के स्थूल-रूप के यथार्थचित्रण की अपेक्षा नारीरूप की सूक्ष्म सौन्दर्याभिव्यक्ति ही कर पाये हैं। यही छायावादी विशेषता है। शचीरानी गुर्टू ने इस संबंध में लिखा है कि नारी सौन्दर्य के अनेक सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करने वाली पंत की "ग्रन्थि" शीर्षक कविता शैले के Epips chidion से अद्भुत समानता है । (साहित्यदर्शन पृष्ठ १६५-१६६) शैले के अतिरिक्त छायावादी कवि कीट्स के नारी चित्रों से भी प्रभावित हैं। To the Bright Star और Ode to Psyche जैसी कविता में थोड़ी बहुत ऐन्द्रिकता भी आ गई है जिसके अंश पन्त के "प्रथम मिलन" 'अनंग' निराला की 'जूही की कली' 'शूर्पनखा' में भी विद्यमान है ।

मानवतावाद तथा आदर्शवाद :—अंग्रेज़ी रोमाण्टिक काव्य की दूसरी मुख्य प्रवृत्ति मानवतावादाभिव्यक्ति है। वस्तुत: आंगल रोमांटिक काव्य पर फ्रान्सीसी क्रान्ति का प्रभाव पड़ा । फ्रान्स-क्रान्ति के मूल में ये विचार थे कि जन्म-संपत्ति आदि के भेदभाव एक दिन अवश्य मिट जावेंगे और मानव बंधुत्व एक सूत्र में बंध जाएगा । इस क्रान्ति से प्रभावित वर्डस्वर्थ, शैले, वायरण ने मानव प्रेम को अपना काव्य विषय बनाया और जनवादी आदर्शों की अभिव्यक्ति की । फ्रांसीसियों की भांति भारतवासी भी विदेशी शासन से पीड़ित थे । अत: इस क्रान्ति का प्रभाव इन पर भी अनिवार्यत: पड़ना ही था । इसी कारण रोमांटिक कवियों की भांति "निराला" के काव्य में अत्याचार के प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोह की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। जिस प्रकार शैले की Ode to the West Wind शीर्षक कविता में प्रभंजन पश्चिमी स्वतंत्रता का द्योतक है उसी प्रकार निराला की प्रसिद्ध कविता "बादल राग" में प्रतीक पद्धति से अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह का सन्देश दिया गया है। वस्तुत: शैली और "निराला" की आत्माओं में अत्यधिक साम्य है। शैले की भांति छायावादी कवियों में 'निराला' ने शोषित वर्ग के प्रति अपार सहानुभति व्यक्त की है। "भिक्षुक" "विधवा" "इलाहाबाद के पथ पर" आदि कविताएं इसी प्रकार की हैं। ये दोनों ही कवि शोषक वर्ग के प्रति क्रान्ति के अग्रदूत रहे हैं।

मानवतावाद के समर्थक होने के नाते रोमांटिक कवि ऐसे लोक की कल्पना करते थे जहां प्रेम का एकान्त साम्राज्य होगा और विश्व के प्रत्येक मनुष्य को सुख शांति मिल सकेगी शैले की Queen Mab तथा Prometheus Unbound नामक काव्यात्मक नाट्य-कृतियों में ऐसी नारकीय यातनाओं से रहित प्रेम पूरित साम्राज्यों का आदर्श चित्रण किया है। शैले की इस आदर्शवाद का प्रभाव हिन्दी के छायावादी कवियों में पंत पर सब से अधिक पड़ा है। उनके 'ज्योत्स्ना' 'गुंजन' 'शिल्पी' आदि काव्य-ग्रंथ शैले की भांति आदर्श लोक का निरूपण करते हैं। इनमें कवि ने मनुष्य की शोषण और अत्याचार से मुक्ति की कल्पना की है। पंत ने लिखा भी है कि 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' में मेरी सौन्दर्य कल्पना क्रमश: आत्म-कल्याण और विश्व-मंगल की भावना को अभिव्यक्त करने के लिये उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है। आ. क. २

निराशावाद

रोमांटिक कवियों ने आदर्श लोक का निर्माण तो किया किन्तु वास्तविक जीवन में अत्यधिक दीनता, हीनता और अस्थिरता को देख कर वे अपने मन में निराशा का अनुभव भी करते रहते थे। अवसाद की यह अभिव्यक्ति प्राय: प्रत्येक रोमांटिक कवि में है। शैले ने 'To me this cup has been dealt with another measure' कह कर जीवन में व्याप्त विषाद की ओर स्पष्ट संकेत किया है। कीट्स ने भी Ode to the Meloncholy में Dy—in the very temple of delight Veild Meloncholy has her sovern shrine द्वारा यह व्यक्त किया है कि संसार के प्रत्येक सुन्दर वस्तु अवसाद ग्रस्त है। अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों की यह निराशावादी प्रवृत्ति छायावादी काव्य की भी विशेषता रही है। पंत की "परिवर्तन" शीर्षक कविता में यह भावना अत्यंत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हुई है।

रहस्यवाद

रोमाण्टिक-कवि सौन्दर्यवादी होने के कारण सुदूर अतीत से सौन्दर्य की खोज के लिये समकालीन विषम परिस्थितियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पलायन करता है। वह पारलौकिक सत्ता के प्रति आकृष्ट होकर अपनी घनीभूत मानसिक कुण्ठाओं को अभिव्यक्ति देता है। अतः उसमें एक प्रकार की रहस्यवादिता आ जाती है। वस्तुतः रोमांटिसिज्म (Romanticim) और रहस्यवाद की आधार भूमि एक ही है–घनीभूत मानसिक प्रवृत्तियों का प्रकाशन। यही कारण है कि आंगल रोमांटिक प्रतिवर्तन के प्रमुख कवि-ब्लेक, वर्डस्वर्थ और शैल रोमांटिक होने के साथ रहस्यवादी कवि भी हैं। इसी प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता में "प्रसाद" "पन्त" "निराला" महादेवी" और "राम कुमार वर्मा" छायावाद (जो रोमांटिक मनोवृत्ति का ही परिणाम है) के कवि होने के साथ-साथ रहस्यवादी कवि भी हैं। (हिन्दी का आ० प्र० १८६)। यहां यह ज्ञातव्य है कि भारत में रहस्यवाद आज की नवीन प्रवृत्ति नहीं अपितु दीर्घकालीन परंपरा से पोषित रहा है। वेद, उपनिषद्, आदि के साथ साथ कबीर, जायसी जैसे कवियों में इसकी पूर्ण सुरक्षा है। अतः छायावादी काव्य की रहस्यवादी भावनाओं को केवलमात्र पाश्चात्य प्रभाव का परिणाम ही नहीं माना जा सकता। (मानना दुराग्रह है) हां, पाश्चात्य साहित्य के संपर्क से यह रहस्यवादी भावना समृद्ध अवश्य होगी।

पाश्चात्य कवियों ने बालक और प्रकृति के माध्यम से अपने रहस्यवादी उदगार प्रकट किये हैं। बालक और ईश्वर में उन्होंने अभेद स्थापन किया है। ब्लेक की "सौंगस आफ इन्नोसेंस" तथा वर्डस्वर्थ की Ode to the Intimation of Immovtality में बालक को 'महान् दार्शनिक' 'गंभीर तत्त्वत्ता' मानवता का पिता Child is the father of man आदि नामों से संबोधित करते हुए बाल्यावस्था को अत्यधिक महत्त्व दिया है। इसी प्रकार छायावादी कवि पंत 'काला बादल' 'कृष्ण' 'आशंका' आदि कविताओं पर ब्लेक और वर्डस्वर्थ का प्रभाव प्रतीत होता है। उन्होंने बाल्यावस्था में गंभीर रहस्य को देखने का प्रयास किया है:–

"कौन तुम, गूढ़, गहन, अज्ञात! अहे निरूपम नवजात" बालक की ही भांति रोमांटिक कवियों ने प्रकृति को किसी भी अन्य सत्ता के प्रतीक रूप में देखा है। वर्डस्वर्थ के अनुसार प्रकृत्ति रहस्यमयी सत्ता बन कर संपूर्ण विश्व का संचालन करती है।

A motion and a spirit that impel
All thinking things, all objects
of all thought
And rolls through of all things.

शैले भी प्रकृति को चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। आंगल रोमांटिक कवियों के इस 'सर्वचेतनावाद' से हिन्दी कवि भी प्रभावित हुए हैं। देवी जी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार वर्मा की निम्नलिखित पंक्तियां प्रमाणस्वरूप हैं

१. मेघों में विद्युत् की छवि, उनकी बन कर मिट जाती वे आभा बन खो जाते, शशि किरणों की उलझन में ।

२. यह तुम्हारा हास आया
इन फटे से बादलों में कौनसा
मधुमास आया । रा०वर्मा०आक० ३४

पन्त और प्रसाद भी अपनी अनेक कविताओं में प्राकृतिक पदार्थों में विराट सत्ता का आभास पाते हैं ।

अन्य पाश्चात्य प्रभाव

रोमांटिसिज्म (Romanticism) की भांति छायावादी काव्यधारा पर मेटरलिंग के प्रतीकवाद का भी प्रभाव पड़ा है । मेटरलिंक ने ऐसे नाटकों का सृजन किया था जिनके पात्रों का अपना व्यक्तित्व नहीं है वरन् वे कवि के स्वप्न-जगत के प्रतीक मात्र हैं । इसी प्रकार प्रसाद जी के 'कामायनी' नामक महाकाव्य तथा 'कामना' और 'एक घूंट' नाटकों के पात्रों का लौकिक अस्तित्व तो है ही साथ ही वे मनस्तत्व एवं स्वप्न जगत् के प्रतीक भी हैं । इसी प्रकार प्रसाद जी के कामायनी नामक महाकाव्य उपरान्त पंत की "ज्योत्स्ना" तथा रामकुमार वर्मा का "बादल की मृत्यु" काव्य रूपक भी इसी कोटि में आते हैं ।

छायावादी कविता में यत्र तत्र वैज्ञानिक दृष्टिकोण की उपलब्धि भी (अंग्रेज़ी) आंगल साहित्य के परिणाम स्वरूप ही मानी जा सकती है । रोमांटिक कवि ब्लेक ने पश्चिम में विज्ञान को दानवी शक्ति के रूप में मान कर इसकी उन्नति को अधिक श्रेयस्कर नहीं माना था । 'Blake postulates as a principle that science is evil' H.E.L. 163 और भी The world is too much with us में अपने युग के वर्द्धमान यंत्रवाद के विरुद्ध विद्रोह का स्वर व्यक्त किया है । छायावादी कवियों में 'प्रसाद' और 'पन्त' भी विज्ञान के विध्वंसात्मक रूप के विरोधी रहे हैं। प्रसाद जी ने "कामायनी" में निम्न पंक्तियां लिखकर "प्रकृत शक्ति तुमने यंत्रों से छीनी, शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी" १९९ । पंत जी ने ज्योत्स्ना के काव्य रूपक में "ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है, विकास नहीं हो सकता" कह कर यांत्रिक उन्नति के के प्रति अपने विरोध का परिचय दिया है।

बुद्धिमानी आज करो, कल पर टालना पागलपन है ।

—एडवर्ड यंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा विवेचन

ओम् प्रकाश भारद्वाज

रामावतार "बचित्र नाटक" के चौबीस अवतारों में से बीसवां अवतार है, जिसे कवि ने ८६४ पद्यों में वर्णित किया है । बाल्मीकि रामायण, तुलसी के रामचरितमानस अथवा अध्यात्म रामायण की तरह कवि ने इसे काण्डों में विभक्त नहीं किया । बल्कि कथा के भिन्न-भिन्न मोड़ों के अनुसार उसे २२ प्रकरणों में विभाजित कर उसमें कई मौलिक परिवर्तन भी किए हैं । गुरु गोविंद सिंह जी अपनी प्रत्येक रचना को तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही प्रतिपादित करते हैं । युगानुयुग प्रचलित रामकथा की सर्वप्रियता, भव्यता और उत्कृष्टता के गायन में वे बाल्मीकि और तुलसी की तरह विस्तार में नहीं गए । उन्हें भली प्रकार पता है कि भगवान राम के चरित से भारत का आबालवृद्ध सुपरिचित है। इस सुपरिचय और सामान्य ज्ञान का वे लाभ उठाना चाहते हैं । इसीलिये वे राम कथा के वर्णन में अन्य आनुषङ्गिक कथाओं और अन्तर्कथाओं के विस्तार में नहीं गए । यद्यपि उन्होंने रामावतार की कथा के कहने में मूलतः बाल्मीकि रामायण को ही अपने सामने रखा है, फिर भी कथा की वर्णन शैली और वागोघता उनकी अपनी है । ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी रचना के लिए प्रेरणा हृदय राम भल्ला द्वारा रचित हनुमन्नाटक (१६२३ई०) १ से ली होगी इस नाटक का पंजाब में विशेष प्रचार रहा है और श्री नंद किशोर शर्मा'२ के अनुसार इस ग्रंथ को गुरुमुखी लिपि में करवाने का श्रेय भी गुरु गोविन्द सिंह जी को ही है ।

उनसे लगभग एक शतक पूर्व गोस्वामी तुलसीदास ने राम के उच्च आदर्श को मृतप्राय हिन्दुत्व में नया जीवन फूंकने की दृष्टि से एक अभूतपूर्व सामाजिक क्रान्ति

१ "हृदय राम भल्ला ने इस ग्रन्थ की रचना कारागृह की चारदीवारी में की थी । उन्हें किसी कारण जहांगीर बादशाह ने कैद कर रखा था" । देखिए श्री वेंकेश्वर प्रैस मुंबई द्वारा 1887 ई० में प्रकाशित हनुमन्नाटक की प्रस्तावना ।

२ देखिए वही ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदा कर दी थी, जिसके प्रभाव से समूचा उत्तरी भारत एक नयी प्रेरणा से आन्दोलित हो उठा ।

इसलिये वे पिष्टपेषण नहीं करना चाहते थे, अपितु गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दु जाति में क्रान्ति की जो मशाल प्रज्ज्वलित की थी वे उसे ही आततायियों के मेध द्वारा और अधिक ओजस्वी लौ से दीप्तिमय बनाना चाहते थे, ताकि वह हिन्दु जाति के लिये एक स्थायी जाज्वल्यमान प्रकाशस्तम्भ बन सके । तुलसीदास ने राम के शील और मर्यादा के जो उच्चादर्श पुनः स्थापित किये थे उनके पोषण एवं पल्लवन के लिए शौर्य की एक अभेद्य प्राकार की आवश्यकता थी । यह कार्य गुरु गोविंद सिंह जी ने किया—पारम्परिक राम कथा में वीरता के वर्चस्वी एवं प्रखर स्वर भर कर । जिस राम कथा को लेकर तुलसी ने लोक मङ्गल के हित के लिये एक मर्यादित अनुशासित तथा आदर्श समाज की स्थापना की कल्पना की थी, गुरु गोविन्द ने ऐसे समाज की स्थापना के स्वप्न को साकार करने के लिये उसी रामकथा द्वारा भारतीय समाज को शौर्य एवं पराक्रम के तारस्वरों से उद्बुद्ध किया । एक ने भारतीय आत्मा के दर्शन कराए, तो दूसरे ने इसकी रक्षा के लिये आवश्यक समाधान प्रस्तुत किया । दोनों एक ही पथ के पथिक थे । यदि दोनों में थोड़ा बहुत अन्तर है तो वह केवल प्रमुखता देने का है ।

तुलसी ने भी राम-रावण युद्ध द्वारा भारत में वीरता की भावना उद्वेलित की थी, किन्तु यह राम राज्य के उस व्यापक आदर्श का अंगमात्र थी । किन्तु गुरु गोविंद सिंह के लिये रामकथा का मुख्य संदेश ही राष्ट्र में वीरभावों का संचार है जिस द्वारा कोई जाति संसार के संघर्ष में अपना अस्तित्व बनाए रख सकती है, क्योंकि यह वसुन्धरा वीरभोग्या है ।

तुलसी को हम समन्वयवादी कहते हैं, क्योंकि उन्होंने शैवों, शाक्तों वैष्णवों और योगियों के सैद्धान्तिक भेदों का समन्वयन रामचरित मानस में किया है। भारत उस समय धार्मिक दृष्टि से बड़े संघर्ष में रत था । अपने लोकनायक पर सामाजिक आस्था स्थापित कर उन्होंने राम के जीवन को सर्व-जनीन और सार्व-भौमिक बना दिया । इस तरह राम सामाजिक मर्यादाओं के प्रतिनिधि होते हुए तुलसी के समय के हर मत और धर्म के रक्षक हैं। यह तुलसी की बहुत बड़ी सफलता थी । गुरू गोविन्द सिंह ने भी यही समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया। विष्णु के चौबीस अवतारों के साथ, ब्रह्मा के तथा शिव के अवतारों का भी उन्होंने उसी तन्मयता से गान किया । कालिदास और बाल्मीकि को भी अवतारों की श्रेणी में सम्मिलित करके उन्होंने अवतार भावना में एक विलक्षण विस्तार कर दिया । जब हम अवतार को शक्ति का प्रतीक मानते हैं, तो उसमें ज्ञान शक्ति भी संपृक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। तभी वह सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का स्वरूप बन सकता है । प्रसिद्ध अंग्रेज़ दार्शनिक कारलाइल की अवतार (हीरो) भावना का सूत्रपात गुरु जी ने आज से तीन सौ वर्ष पहले ही कर दिया था ।

रामावतार की कथा गुरु जी ने इसी दृष्टिकोण से लिखी जिसका कथावस्तु इस प्रकार है :—

कथा का प्रारम्भ कवि ने पौराणिक ढंग से ही किया है। गीता में वचन-बद्धता१ के अनुसार भगवान दानवत्व पर देवत्व प्रभावी करने के लिये समय-समय पर अवतरित होते हैं । बहुत समय बीत जाने के बाद जब आसुरी शक्तियां प्रबल हो गईं२, तो सभी देवता इकट्ठे होकर क्षीरसागर पर गए, जहां विष्णु के साथ ब्रह्मा अनन्त काल से निवास करते हैं । वहां जाकर उन्होंने करुणा कलित ध्वनि में पुकार की और उनकी यह 'आरत वाणी' भगवान के कानों में पड़ी । देवताओं ने आर्त स्वर से उस परम पुरुष से प्रार्थना की कि आप राम का अवतार धारण कीजिये और चिरकाल तक अयोध्या में राज्य कीजिये ।

रचना के आरम्भ में यह प्रसङ्ग गुरुजी की अपनी उद्भावना नहीं है। बाल्मीकिरामायण में भी भगवान् विष्णु को अवतरित होने के लिये ब्रह्मा सहित देवताओं द्वारा प्रार्थना की जाती है ।३ महर्षि ऋष्यशृङ्ग अश्वमेध के पश्चात् राजा दशरथ की प्रार्थना पर उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ करवाते हैं । वहीं पर सभी देवगण ब्रह्मा सहित एकत्र होते हैं । वहीं पर संसार में बढ़ती जा रही आसुरी शक्तियों की चर्चा छिड़ जाती है । सभी देवता ब्रह्मा जी से चिन्ता व्यक्त करते हैं और उनसे रावण , जो इन अमानुषिक शक्तियों का प्रतीक है को ब्रह्मा द्वारा दिये वरदान के प्रति रोष प्रकट करते हैं । उसी समय भगवान् विष्णु वहां पधारते हैं और परस्पर किए निश्चय के अनुसार यह भार भगवान् विष्णु अपने ऊपर ले लेते हैं । उधर ऋषि विश्वामित्र ने 'पितृतोष' यज्ञ आरम्भ किया । राक्षसों के विध्वंस से पीड़ित होकर वे राजा दशरथ के पास

---

१ गीता ४।७.८

२ बहुत काल बीतत भयो जबै, असुरन वंश प्रगट भयो तबै ।
रामावतार ।। १।।

३ ब्रह्मणा च समागम्य तत्र तस्थौ समाहित:
तमँवुयम सुरा: सर्वे समभिष्ठूम संवता :।।१८।।
त्वां नियो क्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया
बाल्मीकिरामायण बालकाण्ड सर्ग १५।17½-18½ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम और लक्ष्मण को मांगने आए । राजा ने बलात् अपने दोनों पुत्रों को उन्हें सौंप दिया । मार्ग में श्रीराम ने ताड़का जैसी भीमकाय राक्षसी का हनन किया । उसे मरा सुनकर मारीच सुबाहु आदि अन्य राक्षस भी वहां युद्धार्थ आ पहुंचे और राम पर टूट पड़े । राम ने बड़ी वीरता से उन्हें धराशायी कर दिया । इस प्रकार राक्षसों को मार कर श्रीराम ने भूमिभार हलका किया । सारी देव-सृष्टि आनन्दित हो उठी ।

दूसरे प्रकरण में सीता के साथ श्रीराम के विवाह का वर्णन है । मुनि विश्वामित्र ने सीता स्वयम्वर का समाचार सुना और राम को वहां जाने के लिये प्रेरित किया और यह सम्मति दी कि इसे आप अवश्य जीतें क्योंकि सीता आपकी ही वरेण्या है । श्रीराम को लेकर ऋषि महोदय जनकपुरी में पहुंचे । श्री राम की सुन्दरता से नगरवासी मोहित हो उठे । सीता जी तो देखते ही सुधबुध खो बैठीं । श्रीराम ने वीर भाव से पिनाक के दो टुकड़े कर दिये । राम सीता को वर कर जाने लगे तो वहां परशुराम आ धमके । दोनों में घोर युद्ध हुआ। पर फिर भी परशु राम का क्रोध शान्त न हुआ । तब विवश होकर राम को अपना देव बल दिखाना पड़ा । इस पर भी परशुराम टस-से-मस न हुए । आखिर राम ने साफ-साफ सुना दी कि विप्रवर ! बात सम्भल कर कीजिए, नहीं तो अभी दान्त तुड़वाओगे । परन्तु फिर भी परशुराम पर कोई भी प्रभाव न पड़ा । उन्हों ने अपने धनुष का चिल्ला चढ़ाने को कहा और यह भी कहा कि शङ्ख, चक्र गदादि सहित अपनी छाती पर भृगु की लात का चिह्न भी दिखाइए । जब राम ने हंसते-हंसते उस धनुष के भी दो टुकड़े कर दिए तो परशुराम को उनके अवतार होनें का विश्वास हुआ और सब वैरभाव छोड़ कर गले मिले ।

तीसरे प्रकरण में राम परशुराम को जीत कर सीता सहित अयोध्या में पहुंचते हैं । राजा दशरथ ने राम का विजय समाचार सुन कर हर्षोत्फुल्ल मन से राम का स्वागत किया । अन्य पुत्रों के विवाह की तैयारियां होने लगीं । शेष तीनों राज कुमार बनठन कर सुन्दर घोड़ों पर सवार होकर जनकपुरी में पहुंचते हैं । वहां उन तीनों का विवाह सम्पन्न होता है और वे शीघ्र ही अयोध्या लौट आते हैं । सारा नगर उल्लास से नाच उठता है । अकस्मात् चारों दिशाओं में दिग्दाह-सा उठता दिखाई दिया । मन्त्रियों ने शान्त्यर्थ अश्वमेध यज्ञ करने की सलाह दी । यज्ञ सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ । तदनन्तर राजा ने अपने राज्य की तीन दिशाएं तीन पुत्रों को दे दीं और राजधानी श्री राम को । राम के राज्याभिषेक की तैयारियां आरम्भ हुईं । उसी समय मंथरा ने कैकयी को पट्टी पढ़ाई और दो वरों का स्मरण कराया । कैकेयी दशरथ के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंची और उसने श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास और अपने पुत्र भरत को राज्य की मांग की । राजा दशरथ तिलमिलाए, किन्तु विवश होकर उन्होंने कुल पुरोहित वशिष्ठ द्वारा यह समाचार राम को दे दिया और राम सहर्ष वन के लिये तैयार हो गए । माताओं से विदा लेकर रामने सीता-लक्ष्मण सहित वन की ओर प्रस्थान किया ।

चौथे प्रकरण में राम के वनवास का वर्णन है । आरम्भ में कौशल्या राम के वियोग से तड़प उठती हैं । उन का वात्सल्य मन में कई कल्पनाएं करता है । तात् दशरथ ने प्राण त्याग दिये । भरत सूचना मिलते ही अपने ननिहाल से भागे आए । सारा समाचार जान कर अपनी माता को धिक्कारा । राजा का अन्त्येष्टि संस्कार कर वे मुनिगण सहित राम को मनाने के लिये राम के पास गये । किन्तु वे नहीं माने । भरत उनकी खड़ाऊं लेकर लौट आये और उन्हें राजसिंहासन पर रख कर राज्य करने लगे । उधर राम भी स्वर्ग को छूने वाले ताल-तमाल आदि वृक्षों की छाया में पर्णशाला बना कर 'विधुवाक वैनी' के साथ रहने लगे । तब राम ने विराध राक्षस का युद्ध करके संहार किया ।

पांचवा प्रकरण वन-प्रवेश का है । राम अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाते हैं । वहां श्री राम को मुनि ने वाण भेंट किये । अपनी शाला में पहुंच कर राम-लक्ष्मण गोदावरी नदी में स्नान करने जाते हैं । वहां के [illegible] ने जब उनके सुन्दर-सलोने रूप को देखा तो इसकी चर्चा उन्होंने वहां की स्वामिनी शूर्पणखा से की। शूर्पणखा भागी हुई आई और राम को अपनी छवि से मोहित करने के कई विफल यत्न किए । राम ने उसे टाल कर लक्ष्मण के पास भेज दिया । लक्ष्मण ने भी उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया । तब वह अपनी नाक कटवा कर (अपमानित होकर) चली गई । छठे प्रकरण में खर-दूषण युद्ध का वर्णन है । शूर्पणखा रोती-पीटती रावण के पास गई । रावण ने राम से बदला लेने के लिये खर-दूषण को भेजा । खर-दूषण ने राम के साथ युद्ध किया किन्तु अन्त में रामने उन्हें मार कर नदी (गोदावरी) में बहा दिया । सातवें प्रकरण में सीताहरण की कथा है । रावण अपने मामा मारीच के पास जाकर उसे सारी कहानी सुनाता है और उसे डरा धमका कर तैयार करता है । मारीच सोने का हिरण बन कर सीता के सामने से गुज़रता है । सीता राम के समझाने पर भी, उसे प्राप्त करने के लिये आतुर हो उठती है। राम तूणीर बांध कर उसका पीछा करते हैं । मरते समय मारीच 'लक्ष्मण मुझे बचाओ!' पुकार उठता है। पीछे से, लक्ष्मण को, सीता के आग्रह पर, यहां से राम की ओर जाना पड़ता है. किन्तु जाते समय सीता की रक्षा के लिए अपने धनुष से एक रेखा खींच जाता है । उधर से साधु वेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रावण आ जाता है। रेखा के बन्धन से युक्त भीख न स्वीकार करने का छल करके वह रेखा सीता से मिटवा देता है और उसे झट से उठा कर आकाश में उड़ जाता है।

आठवें प्रकरण में सीता की खोज की जाती है। राम-लक्ष्मण लौटने पर कुटिया खाली पाते हैं। इधर उधर देखने पर भी जब सीता नहीं मिलती तो राम अधीर होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं। लक्ष्मण उन्हें सान्त्वना देते हैं। राम की विरहाग्नि तीव्र होती जाती है। उधर मार्ग में जटायु की सीता को चुरा कर ले जाते हुए रावण के साथ मुठभेड़ हो गई। युद्ध में जटायु के पंख कट जाते हैं। जटायु की भेंट राम से होती है। जटायु उन्हें रावण के जाने का रास्ता बताता है। आगे जाकर हनुमान जी मिलते हैं। फिर हनुमान के कारण सुग्रीव से मित्रता हो जाती है। सभी ने मिल कर सीता के सम्बध में मन्त्रणा की। सुग्रीव ने राम की सहायता का वचन दिया। राम ने सुग्रीव को सताने वाले उसके भाई बाली का वध किया।

नवें प्रकरण में हनुमान को सीता की खोज करने लंका की ओर भेजा जाता है। हनुमान राम की अंगूठी लेकर वहां पहुंचे जहां सीता जी थीं। वे लंका को जला कर, अक्षयकुमार का वध कर, और अशोक वाटिका नष्ट-भ्रष्ट कर श्रीराम के पास लौट आए और सारा समाचार राम को कह सुनाया। तब राम ने करोड़ों वानरों को लेकर लक्ष्मण, सुग्रीव, जामवंत, नलनील, अंगद हनुमान सहित समुद्र पार करती हुई लंका में जा पहुंचे। उधर रावण के दूतों ने जाकर रावण को खबर की। रावण ने धूम्राक्ष और जावमाली को भारी सेना के साथ भेजा, पर वे सभी मारे गए। फिर रावण ने अकम्पन को भेजा। वह भी अंगद के हाथों मारा गया। फिर भी राम चाहते थे युद्ध न हो। उन्होंने अंगद को दूत बना कर भेजा, और सीता को लौटा देने का आग्रह किया। परन्तु रावण ने एक न मानी। अङ्गद लौटता हुए अपने साथ विभीषण को भी ले आए। मंदोदरी ने भी रावण को अनेक प्रकार से समझाया, पर रावण अभिमानवश न माना। रावण ने तब अपने पुत्र नरान्त और देवान्त को युद्धार्थ भेजा, परन्तु वे भी मारे गए।

दसवें प्रकरण में रावण के मन्त्री प्रहस्त के साथ युद्ध का वर्णन है। दोनों पक्षों की सेनाएं घोर युद्ध के लिये तैनात हैं। राम विभीषण से रावण की सेना का परिचय लेते हैं। युद्ध में रावण की सेना तितर-बितर हो जाती है। तब कुम्भकरण को जैसे-कैसे जगाया गया। उसे जब सारी स्थिति का पता चला तो वह मांस, मदिरादि से अपना पेट भर कर युद्ध भूमि में उतर आया। उधर से सुग्रीव ने एक पर्वत उस पर पटक दिया। उसकी जांघें टूट गई और राम के तीर से वह भी मारा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्यारहवें प्रकरण में जब रावण त्रिमुण्ड को सेना देकर भेजता है, तो युद्ध में हनुमान उसीकी तलवार छीन कर उसी के गले में घोंप कर उसे मार देता है। बारहवें प्रकरण में रावण ने त्रिमुण्ड की मृत्यु सुन कर महोदर मन्त्री को युद्ध के लिए भेजा । वह भी सेना सहित मारा गया। तेरहवें प्रकरण में रावण के पुत्र इन्द्रजीत (मेघनाद) के साथ युद्ध होता है। उसके बाणों से राम लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं। सीता को त्रिजटा द्वारा इसका पता चलता है । उसने युद्ध भूमि में आकर नागमन्त्र का पाठ किया और नाग-पाश को काट दिया। राम लक्ष्मण सचेत हो उठे और फिर से उन्होंने घमासान युद्ध किया । यह देख कर मेघनाद निकुम्भल नामक स्थान पर हवन करने के लिये गया । मेघनाद रणचण्डी को प्रसन्न करने के लिये अपना मांस काट कर हवन कर रहा था। लक्ष्मण ने वहां पहुँच कर बाण से उसके दो टुकड़े कर दिये । चौदहवें प्रकरण में रावण अपनी सेना को अतिकाय दैत्य की अधीनता में युद्धार्थ भेजता है। रण-भूमि में भयंकर रक्तपात हुआ। अतिकाय दैत्य भी लक्ष्मण की तलवार का शिकार हो गया। पन्द्रहवें प्रकरण में मकराक्ष के साथ युद्ध हुआ। राम ने उसके अङ्ग-अङ्ग काट दिये ।

सोलहवें प्रकरण में राम-रावण-युद्ध का वर्णन है। दोनों ओर की सेनाएं अन्तिम निर्णय के लिये जूझ पड़ती हैं। रावण की सेना की भारी हानि हुई, किन्तु उधर रावण ने लक्ष्मण की ओर झपट कर शक्ति से उस पर प्रहार किया । लक्ष्मण मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पड़े। उसी समय सुखेन वैद्य के परामर्श से हनुमान जी को विशल्य बूटी लाने के लिए हिमालय पर्वत पर भेजा । वहां से जल्दी के कारण वे पहाड़ ही उठा लाये । बूटी लक्ष्मण के मुंह में डाली गई । वे उसी समय उठ खड़े हुए । राम की सेना में पुनः उत्साह की लहर दौड़ गई । रावण भी अपनी बीस भुजाओं को शस्त्रों-अस्त्रों से सुसज्जित कर रथ पर निकल आया । राम ने अपने बाणों से उसके घोड़ों को बींध दिया। रावण को रथ तथा सारथी-विहीन कर नीचे उतार दिया। तीखे बाणों से उसका हृदय चीर दिया और बीसों भुजाएं और दसों सिर धड़ से अलग कर दिये। रावण को मार कर श्रीराम ने मानों युद्ध रूपी स्वयम्वर में सीता का पुनः वरण किया।

सत्रहवें प्रकरण में सीता राम से मिलती है। रावण की मृत्यु सुन कर सारी लंका में खलबली मच गई । रानियां सिर पीटने लगीं । किन्तु राम की सहज सुन्दरता और कोमल स्वभाव को देख कर सारा वैर भूल गईं और राम के प्रति अनुरक्त हो गईं। तब राम ने अपने आपको निर्दोष सिद्ध किया और विभीषण को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ हनुमान को सीता लाने के लिये भेजा। सीता आते ही रामचरणों से लिपट गई । राम ने सीता को अग्नि-परीक्षा के बाद गले लगा लिया ।

अठारहवें प्रकरण में राम अयोध्या लौट आते हैं । चारों ओर उल्लास और आनन्द छा जाता है । मङ्गल गान होते हैं। अबालवृद्ध अपने 'ढोलन' के दर्शनार्थ उमड़ पड़े । उन्नीसवें प्रकरण में राम माताओं से मिलते हैं, भाइयों से मिलते हैं। इसके बाद राम का राज्याभिषेक हुआ। दूर-दूर से राजाओं की ओर से उपहार भेंट किये गये । सभी ऋषि मुनि इस अवसर पर वहां पधारे । इतने में एक ब्राह्मण राम की शरण में आया जिसका पुत्र मर गया था। ब्राह्मण ने आग्रह किया उसके पुत्र को जीवन मिलना चाहिए (क्योंकि पिता के होते हुए उसके पुत्र की मृत्यु असामयिक हुई है) नहीं तो वह शाप दे देगा। राम उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। जहां एक शूद्र (शम्बूक) औंधे मुंह कुएं म लटक कर घोर तपस्या कर रहा था। राम ने उसकी अनधिकार चेष्टा समझ कर उसे तलवार से मार डाला और इससे ब्राह्मण-पुत्र जीवित हो गया। तब उन्होंने भरत को मन्त्रिपद पर नियुक्त किया, लक्ष्मण को सेनानायक बना दिया और शत्रुघ्न को मथुरा का राज्य सौंप दिया । मथुरा में शत्रुघ्न ने लवण नामक दैत्य को मार कर नगर में शान्ति स्थापित की ।

बीसवें प्रकरण में सीता को बनवास देने का वर्णन है। सीता के कहने पर राम ने एक सुन्दर उपवन बनवाया। जब सीता गर्भवती हुई तो सीता ने वनभ्रमण की इच्छा व्यक्त की । राम ने झट लक्ष्मण को साथ भेज दिया। निर्जन वन में सीता को अकेली छोड़ कर लक्ष्मण लौट आए । पीछे से सीता को जब एकाकीपन का आभास हुआ तो वह चीख मार कर रो उठीं । सीता की आर्त्त पुकार सुन कर महर्षि वाल्मीकि सीता को अपनी कुटिया में ले गए । वहां सीता ने एक शिशु को जन्म दिया । वह शिशु ऋषि की देख-रेख में पलने लगा। एक दिन जब ऋषि ध्यानस्थ थे, तो सीता शिशु को साथ ले गईं । ऋषि का ध्यान टूटा तो शिशु को पालने में न पाकर उन्हें चिन्ता हुई । उन्होंने कुशा हाथ में लेकर एक अन्य शिशु की सृष्टि कर दी। दोनों ही बच्चे सुख से पलने लगे। दूसरी ओर राम ने अपनी विजय के सम्मान में अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया : घोड़ा छोड़ा गया। सभी राजाओं ने राम की अधीनता स्वीकार कर ली । घोड़ा जब ऋषि के आश्रम के पास से गुज़र रहा था तो लव ने घोड़े के माथे पर लगे पत्र को पढ़ा और उसे पकड़ कर वृक्ष से बांध दिया । शत्रुघ्न ने उसकी इस क्रिया का दुष्परिणाम बताया । लव झट से युद्ध के लिये तैयार हो गया । उन दोनों बालकों ने बारी बारी शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत को मार गिराया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब राम को सम्मुख आना पड़ा। राम ने उनसे हंसते हुए उनका परिचय पूछा। उन्होंने सब कुछ बता दिया किन्तु राम कुछ न बोले। राम को लड़ना पड़ा और वे भी धराशायी हो गए। सभी संज्ञाहीन वीरों को उठवा कर वे माता सीता के पास ले गये। जब सीता ने अपने पति राम का मुख देखा तो वे रो पड़ीं, और अपने पुत्रों को फटकारने लगी कि तुमने मुझे विधवा कर दिया।

यहां सीता के सम्बन्ध में राम का यह व्यवहार विश्वासघात एक घोर है जो नायक के चरित्र को निन्द्य बना देता है और नायक के अपकर्ष का द्योतक है। बाल्मीकि रामायण में सीता निर्वासन के के पीछे प्रत्ययायक सामाजिक कारण हैं जिनसे अभिभूत होकर राम एक आदर्श राजा का कर्तव्य निभाते हैं। वहां वे एक सच्चे लोक नायक की तरह लोकतन्त्र की मर्यादा की रक्षा के निमित्त जनवाणी के सामने नतमस्तक हो जाते हैं। अतः सीतानिर्वासन वाल्मीकि रामायण में एक सामाजिक प्रश्न है। वाल्मीकि लव कुश भी युद्ध लिप्सु नहीं हैं। वे सीधे-सादे ऋषि कुमार हैं, विद्याध्ययन जिनका व्यसन है। मालूम होता है, पद्म पुराण में वर्णित लवकुश के युयुत्सु चरित्र ने रामावतार का कवि के हृदय को इतना मुग्ध कर दिया, कि वे इन दो युवक सेनानियों के राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न जैसे वीरों के साथ युद्ध कौतुक दिखाने के लोभ का संवरण नहीं कर सके।

राम की अश्वमेध यज्ञ की तैयारी और सफलता उनके चक्रवर्तित्व और सार्वभौमिक प्रभाव का ज्ञापक है। अश्वमेध यज्ञ के इस अवसर पर यदि कवि बाल्मीकि रामायण की तरह राम के साथ सीता की स्वर्ण प्रतिकृति का संकेत भी कर देता तो राम का अकारण सीता-निर्वासन का कलंक भी धुल जाता और इससे नायक की नायिका के प्रति अगाध निष्ठा का परिचय मिलता।

इक्कीसवें प्रकरण में सीता सभी भाइयों को जिला देती है। जब सीता ने राम की ओर देखा तो वह पुत्रों को कहने लगीं "मुझे लकड़ियां ला दो मैं अभी चिता में पति के साथ सती हो जाऊंगी।" लेकिन इतने में ही आकाशवाणी हुई कि "हे सीते तू पागलों जैसा व्यवहार क्यों करती है?" सीता ने हाथों में जल लिया और अपनी पवित्रता की सौगन्ध से सभी को जिला

१ बाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ९१।२५
९२।९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिला दिया । राम सीता तथा पुत्रों सहित अयोध्या की ओर लौटे । रामावतार का कवि सीता पुनर्मिलन के प्रसङ्ग को बाल्मीकि रामायण की स्वाभाविक और उत्कृष्ट प्रासंगिक कथाओं के अनुकरण पर न्याय्य मोड़ दे सकता था। आदि कवि ने लवकुश युद्ध नहीं दिया।१ इस प्रसङ्ग के सन्निवेश के लिए कवि ने पद्मपुराण द्वारा प्रचलित लोक कथा का अनुकरण किया है ।

बाइसवां प्रकरण अवध प्रदेश का है। राम के पुत्रों का आयोध्या में भव्य स्वागत हुआ । राम ने दस बार राजसूय यज्ञ किया, इक्कीस प्रकार के अश्वमेध यज्ञ किये और नागमेध यज्ञ छः बार किए । सभी वर्णों को अपने-अपने कर्त्तव्यों में लगाया । पूरा राम-राज्य स्थापित हो गया कालान्तर में कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। एक दिन अन्य स्त्रियों के आग्रह से सीता रावण का चित्र खींच रही थी। रामने देख कर उसकी पवित्रता पर सन्देह किया। सीता इस लांछन को न सह सकी। सीता की आर्त्त वाणी से भूमि फट गई और वह वहीं समा गई । अब रामने भी इह लीला संवरण की । इसके बाद भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी परलोक सिधार गए और उनकी पत्नियां भी उनके साथ सती हो गईं । लव ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली, और कुश को उत्तर देश, भरतपुत्र को पूर्व देश, लक्ष्मण के पुत्र को दक्षिण देश और शत्रुघ्न के पुत्र को पश्चिम का राज्य मिला ।

कथा की अन्विति के प्रश्न को लेकर भी यह कहा जा सकता है कि रामावतार के कवि ने कथा की अङ्ग-सङ्गति में काव्य-शास्त्रीय मर्यादा की रक्षा नहीं की है। कथा को कवि ने २२ प्रकरणों में वर्णित किया है और इन प्रकरणों के आकार-प्रकार में भी बहुत विषमता है। प्रकरणों के विभाजन में भी कथा के अनुपात को ध्यान में नहीं रखा गया । रामजन्म से बनवास तक की कथा पहले चार प्रकरणों (अध्यायों) में वर्णित की गई है, जबकि बनवास से रावण वध तक की कथा के लिये तेरह अध्याय जुटाए गए हैं। इनमें रावण-युद्ध प्रसङ्ग पर रावण के छः सेनापतियों के युद्ध कौशल को दिखाने के लिये कवि ने छः पृथक् अध्याय सन्निविष्ट किए हैं। शेष नौ अध्याय सीता-सम्प्राप्ति, सीता-निर्वासन, लवकुश युद्ध तथा सीता और राम के महाप्रमाण तक की घटनाओं को वर्णित करते हैं।

अपने गीतों के पंखों से ही
मैं तेरे चरणों का स्पर्श कर पाता हूँ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविवर बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन'

प्रो० रा० प्र० द्विवेदी "रामेश्वर"

२९ अप्रैल को राष्ट्र जिनकी निधन-स्मृति में करुणार्द्र हो उठेगा ।

छः वर्ष हुए, जब श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' इस विश्व में नहीं रहे—नहीं रहे यानी उनका भौतिक शरीर चिता की लपटों ने लील लिया, उनकी ज्योति-काया रोग-जर्जर हो अन्ततः शून्य में विलीन हो गई । किन्तु कौन कह सकता है कि 'नवीन' जी इस विश्व में नहीं रहे ? स्थूल न सही, उनका सूक्ष्म अविनश्वर है । वह कहीं माँ-भारती के 'कुंकुम' रूप में समादृत हैं, तो कहीं 'क्वासि की टेर' में प्रतिध्वनित । भला 'नवीन' जी के आभ्यन्तर की 'रश्मिरेखा' क्या कभी मरने वाली चीज़ है ? और 'उर्मिला' ? उर्मिला की 'अगीत गाथा' गाकर तो उन्होंने अपनी चिर-सजग भावुकता को अमरता का अभेद्य कवच पहना दिया है । अस्तु,

'नवीन' जी के सम्पर्क में आने वाले सभी मित्र और परिचित एक मत हैं कि नवीन जी की आत्मा महान् थी तथा उनका हृदय पर दुःख-कातरता और संवेदनशीलता का स्रोत था । यह कोई कल्पित अथवा अतिरंजित प्रशस्ति नहीं एक ठोस सत्य है जिसकी परीक्षा उनके जीवन में कोई भी कर सकता था ।१ और परीक्षा तो आज भी हो सकती है, किन्तु आज उनके काव्य में उनकी आत्मा ढूंढनी पड़ेगी तथा कुछ एकाग्र होकर

१—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके अनेकानेक मानवीय गुणों से प्रभावित होकर यहां तक कह डाला था—

तो सों को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवहि दीन पर 'बाल' सरिस कोउ नाहीं'

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका हृदय-स्पंदन सुनना पड़ेगा ।

जीवन मट खेला हूँ मैं अनल-फाग दिन रैन;
वह थी कृपा तुम्हारी वरना मैं क्या पाता पार
प्राण, तुम मेरे बल-आगार !

सत्य ही है कि नवीन जी जीवन-भर अनल फाग खेले तथा उनके आंगन मे अभिलाषाओं की 'प्रबल प्रचण्ड होली जली ।' लेकिन अपने 'तुम' पर उनका अविचल और अगाध विश्वास था और कदाचित् इसी विश्वास की शीतलता का सुफल था कि वे 'सह जाऊंगा मैं हंस, हंस ये लपटें ये अंगार' का वीरोचित उद्घोष कर सके ।

नवीन जी की देश-भक्ति अथवा वलिदान-भावना किसी क्षणिक उन्माद का परिणाम न थी । वे इस मार्ग के काँटों से भली प्रकार परिचित थे--

उनकी क्या होली-दीवाली, उनके क्या त्योहार ।
जिनने निज मस्तक पर ओढ़ा जन-विप्लव का भार ?
कर्म--पथ है खाँडे की धार ।

खाण्डे की धार पर चलना आसान नहीं होता । इस चलने में कभी-कभी तो 'मनोरथों की रार' इतनी सशक्त हो उठती है कि....

यह सच है; फिर भी मानव तो मानव ही है प्राण ,
हिय में होने लगती ही है, मनोरथों की रार,
मदिर होते ही हैं त्योहार ।

कितनी निष्कपट आत्माभिव्यक्ति है क्या शुष्क राजनीतिज्ञों की वाणी भी ऐसे सत्यों का उद्घाटन कर सकती है ?

स्वावलम्बी नवीन 'अपने ही बल गगन--तरण ' के अनवरत हामी रहे । वे जीवन भर अनिकेतन रहे । फिर उनका क्या निकेतन जो समूची 'धरती के बेटे' बन कर जन्म लेते हैं तथा मृत्यु आकर जिन्हें अमरत्व के शाश्वत पट पहनाती है । उनका तो सदा-सदा से यही प्रिय गीत है (और सदा रहेगा) --

हम अनिकेतन, हम अनिकेतन
हम तो रमते राम
हमारा क्या घर, क्या दर, कैसा वेतन
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन ।

निस्संदेह तुच्छ संसार ऐसे लोगों को प्राय: भिक्षुक ही समझ बैठने की ग़लती करता है, पर इससे क्या कविवर नवीन निश्चिन्त हैं--

हम दाता बन कर बिचरे
पर हमें भिक्षु समझे जग के जन ।

साथ ही उनके अनिकेतन रहने का कारण आर्थिक वैषम्य तथा शोषक-मनोवृत्ति के प्रति उनकी तीव्र प्रतिक्रियात्मक अनुभूति भी है--

हम जो भटके अब तक दर-दर
अब क्या खाक बनायेंगे घर
हमने देखा : सदन बने हैं
लोगों का अपनापन लेकर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अजीब-सा ही था नवीन जी का भाग्य। काश, वे शान्तियुग में जन्म लेकर केवल काव्यसाधना कर सके होते! लेकिन इस नवनीत-पुत्र को तो जीवन-भर क्रान्ति की चिनगियां चुननी पड़ीं और सड़ना पड़ा उनकी कमनीय काया को कारागृहों में। कम आश्चर्य की बात नहीं कि महाकाल का भैरव नर्तन उनकी आत्मा के नवनीत को नष्ट नहीं कर पाया। वे अन्तः और बाह्य दोनों पुकारों को बराबर सुन सके। नवीन जी में आग और पराग का समन्वय था। वे सूर्य और शशि के संयोग-बिन्दु पर खड़े थे। नवीन जी एक ओर अपने कवि को आदेश देते हैं :--

लिख विरह के गान, रे कवि, लिख विरह के गान,
अमित लिखने दे अधर पर दुःख भरी मुस्कान,
रे कवि, लिख विरह के गान।

तो दूसरी ओर अत्याचार-पीड़ित भारत-जननी की तस्वीर देख कर इस प्रकार उबल पड़ते हैं --

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये
एक हिलोर उधर से आये
प्राणों के लाले पड़ जायें
त्राहि-त्राहि रव नभ में छायें।
(इत्यादि)

अथवा,

अरे पराजित रण-चण्डी के
ओ कपूत हट जा, हट जा
अभी समय है कह दे मां
मेदनी अरे फट जा, फट जा।

कवि नवीन का 'सुन्दर' भी कुछ ऐसा था, जैसा कि था। यानी उस के दो रूप थे--एक कुसुमादपि कोमल तो दूसरा बज्रादपि कठोर--

ओ सौन्दर्य-उपासक तुमने,
सुन्दर का स्वरूप क्या जाना,
मधुर, मंजु, सुकुमार, मृदुल ही,
को क्या तुमने सुन्दर माना ?
क्यों देते हो चिर सुन्दर को,
इतने छोटे सीमा-बन्धन;
कठिन, कराल, ज्वलंत, प्रखर भी,
हैं सौन्दर्य-प्रकेत चिरंतन।
कल-कल, टल-मल, सर-सर,
भर-भर यही नहीं सुन्दर की वाणी,
इन्द्र-बज्र-ध्वनि भी है उसकी,
जहर,, गंभीर गिरा कल्याणी।

प्रायः सर्व-सम्मत है कि नवीन जी का मनोजगत् भावुक तरलता से आ[...] था; किन्तु उसमें चिन्तन की चारुता भी थी। जीवन की क्षणिकता तथा संसार की अनित्यता से लेकर अविनश्वर तेज-तत्व तक--निर्गुण और निराकार बहन तक उनकी चिन्तनधारा प्रवाहित हुई है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्वासि की टेर' में उनके तत्व-चिन्तन की गहराई दृष्टव्य है --

'क्वासि' की यह टेर मेरी 'नास्मि' की
अनुगूंज आई ।
आज अम्बर से उलट कर यह प्रतिध्वनि
दी सुनाई ।
'नास्मि' की अनगूंज आई ।
देव, मैं अष्टाङ्गयुत प्रणिपात में ब्रह्मांड घेरूँ
नाम-माला-जाप में सब सौर-मंडल चक्र
फेरूँ
गोद में लूं खींच तुमको यदि तड़प कर आज
टेरूँ
है भरोसा कुछ तभी तो 'क्वासि' की यह
लौ लगाई
'नास्मि' की अनुगूंज आई ।

नवीन जी के अध्यात्म-चिन्तन में तनिक सी शुष्कता नहीं है, वह निरन्तर रसमयी भावुकता के साथ है। इसी लिये वह मर्मस्पर्शी भी हैं। प्राणों को पागल कर देने वाला--

डोला लिए चलो तुम झटपट
छोड़ो अटपट चाल रे !
सजन-भवन पहुंचा दो हमको
मन का हाल बेहाल है !
बाबुल के घर नेह भरा है पर वां द्वेत-विचाररे
साजन के नव-नेह-सलिल में है अद्वैत-
विहार रे ।
हृदय-हृदय से, प्राण प्राण से आज मिलें
भरपूर रे
पियमय तिय, तियमय पिय हों जब तब हो
संभ्रम दूर रे ।

दूर करो पथ के अन्तर का
यह अटपट जंजाल रे
डोले वालो, बढ़े चलो तुम
आया सन्ध्याकाल रे ।

और हाय ! २९ अप्रैल, १९६० को कविवर नवीन के ऐहिक जीवन का वह संध्याकाल आया जो आकर फिर गहन-चिर-रात्रि में परिणत होकर ही रहा। शायद वही रात्रि थी, जब कवि की 'आत्म-दुल्हनियां' को 'साजन के नव-नेह, सलिल' में अद्वैत-विहार करने के लिये जाना था--जाना ही था। प्यारे नवीन, तुम मां-भारती के एक सुयोग्य पुत्र थे, सुकवि थे, स्वयं में स्वयं एक कविता थे--कान्त और कोमल, प्रेय और पवित्र। कवि-श्रेष्ठ, तुम जिस रूप में हो, जहां भी हो, मेरा प्रणाम स्वीकार करो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामशास्त्रीय नायक-विवेचन का भारतीय नाट्य-परम्परा पर प्रभाव

O

राजेन्द्र भनोत शील

भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शास्त्रीय आचार्यों ने अलंकार, रस, ध्वनि आदि काव्यांगों का जहां सांगोपांग सूक्ष्मातिसूक्ष्म गम्भीर एवं विशद निरूपण किया है वहां नायक-भेद-प्रकरण का वे उतने विस्तार से विवेचन नहीं कर पाए। धनंजय विश्वनाथ आदि कुछ एक आचार्यों ने नायक-भेद के विवेचन में अभिरुचि दिखाई तो है, परन्तु विषय का सर्वांगपूर्ण एवं अपेक्षित विस्तार उनके द्वारा हो सका हो, ऐसा नहीं माना जा सकता। स्यात् इसका कारण यह है कि नायक-नायिका भेद-प्रकरण का सम्बन्ध मुख्य रूप से मानव की आदि यौन वृत्ति से है जो काव्यशास्त्र की अपेक्षा काम शास्त्र का ही अधिकारिक विषय है। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से सभी आचार्यों ने धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के जीवन-लक्ष्यों के गौरव को समान रूप से स्वीकार किया है, परन्तु व्यावहारिकता में सर्व-मुख्यता आध्यात्मिक दृष्टिकोण की ही रही है और काम की चर्चा अश्लील ही समझी गई है: यद्यपि सामाजिकता एवं नैतिकता के अनुरोध ने विषय की परिसीमा के निर्माण में अवश्य योग दिया है तो भी संस्कृत के आचार्यों ने अपने काव्यशास्त्रों में काम शास्त्रीय नियमों का पालन न किया हो, ऐसी बात नहीं है। आधार रूप में इस के महत्व को उन्होंने सदैव स्वीकार किया है। केवल अश्लीलता के भय के कारण इसका सौन्दर्य तत्व में अन्तर्भाव कर दिया गया है। उदाहरणार्थ नाट्यशास्त्र में भरत अभिनेय क्रिया-कलापों की चर्चा करते समय रंग-मंच के लिये त्याज्य दृश्यों के विषय में स्थान-स्थान पर चेतावनी देते दिखाई देते हैं, तो भी नायक-नायिका भेद के निरू-पण के समय उनके समक्ष काम-शास्त्रीय सिद्धान्तों का पुष्टाधार विद्यमान था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। रुद्रट का नायक-नायिका-भेद विवेचन भी स्पष्टत: काम-शास्त्रीय सिद्धान्तों से प्रभावित है। यद्यपि आचार्या भरत स्थान-स्थान पर चेतावनी देते गये हैं१ फिर भी इतना तो निश्चित है कि नायक-नायिका भेद सम्वन्धी प्रसंग के विवेचन के समय भरत के समक्ष कामशास्त्रीय सिद्धान्तों का पुष्टाधार विद्यमान था।२

संस्कृत के अचार्यों का कामशास्त्र के सिद्धान्तों से प्रभावित होना सर्वथा स्वाभाविक है। कामशास्त्र की परम्परा नाट्यशास्त्र से बहुत प्राचीन है। संस्कृत में भरत प्रणीत नाट्यशास्त्र ही सर्वप्रथम ऐसा ग्रंथ है जिसमें काव्यांगों का सांगोपांग विशद वर्णन मिलता है। जबकि वात्स्यायन अपने कामसूत्र में कामशास्त्र की पूर्ववर्ती आचार्य परम्परा में नन्दिकेशवर, उद्दालक के सुपुत्र श्वेतकेतु (औद्दालिक), बाभ्रव्य, दत्तक, चारायण, सुवर्णनाभ, घोटकमुख, गोनर्दीया, गणिकापुत्र और कुचमार का उल्लेख करते हैं।३ कामसूत्र के अन्त में वात्स्यायन ने बाभ्रव्य के कामशास्त्रीय सिद्धान्तों का यथाविधि निरूपण करते हुए उसके आभार को स्वीकार किया है।४

वात्स्यायन नायक के लिये 'नागर' शब्द का प्रयोग करते हैं और उन्होंने अपने कामसूत्र में नागर की जीवन-चर्या का बड़े विस्तार के साथ वर्णन भी किया है। 'नायक' शब्द का भी उन्होंने कामसूत्र में प्रयोग किया है परन्तु वह 'नागर' शब्द का ही पर्याय है। वर्ण-व्यवस्था में आस्था रखने के कारण वात्स्यायन ने 'नागर' शब्द का प्रयोग संकीर्ण अर्थों में किया है। ग्राम की अपेक्षा नगर में रहने वाले व्यक्ति

१—नाट्य शास्त्र;

यदा स्वपेदर्थवशादेकाकी सहितोऽपि वा ।
चुम्बनालिंगनं चेव तथा गुह्यं च यद् भवेत ॥२४॥२८६॥
दन्तं नक्षक्षतं छेद्यं नीवीसंस्त्रनमेव च ।
स्तनाधरविमर्दं च रंगमध्ये न कारयेत् ॥२४।२८७॥

२—डा० सत्यदेव चौधरी, भारतीय काव्यांग; पृ० १६०।

३—कामसूत्र (प्रथम भाग), लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, संस्करण, १६६१; पृ० १०–१६; १।१।६–१२ ॥

४—कामसूत्र ;

बाभ्रवीयांश्च सूत्रार्थानागमं सुविमृश्य चं ।
वात्स्यायनश्चकारेद कामसूत्रं यथाविधि ॥७।२।५४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उन्होंने 'नागर' कहा है। उनका नागर सामन्तशाही युग का नागर है जो भोगी और विलासी है तथा शिष्ट एवं सभ्य व्यक्तियों की तरह आचरण करता है। धन उसे या तो उत्तराधिकार में मिलता है या वह उसे स्वयं अर्जित करता है। समाज में उसकी कुछ ऐसी मर्यादा है जिसका पालन करना उसके लिये अनिवार्य है। सामाजिक सम्मेलनों अथवा गोष्ठियों में भाग लेना, सोमापानक करना, उद्यान गमन करना या वनोत्सव मनाना तथा जलोत्सव, झूलनोत्सव, मदनोत्सव, अशोकोत्सव, बनोत्सब आदि सामान्य उत्सव में सम्मिलित होना––उसकी ये सभी बातें सामन्तवादी सभ्यता की प्रतीक हैं। सामान्य व्यक्तियों के साथ उसका उठना-बैठना, मिलना-जुलना प्रायः विवर्जित ही है। जब कभी अपनी मर्यादा के अनुकूल उसे कोई संगी न मिले तो वह अपने धन का प्रयोग कर अनुगामियों का दल बना कर मर्यादा-भंग न होने दे।

नागर के निवासगृह के बारे में वात्स्यायन लिखते हैं––"उसे किसी जलाशय के समीप अपना निवास बनाना चाहिए और उसमें कई कोठरियां बनानी चाहिएं। प्रत्येक कोठरी एक भिन्न व्यवहार के लिये नियत रहनी चाहिए। निवास के साथ एक बाग और ग्रीष्मालय भी होना चाहिए–– बाहरी और भीतरी। भीतरी भाग स्त्रियों के रहने के लिये और घरेलू काम-काज के लिये होना चाहिए और बाहरी भाग में पुरुषों की बैठक होनी चाहिए। इस बाहरी भाग में विश्राम के लिये शैय्या भी होनी चाहिए जिस पर सुन्दर बेल-बूटे काढ़ी हुई चादर बिछी होनी चाहिए। उसके ऊपर स्वच्छ सफेद चादर बिछी होनी चाहिए। सिरहाने और पैताने की तरफ मसनद पड़े रहने चाहिएं। इस शैय्या के पास एक छोटा सा पलंग होना चाहिए ......: शैय्या के सिरहाने के ऊपर कमल के आकार का एक ताक होना चाहिए जिस पर कोई रंगीन चित्र हो या इष्ट देवता का चित्र रखा हो। इस ताक के नीचे दीवार के साथ सटा हुआ एक डेढ़ फीट चौड़ा छोटा सा मेज़ रखा हो। इस मेज पर निम्नांकित सामग्रियां सजी हुई रखी रहनी चाहिएं––इत्र इत्यादि माला, मोम के रंगीन पात्र, इत्रदान, अनार के दाने और पान। पास ही फर्श पर एक पीकदान भी रहना चाहिए। एक वीणा, एक चित्र खींचने के लिये पटरी, रंगों सहित एक रंगदान और एक कूंची तथा कुछ ग्रंथ भी शैय्या के समीप रहने चाहिएं। शैय्या के समीप गोल कुर्सी भी होनी चाहिए जिसमें आरम्भ से उस पर सिर रख सके। पांसे और शतरंज के तख्ते भी दीवार के सहारे रखे रहने चाहिएं। कोठरी से बाहर बरामदे में पालतू पक्षियों के पिंजड़े भी हाथी दांत के खूंटियों में लटकते रहने चाहिएं। बाहर किसी एकान्त स्थान पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकड़ी काटने के औज़ार भी पड़े रहने चाहिएं। ग्रीष्मालय में किसी वृक्ष की छाया में एक झूला पड़ा होना चाहिए। कुंजों में बैठने के लिये वेदियां बनी रहनी चाहिएं जिन पर फूल गिर कर फैले हुए हों, जिससे आगन्तुक रमणी बाग की छटा देख कर मुग्ध हो जाय। इस तरह से एक नागर को निवास गृह बनाना चाहिए।"1

काम की पूर्ति अथवा यौन-तृप्ति नर-नारी के परस्पर सम्भोग से सम्भव है। सम्भोग सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान कराना ही कामशास्त्र का विषय है। कामसूत्र में वात्स्यायन ने जहां जननेन्द्रियों के अकार रूप के आधार पर पुरुष और स्त्रियों के तीन-तीन भेदों का उल्लेख किया है वहां अश्लीलता आ गई है। इस दृष्टि से उन्होंने पुरुषों को शश, वृष और अश्व इन तीन वर्गों में विभाजित किया है। इसी प्रकार मृगी, बड़वी तथा हस्तिनी नाम से स्त्रियों के भी उन्होंने तीन भेद किये हैं।2 'अनंगरंग' में भी वात्स्यायन के समान ही पुरुष तथा स्त्रियों की जातियों का उल्लेख किया गया है। पुरुष जाति-भेद के ऐसे वर्गीकरण में जहां अश्लीलत्व आ गया है वहां भरत आदि नाट्याचार्यों का नायक सम्बन्धी वर्गीकरण ललित एवं सौन्दर्ययुक्त है।

वात्स्यायन कामोत्तेजना की दृष्टि से भी पुरुषों के तीन भेद स्वीकार करते हैं--मन्द वेग पुरुष, मध्यम वेग पुरुष तथा चण्ड वेग पुरुष।3 वात्स्यायन के ऐसे वर्गीकरण का आधार यौन-भावना अथवा रति का आनन्द ही माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त वात्स्यायन गुणों की अधिकता अथवा न्यूनता के अनुसार नायक अथवा नागर के तीन और भेद भी मानते हैं--उत्तम, मध्यम तथा अधम।4

1--काम सूत्र, अनुवादक--आर--एन, उपाध्याय; पृ० ११-१२

2--कामसूत्र ;

शशो वृषोऽश्व इति लिङ्गतो नायक विशेषाः।
नायिका पुनर्मृगी बडवा हस्तिनी चेति ।।२।१।१।।

('रतिमंजरी' में पुरुष के चार भेदों का उल्लेख मिलता है--शश, मृग, वृष और अश्व, परन्तु कामसूत्र में 'मृग' के अतिरिक्त शेष तीनों प्रकार के पुरुषों का वर्णन किया गया है।)

3--कामसूत्र ;

यस्य संप्रयोगकाले प्रीतिरुदासीना वीर्यमल्पं
क्षतानि च न सहते स मन्दवेगः ।।२।१।५ ।।
तद्विपर्ययौ मध्यमचण्डवेगौ भवतः। तथा नायिकापि ।।२।१।६।।

4--कामसूत्र ;

एक एव तु सार्वलौकिको नायकः। प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः विशेषलाभात्।
उत्तमाधममध्यमतां तु गुणगुणतो विधात् तांस्तूभयोरपि गुणागुणान्वैशिके वक्ष्यामः ।।१।५।२८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाट्यशास्त्र में भी नायक के इन तीनों भेदों का उल्लेख हुआ है ।१ वस्तुतः नायक तो एक ही है और वह है पति । प्रछन्न नायक अथवा उपपति तो विशेष लाभ के लिये ही पर-स्त्रियों के साथ गमन करता है । वात्स्यायन प्रच्छन्न नायक को गौण महत्त्व ही देते हैं । प्रच्छन्न नायक अधिक कामुक नहीं होता परन्तु वह अपने छल कपट के व्यवहार द्वारा पर-नारी से रति-सम्भोग का सुख लेता है ।२ कामसूत्र के छठे अधिकरण में वेश्यागामी वैशिक नायक का भी उल्लेख किया गया है ।३ काव्यशास्त्र के आचार्यों ने जो पति, उपपति और वैशिक तीन प्रकार के नायकों का उल्लेख किया है४ उन पर कामशास्त्र का प्रभाव माना जा सकता है, क्योंकि इन तीनों नायकों के संकेत कामशास्त्र में पहले से ही विद्यमान थे ।

स्पष्ट है कि कामसूत्र में दक्षिण, अनुकूल आदि नायकों के भी संकेत विद्यमान हैं जो नाट्याचार्यों के विवेचन का भी विषय रहे हैं । जिस 'पति' का उल्लेख वात्स्यायन ने किया है, वह 'अनुकूल' नायक ही तो है । सामाजिक धर्म एवं वर्ण व्यवस्था में विश्वास होने के कारण अनुकूल नायक उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ है ।५

वात्स्यायन नायक में इन गुणों का होना अनिवार्य मानते हैं :—वह कुलीन हो, विद्याओं का ज्ञाता, सब स्थितियों का

१—नाट्य शास्त्र; ।।२५।५४।।

२—कामसूत्र ;

इति साहसिक्यं न केवलं रागादेव । इति परपरिग्रहगमनकारणानि ।।१।५।२१

३—काम सूत्र;

सर्वासां चानुरूप्येण गम्याः सहायास्तदुपरञ्जनमर्था—गमोपायानिष्कासनं पुनः सन्धानं लाभविशेषानुबन्धा अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचाराश्चेति वैशिकम् ।।६–६।५१।।

४—भानुदत्त ने 'रसमंजरी' और रूपगोस्वामी ने 'उज्ज्वलनीलमणि' में इनका उल्लेख किया है ।

५—कामसूत्र ;

रक्षन्धमार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम् ।
अस्य शास्त्रस्य तत्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः ।।७।२।५६।।
तदेतत्कुशलो विद्वान्धर्मार्थादवलोकयन् ।
नातिरागात्मकः कामी प्रयुंजानः प्र सिध्यति ।।७।२।५७।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेत्ता अर्थात् समयानुसार परिस्थितियों को समझ कर कदम उठाने वाला, कवि और आख्यान कहने में कुशल, वाणी में चतुर, प्रगल्भी, विविध शिल्पों का ज्ञाता, बड़ों की सेवा करने वाला, उच्चाकांक्षी, उत्साही, दृढ़ भक्ति वाला, ईर्ष्यारहित, त्यागी, मैत्री-भाव बनाये रखने वाला, सभा-समाज अथवा गोष्ठियों में रुचि रखने वाला, नटों द्वारा किये गये अभिनय में रुचि रखने वाला, मिल कर खेलने वाला, स्वस्थ, सीधे शरीर वाला, शक्तिशाली, अमद्यसेवी, पुंसत्व से युक्त, स्नेहशील, स्त्रियों का प्रणेता एवं लालन पालन करने वाला, स्वतन्त्र वृत्ति का आचरण करने वाला, सहृदय, अनिष्यालु तथा निःशंक स्वभाव वाला हो ।१

नायकोचित उपर्युक्त विशिष्ट गुणों के अतिरिक्त उन्होंने नायक तथा नायिका के कुछ एक साधारण गुणों का भी विवेचन किया है । बुद्धि, शील-स्वभाव, ऋजुता, कृतज्ञता, दूरदर्शिता, वाद-विवाद में न पड़ना, देशकाल अथवा वातावरण एवं परिस्थितियों को समझना, नागर के गुणों से युक्त होना२ तथा दैन्य, अतिहास, परस्पर कलह, क्रोध, लोभ, अभिमान, चपलता आदि दोषों से रहित होना, पुर्वभाषित्वं, कामसूत्र के ज्ञान में कुशल तथा उसकी अंग-विद्याओं में प्रवीण होना ये नायक तथा नायिका के साधारण गुण हैं ।३ यदि नायक तथा नायिका में इन साधारण गुणों का अभाव हो तो वे दोष हो जाते है ४

१—कामसूत्र;

महाकुलीनो विद्वान्सर्वसमयज्ञः कविराख्यानकुशलो वाग्मी प्रगल्भो विविधशिल्पज्ञो वृद्धदर्शी स्थूललक्षो महोत्साहो दृढभक्तिरनसूयकस्त्यागी मित्रवत्सलो घटागोष्ठीप्रेक्षणगसमाजसमस्या क्रीड़नशीलो नीरूजोऽव्यंग शरीरः प्राणवानमद्यपो वृषो मैत्रः स्त्रीणां प्रणेता लालयिता चा । न चासां वशगः स्वतन्त्रवृत्तिरनिष्ठुरोऽनीर्ष्यालुरनवशंकी चेति नायकगुणः॥६।१।१२॥

२—स्पष्ट है कि 'नागर' समाज का कोई विशिष्ट गुण-सम्पन्न व्यक्ति ही होता है ।

३—कामसूत्र (द्वतीय भाग), अधिकरण ६, अध्याय १; पृष्ठ ९०१ ।

एतद् द्वयोरप्यसाधारणतामआह

नायिका पुनर्बुद्धिशीलाचार आर्जवं कृतज्ञता दीर्घदूरदर्शित्वं अविसंवादिता देशकालज्ञता नागरकता दैन्यातिहास पैशुन्यपरिवार क्रोधं लोभ स्तम्भ चापलवर्जनं पूर्वाभिभाषिता कामसूत्र कौशलं तदंगविद्यासु चेति साधारणगुणाः ॥१४॥

४—वही; पृ० ९०२ ।

गुणविपर्यये दोषा : ॥६।१।१५॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वात्स्यायन के नायकोचित विशिष्ट एवं साधारण गुणों के वर्णन से इस धारणा की और भी पुष्टि हो जाती है कि भरत, धनंजय आदि संस्कृत के नाट्याचार्यों का नायक-विवेचन कामशास्त्रीय नायक- वर्णन से पर्याप्त प्रभावित रहा है । वात्स्यायन के नायक-नायिका भेद के विवेचन का आधारभूत सिद्धान्त यौन-आनन्द है जिसकी सिद्धि दोनों के प्रेमभाव की अकृत्रिमता अथवा वास्तविकता पर निर्भर है । वात्स्यायन के अनुसार नायिका को चाहिए की वह नायक के भावों उसके प्रेम की स्वाभाविकता अथवा कृत्रिमता को जानने के हेतु अपने किसी विश्वस्त अनुचर, पाद-सवाहक, गायक, अथवा विदूषक आदि सच्चे सेवकों, को नियुक्त करे ।१ 'वैहासिक' शब्द का प्रयोग कामसूत्रकार ने 'विदूषक' के अर्थ में किया है, जिसे काव्याचार्यों ने रति-सम्बन्धों में नायक का अन्तरंग सखा बतलाया है । इन सेवकों के अभाव में वह पीठमर्द आदि को नियुक्त करे । इनसे वह नायक के शौचअशौच, [illegible]ता, दान-अदान आदि सब बातों को जान लेर अर्थात् नायक के मन में उसके प्रति कैसा प्रेम है? उसकी काम प्रवृत्ति कैसी है ?—आदि सब बातों का ज्ञान नायिका को इन लोगों के द्वारा होता है । 'पीठमर्दादीन' शब्द से कामसूत्रकार का भाव विट, मालाकार, गंधी और शौण्डिक आदि से भी है ।३ विदूषक, विट आदि पात्रों का भी नाट्याचार्यों ने नायक के सहायक प्रकरण में उल्लेख किया है ।

वात्स्यायन ने नायक-विवेचन प्रसंग में जहां तर्क शैली का प्रयोग किया है साथ ही उनका यह विवेचन मनोवैज्ञानिक भी है । यौन-वृत्ति का सम्बन्ध जहां मनुष्य के शरीर के बाह्यांगों से है, साथ ही उसके मानसिक संतुलन से भी है सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाय तो यौन-तृप्ति न केवल मानसिक सन्तुलन को बनाये रखने के लिये भी आवश्यक है, वरन् शारीरिक

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

१—कामसूत्र :

भावजिज्ञासार्थं परिचारकमुखान्संवाहकगायन–
वैहासिकान्गम्ये तद्भक्तान्वा प्रणिदध्यान् ।।६।१।२२।।

२—वही;

तदभावे पीठमर्दादीन् ।तेभ्यो नायकस्य शौचाशौचं रागापरागौ सक्ता-
सक्ततां दानादाने च विद्यान् ।।६।१।२३।।

३—वही (टीका भाग) पृ० ६०६ ।

पीठमर्दादिशब्दाद्विट मालाकारगन्धिकः शौण्डिकादयः सहायाः ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० वर्मा के एकांकी

O

पी० एल० चावला

"इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिये अत्यन्त लाभदायक होता है।१" इसी भावना से प्रेरित होकर डा० राम कुमार वर्मा जी ने ऐतिहासिक एकांकियों का निर्माण सर्वाधिक किया है। 'दीपदान' की भूमिका में वे लिखते हैं "यदि आप मेरे नाटकों पर दृष्टि डालें तो आपको ज्ञात होगा कि मैंने सामाजिक नाटकों की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे हैं। इसका कारण एक तो राष्ट्र की संस्कृति में मेरा विश्वास है जिसका विकास करने में हमारे ऐतिहासिक महापुरुषों का विशेष हाथ रहा है। दूसरे ऐतिहासिक तथ्य के निरूपण से हमारे वर्तमान जीवन को एक नैतिक धरातल मिलता है।२" वर्माजी के समस्त एकांकियों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने ऐतिहासिक एकांकियों का निर्माण सर्वाधिक किया है। वैसे भी वर्मा जी का बुद्धि-कौशल, नव-निर्माण नाटकीयता आदि गुण ऐतिहासिक एकांकियों में ही विशेष रूप से प्रकट हुए हैं। प्रस्तुत लेख में हम वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों का प्रत्येक दृष्टि से मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

कथावस्तु—वस्तु चयन में वर्मा जी ने इस बात का ध्यान सर्वाधिक रखा है कि वे वस्तु के प्राणतत्व को पकड़ कर उसकी प्रमुख संवेदना को चित्रित कर सकें। इसीलिये वे कथानक के सम्पूर्ण भाग छोड़कर मर्मस्पर्शी घटना को चुनते हैं। परन्तु इस बात का सदा ध्यान रखते हैं कि वह घटना जीवन से सर्वथा सम्बद्ध हो और उसमें अस्वाभाविकता भी बिलकुल

१—जय शंकर प्रसाद, 'विशाख' की भूमिका

२—डा० राम कुमार वर्मा—"दीपदान"—भूमिका, पृ० २७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो ।१ जीवन की वास्तविकता नाटक की आधार-शिला होनी चाहिए परन्तु उस वास्तविकता में कोई न कोई आकर्षण अवश्य होना चाहिए । २ और इसी लिये कल्पना का आश्रय भी लेना पड़ता है । कलाकार छूटी हुई बातों को अपनी प्रतिभा से जोड़ कर एक सुनिश्चित रूप दे देता है । दबी हुई बातों को उभारता है और अनावश्यक बातों को कांट-छांट कर एक सुनिश्चित गति और दिशा आंखों के सामने स्पष्ट करता है ।३ वर्मा जी के प्रायः सभी ऐतिहासिक एकांकियों पर यह बात पूर्णतया चरितार्थ होती है । उनके समस्त एकांकियों में जीवन के मार्मिक पक्षों का ही उद्घाटन अत्यंत स्वाभाविक ढंग से हुआ है और कल्पना की कूची से लेखक ने इतिहास की रेखाओं में रंग भर कर उन्हें अत्यन्त सजीव बना दिया है । उदाहरणतः 'दीपदान' में इतिहास के पृष्ठों से एक मार्मिक घटना को चुन कर लेखक ने चित्तौड़ के स्वर्गीय महाराणा सांगा के सबसे छोटे पुत्र कुंवर उदयसिंह की धाय मां पन्ना के बलिदान, त्याग, शौर्य, तथा स्वामी-भक्ति का परिचय अत्यन्त कुशलता से एक ही घटना में दिया है । उसकी आंखों के समक्ष उसके पुत्र चन्दन का बलिदान दिखा कर लेखक ने पाठक की संवेदना को अत्यन्त घनीभूत कर दिया है । सम्पूर्ण घटना अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ चरम सीमा की ओर अग्रसर होती है । वस्तु प्रतिपादन में लेखक ने केवल आवश्यक प्रसंगों को चुना है । इसी प्रकार 'शिवाजी' में शिवाजी की नैतिक दृढ़ता, शौर्य, चरित्र की निर्मलता, वीरता, मातृ भक्ति, स्वदेशानुराग, पर स्त्री को मातृवत् समझना आदि गुणों को एक घटना द्वारा लेखक ने चित्रित कर दिया है। 'विक्रमादित्य' में एक कल्पित कहानी को आधार मान कर लेखक ने विक्रमादित्य के न्याय, तर्क, तीव्र बुद्धि, अन्तर्दृष्टि, स्त्री-गुण मनोविज्ञान, आर्य धर्म के प्रति श्रद्धा रक्षावृत्ति, चरित्र-बल आदि गुणों को स्पष्ट किया है । 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' में समुद्रगुप्त की न्याय प्रियता, सूक्ष्म प्रतिभा तथा बुद्धि का परिचय एक घटना द्वारा दिया है । 'कौमुदी महोत्सव' में लेखक ने चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के व्यक्तित्वों को अपनी महानता में उभरने का पूर्ण अवसर प्रदान किया है । "औरंगज़ेब की आखरी रात" में औरंगजेब के पश्चाताप तथा आत्मग्लानि का अत्यन्त हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया गया है । 'रात का रहस्य' में बिम्बसार के धैर्य, त्याग, करुणा आदि का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ

१—डा० रामकुमार वर्मा—"रेशमी टाई"—भूमिका पृ० १२

२— वही पृ० १०

३— वही पृ० १०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 'तैमूर की हार' में [illegible] पर तैमूर की पराजय का चित्रण एक कल्पित कथा के आधार पर किया है, यद्यपि उसकी स्वाभाविकता के विषय में मतभेद हो सकता है । 'राजरानी सीता' में सीता के चारित्रिक बल, दृढ़ता, राम के प्रति एक निष्ठा आदि बातों का एक घटना में ही समावेश हो गया है । 'भाग्य नक्षत्र' में पृथ्वी राज के काव्य-प्रेम, सौन्दर्य-प्रेम, युद्ध-वितृष्णा, वीरता, कर्त्तव्य-निष्ठा आदि भावों का लेखक ने एक घटना द्वारा अत्यन्त कौशल तथा स्वाभाविकता से चित्रण किया है। "मर्यादा की वेदी पर" एकांकी में लेखक ने एक साथ ही भैरवी की वीरता और बलिदान, सिकन्दर की नीति-कुशलता, पौरव के साहस, स्वाभिमान, आत्म-सम्मान, अदूरदर्शिता, देश की फूट तथा आम्भि की स्वार्थपरता, कायरता, विश्वास-घात आदि बातों को एक घटना के सूत्र में अत्यन्त कुशलता से पिरो लिया है। 'कृपाण की धार' में परम भट्टारक रामगुप्त की विलास-प्रियता· मूर्खता, परमुखापेक्षिता, कायरता आदि का चित्रण हुआ है। 'कलंक रेखा' में कृष्णा के बलिदान, साहस और धैर्य का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है । 'दुर्गावती' में एक भारतीय क्षत्रिय बाला के साहस, शौर्य, वीरता आदि का लेखक ने अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से वर्णन किया है । 'भरत का भाग्य' में भरत की निःस्वार्थ सेवा, स्वामी-भक्ति, कर्त्तव्य-पालन, भ्राता-स्नेह आदि का परिचय लेखक ने घटना द्वारा ही दे दिया है। 'प्रतिशोध' में भारवि की महानता, पांडित्य, बुद्धि, प्रतिशोध की भावना, पितृ-भक्ति आदि का चित्रण, अत्यन्त कौशल से किया है । । 'ध्रुवतारिका' में भारतीय नारी के चित्रण की पवित्रता, उच्चता, सत्यनिष्ठा, सांस्कृतिक गौरव आदि विशेषताओं को उभारा है । 'उदयन', 'वासवदत्ता', राज्यश्री' आदि के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

किन्तु 'मयूर पंख' के ऐतिहासिक एकांकियों में लेखक में शैली वैविध्य तथा नवीनता के प्रति इतना अधिक मोह है कि उनमें संवेदना तत्व का सर्वथा ह्रास हुआ है। इन एकांकियों को इतिहास की झांकी मात्र ही कहा जा सकता है । इन्हें देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि कथावस्तु के प्रति लेखक सर्वथा उदासीन हो गया है। उसमें घटना की संवेदना द्वारा पाठक को झंकृत करने की रंचमात्र भी इच्छा नहीं है; वह तो अब पाठक या दर्शक को केवल अपनी प्रतिभा से चकित कर देना चाहता है । अब घटनाओं के प्राण तत्त्व को पकड़ने की बातें सम्भवतः उसे फीकी और पिछड़ी हुई बातें लगने लगी हैं ।

स्वाभाविकता की दृष्टि से यद्यपि वर्मा जी के अधिकांश एकांकी सर्वथा सफल बन पड़े हैं तथापि कुछ एकांकी ऐसे भी हैं जिनमें स्वाभाविकता का गुण नष्ट हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । उदाहरण के लिये चारूमित्रा को लिया जा सकता है । इस एकांकी में अशोक के हृदय-परिवर्तन के लिये लेखक ने बाह्य कारण (कलिंग नारी द्वारा आत्म-हत्या, उपगुप्त का उपदेश, तिष्यरक्षिता द्वारा युद्ध न करने की प्रेरणा देना और चारूमित्रा का अशोक की रक्षा के हेतु अपने प्राणों की बाज़ी लगाना) तो उपस्थित किये हैं, किन्तु लेखक उन्हें इस ढंग से प्रस्तुत नहीं कर सकता है कि वे दृढ़ संकल्पी अशोक को हिला सकें । दूसरे, अशोक के अन्तः संघर्ष का भी बहुत कम चित्रण हुआ है । इसी प्रकार "तैमूर की हार" में तैमूर जैसे नृशंस तथा लुटेरे प्रवृत्ति के व्यक्ति की नैतिक धरातल पर पराजय तैमूर के अंतः संघर्ष के अभाव में अस्वाभाविक बात ही लगती है । किन्तु यह हम अवश्य कहेंगे कि इस प्रकार के एकांकियों की संख्या तीन चार से अधिक नहीं है ।

ऐतिहासिक एकांकियों की कथावस्तु का आवश्यक तत्त्व तत्कालीन परिस्थिति देश, समाज और संस्कृति की पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक अध्ययन है । यह पृष्ठभूमि पात्र को स्वाभाविक तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पूर्ण बनाती है । एतदर्थ लेखक का अध्ययन शील प्रवृत्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है । और यही कारण है कि सामाजिक एकांकी का निर्माण एक ही बैठक में हो जाता है, जबकि ऐतिहासिक एकांकी के निर्माण में तीन दिन या एक सप्ताह लग जाता है ? १ इस दृष्टि से डा० राम कुमार वर्मा का अध्ययन अत्यधिक पूर्ण तथा गहन है । उन्होंने अपने ऐतिहासिक एकांकियों के निर्णय में ऐतिहासिक ग्रंथों का खूब अध्ययन तथा मनन किया है । "कौमुदी महोत्सव" में वर्मा जी ने डा० बेनी प्रसाद, डा० ताराचन्द, जयशंकर प्रसाद, द्विजेन्द्र लाल राय आदि के दृष्टिकोण का अध्ययन कर अपने मत का प्रतिपादन किया है । इसके अतिरिक्त इस रचना के निर्माण से पूर्व लेखक ने मुद्रा राक्षस, बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रंथों का मैगस्थनीज़ तथा तत्कालीन इतिहास से सम्बन्धित समस्त ग्रंथों का अनुशीलन किया है । इस रचना का कथानक, भौगोलिक वातावरण आदि इन ग्रंथों पर आधारित है । "वाजिद अलीशाह" एकांकी की सामग्री स्वयं वाजिद अलीशाह की पुस्तक "बनी" के आधार पर है ।

वर्मा जी के एकांकियों में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अत्यधिक सच्ची है । "कादम्ब या विष", "समुद्रगुप्त पराक्रमांक" "विक्रमादित्य" "कृपाण की धार" आदि में गुप्त कालीन, "राजरानी सीता" "भरत का भाग्य", में रामायण कालीन "उदयन", "वासवदता" तथा "रात का रहस्य" में बौद्ध कालीन, "चारूमित्रा" में अशोक कालीन, "दुर्गावती", "कलं

१—डा० राम कुमार वर्मा, 'दीपदान'-भूमिका, पृ० २८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा", "दीपदान", "पृथ्वीराज की आंखें", "भाग्य नक्षत्र" "ध्रुवस्वामिनी" में राजपूत कालीन, "औरंगजेब की आखिरी रात" "तैमूर की हार," "बादशाह अकबर का दीनें इलाही" आदि में मुगलकालीन, "प्रतिशोध" में धारा नगरी के छठी शताब्दी का; "राज्यश्री" में मौर्य कालीन; "बापू", "वीर जवाहर" में आधुनिक कालीन, "पानीपत की हार" में बाजीराव के समय के भारत का लेखक ने सजीव चित्रण किया है।

कथावस्तु का तीसरा तत्व है, ऐतिहासिक घटना के अनुकूल उपयुक्त परिस्थिति का चुनाव। परिस्थिति को चुनते समय वर्मा जी ने संकलनत्रय के पूर्ण निर्वाह का विशेष ध्यान रखा है।१ यह कार्य ऐतिहासिक एकांकियों में अत्यन्त कठिन होता है। संकलनत्रय के निर्वाह में लेखक को स्वाभाविकता का पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है। वर्मा जी के एकांकी एक ही दृश्य में वस्तुस्थिति की उषा से लेकर संध्या तक चले जाते हैं।२ "दीपदान" "भाग्य नक्षत्र" "कौमुदी महोत्सव", "शिवाजी", "कृपाण की धार" "रात का रहस्य", "मर्यादा की वेदी पर" "वीर जवाहर", "दुर्गावती" आदि एकांकी इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। इन एकांकियों में लेखक ने विस्तृत घटनाओं को इस कुशलता से गुंफित किया है कि स्थान, काल तथा कथानक का कोई भी संकलन टूटने नहीं पायो। किन्तु कुछ एकांकियों में इस संकलनत्रय के अत्यन्त मोह के कारण अस्वाभाविकता भी आ गई है। उदाहरण के लिये 'चारुमित्रा' को लिया जा सकता है। अशोक का बाहर जाना, निरीक्षण करना, १७ सैनिकों का क्रम से कलिंग नारी के समक्ष आना, अठारहवें की छुरी से घात कर लेना और अशोक का लौट आना, उतनी देर में सम्भव नहीं प्रतीत होता जितनी देर में तिष्यरक्षिता आचार्य उपगुप्त से बातें करती है।३ चारुमित्रा के बलिदान वाली घटना भी अधिक समय चाहती है।४

नाट्य विधान--

एकांकी के नाट्य विधान की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसके कथानक का रूप तब हमारे सामने आता है जब आधी से अधिक घटना बीत चुकी होती है। इसलिये उसके प्रारम्भिक वाक्य में ही

१—डा० राम कुमार वर्मा, 'ऋतुराज' की भूमिका पृ० १८।
२—वर्मा जी के कुछ ऐतिहासिक एकांकियों में एक से अधिक दृश्य भी हैं। उदाहरण के लिए 'भरत का भाग्य', 'राज्य श्री' 'वासवदत्ता' आदि को देखा जा सकता है
३—डा० सत्येन्द्र 'हिन्दी एकांकी' पृ० १०१।
४—वही पृ० १०१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौतूहल और जिज्ञासा की अपरिमित शक्ति भरी रहती है। बीती हुई घटनाओं की व्यंजना चुम्बक की भांति हृदय आकर्षित करती है।[1] वर्मा जी के एकांकियों में यही बात पाई जाती है। उनके एकांकियों का उद्घाटन परिस्थिति के रूप में अथवा समस्या के रूप में एक कौतूहल के साथ होता है। उनके एकांकी प्रारम्भिक भाग में ही इतने आकर्षक हो जाते हैं कि पाठक का मन उनकी समाप्ति के लिये व्यग्र हो उठता है। वर्मा जी के एकांकी के प्रारम्भिक वाक्य देखें—

राम गुप्त—(हंसते हुए) वंशी और उस पर नृत्य। क्यों सुलोचना ! इसे भी युद्ध कहते हैं? नूपुरों का नाद ढाल की तरह सामने आता है और वंशी की तीखी तान का तीर ? वह हृदय तक पहुंच ही जाता है.......... हृदय तक ! (हंसता है) यह संगीत का युद्ध है। इसमें तुम मेरी शत्रु हो, सुलोचना !"

(कृपाण की धार)

परन्तु वर्मा जी के अधिकांश ऐतिहासिक एकांकी पात्रों के साधारण वार्तालाप से प्रारम्भ होते हैं और दो-तीन संवादों के पश्चात् ही वर्मा जी कौतूहल उत्पन्न कर देते हैं। इस ढंग से प्रारम्भ होने वाले एकांकी भी अत्यन्त आकर्षक बन पड़े हैं। उदाहरण के लिये 'रात का रहस्य' का चौथा वाक्य अत्यन्त जिज्ञासा से पूर्ण है —

"बिम्बसार—प्रतीक्षा मत करो, देवी ! अजात का शासन यदि हमारे भूखे रहने से सुदृढ़ होता है, तो देवी ! हमारी भूख में ही हमारा निर्वाण है। हम भोजन की कामना नहीं करेंगे।"

वर्मा जी अपने एकांकियों के प्रारम्भ में बीती हुई घटनाओं की ओर भी संकेत करते चलते हैं। 'चारूमित्रा' के प्रारम्भिक भाग में तिष्यरक्षिता द्वारा उन्होंने बीती घटनाओं का संकेत एक ही वाक्य में कर दिया है —

"तिष्यरक्षिता—हां, चारू, मैं कल वहां गई थी महाराज के साथ। वे न जाने कैसे हो गये हैं। सब समय युद्ध की बातें करते हैं। तेरे कलिंग देश पर जब से उन्होंने चढ़ाई कर दी है तब से सारा राज्य कार्य महामात्यों पर ही छोड़ रखा है। आज दो वर्ष पूरे होने जा रहे हैं और कलिंग पर उनका क्रोध वैसा ही बना हुआ है।"

१—डा० राम कुमार वर्मा—'रेशमी टाई' की भूमिका, पृ० १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ [illegible] गति से आगे बढ़ता है। इस स्थल में वर्मा जी अन्तःसंघर्ष (मुख्य रूप से) और बाह्य संघर्ष का चित्रण एवं नाटकीय-कौशल से कौतूहल का संचय करते हुए घटना को चरम सीमा तक ले जाते हैं। यहां यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि वर्मा जी एकांकी में कौतूहल को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। वर्मा जी के समस्त ऐतिहासिक एकांकी इस दृष्टि से अत्यतत सफल बन पड़े हैं ।

वर्मा जी चरम सीमा को एकांकी में पात्र तथा कथोपकथन के उपरान्त तीसरा स्थान देते हैं और चरम सीमा पर पहुंच कर ही एकांकी की समाप्ति को आवश्यक मानते हैं। वे चरम सीमा के बाद घटना को आगे खींचना सर्वथा अयुक्तियुक्त मानते हैं।[1] इसी स्थल पर समस्त जीवन एक घंटे के संघर्ष और वर्षों की घटनाएं एक मुस्कान या एक आंसू में उभर आती हैं। वर्मा जी के समस्त ऐतिहासिक एकांकियों पर यही बात चरितार्थ होती है। प्रमाण के लिये कुछ एकांकियों का अन्त देखिए—

"बनवीर—(शैय्या के समीप जाकर) यहीं है, यही है, मेरे मार्ग का कंटक । [illegible]ओं ने दीपदान किया है। मैं भी यमराज को इस दीपक का दान करूँगा । यमराज ! लो इस दीपक को। यह मेरा दीप-दान है ।"

(दीप दान)

"भैरवी—आम्भि! अपनी जन्मभूमि को और कलंकित न कर ! मैं इतने सैनिकों से जीत नहीं सकूंगी पर बन्दिनी भी नहीं बनूंगी । देश को बन्दी होता मैं नहीं देख सकती । तो फिर यह रही मेरी तलवार ! आज अपना रक्त ही देश की मर्यादा की वेदी पर चढ़ाऊंगी । जय आर्यावर्त ! जय जननी जन्म भूमि !"

(तलवार से अपना मस्तक काट देती है)

पौरव—(चीख कर) भरवी! भैरवी !"

सिकन्दर—(विस्मय से) भैरवी ! भैरवी !"

(मर्यादा की वेदी पर)

अन्त की दृष्टि से वर्मा जी के कुछ ऐतिहासिक एकांकी दुःखान्त ('पृथ्वीराज की आंखें', 'चारुमित्रा', 'मर्यादा की वेदी पर', 'दीपदान', 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक', 'औरंगज़ेब की आखिरी रात','विक्रमादित्य' 'कलंक रेखा,' 'रात का रहस्य', आदि) कुछ प्रासादान्त (दुर्गावती आदि) तथा शेष सुखान्त हैं। 'मयूर पंख' के ऐतिहासिक

१—"एकांकी में चरम सीमा का विशेष महत्त्व है। तथ्य का निरूपण चरमसीमा में जाकर होता है और तथ्य का निरूपण हो चुकने के बाद कथावस्तु को आगे खींचना वैसा ही है जैसा सिनेमा देख कर जाड़े में पैदल घर लौटना सत्य दर्शन के बाद उसकी व्याख्या करना हमारी अनुभूति को ठेस पहुंचाना है । अतः श्रेष्ठ एकांकी चरम सीमा में ही समाप्त हो जाते हैं। 'ऋतुराज' की भूमिका पृ० १५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकांकी झलकियां [illegible] हैं । इनका [illegible] भावना पूर्ण शब्दों में या तो श्रद्धांजलि-समर्पण से हुआ है (बापू, वीर जवाहर आदि) अथवा राष्ट्र-प्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत भरत वाक्य द्वारा (पानीपत की हार) यां अद्भुत ढंग से (समय चक्र)।

संघर्ष—एकांकी की कथावस्तु का प्राण उसके संघर्ष में पोषित होता है। यह संघर्ष जितना अधिक एकांकीकार की विवेचना शक्ति में होगा उतना ही जिज्ञासा-मय उसका एकांकी होगा । अतः एकांकी कार ऐसी स्थितियों की खोज में रहता है जिसमें उसे विरोध की तेजस्वी शक्तियां मिलती हैं ।१ डा० सत्येन्द्र संघर्ष से अभिप्राय पात्रों के द्वन्द्व से लेते हैं ।२ किन्तु डा० रामकुमार वर्मा इससे अभिप्राय आन्तरिक संघर्ष से लेते हैं ।३ यही कारण है कि वर्मा जी के एकांकियों में अन्तर्द्वन्द्व की ही प्रधानता है।४ वे जीवन के बाह्य और सामयिक द्वन्द्वों के अपेक्षा मानव हृदय के शाश्वत प्रश्नों की ओर संकेत करना अधिक पसंद करते हैं । ये संघर्ष जहां एक ओर कथानक को गति देते हैं, वहां भावनाओं का एक रहस्यमय संसार भी हमारे समक्ष मूर्त कर देते हैं। वास्तव में वर्मा जी की एकांकी कला की सफलता इसे अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में है । सभी प्रकार के

१—डा० राम कुमार वर्मा, 'रेशमी टाई' की भूमिका पृ० ७

२—इस संघर्ष से अभिप्राय चारित्रिक द्वन्द्व से नहीं, चारित्रिक, द्वन्द्व किसी पात्र के अपने ही आन्तरिक संघर्ष को कहते हैं——यहां पात्रों के द्वन्द्व से ही सघर्ष का अभिप्राय है । 'हिन्दी एकांकी' पृ० ५२

३—"अतः नाटककार ऐसी स्थिति की खोज में रहता है । जिसमें उसे विरोध की तेजस्वी शक्तियां मिलती हैं । नाटक लिखने के पूर्व उसके हृदय से ही एक विप्लव होता है । वह उस विप्लव को अपनी अनुभूति की फूंक से और भी उत्तेजित करता है, फिर उसे एक ज्वालामुखी का रूप देकर अपने नाटकों मे रख देता है । फिर उससे व्यक्ति और समाज की कितनी ही भाव परम्पराएं नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं और फिर उस नष्ट हुए भाव-समूह से एक नवीन पथ के निर्माण की ओर नाटककार का संकेत होता है । कितने ही अन्ध-विश्वासों के भीतर से विश्वास की स्वास्थ्य-प्रद आशाएं विकसित होती हैं । जीवन के अन्तराल मे छिपी हुई न जाने कितनी सुप्त प्रवृत्तियां जीवन में पहली बार जागृत होती हैं ।" —"रेशमी टाई" भूमिका पृ० ७

४—'राम कुमार जी के सभी एकांकी नाटक मनोवैज्ञानिक हैं, जिनमें अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण प्रमुख रहता है ।' श्री राम नाथ सुमन, (चारुमित्रा की भूमिका—पृ० १२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकांकियों में अन्तः संघर्ष की ही प्रधानता है। अतः ऐतिहासिक एकांकी भी इसके अपवाद नहीं । 'दीपदान' में पन्ना का, 'भाग्य नक्षत्र' में पृथ्वीराज का, 'कृपाण की धार' में राम गुप्त का, 'रात का रहस्य' में बिम्बसार का, 'चारूमित्रा' में तिष्यरक्षिता का, 'शिवाजी' में शिवाजी का, 'भरत का भाग्य' में भारत का, 'औरंगजेब की आखिरी रात' में औरंगजेब का, 'ध्रुवतारिका' में सफीयत-उन्निसा का, 'उदयन' में उदयन का, 'वासवदत्ता' में वासवदत्ता का, 'राज्य श्री' में राज्यश्री का, 'कौमुदी महोत्सव' में चन्द्रगुप्त का, 'कलंक रेखा' में कृष्णा का, 'स्वर्ण श्री' में नागदत्त और पुष्यमित्र का, 'कादम्ब या विष' में स्कन्द तथा अनन्त का अन्तः-संघर्ष लेखक ने मुख्य रूप से चित्रित किया है। एक–दो उदाहरणों द्वारा हम यह दिखाने का प्रयास करेंगे कि वर्मा जी ने अन्तः संघर्ष द्वारा जहां कथानक को गति प्रदान की है वहां मानवीय भावनाओं (इच्छा, द्वेष, त्याग, प्रेम, करुणा, विवशता, दुर्बलता, पश्चाताप, ग्लानि वासना, कर्त्तव्य आदि) का भी उद्घाटन किया है।

'दीप-दान' में पन्ना के अन्तः संघर्ष में करुणा, कर्त्तव्य, त्याग, प्रेम आदि मानवीय भावनाएं साकार हो गई हैं ––

"मेरा लाल सो गया । मैंने अपने लाल को ऐसी निद्रा में सुला दिया कि अब यह न उठेगा । (सिसकियां लेती है) ओह पन्ना ! तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है ! तूने अंगारों की सेज पर अपने फूल से लाल को सुला दिया है । तू सर्पिणी है। सर्पिनी जो अपने ही बच्चे को खा डालती है । जान बूझकर अपने पुत्र की हत्या कराने जा रही है। हाय ! अभागिनी मां । संसार में तेरा भी जन्म होने को था ? (सिसकियां लेती है। फिर चन्दन को सम्बोधित करते हुए) लाल ! तुम्हारी माला मैं नहीं गूंथ सकी । तुम्हारा जीवन अधूरा होने जा रहा है तो माला कैसे पूरी होती ? (सिसकियां) आज तुम भूखे ही रह गये, मेरे लाल ! आज अन्तिम दिन मे तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी । तुम क्या जानों कि कल तुम और कुंवर साथ-साथ कैसे भोजन करोगे । कहते थे......कल तुम परोस कर खिलाना अब किसे खिलाऊंगी, चन्दन ! (सिसकियां) तुम बड़ी बड़ी जागीरें जीतोगे, मन्दिर बनवाओगे, देवी के स्थान पर मुझे बिठलाओगे और मेरी पूजा करोगे । मैं ऐसी देवी हूँ कि अपने भक्त को ही खा रही हूँ। (सिसकियां) तुम्हारे अंगूठे से रक्त की धारा बही । अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूंगी । मेरे लाल ! मेरे चन्दन ! जाओ यह रक्त धारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो । आज मैंने भी दीपदान किया है । दीपदान !' अपने जीवन का दीप मैं ने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीप-दान भी किसी ने किया है । एक बार तुम्हारा मुख देख लूं । कैसा सुन्दर और भोला मुख है। (सिसकियां लेती है।)"

इस संघर्ष में भावी कथा की ओर भी संकेत कर दिया गया है ।

"औरंगजेब की आखिरी रात" में औरंगज़ेब के अन्तर्द्वन्द्व में एक ओर उसके पाश्चात्ताप का चित्रण हुआ है और दूसरी ओर पूर्व कथा के संकेत भी मिलते हैं——

"आलम : (चौंक कर तसबीह फेरते हुए) क्या कहा ? रात जियादह बीत रही है ? आज हमारे लिये भी शायद वही मौत की रात है । लेकिन हमारे सामने कोई ताजमहल नहीं है । (ठहर कर) हम इस लायक हैं भी नहीं, जीनत ! जिन्दगी में हमने कुछ नहीं किया सिर्फ लड़ाइयां ही लड़ी हैं । उन्हीं में हमने फतह हासिल की है, लेकिन आज...... आज ज़िन्दगी में हमें शिकस्त ही मिली...... भारी शिकस्त । हमने अब्बाजान को कैद नहीं किया, इस आखिर वक्त में अपने चैंन सुकून को ही कैद किया । आज इतने वरसों के बाद अब्बाजान की चीख हमारे कानों में आ रही है ....प्यास से उनका गला सूख रहा है । उनकी आवाज में कितना दर्द है .....तुम सुन रही हो.....? नहीं ? उनकी हसरत भरी निगाहों की टक्कर से ताजमहल जैसे चूर-चूर होने जा रहा है ।"

'भाग्य-नक्षत्र' में पृथ्वी राज की क्षणिक दुर्वलता को दिखा कर लेखक ने मानव जीवन के आन्तरिक रहस्यों की ओर संकेत किया है——

"कहो चामुंड ! क्या जीवन भर मुझे युद्ध ही करना है, गौरी से युद्ध ! कन्नौज से युद्ध ......! फिर गौरी से युद्ध ! जैसे मेरे जीवन के क्षेत्र में युद्ध ही सर्प की तरह कुंडली मार कर बैठ गया है और चारों ओर का वातावरण केवल युद्ध की विषाक्त फुत्कार से दूषित हो रहा है । क्या उसमें प्रेम और आनन्द के अमृत के लिये कोई स्थान शेष नहीं रह गया ?"

उपर्युक्त विवेचन का यह अभिप्राय नहीं कि वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों में बाह्य संघर्ष बिल्कुल नहीं । वास्तव में उनके कुछ एकांकी ('मर्यादा की वेदी पर', 'तैमूर की हार' आदि) बाह्य-संघर्ष प्रधान ही हैं । बाह्य संघर्ष के कारण इन एकांकियों में नाटकीयता आ गई है। इसी कारण ये एकांकी अत्यन्त सप्राण तथा प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं । उदाहरण के लिये "मर्यादा की वेदी पर" का यह अंश देखें ——

"एक वीर (भैरवी)——(उग्रता से सांस लेता हुआ) जा ! जा ! तेरे लिये मौत का दरवाजा खुला है । (कराह की ध्वनि । फिर ढाल पर पड़ने वाले भाले की ध्वनि होती है ।) उधर से वीर आ रहा है । (घोड़े की टापों की ध्वनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिक ! घोड़े से उतर कर युद्ध कर ! मैं भूमि पर हूँ । सल्यूकस–सामने आ ! (कूद कर उतरता है। और दोनों में तलवारों से युद्ध होता है । 'सप-सप' की ध्वनि फिर होती है। चौंक कर) ओह, तू कौन ! यह बालों की लट बाहर निकल आई । तू स्त्री है ?

भैरवी––युद्ध भूमि में स्त्री पुरुष का प्रश्न नहीं उठता । ले बचा अपने को ! (तलवार का प्रहार, जो ढाल पर गिरता है।) सैल्यूकस––(पुकार कर) एनिसाक्रिटीज। यह स्त्री है, एनिसाक्रिटीज़ !

भैरवी––दस सैनिकों को बुला ले ! मैं बदला लूंगी । जब तक......जब तक....... मैं सौ सैनिकों को मृत्यु के द्वार तक नहीं पहुंचाऊंगी तब तक........"

पात्र और चरित्र चित्रण––"एकांकी की कथावस्तु एक तीव्र अनुभूति है ।...... यह तीव्र अनुभूति सत्य के यर्थाथ आदर्श को उसी प्रकार छिपाए रहती है, जैसे हंसी या आंसू जीवन के सुख या दुख के समस्त संसार को अपने में लीन किये रहते हैं। यह अनुभूति घटना या पात्रों द्वारा ही प्रकट की जाती है । घटना से अधिक शक्तिशाली पात्र होते हैं । घटना तो मरुस्थल की भांति स्थिर रहती है, किन्तु पात्र निर्झर की भांति ठोकर खाते हुए भी आगे बढ़ता जाता है । वह गतिशील है, उसमें स्वभावानुसार क्रिया और प्रतिक्रिया होती है , जिसमें मनोविज्ञान के भीतर से जीवन की किरणें झांकने लगती हैं । संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व में वह आपकी अनुभूतियों के द्वारा अपने को साकार करने लगता है और आगे चल कर वह दधीचि की हड्डियों से बना हुआ वज्र हो जाता है जिसकी चोट अचूक होती है। इसीलिये एकांकी में पात्र ही महारथी होते हैं"। १ पात्र-योजना की दृष्टि से वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भारतीय इतिहास जिन पात्रों के सम्बध में मौन रहा है, उन पात्रों को वर्मा जी ने उभारने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। चारूमित्रा, विभावरी, कृष्णा, अनन्तदेवी, पुष्यमित्र, नागदत्त, माण्डवी, सफीयत-उन्निसा, पन्ना आदि पात्र इस बात के प्रमाण हैं। वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों में व्यर्थ का पात्र कोई नहीं है और पात्रों की संख्या भी ७–८ से अधिक नहीं है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों की प्रथम विशेषता यह है कि प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण में वे ऐतिहासिक सीमा का अतिक्रमण नहीं करते । उनके साथ सम्बद्ध

१––डा० राम कुमार वर्मा––'ऋतुराज' की भूमिका, पृ० १४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी बड़ी घटनाएं अथवा विभिन्न नाटकीय परिस्थितयां भले ही काल्पनिक हों, इनके प्रमुख पात्र की चरित्रगत विशेषताएं या दुर्बलताएं सदैव ऐतिहासिक सत्यता लिये होती हैं ।१ औरंगजेब की आखिरी रात में ' औरंगजेब मरते समय जो पत्र अपने पुत्रों को लिखता है,वे ऐतिहासिक सत्यता रखते हैं। "तैमूर की हार" की सामग्री लेनपूल के इतिहास से ली गई है। 'वाजिद अलीशाह' एकांकी की सामग्री वाजिद अली शाह द्वारा रचित 'बनी' पुस्तक के आधार पर है। इसी तरह 'दीप दान' में पन्ना का बलिदान और कुंवर उदय सिंह को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाना और बनवीर से उसकी रक्षा करना, "चारुमित्रा" में चारुमित्रा का बलिदान आदि बातें सर्वथा ऐतिहासिक सत्यता को लिये हुए हैं।

ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता लाने के लिये वर्मा जी प्राय: एक सूची उन सम्भावनाओं की बनाते हैं जो उन पात्रों से सामाजिक, राजनैतिक या सांस्कृतिक क्षेत्रों में हो सकती हैं। कोई पात्र किस गुण के कारण किस दिशा में कहां तक जा सकता है ? उसकी चारित्रिक विशेषताएं या दुर्गुण देखते हुए उससे क्या क्या सम्भावनाएं की जा सकती हैं ? इन गुणों को सक्रिय बनाने के निमित्त गौण चरित्रों की आवश्यकता होती है,जो प्रमुख पात्रों की विशेषताओं अथवा दुर्बलताओं को उभार देते हैं।२ उदाहरण के लिये 'दीपदान' में सामली और कीरत बारी और सोना, पन्ना के चरित्र को, "स्वर्णश्री" में देवला नामदत्त और वृहदरथ पुष्यमित्र के चरित्र को, 'रात का रहस्य' में समुद्र दत्त, स्त्री और वासवी विम्बसार के चरित्र को उभारते हैं। किन्तु ये गौण पात्र अपना पृथक् अस्तित्व भी रखते हैं।

एकांकी में मुख्यत: प्रधान पात्र के चरित्र-चित्रण पर ही लेखक का ध्यान रहा करता है। किन्तु वर्मा जी की यह विशेषता रही है कि वे गौण पात्रों का भी अत्यधिक सशक्त चित्रण करते हैं। कीरतबारी जैसे साधारण से साधारण पात्र को भी उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा अमर बना दिया है। ऐसे पात्रों का चरित्र वे कुछ ही पंक्तियों में ऐसे सशक्त ढंग से दे जाते हैं कि एकांकी की समाप्ति के पश्चात् उसका चरित्र आंखों के आगे घूमता रहता है। 'दीपदान' में पन्ना और कीरतबारी के मध्य चलने वाले पृ० ४७, ४८, ४९ के प्रसंग में कीरतबारी का जो चरित्र उभरा हैं वह लेखक की सशक्त लेखनी और कौशल का परिणाम है

१—डा० राम चरण महेन्द्र—'प्रतिनिधि एकांकीकार', पृ० ३९
२—डा० राम चरण महेन्द्र, 'हिन्दी एकांकी एवं एकांकीकार' पृ० १०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौण पात्र एक और भी कार्य करते हैं। ऐतिहासिक घटनाओं के जो अंश छूट गए हैं, वे उसे सांस्कृतिक अध्ययन के सहारे से पूर्ण करते हैं। ये छोटी छोटी बातें (Details) हमारे मनोरंजन का कारण बनती है, स्वाभाविकता की रक्षा करती हैं और कार्य (Actions) की श्रृंखला की निबद्धता की पूर्ति करती हैं। इसके अतिरिक्त इनसे घटना की स्वाभाविकता गति शीलता और मनोरंजक कौतूहल की सृष्टि होती है।१ उदाहरण के लिये 'दीपदान' की सोना को लिया जा सकता है। यह इस एकांकी में सर्वथा गौणपात्र है किन्तु इसकी योजना उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये की गई है। एतदर्थ पन्ना और सोना के निम्न संवादों को लीजिये––

पन्ना––कुंवर उदय सिंह को छोड़ो, सोना! वे बहुत थक गए हैं। अब आराम कर रहे होंगे। तुम जाओ। यहां कहीं तुम्हारा पागलपन कम न हो जाए!

सोना––मेरा पागलपन? धाय मां, पागलपन कहीं कम होता है? पहाड़ बढ़कर कभी छोटे हुए हैं। फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं? सब आगे बढ़ते हैं। नहीं बढ़ती हो तो सिर्फ तुम। सदा एक-सी। तुम्हारा पागलपन भी सदा एक-सा। मैं रावल की बेटी हूँ। शायद सामन्त की बेटी बनूं, शायद महाराज की बेटी बनूं! कुछ बढ़ कर ही बनूंगी। और तुम धाया मां? सिर्फ धाय मां ही रहेगी।

पन्ना––सोना! मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं है। मैं जैसी हूँ अच्छी हूँ। राज–सेवा में जीवन जा रहा है। यही मेरे भाग्य की बात है।

सोना––भाग्य! भाग्य तो सबके होता है, धाय मां। ये नूपुर मेरे पैरों में पड़े हैं तो इनका भी भाग्य है। मेरे पैरों की गति में गीत गाते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। मेरे आगमन का सन्देश पहले ही पहुंचा देते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। और जब मेरे पैर रुक जाते हैं, तो ये मौन हो जाते हैं। वह भी इनका भाग्य है। भाग्य तो सबके होता है,धाय मां तुम नगर के उत्सव में भाग नहीं ले रही हो, न लो। महाराज बनवीर का साथ नहीं दे रही हो, न दो। मैं कौन होती हूँ बीच में बोलने वाली।"

पात्रों के चरित्र -चित्रण में अगली महत्त्वपूर्ण बात है......मनोविज्ञान। मनोविज्ञान के दो पक्ष हैं: पहला पक्ष

१––डा० राम चरण महेन्द्र—'प्रतिनिधि एकांकीकार' पृ० ३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति के संस्कारों से सम्बन्ध रखता है, जो उसके स्वभाव का निर्माण करते हैं। ये संस्कार उसने अपने वंश से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किये हैं जो उसके रक्त में हैं ये बड़ी कठिनाई से बदलते हैं। वैभव और विपत्ति में भी ये व्यक्ति का साथ नहीं छोड़ते और अनायास ही उसके मुख से निकल पड़ते हैं ......मनोविज्ञान का दूसरा पक्ष परिस्थितियों के प्रभाव से सम्बन्ध रखता है । पात्र के संस्कारों पर जब परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है तो वे अपना विकास करने लगते हैं । यदि प्रभाव संस्कार के अनुकूल होता है तो पात्र उचित या अनुचित दिशा में सरलता से विकास करने लगता है । यदि यह प्रभाव संस्कार के प्रतिकूल पड़ता है तो पात्र में अन्तर्द्वन्द्व या मानसिक संघर्ष आरम्भ हो जाता है । इससे पात्र के मनोविज्ञान के भीतर का एक-एक पार्श्व झलकने लगता है। संस्कार और प्रभाव की उचित युति में ही चरित्र का सौन्दर्य है।१ वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों के पात्रों के चरित्र-चित्रण में इसी संस्कार और प्रभाव का ध्यान रखा गया है। यही कारण है कि उनका चरित्र-चित्रण अत्यधिक सजीव और स्वाभाविक बन पड़ा है। एतदर्थ कुछ एकांकियों पर संक्षेप में दृष्टिपात करना आवश्यक होगा ।

"चारुमित्रा" में अशोक के संस्कारों में हिंसात्मक प्रवृत्तियां हैं, किन्तु कलिंग नारी द्वारा उसकी अवहेलना, अशोक के न्याय पर विश्वास न कर आत्म हत्या कर लेना चारुमित्रा का बलिदान, तिष्यरक्षिता का उपगुप्त के संदेशों द्वारा अशोक को युद्ध न करने की प्रेरणा देना आदि प्रतिकूल परिस्थितियां अशोक के संस्कारों को उचित दिशा की ओर मोड़ देती हैं । 'उदयन' में उदयन का हृदय-परिवर्तन भी इसी ढंग से होता है । किन्तु इसके लिये प्रतिकूल परिस्थितियों का सशक्त होना अनिवार्य है । अशोक के प्राणों की रक्षा के हेतु चारुमित्रा ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी, यह प्रभाव अन्य प्रभावों (कलिंग नारी की आत्मकथा, तिष्यरक्षिता की प्रेरणा आदि) की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था । इसीलिये इस घटना के बाद ही अशोक का हृदय-परिवर्तन हुआ । इससे पूर्व की घटनाओं को इसकी पृष्ठभूमि कहा जा सकता है । "उदयन" में उदयन का परिवर्तन एक ही घटना से हो गया, जिसका कारण यह है कि उदयन के संस्कार उतने प्रबल नहीं थे जितने अशोक के ।

जब प्रतिकूल परिस्थितियां अधिक सशक्त नहीं होतीं तो उनका प्रभाव मन्द हो जाता है और पात्र का परिवर्तन नहीं

१—डा० राम कुमार वर्मा—'दीपदान' की भूमिका पृ० १४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो पाता। उदाहरण के लिये '[illegible]' की वासवदत्ता को लीजिये। वह घायल उपगुप्त की रक्षा करती है और उपगुप्त उसे उपदेश देते हैं। किन्तु वासवदत्ता के वेश्यावृत्ति के संस्कार नहीं बदलते। इसका कारण यही है कि उसके संस्कारों को बदलने के लिये जिस सशक्त और प्रबल प्रतिकूल परिस्थितियों की आवश्यकता थी, वह उत्पन्न नहीं हो सकीं। केवल उपगुप्त का उपदेश इसके लिये पर्याप्त नहीं था। प्रसाद जी के 'अजातशत्रु' नाटक श्यामा (मागन्धी) का हृदय-परिवर्तन इसलिये हो पाया था कि वहां प्रतिकूल परिस्थितियां प्रबल थीं। जिस शैलेन्द्र (विरुद्धक) को उसने हृदय से चाहा था और जिसे बचाने के लिये समुद्रदत्त को बलि का बकरा बना दिया था वही जब उसका गला घोट कर चला गया तो विरक्ति का जागना सर्वथा स्वाभाविक था। इसलिये बुद्ध की सहानुभूति और उसको बचाने के प्रयत्न ने उसका हृदय परिवर्तन कर दिया। वासवदत्ता का "उपसंहार" में परिवर्तन दिखाया गया है, उससे यही सिद्ध होता है कि कई बार ऐसे अशक्त प्रभाव वृद्धावस्था में अपना प्रभाव दिखाते हैं। किन्तु वर्मा जी ने ऐसा आदर्शवाद से प्रेरित होकर ही किया है।

अनुकूल परिस्थितियों के प्रभाव का उदाहरण "तैमूर की हार" है। वीर पुरुष वीर वृत्ति का आदर ही करते हैं, वह मनोवैज्ञानिक तथ्य है। तैमूर शक्तिशाली था और इसीलिये शक्ति और वीरता के परखने की क्षमता रखता था। इसीलिये जब बलकरन ने अपने प्राणों की चिन्ता न कर तैमूर का विरोध कर अपनी शक्ति और अपूर्व साहस का परिचय दिया तो उसके संस्कार अनुकूल परिस्थितियां पाकर जाग पड़े। इससे पूर्व बलकरन की भांति किसी ने उसका विरोध नहीं किया था, इसी लिये तैमूर के चरित्र की इस विशेषता को पहले उद्घाटित होने का अवसर ही नहीं मिला।

कई बार संस्कारों के अनुकूल परिस्थितियां धीरे-धीरे ही अपना प्रभाव दिखाती हैं। इसका कारण प्रतिकूल परिस्थितियों का उससे भी जबरदस्त प्रभाव होता है। प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव के कारण पात्र में पहले अन्तःसंघर्ष होता है और धीरे-धीरे प्रतिकूल परिस्थितियों का प्रभाव मन्द पड़ता जाता है और संस्कार जाग पड़ते हैं। "भाग्य नक्षत्र" में पृथ्वीराज को गौरी के आक्रमण की सूचना उस समय मिलती है। जब वह विवाह-पर्व की तैयारियां कर रहा होता है। आक्रमण की सूचना हृदय के कोमल क्षणों में उसे मिलती है। उस समय युद्ध के संस्कार अतल में सुप्त और प्रच्छन्न पड़े होते हैं। कोमल वृत्तियों पर आघात होने के कारण वह तिलमिला जाता है। और उसमें अन्तः संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयानक की प्रेरणा से शनैः शनैः उसके प्रच्छन्न संस्कार जाग जाते हैं और वह कुछ समय उपरान्त युद्ध के लिये तत्पर हो जाता है ।

संवाद--

"संवाद या कथोपकथन एकांकी में अनिवार्य है । वे एकांकी में संवेदना और गति निर्धारित करते हैं । उनके द्वारा पात्रों का स्वभाव और आवेगों का स्पष्टीकरण होता है ।....कथोपकथन उतने ही हों जितने पात्रों, क्रिया और प्रतिक्रिया द्वारा अपेक्षित हों ।" रंगमंच के नाटकों के लिये संवाद संक्षिप्त और चुभते हुए होने चाहिएं, भाव तीव्रता के साथ साथ उनके द्वारा मनोरंजन भी होना चाहिए, किन्तु केवल मात्र मनोरंजन ही उनका संचालक नहीं । अनावश्यक मनोरंजन पात्र के विकास में बाधक बन जाता है । एकांकी के संवादों में अस्वाभाविकता से बचने के लिये स्वगतों का सर्वथा अभाव होना चाहिए । वर्मा जी के एकांकियों के संवादों में ये समस्त विशेषताएं उपलब्ध होती हैं । किन्तु वर्मा जी के संवादों में कहीं-कहीं काव्य का पुट भी पाया जाता है, जो एकांकियों का साहित्यिक मूल्य बढ़ाता है। वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों में चिन्तन का तत्त्व सामाजिक एकांकियों की अपेक्षा कुछ अधिक हैं और कई स्थलों पर संवाद लम्बे भी हो गए हैं। उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों के संवादों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

१. कथानक को गति देने वाले संवाद --

"तिष्य०--महाराज, न्याय होना चाहिए बेचारी स्त्री का ।

अशोक--होगा और अवश्य होगा ।

स्त्री--मैं अब न्याय लेकर क्या करूंगी। लाओ महाराज, मैं तुम्हें राज-तिलक कर दूं । अपने बच्चे के खून का तिलक लगा कर.....
(चिल्ला कर)
महाराज अशोक-चक्रवर्ती अशोक-

अशोक--मैं अभी न्याय करूँगा ।
(पुकारते हुए) पुष्य--
(प्रहरी का प्रवेश)

अशोक--इस स्त्री को विश्राम-शिविरों में लेजाकर अपराधियों की पहिचान कराओ, मैं अभी आता हूँ। जाओ--
(जाने को उद्यत होता है)

अशोक--और उन अपराधियों को बंदी कर मेरे सामने उपस्थित करना। समझे ?"

(चारु मित्रा)

२. पात्रों के आवेगों और स्वभाव को स्पष्ट करने वाले संवाद--

"पन्ना और सोना का संवाद"
(दीपदान एकांकी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. पात्रों की मनःस्थिति के द्योतक संवाद—

भाग्य-नक्षत्र में चामुण्डराय और पृथ्वी राज का पृष्ठ ७९ का सम्वाद'

४. चिन्तन प्रधान संवाद—

"बिम्बसार—चिन्ता न करो देवी! यह सृष्टि ही रहस्यमय है। तारों को देखो, कितने उज्ज्वल दिखाई देते हैं, किन्तु वे अपना कितना सत्य हम पर प्रकट करते हैं? विस्तृत आकाश में उदित होकर रात भर चमकते हैं और प्रातःकाल अपना रहस्य अपने साथ लिये हुए अस्त हो जाते हैं। सारी सृष्टि प्रवंचमयी है। यदि उस स्त्री का लाल भूख से मरता भी न हो तो शिशु को बचाने की हमारी भावना ही अभिनन्दनीय है। तुमने अपना कर्त्तव्य किया। उससे अधिक सन्तोष और क्या हो सकता है?

वासवी—किन्तु आर्यपुत्र! इस सन्तोष में भी न जाने कहां का दुर्भाग्य झांक रहा है और हम यह भी नहीं जानते कि उस दुर्भाग्य की सीमा कितनी है।"

(रात का रहस्य)

५. काव्यमय संवाद—

"पृथ्वीराज—(हंसते हुए) तो ऐसा है तुम्हारा नृत्य, रूपा। तुम्हारे नूपुरों की झनकार में चरणों के नीचे संगीत का एक-एक कमल खिल उठता है, कमल....जिनकी पंखुड़ियां वायु में झंकृत होती रहती हैं।....संगीत-कमल!

रूपा—वह कमल तो आपके अनुराग का कमल है, महाराज!

पृथ्वीराज—नहीं रूपा! आकाश में रजनी ने भी नृत्य किया। उसके चरणों के नीचे एक ही कमल खिल सका... पूर्णिमा का चन्द्र, एक ही कमल, जहां तुम्हारे नृत्य के संगीत से अनेक कमल खिलते हैं। तुम्हारे नृत्य से लज्जित होकर उसने नूपुर तोड़ कर सारे आकाश में बिखरा दिये। वे ही बिखरे हुए नूपुर तो तारे हैं, तारे, रूपा!

रूपा—यह तो महाराज की सुन्दर कल्पना है! महाराज कवि भी हैं।"

(भाग्य नक्षत्र)

६. पात्र के चरित्र को स्पष्ट करने वाले संवाद—

"पृथ्वीराज—(तीव्रता से) भय? चामुंड। अपनी जिह्वा वश में रखो। तुम मेरे भाई हो, नहीं तो मेरे लिये इस शब्द के कहने वाले की जिह्वा कभी की पृथ्वी पर गिर पड़ती। भय! इस शब्द से पृथ्वीराज का परिचय नहीं है। यह शब्द उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीप वायुमंडल में गूंज ही नहीं सकता । प्रजाजनों के सामने घोषणा करदो कि राजवंश युद्ध के लिये प्रस्तुत है । पहले युद्ध-पर्व होगा, उसके बाद विवाह-पर्व। युद्ध के नगाड़ों पर चोट दो और उस चोट की प्रत्येक धमक से यह शब्द निकले कि पृथ्वीराज किसी भी समय युद्ध के लिये तैयार है, सदैव तैयार है ।"

(भाग्य-नक्षत्र)

७. उद्देश्य की व्यंजना करने वाले संवाद--

"भैरवी--नहीं, नहीं। मुझे कोई बन्दी नहीं बना सकता । मैं अकेली ही अपने देश के लिये युद्ध करूंगी। आम्भि और पौरव सिकन्दर के आक्रमण को आगे बढ़ाने के लिये रथ के दो चक्र होंगे । मैं शिला बनकर इसे रोकूंगी, अवश्य रोकूंगी, पौरव ! पौरव ! यह हमारे देश की मर्यादा नहीं है। शत्रु से मिल कर देश को कुचलना हमारे देश की मर्यादा नहीं है।

आम्भि--मैं स्वयं तुझे बन्दी करूंगा, नारी ! सैनिको ! तुम भी मेरे साथ आओ ।

भैरवी--आम्भि ! अपनी जन्मभूमि को और कलंकित न कर । मैं इतने सैनिकों से जीत नहीं सकूंगी पर बन्दिनी भी नहीं बनूंगी । देश को बंदी होता मैं नहीं देख सकती। तो फिर यह रही मेरी तलवार! आज अपना रक्त ही देश की मर्यादा की वेदी पर चढ़ाऊंगी । जय आर्यावत ! जय जननी जन्मभूमि।"

(मर्यादा की वेदी पर)

८. नाटकीय संवाद--

"समुद्रगुप्त--ऐसे कितने शिल्पी हैं ?

धवलकीर्ति--केवल दो हैं, सम्राट् !

समुद्रगुप्त--उनके नाम ?

धवलकीर्ति--घटोत्कच और वीरबाहु ।

समुद्रगुप्त--इस समय वे कहां हैं ?

धवलकीर्ति--वे अपने आवास स्थान पर ही होंगे ।"

(समुद्रगुप्त पराक्रमांक)

वर्मा जी के एकांकियों के संवाद अधिकांशतः संक्षिप्त और चुस्त ही हैं, किन्तु "शिवाजी", "कौमुदी महोत्सव", "दुर्गावती", "वीर जवाहर" आदि कुछ एकांकियों में संवाद कुछ अधिक लम्बे हो गए हैं । ऐतिहासिक एकांकियों में वर्मा जी ने स्वगतों का प्रयोग भी कुछ स्थानों पर किया है ।--जैसे "दीपदान" एकांकी में पन्ना के स्वगत१, "भरत का

१--'दीपदान', पृ० ५३, ५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग्य" में भरत और कौशल्य के स्वगत,१ "मर्यादा की वेदी पर" में एनिसाक्रिटीज का स्वगत,२ "राजरानी सीता" में सीता का स्वगत,३ "स्वर्णश्री" में पुष्यमित्र का स्वगत४, "उदयन" में उदयन के स्वगत,५ "वासवदत्ता" में वासवदत्ता के स्वगत६ आदि । किन्तु ऐसा बहुत कम स्थलों पर हुआ है । ये स्वगत पात्र की मनःस्थिति को स्पष्ट करते हैं । इनका महत्त्व बढ़ गया हैं, तथापि वे रंगमंच की दृष्टि से अधिकांश बाधक हैं ।

जहां तक संवादों की भाषा का प्रश्न है, वर्मा जी ने अपने पात्रों की भाषा अत्यन्त स्वाभाविक रखी है । जिस वातावरण में उनके पात्र सांस ले रहे हैं, उस वातावरण के अनुरूप ही उन्होंने उनकी भाषा रखी है । यही कारण है कि "समुद्रगुप्त पराक्रमांक", "विक्रमादित्य", "कादम्ब या विष!" "राज्यश्री", 'प्रतिशोध', "कौमुदी महोत्सव", "भरत का भाग्य", "उदयन" "वासवदत्ता", आदि एकांकियों की भाषा संस्कृत निष्ठ हिन्दी है और "औरंगज़ेब की आखिरी रात", 'ध्रुवतारिका", "तैमूर की हार", "वाजिद अली शाह", "वीर जवाहर" आदि की भाषा उर्दू मिश्रित है । ऐसा करते समय वर्मा जी ने पात्र की शिक्षा, स्तर, योग्यता, आयु आदि का भी पूर्ण ध्यान रखा है । "दीपदान" में कीरत बारी और पन्ना के वार्तालाप को उदाहरण के लिये लिया जा सकता है ।

ऐतिहासिक आदर्शवाद–

"ऐतिहासिक एकांकियों में वर्मा जी का रुझान आदर्शवाद की ओर है । अतः भारतीय इतिहास के जिस पात्र में आपको अपने आदर्श मिलें, उसी को रंगमंच पर प्रस्तुत किया है । उन्होंने ऐसे आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है, जो जीवन की व्यावहारिकता से ओत-प्रोत होकर नैतिक दृष्टि से जनता के लिये कल्याणकारी है । सांस्कृतिक दृष्टिकोण से वे प्रसाद तथा प्रेमचन्द के समकक्ष रखे जा सकते हैं क्योंकि उन्होंने भारतीय इतिहास के चरित्रों का विश्लेषण कर उनमें ऐसी प्राण प्रतिष्ठा की है जो ऐतिहासिक सत्य से ओतप्रोत होते हुए भी, जीवन के स्पन्दन से सजीव हैं ।७" हिन्दू युग से सम्बन्धित "समुद्रगुप्त विक्रमादित्य", "कौमुदी महोत्सव", "ध्रुव तारिका" आदि नाटकों में भारतीय चरित्र की उच्चता, पवित्रता, सत्य निष्ठा तथा प्राचीन सांस्कृतिक गौरव का चित्रण है । वर्मा जी ने हिन्दू सम्राटों को भारतीय चरित्र का प्रतीक (symbol) माना है । इनमें शौर्य, देश भक्ति, स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य प्रेम आदि गुणों का चित्रण किया गया है ।८ वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों से उनके आदर्शवाद की भी एक झांकी देखने को मिल जाती है ।

१—'ऋतुराज', पृ० ८७, ९२, ९७ २—'दीपदान', पृ० १७०
३—'सप्तकिरण', पृ० १५–१७ ४—'ऋतुराज', पृ० ६५
५—'पांचजन्य', पृ० १५, २३, २४, २५, २६ ६—'पांच जन्य', पृ० ६३, ७०
७—नर्मदा प्रसाद खरे, 'चार ऐतिहासिक एकांकी"—भूमिका,—पृ० १९
८—डा० राम चरण महेन्द्र—"हिन्दी एकांकी एवं एकांकीकार", पृ० १०८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला और नैतिकता

C

इन्दु बाली

कला और नैतिकता का प्रश्न हर युग में उठता है, लहराता है, युग के अनुरूप समाधान पा उसका ज्वार-भाटा शान्त होता है, फिर उठता है, विकराल रूप धारण करता है। पर हमें देखना यह है कि इनका पारस्परिक सम्बंध क्या है।

कला वह क्रिया है जिसके द्वारा एक मनुष्य एक भाव का अनुभव कर लेने पर सोद्देश्य उसे अन्यों तक पहुंचाता है। जो कुछ धूमिल और अस्पष्ट था उसे अपने तथा अन्यों के लिये स्पष्ट और निश्चित बनाने का यह प्रयास वह स्रोत है जिससे मनुष्य की सामान्य आध्यात्मिक सक्रियता के उत्पादन प्रवाहित होते हैं–या वह वस्तुएं निकलती हैं जिन्हें हम कलाकृतियां कहते हैं –जो मनुष्य के क्षितिज को विस्तीर्ण करती हैं और अदृष्टपूर्ण वस्तुओं को देखने को विवश करती हैं। कोई वस्तु कलाकृति है या नहीं, यह उसके रूप पर निर्भर है। यदि कोई भावना चाहे वह लाभकर हो या हानिकर अपने रूप की प्रभावकता के कारण व्याप्त होती है, तो वह कलाकृति है और इस से इस तथ्य में अन्तर नहीं आता कि उसका स्रष्टा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक या नैतिक महत्त्व की भावनाओं से प्रेरित हुआ था या नहीं। यहां प्रश्न दृष्टिकोण का है?

परन्तु यद्यपि कोई भी कलाकृति बिना उपयुक्त रूप के अस्तित्त्व हीन रहेगी, तथापि यह एक सत्य है कि ठोस कलाकृतियों के विषय में यह विचारणीय है कि वे जिन भावनाओं का बाहर प्रचार करती है उनसे मानवता लाभान्वित होने वाली है अथवा क्षतिग्रस्त। यह विचारना व्यर्थ है, ऐसा कहना यह घोषित करने के समान है कि कला एक बद्ध कक्ष में निवास करती है और उसका मानव जीवन से कोई जीवन्त सम्बन्ध नहीं। क्योंकि कलाकार स्वयं एक मानव है और अपने को दो खण्डों में विभक्त नहीं कर सकता, इसी लिये सामान्य रूप से जो कुछ भी जीवन को उच्चतर अथवा निम्नतर बनाता है, उससे सम्बन्धित है। यहीं आ कर नैतिकता का प्रश्न उठता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि कला[illegible] बुद्धि-विलास या क्रिया विशेष में कौशल होती तो हम इसकी तुलना विलियर्ड्स, क्रिकेट या पेशेवर शतरंज के खेल से कर सकते। हम इसे उचित ही कहीं अधिक महत्त्व देते हैं। क्योंकि वह कला है जो कलाकारों द्वारा अभिव्यक्त भावनाओं के विकीर्णीकरण मनुष्य की भावनाओं को मूर्त और विकसित करती हैं। हमारी भावनाएं हमारे विचारों, विश्वास में हमारी क्रियाओं और हमारे समग्र जीवन को प्रभावित करती हैं। कला,जीवन और मनुष्य जाति की प्रगति के लिये विज्ञान के समान ही एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। न केवल तादात्म्य ही कला का अमोघ लक्षण है बल्कि तादात्म्य की मात्रा भी कला की उत्तमता की कसौटी है। यदि हम इसके वस्तुतत्त्व का ख्याल न करें और उसके द्वारा प्रेषित भावनाओं की श्रेष्ठता का विचार न करें, तो हम कह सकते हैं कि तादात्म्य जितना सबल होगा उतनी ही श्रेष्ठतर कला होगी। मनुष्य जीवन को उन्नत करने वाली भावनाएं उन भावनाओं की अपेक्षा स्पृहणीय हैं जो जीवन को अधोमुख करती हैं। और यदि हम विश्व प्रगति के आकांक्षी हैं तो उन भावनाओं को प्रोत्साहित करना हमारा कर्त्तव्य है।

कला और जीवन की अंतरक्रिया का प्रश्न निस्सदेह संश्लिष्ट है। सभी (भिन्न-भिन्न स्वभाव और रुचि वाले) एक ही सी भावनाओं का समर्थन नहीं कर सकते परन्तु जो भी भावनाएं मनुष्यों के पास हैं, उन्हें कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा सबल अथवा दुर्बल किया जा सकता है। हमें यह ध्यान रखना ही होगा कि नैतिक आदर्शों का महत्त्व कला के स्वभाव और प्रभाव को समझने में बाधक न बने।

नैतिक आदर्शों को कला की राह में सब से बड़ा अवरोध इतने अधिक समय से माना जाता रहा कि यह तथ्य शीघ्र नहीं समझा जाता (विशेष कर उनके द्वारा जो मात्र आनंदोपभोग के निमित्त कला का ध्यान कर लेते हैं) कला किसी भी प्रकार की भावना को गतिशील कर सकती है और इसलिये अपने को किसी धार्मिक अधार्मिक विचार-धारा से सम्वद्ध कर सकती है। कला के द्वारा कला के प्रभाव का सफलतापूर्वक सामना किया जा सकता है। कला में नैतिकता की स्थिति शरीर में प्राण के समान है— जबकि यथार्थ और सौन्दर्य का महत्त्व भी अपनी जगह किसी सीमा तक अक्षुण्य रहता है।

कलात्मक बोध की पहली शर्त है, उस सरल भावना से सम्पन्न होना जिससे सामान्य जन और बालक भी सुपरिचित हैं। दूसरों की भावना से ऐक्य की चेतना जो हमें दूसरों के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होने को, अन्यों से अपनी आत्मा का विलीनीकरण करने को विवश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देती है। यही कला का सार है। हमारे जीवन में बहुत से नगण्य यहां तक कि हानिकर कार्यकलाप हैं जो अनई होने पर भी सम्मान प्राप्त करते हैं, या उन्हें केवल इसलिये सहन किया जाता है क्योंकि वे महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं।

कला को कला-रहित से और शिवं एवं उदात्त को अशिव एवं तुच्छ से अलग करने के लिये कहां और कैसे रेखा खींची जाय यह प्रश्न जीवन में अत्यधिक महत्त्व का है। जो वस्तु कला नहीं है, उन्हें कला कहने से जीवन में अनेक दोष और अपराध उत्पन्न होते हैं। नैतिकता कला के सत्य रूप के विश्लेषण में सहायक है।

अत: मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण आवश्यक और मूल्यवान वस्तु 'कला' को व्यर्थ के पेशों, व्यावसायिक उत्पादनों और अनैतिकता से अलग करने वाली विभाजक रेखा कहां है। प्रत्येक सिद्धान्त (प्रवृत्तिमूलक यथार्थवाद-सौन्दर्यवाद) के अनुसार कलाकृतियां निरंतर बनाई जा सकती हैं, जैसा कि हर दस्तकारी में होता है और वस्तुत: इसी प्रकार वे बनाई भी जा रही हैं। अत: ये तीन प्रमुख और असंगत सिद्धान्त न केवल कला को कला रहित से अलग करने की रेखा का निर्धारण करने में ही असमर्थ हैं, अपितु ये कला के क्षेत्र को विस्तीर्ण कर देते हैं और उसके भीतर उस सब का समावेश कर लते हैं जो नगण्य और अशिव है। अपेक्षित, श्रेष्ठ, सम्मानपूर्ण कला को उन अनावश्यक, तुच्छ और भर्त्सना योग्य रचनाओं से अलग करने की सीमा रेखा कहां है जो पूर्णतया पतित करने वाले प्रभावों से युक्त है, फि किस कार्य या वस्तु में वास्तविक कलात्मक क्रिया निहित है! कला कृति में सदैव नवीनता का समावेश होना चाहिए तथापि किसी नई वस्तु का उद्घाटन सदैव कलाकृति नहीं हो सकता।

वस्तु तत्त्व की महत्तम सीमा वह जिसकी आवश्यकता हरेक मनुष्य को ह समय रहती है। हरेक मनुष्य के लिये ज वस्तु हर समय आवश्यक है वही शिव औ नैतिक है। जो वस्तु जनता में हिंसा नहीं प्रेम से मेल पैदा करती है, जो व मनुष्यों के पारस्परिक सौहार्द का सु उद्घाटित करती है वह 'श्रेष्ठ', 'शि और नैतिक है। 'अशिव', 'अनैति तो वह है जो उन्हें विभाजित करती है फिर कला तो मानवता का प्राण औ शृंगार है।

प्रत्येक युग में विभिन्न लोग कला सामने जो मांगें उपस्थित करते हैं उ के कारण मूल्यांकन का अन्तर उत्प हुआ करता है। उदाहरणार्थ उदात्त में वस्तु-तत्त्व की महत्ता की मांग अ थी और स्पष्टता तथा ईमानदारी की बहुत कम, परन्तु हमारे युग में ठीक इ विपरीत है। मध्ययुग में सौंदर्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक हो गई । परन्तु वस्तुतत्व और महत्ता और रचयिता की ईमानदारी की मांग बहुत कम हो गई, और इस युग में ईमानदारी और सत्यपरायणता की मांग बहुत अधिक हो गई है पर सौंदर्य और विशेष कर वस्तुतत्त्व की महत्ता की मांग बहुत कम ।

इस द्विधा का कारण यह है कि जो लोग वास्तविक कला को समझने में असमर्थ हैं वे कलाकृतियों पर एकांगी निर्णय देते हैं । कुछ लोग केवल वस्तु-तत्त्व की श्रेष्ठता खोजते हैं, कुछ लोग आवरण का सौंदर्य और कुछ लोग केवल कलाकार की ईमानदारी और सत्यशीलता । जो कुछ वे समझते हैं अथवा देखते हैं उसी के अनुसार कला की प्रवृति का निरूपण भी करते हैं, अपनी स्थापनाओं का निर्माण करते हैं और उन लोगों की प्रशंसा प्रोत्साहन करते हैं जो उन्हीं के समान बगैर समझे कि कला कहां सन्निविष्ट है, कृतियों का निर्माण पकौड़ों की तरह करते हैं । और संसार में हर तरह की मूर्खता और घृना-जनक कृतियों का गंदा ढेर लगा देते हैं और उन्हीं को 'कलाकृति' समझते हैं । नैतिकता कला के लिये बन्धन नहीं एक सुन्दर आवश्यकता है जो अपने अस्पष्ट सहारे से उसे ऊंचा उठाती है ।

न तो श्रेष्ठता, न सौन्दर्य न ईमानदारी कलाकृति के आवश्यक उपादान प्रस्तुत करते हैं । वरन् ऐसी कृतियों के निर्माण की प्रथम शर्त यह है कि कलाकार में किसी नवीन और श्रेष्ठ विषय की स्फुरणा हो और इसीलिये हमेशा की तरह आगे भी यही मान्य रहेगा कि सच्चे कलाकार के लिये 'कुछ एकदम नवीन और श्रेष्ठ' का दर्शन होना आवश्यक है । ताकि कलाकार नवीन वस्तु पहचान सके, उसके लिये आवश्यक है कि वह देखे और विचार करे तथा अपने को उन तुच्छ बातों में व्यस्त न रखे जो जीवन-रहस्य के चिन्तन और तत्सम्बन्धी उसकी भेदक दृष्टि में बाधा बने । ताकि जिन नवीन चीजों को वह देखता है वे श्रेष्ठ हों एतदर्थ कलाकार को नैतिक रूप से उन्नत होना चाहिए और स्वार्थपूर्ण जीवन न व्यतीत करना चाहिए बल्कि मानव जाति के साधारण जीवन में शामिल होना चाहिए । यदि वह केवल नवीन और श्रेष्ठ को खोजेगा, तो इसे अभिव्यक्त करने के लिये वह अवश्यमेव एक रूप पा जायेगा और वह सत्यपरायणता भी उपस्थित रहेगी जो कलात्मक रचना का अनिवार्य अंग है । समाज में हमेशा रंगीन विचार प्रचलित रहते हैं और धैर्य रखने से एक विशिष्ट प्रकार का निर्माण कौशल हमेशा सीखा जा सकता है और फिर कोई न कोई चीज़ सदैव किसी को रोचक लग सकती है ।

वास्तविक कलाकृति अनुरोध पर नहीं बन सकती क्योंकि सच्ची कलाकृति कलाकार की आत्मा से उठने वाले जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के एक नव्य रूप का उद्घाटन है जो अभिव्यक्त होने पर उस मार्ग को प्रकाशित कर देता है जिन पर चल कर मानवता प्रगति करती है। या उद्घाटन जिस विधान के अनुसार होता है वह हमारी पहुंच के बाहर है ।

कला का नाम लेकर आज न जाने क्या क्या किया और अपनाथा जा रहा है। परन्तु क्या यह सच है कि कला इतनी श्रेष्ठ है कि उसके लिये ऐसे बलिदान किए जाएं ? इस चिन्ता की भीषण सम्भावना है कि जिस कला के नाम पर मानव, नैतिकता तथा श्रम की भयजनक बलियां चढ़ाई जा रही हैं वह न केवल लाभहीन हैं अपितु हानिकर भी। इसलिये जिस समाज में कलाकृतियां बनती और समर्थन पाती हैं उसके लिये आवश्यक है कि यह पता लगाए कि कला होने की दावेदार वस्तुएं वास्तव में कला हैं या नहीं। जो वस्तु कला के नाम से अभिहित होती है मांगलिक है या नहीं ।

जिस भावना को हमने एक बार अनुभव किया हो उसे पुनः उत्पन्न करना और अपने भीतर उसे उत्पन्न कर लेने के बाद, गति, रेखाओं, रंगों, ध्वनियों या शब्दात्मक रूपों द्वारा उसको इस तरह प्रेषित करना कि अन्य लोग भी उसका अनुभव करें——कला का यही कार्य है।

अन्त में मुझे यही कहना है कि कला के विस्तृत क्षेत्र में अति मुझे अभीष्ट नहीं। नैतिकता का झीना आवरण कला के रूप को जगमगा देता है जिसमें सत्यं, शिवं और सुंदरम् का समन्वय हो जाता है और कला अमरत्त्व प्राप्त करती है। यथार्थ मुझे वहीं तक अभीष्ट है जहां तक कि कला भौंड़ी न हो जाये । उसका सत्यं, शिवं और सुन्दरं अक्षुण्ण रहे ।

(पृष्ठ ६० का शेष)

स्वास्थ्य के लिये भी अनिवार्य है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक फ्रायड जिस मत के आज पोषक हैं, भारत में उसी का पोषण आचार्यों द्वारा, सहस्राधिक वर्ष पहले ही हो चुका था। जिसका अपना इतिहास है, लम्बी परम्परा है। वात्स्यायन ने अपने ग्रन्थ में काम शास्त्रीय परम्परा एवं सिद्धान्तों तथा सृष्टि के एक शाश्वत तथ्य एवं सत्य का मनोवैज्ञानिक ढंग से उद्घाटन किया है। भले ही उनके समक्ष विवेचन का आधार विशिष्ट समाज ही था, तो भी इसी विवेचन-वैशिष्ट्य में इनकी साधारणता की विशेषता निहित है जिससे समूचा काव्यशास्त्र उऋण नहीं हो सकता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन-जागृति की कलाकृति....."भैरवी"

प्रो० लीला धर 'वियोगी'

सन् १९४२। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक निर्णायक वर्ष ! विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध तुमुल संघर्ष और बर्बरतापूर्ण दमन का घोर चक्र ! लाठियों और गोलियों की भीषण वर्षा, पैशाचिक क्रूरताओं और राक्षसी अत्याचारों के विरुद्ध अहिंसात्मक युद्ध। स्वातन्त्र्य-समर का यौवन काल ! युग पुरुष गान्धी की पुकार पर समस्त देश में अपूर्व संगठन और आकाश में गूंजता हुआ स्वतन्त्रता का जयघोष ! साम्राज्यवाद के निर्मम अत्याचार और देश के सपूतों का अदम्य-साहस ! बौखलाये हुए शासक के उखड़ते हुए कदम और स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों का दृढ़ निश्चय और अटल विश्वास ! संक्षेप में सन् ब्यालीस में देश की यही परिस्थिति थी। स्वाधीनता के पावन यज्ञ में देशवासी प्राणों की आहुति दे रहे थे। ऐसे समय में हिन्दी का कवि भी मौन नहीं था। युग की पुकार पर, कवि की वाणी भी आग उगल रही थी। जन-जन में नवरक्त का संचार करने में, उन्हें देश-भक्ति की भावना से अनुप्राणित करने और प्राणोत्सर्ग की सबल प्रेरणा देने में हिन्दी कवियों ने अद्भुत एवं महत्त्वपूर्ण योग दिया है। राष्ट्रीय भावना के प्रसार तथा देश पर बलि होने की प्रेरणा देने में श्री सोहन लाल द्विवेदी का स्वर सब से ऊंचा था। उनके सबल स्वरों ने देश के स्वाभिमान को जागृत किया। कवि की ओजस्वी वाणी ने देश भक्तों को निर्भीकता का पाठ पढ़ाया।

सन् १९४१ में प्रथम बार प्रकाशित—'भैरवी' ने राष्ट्रीय आन्दोलन को सशक्त बनाने तथा जन-जागरण में अभूतपूर्व योग दिया है। भारतीय युवक उस समय द्विवेदी के इन स्वरों में गा उठता था :—

वन्दिनी माँ को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो।
हों जहां बलि शीश अगणित,
एक सिर मेरा मिला दो।

भैरवी के गीत उस युग की भावना के इतने अनुकूल थे कि वे जन-जन के कण्ठ में वास करने लगे। भैरवी के गीतों की लोकप्रियता ने स्वतंत्रता आन्दोलन में तीव्रता लाने में बहुत सहायता की है। भैरवी के प्रकाशन से बहुत पूर्व ही इसके गीत लोकप्रिय हो चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। श्री सूर्य नारायण व्यास ने लिखा है—"सन् १९३० की बात है, मैं प्रभात फेरी में 'खादी के धागे-धागे में अपनेपन का अभिमान भरा' आदि गीत उषाकाल के मधुर क्षणों में अपने संगी-साथियों के साथ गाता था" निस्सन्देह भैरवी के भावमय गीत युवकों को प्रेरणा देने में अचूक सिद्ध हुए।

भारतीय युवक, अंग्रेज़ी दमन चक्र के सम्बन्ध में द्विवेदी जी के स्वरों में कह उठता है—

जंजीरों से चले बांधने, आज़ादी की चाह।
घी से आग बुझाने की सोची है सीधी राह॥
हाथ पांव जकड़ो, जो चाहो है अधिकार तुम्हारा।
जंजीरों से कैद नहीं हो सकता हृदय हमारा॥

साहस और आशावाद का कितना स्वाभाविक और प्रभावशाली सन्देश है। 'घी' से आग बुझाने में कितना सुन्दर व्यंग्य है 'सीधी राह' के द्वारा तो वह व्यंग्य और तीव्र हो गया है। सचमुच, कोई कठोर से कठोर शासक भी स्वतन्त्रता की लहर को रोक नहीं सकता।

'पथ—गीत' नामक गीत में सत्याग्रही वीरों के ये शब्द कितने प्रेरक हैं :—

सन्तान शूरवीरों की हैं हम दास नहीं कहलायेंगे।
या तो स्वतन्त्र हो जायेंगे या रण में मर मिट जायेंगे।

ऐसे ही दृढ़ संकल्प वाली जातियां स्वाभिमान पूर्वक जीवित रह सकती हैं। 'भैरवी' के सम्बन्ध में श्री जैनेन्द्र कुमार जी ने उचित ही लिखा है—"भैरवी की कविताएं भारतीय राष्ट्रीयता की गति की ताल पर रची गई है।........ वह कुछ कराना चाहती हैं, उनमें आदेश का स्वर है। एक प्रबल आत्मविश्वास के साथ वह आदेश का स्वर उन कविताओं में फूंका गया है।" 'बढ़े चलो' नामक 'प्रयाण-गीत' में यही आत्मविश्वास और आदेश का स्वर सुना जा सकता है :—

गगन उगलता आग हो,
छिड़ा मरण का राग हो।
लहू का अपने फाग हो,
अड़ो वहीं, गड़ो वहीं,
बढ़े चलो! बढ़े चलो!!

एक अन्य कविता में भी वह कहते हैं :-

शूरो! वीरों के शोणित का अभिमान लिये तैयार रहो।
आहत जननी के अन्तस के अरमान लिये तैयार रहो॥
तैयार रहो मेरे वीरो! फिर टोली सजने वाली है।
तैयार रहो मेरे शूरो, रणभेरी बजने वाली है।

द्विवेदी जी ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह आदेश दिया है :—

"बिना चढ़ाये शीश, नहीं टूटेंगी मां की कड़ियां।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोहनलाल द्विवेदी ने 'गान्धीवाद' के प्रभाव को ग्रहण किया है और उसका समुचित प्रचार किया है। युगावतार गान्धी, खादी-गीत, सेगांव का सन्त, दाण्डी-यात्रा, त्रिपुरी, कांग्रेस आदि कविताएं गान्धी जी के महत्व एवं उनके नेतृत्त्व-नपुण्य के सम्बन्ध में लिखी गई हैं "खोलो मन्दिर द्वार पुजारी" में कवि ने हरिजनों के उचित अधिकारों का समर्थन किया है तो 'गांवों में' नामक कविता म भारतीय ग्रामीण जीवन का करुण चित्र उपस्थित किया है। 'किसान' कविता में अत्यत्त ओजस्वी वाणी में उसकी दुर्दशा को अंकित किया है, उसके शोषण का रोमांचकारी चित्र खैंचा है और उसे अपने स्वत्वों के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा दी है। भारत की परतन्त्रता जन्य वेदना, तथा देश की आर्थिक विपन्नता का वर्णन भैरवी में भी है। पर 'वेदना' की अपेक्षा उत्साह का स्वर इसमें सबल है। श्री हरि भाऊ उपाध्याय के शब्दों में —"सोहनलाल जी की व्यथा का उद्‌गम राष्ट्र से होता है और उसकी अभिव्यक्ति भावात्मक तथा विधायक होती है।" द्विवेदी जीव्यथा को केवल जगाते ही नहीं, अपितु कर्म की प्रेरणा भी देते हैं। "सुना रहा हुँ तुम्हें भैरवी" नामक कविता में कवि ने भारत के अतीत का, उसकी उज्जवलता का स्मरण किया है। विगत-गौरव के साथ वर्तमान (स्वतन्त्रता-पूर्व-भारत) दुर्दशा की ओर देश वासियों का ध्यान आकृष्ट किया है ताकि वे देश का पुर्ननिर्माण कर सकें:—

याद करो अपने गौरव को,
थे तुम कौन, कौन हो अब तुम।
राजा से बने गये भिखारी,
फिर भी, मन में तुम्हें नहीं ग़म।।
पहचानो फिर से अपने को,
मेरे भूखों मरने वाले।
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी,
जागो मेरे सोने वाले।।

श्री जैनेन्द्र कुमार ने द्विवेदी जी के गीतों को "सामयिक" बताया है। यह कथन किसी सीमा तक तो उचित एवं मान्य हो सकता है पर पूर्णांश में नहीं। भैरवी के गीत स्वतन्त्रता-पूर्व युग से सम्बन्धित हैं अतः स्वाधीनता के बाद उनका महत्व कम हो जाना नितान्त स्वाभाविक है। पर 'भैरवी' के सभी गीत या कविताएं सामयिक नहीं हैं। 'युगावतार गांधी' जैसी कविताओं का महत्त्व तो समय के व्यतीत होने पर और भी बढ़ेगा। 'हल्दी घाटी' 'राणा प्रताप के प्रति', 'बुद्धदेव के प्रति' 'महर्षि मालवीय' और 'तुलसीदास' जेसी भाव-पूर्ण कविताएं हर युग में प्रेरक सिद्ध होंगी। उनका सन्देश सामयिक नहीं,शाश्वत है। उनकी ऐसी श्रेष्ठ कविताओं को लक्ष्य करते हुए आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है —"वहां कविता खिले हुए फूल के समान सुन्दर है।" निःसन्देह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ऐसी कविताओं की ताज़गी सदा बनी रहेगी ।

'भैरवी' के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए, श्री सुमित्रानन्दन 'पंत' ने उचित ही लिखा है—"भैरवी उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह है, जिसमें राष्ट्रीय जागरण के वन्दना गीतों में कवि ने अपना भी श्रद्धापूर्ण स्वर मिलाया है। .... उन्होंने अहिंसात्मक क्रान्ति को, विद्रोह को तथा सुधारवाद को अत्यन्त सरल, सबल और सफल ढंग से काव्य बना कर 'जन-साहित्य' बनाने के लिये उसे मर्मस्पर्शी और मनोरम बना दिया है।"

भैरवी की भाषा अत्यन्त सरल एवं सुबोध है। उस में अनोखा प्रवाह है । विषय के अनुसार ओज और प्रसाद गुणों का समावेश इन कविताओं में सहज ही हो गया है। कहीं कहीं तो भाषा अत्यन्त सरल बन पड़ी है। 'किसान' जैसी कविताओं में, जहां कवि ने "समस्त-पदों" का प्रयोग किया है वहां भाषा में झनकार उत्पन्न हो गई है । भावोच्छवास, छन्द-विन्यास, भाषा-प्रवाह, अकृत्रिमता तथा सुबोधिता की दृष्टि से 'भैरवी' द्विवेदी जी की श्रेष्ठ कृति है। भैरवी के भाव, विषय तथा शैली के सम्बन्ध में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं :—"भैरवी में जो वर्णन की प्रछन्न शैली है, श्रद्धा और भक्ति का सहज-सरल (आनसाफिस्टिकेटेड) वेग, जो झरने के समान प्रसन्न है, तूफान के समान उद्दाम नहीं, वह मुझे बड़ा आकर्षक जान पड़ता है ।"

श्री सोहनलाल द्विवेदी राष्ट्रीय चेतना के सबल एवं सफल कवि हैं। "भैरवी" उनकी एक प्रतिनिधि और प्रमुख कृति है जिसका हर शब्द देश-प्रेम, क्रान्ति, समाज सुधार राष्ट्रीय-जागरण का सन्देश-वाहक है । गान्धी-युग को इस में पूर्ण सफलता से वाणी दी गई है ।

बलि होने की परवाह नहीं
मैं हूँ, कष्टों का राज्य रहे ।
मैं जीता, जीता, जीता हूँ
माता के हाथ स्वराज रहे ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्ददास शृंगारी कवि के रूप में

कमलेश कुमारी अरोड़ा

नन्ददास मूलतः शृंगारी कवि हैं। उनका काव्य शृंगार-रस का अद्भुत कोष है। प्रेम, शृंगार एवं सौन्दर्य की सभी सरस एवं कोमल भावनाओं का प्रादुर्भाव नन्ददास के काव्य में हुआ है। नन्ददास में बाल्यावस्था की उनकी रसिक प्रवृत्ति ने शृंगार के लौकिक विषयों के प्रति ऐसा आकर्षण उत्पन्न कर दिया, जिसमें उन्होंने अपनी रसिकता एवं सरसता का पुट देकर अपने काव्य में श्रेय दिया है। उनकी यही रसिकता की प्रवृत्ति, शृंगार-रस के रूप में, उनके काव्य के माध्यम से प्रस्फुटित हुई है। इतना ही नहीं नन्ददास अनेक स्थानों पर अपने एक रसिक मित्र होने का संकेत भी देते हैं, जो इनकी शृंगारी प्रवृत्ति का ही द्योतक है।

नन्ददास के काव्य में शृंगार-शास्त्र का निरूपण शास्त्रीय दृष्टिकोण से ही हुआ है। इस विषय में नन्ददास निश्चय ही पारंगत थे। यही कारण है कि वे शृंगार रस का चित्रण करने में सिद्ध-हस्त हैं।

शृंगार-रस के दो प्रमुख पक्ष—संयोग पक्ष और वियोग पक्ष—विद्वानों द्वारा सर्वमान्य रहे हैं। इन दोनों पक्षों का नन्ददास नें अत्यन्त सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन अपने काव्य के अन्तर्गत किया है। शृंगार-रस के कवि होने के कारण इसका कोई भी पहलू अछूता नहीं रहा है। शृंगार-रस के संयोग-पक्ष के अन्तर्गत प्रायः नखशिख वर्णन, रूप-वर्णन, नायिका के भेदोपभेद, नायिका की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण, नायक-नायिका के मिलन एवं उनकी रति-क्रीड़ाओं का वर्णन एवं अपने काव्य के नायक की लीलाओं इत्यादि शृंगारी-तत्त्वों का नन्ददास ने व्यापक रूप से सुन्दर चित्रणा किया है। वियोग पक्ष के अन्तर्गत शास्त्रीय दृष्टि से वियोग के चारों प्रकार के विरह—पूर्वानुराग, मान, प्रवास एवं करुण विप्रलम्भ—नन्ददास के काव्य में विस्तृत रूप से विवेचित किए गए हैं। विरह की दसों मानसिक दशाओं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता एवं मरण—के उदाहरण सहज ही नन्ददास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। साथ ही स्तम्भ, प्रलय, रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु तथा वैस्वर्य आदि भी किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर हो जाते हैं। नन्ददास की शास्त्रीयता यहीं तक सीमित नहीं रहती, वे तो नारी-मनोविज्ञान का चित्रण करने में कई स्थानों पर इससे भी कई पग अग्रसर हो जाते हैं। उन्होंने नायिका की विरहावस्था को अधिक उदीप्त करने के हेतु बारहमासा, षड्ऋतु वर्णन, एव संदेश की परिपाटी को भी अपनाया है। नन्ददास की प्राय: अधिकांश रचनाओं में शास्त्रीयता उपलब्ध होती है। नन्ददास ने अपने इष्टदेव रसिक-कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये माधुर्य-भक्ति का आश्रय लेकर ही शृंगार-रस को अपने काव्य में समुचित स्थान दिया है।

संयोग पक्ष :—(१) **रूपवर्णन** :—नन्ददास का सम्पूर्ण काव्य नायिका के रूप-सौन्दर्य वर्णन से ओतप्रोत है। रूप चित्रण की नन्ददास में इतनी अनूठी क्षमता थी कि पढ़ने पर नारी के रूप के सजीव रेखाचित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं। नन्ददास की सौन्दर्य-भावना इतनी प्रबल है कि नायिका अथवा आलम्बन के रूप-चित्रण के बिना एक पग भी आगे नहीं बढ़ते है। यहां रूपमंजरी के रूप-सौंदर्य की कतिपय पंक्तियां उदाहरणार्थ दृष्टव्य हैं :—

गौर बरन तन सोभित नीकौ।
औटे कंचन को रँग फीकौ ॥
चंपक कुसुम कहा सरि पावै।
बरनहु हीन बास बुरि आवै ॥

° ° ° °

मृदु कपोल छबि बरनि न जाही।
झलकै अलक खुभी जिनमांही ॥

इसी प्रकार रुक्मणी का रूप-सौदर्य देखिए :

सोभा सदन सुवदन रदन की छबि द्युति ऐसी।
अरुन बदरि में दमकत दामिनी अंकुर जैसी।

रूप-वर्णन के अनेक चित्र नन्ददास के काव्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।

(२) **नखशिख वर्णन** :—नायिका के नखशिख का वर्णन करना तो नन्ददास का प्रमुख उद्देश्य रहा है। उनकी प्राय: सभी शृंगारी रचनाओं में नायिका के नखशिख वर्णन तथा नायिका की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण भी उपलब्ध होता है। नन्ददास ने नारी के प्राय: सभी अंगों, उपअंगों का बड़ा सरस वर्णन किया है, परन्तु कहीं-कहीं यह वर्णन अश्लीलता की सीमा का अतिक्रमण करने लगता है, वैसे इस प्रकार के वर्णन अत्यल्प ही हैं। 'नाममाला' में नन्ददास ने राधा के नख-शिख का वर्णन इस प्रकार किया है :—

केश—कुंतल कबरि ललाट जनु, चंदहि गई दरार ॥
ललाट—मस्तक, अलिक, ललाट पर बेंदी बनी जराय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनो भाव ... मूर्ति
प्रगटी बाहर आय ।।

नेत्र--कछु रिस राते नैन जनु,
जावक भीजे मीन ।।

अधर--बनित ओष्ठ पुनि रदन छद,
अधर मधुर एहि भाय ।
नाम लिखत जाको तुरत,
किलक ऊख होइ जाय ।।

दशन--जनु नव नीरद मध्य में,
शीतल विद्युत बीज ।।

मुख--घूंघट पट दियो हुतो सु,
खोल्यो बदन डहडह्यौ ।।
जनु अंबर तें अब ही,
निकस्यौ चंद गह-गह्यौ ।।

ग्रीवा--पीक लीक जहँ झलमलइ,
ससि-छबि कीनी जौ ।।

हाथ--हस्त बाहु सुख पानि,
कर, कबहुँ धरत कपोल ।
बर अरबिंद बिछाय जनु,
सोवत इंदु अडोल ।।

उरोज--उरज, पयोधर, कुच कहिय,
अस्तन उर छबि-ऐन ।
कंचन संपुट देव जनु,
पूजि छिपाए मैन ।

इसी प्रकार नायिकाओं के नख-शिख वर्णन में किंकणी , नूपुर, अंबर, भौंह, चरण इत्यादि का चित्रण भी सूक्ष्मता से किया है ।

नायिका-भेद :—नन्ददास की रस-मंजरी' नामक रचना आद्योपान्त नायिका-भेद के लक्षणों एवं उदाहरणों से भरा पड़ा है । इसे हम लक्षण ग्रन्थ भी कह सकते हैं । वास्तव में नन्ददास ने शास्त्रीय दृष्टि से नायिकाओं के भेदोपभेदों का वर्णन किया है । नन्ददास द्वारा किये गए नायिका-भेद इस प्रकार हैं :—प्रथमत: नायिका के तीन भेद किये गए हैं :—

(१) स्वकीया (२) परकीया (३) सामान्या । फिर क्रमश: तीनों के तीन-तीन भेद—मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा किए हैं । स्वकीया मुग्धा के लिये मुग्धा नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा यह दो भेद किये हैं तथा मुग्धा नवोढ़ा के ज्ञात यौवना और आज्ञात यौवना दो-दो भेद किये हैं । परकीया मुग्धा के सुरतिगोपा, मध्या के वाग्विदग्धा तथा प्रौढ़ा के लक्षिता भेद किए हैं । स्वीकीया मध्या और प्रौढ़ा के धीरा, अधीर तथा धीराधीरा यह तीन-तीन भेद किये हैं । कुछ अन्य भेद, प्रेषित पतिका, खंडिता, कलहंतरिता , उत्कंठिता विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीन, वल्लभा, तथा प्रीतम गवनी इत्यादि नौ भेद किये हैं । नन्ददास ने इनके साथ-साथ लक्षण भी दिये हैं तथा उदाहरण भी ।

जैसे निम्नलिखित ज्ञातयौवना के उदाहरण से स्पष्ट ही है :—

सहचरि के उरजन-तन चहै ।
अपने चहै मुसकि छबि लहै ।।
सखी कहे बलि तुव कुच नये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इकट्ठे उभय सभु से भये ।
सो सुकृती वह निज नख धरिहै ।
इन कहुँ चन्द्रचूड़ जो करिहैं ।।
मुसकि सखी सौ मारे जोई ।
ज्ञातजोबना कहिए सोई ।।

नायिका की विभिन्न अवस्थाओं में जैसे वय-संधि अवस्था, यौवनावस्था तथा किशोरावस्था के अनेक चित्रण भी नन्ददास ने अपने काव्य में उपस्थित किए हैं। उदाहरणार्थ :—

पिय तन रूप बढ़त चल्यो ऐसे ।
दुतियां चंद कलनिकरि जैसे ।।
जुबन-राज जब उरपुर लयो ।
सैसव-राव जघन बन गयो ।।
अरन लगे तब दोऊ नरेसा ।
छीन पर्यो तब तिय-मधि देसा ।।

कैसा उत्कृष्ट उदाहरण है। कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त रूप से समस्त वर्णन बड़ी कुशलता से कर डाला है।

नायक-नायिका के मिलन एवं उनकी रति-क्रीड़ाओं का भी वर्णन कवि ने अत्यन्त सुरुचि के साथ किया है। इस प्रकार के वर्णन शृंगार-रस का प्राण होते हैं। उदाहरण के लिये:—

प्रथम समागम लज्यति तिया ।
अंचल पवन सिरावति दिया ।।
दीप न बुझहिं बिहंसि बर बाला ।
लपटि गई पिय उरसि रसाला ।।

अतः स्पष्ट है कि नन्ददास के काव्य में शृंगार के संयोग पक्ष का अत्यन्त मधुर, सरस तथा सुन्दर चित्रण हुआ है। परन्तु साथ ही शृंगार के वियोग पक्ष पर भी नन्ददास की कला उत्कृष्टता की सीमा का स्पर्श करती-सी दृष्टिगोचर होती है। गोपियों की विरहावस्था का जैसा सूक्ष्म एवं वास्तविक चित्रण नन्ददास ने किया है वह अवश्य ही सराहनीय है। उन्होंने विरह वर्णन को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है। इस कथन की पुष्टि उनके काव्य 'विरहमंजरी' से भली भांति हो जाती है जिसमें काल्पनिक विरह की प्रतिष्ठा की गई है, तथा संयोग शृंगार के रस को परिपक्व करने के लिये संयोग में ही वियोग को प्रदर्शित किया है।

वियोग-पक्ष के चारों प्रकारों—पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण, विप्रलम्भ का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है। उदाहरण के लिये कुछ स्थल लिये जा सकते हैं।

(१) पूर्वराग

कृष्ण नाम जब तें स्रवन , सुन्यो री आली,
भूली री भवन, हौं तो बावरी भई री।
भरि-भरि आवै नैन, चित्त हूँ न परै चैन;
मुखहू न आवै बैन, तन की दसा कुछ
और भई री ।।

गोपी ने जब से कृष्ण का नाम सुना है उसके हृदय में उनके लिये प्रेम उत्पन्न हो गया है उसे चैन नहीं मिलता और न ही कुछ बोला ही जाता है। पूर्वानुराग का कैसा सुन्दर चित्रण कवि ने शब्दों द्वारा चित्रित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) **मान** :—नन्ददास अपने काव्य में राधा के मान का वर्णन करते नहीं अघाते। इस विषय में उन्होंने अनेक सुन्दर पदों की रचना की है। 'मानमंजरी' नामक ग्रन्थ में उन्होंने राधा के मान को विभिन्न पहलुओं से चित्रित किया है। 'मानमंजरी' में एक विशेषता यह भी रही है कि नन्ददास ने जिन-जिन शब्दों को लिया है उन सब का सम्बन्ध राधा के मान से है। जैसा कि रचना के आरम्भ में वह लिखते हैं :—

गूंथनि नाना नाम को, अमर कोष के भाय।
मानवती के मान पर, मिले नाम सब आय।।

राधा के मान का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण अवलोकनीय है :—

दौरी दौरी आवत मोंहि मनावत,
दाम खरचि मनो मेल लई री।
अंचला पसारि के मोंहि खिजावत,
तेरे बबा की हौं चेरी भई री।
जारी जा सखी भवन आपुनें,
लाख बातु की एकु कई री।
'नन्ददास' प्रभु क्यों नहीं आवत,
उन पांयन कछ्छ मेंहदी दई री।

मान का कितना सजीव चित्रण कवि ने हमारे सम्मुख उपस्थित किया है।

(३) **प्रवास** :—प्रवास विरह को कवि ने अलग से न लेकर स्वयं रचित विरह के चार प्रकारों—प्रत्यक्ष-विरह, पलकांतर विरह, वनांतरविरह और देशान्तर विरह के अन्तर्गत ही लिया है। यह 'विरहमंजरी' में कल्पित कर लिये गये हैं।

इसी प्रकार विप्रलम्भ शृंगार के भी अनेक उदाहरण हमें नन्ददास के काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। इसके अन्तर्गत बारहमासा तथा षड्ऋतु वर्णन मिलता है जिसमें ऋतुओं के द्वारा नायिकाओं की विरह व्यथा को अधिक तीव्रता प्रदान की गई है। बारहमासा में अत्यन्त मार्मिकता दृष्टिगोचर होती है ऋतुएं क्रम-क्रम से आती हैं और नायिका की विरह वेदना को उदीप्त करती हुई चली जाती हैं। विरहणी नायिका प्रिय मिलन के लिये अधिक उत्कंठित हो उठती है। इस विरह-ज्वाला के कारण गोपियों में आत्मनिवेदन, दीनता, वेदना दुःख कष्ट तथा ऐसे ही अन्य भावों का उदय हो जाता है जिसको वे लोकलाज के कारण छिपा भी नहीं पातीं।

विरह की अधिकता होने के कारण नन्ददास के काव्य में विरह की दसों दिशाओं के विस्तृत वर्णन भी सुगमता से ढूंढे जा सकते हैं।

प्रिय से मिलन की आशा लिये हुए गोपियां निरंतर प्रतीक्षा में रत रहती हैं। उनके न आने के कारण अथवा न मिलने के कारण उनके मन में अनेक चिन्ताएं उभरने लगती हैं। गोपियां कृष्ण की स्मृति में स्वयं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर–बार तथा [illegible] को भी विस्मृत कर देती हैं। उनकी दशा अद्भुत हो जाती है। उद्वेग के कारण नायिका रात दिन बेचैन रहती है तथा कृष्ण के वियोग में अनेक प्रकार के प्रलाप करती हैं। नन्ददास के भ्रमर गीत में यह प्रलाप बहुतायत से मिलते हैं। अपने मन के भावों को किस प्रकार प्रकट करती है। इसका स्पष्टीकरण भ्रमरगीत में मिल जाता है।

रासपंचाध्यायी में गोपियां उन्माद की अवस्था में उन्मत्त की भांति बन बन भटकती हैं और श्रीकृष्ण की खोज करती हैं। श्रीकृष्ण के गुणकथन करने में कभी थकती नहीं ज्यों-ज्यों उनके गुणों का वर्णन करती जाती हैं उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय होती जाती है। यहां तक कि जड़ता की अवस्था में :—

नैन तें जलधार, हार धोवत धर धावत।
भँवर उड़ाइ न सकति, बास बस मुख डिग आवत ॥

उनको अपनी भी सुधि नहीं रहती यहां तक कि वे मुख पर सुगन्धि के कारण मंडराते हुए भंवरों को उड़ा सकने में भी असमर्थ हो जाती हैं और अन्त में बिलखती हुई मूर्छित तक हो जाती हैं। प्रेम की अतिशयता के कारण सुध-बुध खो देती हैं। प्रेम विह्वल गोपियों की यह अवस्था अत्यन्त मार्मिक एवं स्वाभाविक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्ददास ने शृंगार-रस की निष्पत्ति रीति कवियों की भांति ही की है। शृंगार के अन्तर्गत आने वाले सभी भावों का चित्रण नन्ददास ने अद्भुत ढंग से तथा सरसता पूर्ण किया है। अतः शृंगार रस के चितेरे कवि नन्ददास ने शृंगाररस का पूर्ण परिपाक अपने काव्य में अत्यन्त सुन्दरता के साथ किया है। उपरिलिखित लक्षणों के अतिरिक्त उन्होंने नायिका के हाव-भावों और हेला का चित्रण भी किया है। वे स्वयं रूपमंजरी में लिखते हैं :—

रसमय सरसुति कै पग लागौ।
अस अक्षर धो इहि बर माँगौ।
सुन्दर कोमल बचन अनूठे।
कहत सुनत समुझत अतिमीठे।
नाहिन उघरे गूढ़ न ऐस।
मरहठ देस-वधू कुच जैसे।

इससे उनकी शृंगारिकता स्पष्ट लक्षित होती है।

अतः स्पष्ट है कि नन्ददास के काव्य में रीति अथवा शृंगार का शास्त्रीय ढंग से अध्ययन करना कठिन नहीं है। अपितु उन्होंने शृंगार के दोनों पक्षों का अत्यन्त मार्मिक सरस एवं हृदयग्राही चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। विप्रलम्भ शृंगार का महत्व नन्ददास ने अधिक प्रतिपादित किया है। यही कारण है कि उनकी गोपियां विरह वेदना की अग्नि में अधिक जलती हैं। उन्हें संयोग सुख रास क्रीड़ा के समय अथवा अन्य लीलाओं में

(शेष पृष्ठ १०० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर का विरह वर्णन

O

अनीता तिवारी

संयोग की अपेक्षा वियोग-शृंगार को अधिक उच्च स्थान दिया गया है क्योंकि जहां संयोग में प्रिय-सान्निध्य से प्राप्त सुख हृदय की अनेक सात्विक-वृत्तियों को तिरोहित किये रहता है, वहां वियोग उन्हें उद्बुद्ध कर भावों के प्रसार के लिये समस्त विश्व का क्षेत्र खोल देता है। संयोग में प्रेमी युगल एकांत चाहते हैं, उन्हें अन्य की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं रहती, पर वियोग में उनकी आत्मा का प्रसार हो जाता है और वे प्राणि मात्र के साथ ही नहीं, जड़ पदार्थों के साथ भी तादात्म्य स्थापित करते हैं। वियोगी व्यक्ति अपनी स्थिति को भूल कर उस सामान्य-भावभूमि पर आ जाता है जहाँ से उसकी-दृष्टि प्रत्येक छोटी-मोटी वस्तु की सत्ता पर पड़ती है। उसके हृदय की अनुभूति को रेचन का साधन न मिलने के कारण घनीभूत और तीव्र होती चली जाती है। समस्त संसार में उसे उसका प्रिय ही दीख पड़ता है। इसी कारण सहृदय कवियों ने संयोग की अपेक्षा वियोग को ही अधिक महत्त्व दिया है। वियोग वह सात्विक अवस्था है जिसमें मानव हृदय से दुराव का आवरण हट जाता है और वह अपने स्वाभाविक निर्मल रूप में उक्तियों के साथ लिपटा चला आता है। पशु पक्षियों और लता-पादपों के साथ भी संबंध जोड़ने की प्रेरणा देने वाला यह भाव धन्य है। इसी दशा में कालिदास के यक्ष ने अपनी प्रियतमा को संदेश भेजने के हेतु आषाढ़ के प्रथम मेघ को रोक लिया, जायसी की रूपगर्विता नागमती ने भौंरे और काग के हाथों प्रिय को "संदेसड़ा" भेजने का विचार किया और तुलसी के राम 'खग मृग' और "मधुकर श्रेणी" से सीता का पता पूछते फिरे। शृंगार को रसराजत्व प्रदान करने वाला तत्त्व वियोग ही है क्योंकि इसमें संयोग जन्य सुख के सदृश उथलापन नहीं रहता, अपितु अनुभूति की गहनता रहती है।

सूर के विरह-काव्य का आधार बहुत सूक्ष्म और साधारण है। कृष्ण गोकुल से मथुरा चले गये हैं। अक्रूर उनको लेने आये, उसी समय से ब्रज में हलचल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मच गई । विरह का आभास मिल गया । गोपियां बिलखने लगीं । यशोदा बार-बार पूछती—

'यशोदा बार बार यों भाखै
है कोउ ब्रज में हितू हमारो,
चलत गोपालहिं राखै ।'

किन्तु विकलता का और दौड़भाग का कोई भी परिणाम नहीं निकला । कृष्ण मथुरा चले ही गये और गोपियों को अत्यंत विरह दे गये । ब्रज को सूना ही नहीं, वरन् उजाड़ गये । आलोचकों का कहना है कि गोपियों और ब्रजवासियों का यह दीर्घ विरह-उत्ताप अस्वाभाविक है । कृष्ण गोकुल नहीं आए तो गोपियां मथुरा जा सकती थीं । कितनी उपहास्यास्पद युक्ति है कि समस्त गोकुल मथुरा पर आक्रमण कर दे । वियोग वियोग ही है, चाहे वह क्षणिक हो या अनंत, प्रियतम कहीं समीप ही छिपा हो या दूर । प्रेमाप्लावित हृदय में विरह के तूफ़ान से विक्षोभ उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है । प्रिय के चले जाने पर यह निश्चय कि न जाने अब कभी मिलन होगा या नहीं, विरह की पूर्ण अनुभूति के लिये पर्याप्त है, उसमें काल व देश का हस्तक्षेप उपयुक्त नहीं जंचता । रास की चरमावस्था में संयोग की मधुरतम अनुभूति में वियोग क्षण भर के लिये ही सही क्या असह्य नहीं होगा ? प्रेम से अधिक संवेदनशील कोई दूसरा भाव होता ही नहीं । वह प्रेमी की पीठ फिरना भी सहन नहीं कर सकता, स्थानांतर तो बहुत बड़ी बात है ।

सूर के विरह-वर्णन में हमें तीन प्रकार के पात्र मिलते हैं । एक हैं माता-पिता दूसरी हैं गोपियां और तीसरी है राधा।

अक्रूर जिस समय से कृष्ण को मथुरा ले जाने की बात कहते हैं उसी समय से यशोदा की विकलता अत्यंत तीव्र है — वह पहिले तो अक्रूर को ही समझाती है न तो ये कृष्ण राजसभा के शिष्टाचार ही जानते हैं और न मथुरा की बातों से ही परिचित हैं ।

"सूरदास स्वामी ए लरिका, इन कब देखें मल्ल अखारे" वे वहां जाने के योग्य नहीं किंतु अक्रुर तो क्रूर हो गये । अंधेरा घिरता चला आ रहा है, यशोदा की बेबसी बढ़ती जा रही है । कौन सुनता है उसकी पुकार ? कृष्ण जाने को तत्पर हो गये । यशोदा कह उठती है ।....

मोहन नेक बदन तन हेरो.. ।

माता के भग्न हृदय की पीड़ा इन व्यावहारिक शब्दों के पीछे झांक रही है । यशोदा जिस मातृत्व गर्व में फूली नहीं समाती थीं, उसी मातृत्व गर्व की समाधि स्वयं यशोदा ही बन गई । उस भोली यशोदा को यह क्या पता था कि किसी दिन भग्न हृदय से उसे यह संदेशा भी भिजवाना पड़ेगा

"संदेसो देवकी सों कहियो
हों तो धाय तिहारे सुत की दया करत ही रहियो"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु गोपियों के प्रेम की अवस्था कुछ और है उनके प्रेम में कृष्ण का समस्त रूप सामने उभरा हुआ है । उनके भावों की कोई सीमा नहीं । गोपियों के इस विरह की सूर में हमें दो अवस्थाएं विशेष उग्र मिलती हैं । एक प्रतीक्षा की दूसरी निराशा की । उद्धव के ब्रज आगमन से पूर्व तक की अवस्था प्रतीक्षा के विरह की अवस्था है, उसके बाद निराश विरह की ।

कृष्ण के वियोग में गोपियों की दशा दयनीय हो गई । उनके दिन कृष्ण की क्रीड़ाओं के वर्णन में ही व्यतीत होते हैं । ब्रज में सब कुछ पहिले की ही चीज़ें हैं परन्तु फिर भी वह पहले का ब्रज नहीं । जब ब्रजपति ही नहीं तो ब्रजबालाओं का ब्रज भी सूना है । उन बेचारियों के औसान ही नहीं बनते—

"सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु फुरत नहीं औसान

गोपियां कृष्ण के विरह में व्याकुल हैं । उनकी मुरली मधुर तान सुनने को बावली हैं पर कृष्ण के बिना मुरली कौन सुनावे । उनके बिना ब्रज का सब कुछ सूना है । कृष्ण की मुरली फिर बजी ही नहीं —

माई बहुरि न बाजी बेन

मानव हृदय के भावों का प्रकति के साथ सभी भारतीय कवियों ने सामंजस्य स्थापित किया है । वह मनुष्य के सुख-दुख में हंसती और रोती है । पाश्चात्य आलोचक चाहे इसे Pathetic fallacy कह कर अनुपयुक्त ही मानें परन्तु जड़ और चेतन जगत की एक ही ब्रह्म से उत्पति मानने वाले भारतीय मनीषी, तो उनमें अभेद देखते ही हैं । वही कारण है कि वियोगिनी गोपियों को यमुना नदी भी कृष्ण के वियोग ज्वर से काली पड़ी हुई दीख पड़ती है —

देखियत कालिंदी अति कारी ।

परंतु मधुवन अब भी हरा-भरा खड़ा है । वही मधुबन, जिसने गोपी-वल्लभ की अगणित क्रीड़ाओं का साक्षात्कार किया था, जिसके निकुंज कृष्ण की वंशी के मधुर स्वर के साथ कामिनी कलकण्ठों से निर्गत कोमल ध्वनियों से गूंजते रहे थे, जिसके हृदय में रासकर्त्ता मोहन के पद-चिह्न आज भी बने हुए हैं, कृष्ण के वियोग में गोपियों का साथी न बना । साथी वही है जो दुख में साथ दे, सुख में तो कोई भी साथ दे सका है । मधुवन की यही विषमता गोपियों को क्षुब्ध कर देती है और वे उसे कोसने लगती हैं —

"मधुबन तुम कत रहे हरे ?
विरह वियोग स्यामसुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ।।"

जो नैन प्रेम के प्रवर्त्तक थे, जिनके उत्पान के कारण गोपियां कृष्ण के प्रेम पाश में बद्ध हुई, उनकी भी वियोग में सावन-भादों की मेघ घटाओं के समान दशा हो गई है । मेघ तो कुछ देर के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुक भी जाते हैं पर गोपियों के नैन निशि-दिन बरसते हैं --

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहति बरसा रितु हम पर जब तै स्याम सिधारे ।।

तभी तो इन नैनों से बादल भी हार गये

"सखी इन नैननि तैं घन हारे ।
बिनहीं रितु बरसत निसि बासर सदा मलिन दोउ तारे

वियोग में उनकी विषम स्थिति और भी विडम्बनापूर्ण उस समय हो जाती है जब कृष्ण की 'पाती' आती है। वे अपने प्यारे के पत्र को पढ़ने के लिये व्यग्र हो उठती हैं। पर हाय रे ! यह पाती भी विरह की काँती बन जाती है, छुरी बन जाती है। दुःख का उद्वेग और बढ़ जाता है-- अवस्था यह होती है कि--

नैन सजल कागद अति कोमल कर अंगुरी अति ताती ।
परसों जरैं विलोकैं भीजें दुहू भांति दुःख छाती ।

सूर का वियोग-वर्णन हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। 'भ्रमर गीत' में गोपियों के तर्क के सामने उद्धव भले ही क्रुद्ध उत्तर दे सके पर उनके प्रेम विह्वल अटपटे वचनों से उन्हें भी हार माननी पड़ी। उनकी प्रेम रसधारा में उद्धव के ज्ञान की गुरु गठरी न जाने कहां वह गई ? इस प्रसंग में गोपियों की अन्तर्दशा का जैसा वर्णन सूर ने किया है, अन्यत्र दुर्लभ है।

कंस का निमंत्रण प्राप्त कर कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले गये। वहां कंस का वध कर उन्होंने उग्रसेन को राज्य दिया। कंस की दासी कुब्जा का प्रेमभाव देख कर उस पर कृपा-दृष्टि की और मथुरा में ऐसे रमे कि ब्रज लौटे ही नहीं। इधर जब ब्रजबासियों की कृष्ण के वियोग में बुरी दशा हो गई तो कृष्ण ने अद्वैत का राग अलापने वाले ज्ञानी उद्धव को गोपियों को समझाने के लिये भेजा और उन्हें योग-साधना का संदेश दिया। उद्धव को योग संदेश-वाहक के रूप में भेजने का विशेष कारण था। उन्हें अपने ज्ञान का बड़ा अहंकार था, वे कृष्ण के प्रिय थे, भला भगवान् अपने प्रिय को अहंकार जैसे घातक शत्रु से आक्रांत कैसे देख सकते थे ? बस उन्होंने उसको दूर करने के प्रयोजन से उन्हें गोपियों के समीप भेज दिया।

उद्धव ने कृष्ण का संदेश और पाती गोपियों को दी।

कह्यौ तुमको ब्रह्म ध्यानन, छोड़ि विषय विकार।
सूर पाती दई लिखि मोहि पढ़ौं गोप कुमारी

प्रिय-प्रेषित वस्तु के दर्शन से प्रेमी के हृदय में प्रेम का स्रोत फूट पड़ता है और वियोगावस्था में घनीभूत अनुभूति सात्विक भावों के रूप में विकास पाती है। कृष्ण की पत्रिका को प्राप्त कर गोपियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निहाल हो जाती हैं और प्रेम के अतिशय संचार के कारण उद्धव की पहली बात (क्यौं तुम को ब्रह्म ध्यावन) को भूल जाती हैं। कृष्ण की पाती उनके लिये अपूर्ण सम्पत्ति है, जिसे प्राप्त कर वे फूली नहीं समाती। भवसागर का मंथन करने वाले सूर ने गोपियों की इस मानसिक दशा की अभिव्यक्ति के लिये कैसे प्रभावपूर्ण अनुभावों की कल्पना की है —

"निरखती अंक स्यामसुन्दर के बार बार
लकति छाती
लोचन जल कागद-मसि मिलि कै ऐते गई
स्याम स्या की पाती"

और बाद में कृष्ण की याद में विकल गोपियों के कण्ठ से अनायास ही निकल पड़ता है कि—

प्राणनाथ तुम कबहिं मिलौंगे,
सूरदास प्रभु बाल-संघाती ।"

गोपियों ने इतने संदेश भेजे कि मथुरा के कूप संदेशों से भर गये। जिस पथिक को वे उधर जाता देखतीं, उसी के द्वारा संदेश भी भेजतीं। संदेश ले जाने के डर से पथिकों ने उस मार्ग से जाना ही छोड़ दिया। इतने पर जब कृष्ण को उनकी याद आई तो उन्होंने स्वयं आने का कष्ट वहन न कर पत्रिका भेज दी, जिसने वियोग में योग का संदेश देकर संयोग की आशा पर ही पानी फेर दिया। ऐसी पत्रिका का क्या किया जाय ?

ऊधौ कहा करें ले पाती ।

जौ लौं मदनगुपाल न देखैं विरह जरावत
छाती"

उन्हें भला निर्गुण से क्या लेना ? उनके कृष्ण सलामत चाहिएं —

रहु रे मधुकर मधु मतवारे ।
कौन काज या निरगुन सौं चिर जीवहु
कान्ह हमारे ।।

अंतिम शब्दों में मानो गोपियों का निरसंचियत प्रेम मुखरित हो उठा है। प्रेम की उच्च अनुभूति में स्वार्थ, वासना आदि की गंध तक नहीं रहती, केवल प्रिय के हित की ही कामना होती है, वह चाहे जितना निष्ठुर हो, चाहे जितना अन्याय करे, चाहे सुधि तक भी न ले परन्तु प्रेमी यही चाहता है ।

उद्धव कृष्ण के मित्र हैं, यह संबंध भावना गोपियों को उनसे चुटकी लेने और उन्हें बनाने के लिये मुखरित कर देती है। कृष्ण को छोड़ कर निर्गुण को भजने का उपदेश देने वाले उद्धव पर परिहासपूर्ण डांट डालती हुई वे कहती हैं —

"जैसी कही हमहिं आवत ही, औरनि कहि
पछिताते
अपनो पति तजि और बतावत, मेहमानी
कछु खाते"

अपने पति को त्याग कर और का उपदेश देने वाले व्यक्ति को क्या नारी सहन कर सकती है ? ऐसे व्यक्ति की पूजा हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं । सूर के प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिहास के विषय में स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—

"प्रेम के जिस हास-क्रीड़ामय स्वरूप को सूर ने लिया है, विप्रलम्भ दशा के अश्रु और दीर्घविश्वास के बीच-बीच में भी बराबर उसकी क्षणिक और क्षीण रेखा झलक जाती है।"

गोपियों के हृदय टूट रहे हैं। विरह विषय की ज्वाला से ब्रज जल रहा है। पथिकों ने वह मार्ग छोड़ दिया।

पशु-पक्षी भी पलायन कर गये। गोपियां हैं और उनका ब्रज है-उजाड़ सुनसान, भयावह। तभी उद्धव गोपियों को समझाने के लिये आते हैं, निर्गुण और योग का संदेश सुनाने। पर उद्धव का संदेश गोपियों के जले पर नमक छिड़क देता है। उनकी पीड़ा कटाक्ष—व्यंग-उपहास में परिणत हो उठती है। वे उद्धव को कृष्ण सखा समझ कर उनका बड़ा आदर करती हैं। बड़े संयम से बात करने की चेष्टा करती हैं, पर क्या करें विवश होकर कुछ प्रेमोन्मादग्रस्त कहनी-अनकहनी भी कह जाती हैं। किन्तु उनकी समस्त बातों का सार यह है कि—

ऊधो मन न भए दस बीस
एक हुतों सो गयौ स्याम संग को अपराधैईस"

यहां इन्हीं मुखर गोपियों में किंचित् राधा की अवस्था भी तो देखिए —

अति मलीन वृषभानु कुमारी
हरि स्रमजलु अन्तरतनु भीजें ता लालच
न धुआवति सारी

जब गोपियों को पता चला कि कृष्ण मथुरा छोड़ कर द्वारिका चले गये तब उनके विरह की दशा का क्या पूछना? वे तो बेचारी अनाथ ही हो गईं। सभी गोपियां कह उठीं —

नैना भये अनाथ हमारे।

मृतकों को मार कर कृष्ण दूर चले गये। गोपियों को अनंत निराश विरह की थाती सौंप गये। सूर जैसे महाकवि ने अपनी पूरी शक्ति से इस वियोग की प्रत्येक दशा के साथ हृदय की पीड़ा का चित्र देना चाहा है। वह चित्र अत्यंत उत्कृष्ट हुआ है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि व्यथा घनीभूत होते-होते एक स्तर पर पहुंची है, उससे भी ऊपर उठी है और कवि के शब्द उसको प्रकट करने के लिये स्फुट संकेत जैसे रह गये हैं। जब सूर की यह दशा है तो और कौन विरह का यथार्थ अंकन कर सकता है।

(पृष्ठ ९४ का शेष)

समय ही मिलता है। अतः उनमें शृंगार, रति एवं माधुर्य भावना के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। शृंगार रस के चित्रकार के रूप में नन्ददास सफल कवि कहे जा सकते हैं।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रा हमारी भी सुन लीजिए

बरसात के दिनों में जूते भीग गए हों तो उन्हें कपड़े से रगड़ कर सुखाने का कष्ट न करें। उनमें रद्दी अखबारों के टुकड़े डाल कर रख दें। वे स्वयं ही सूख जाएंगे। इससे आपका समय बचेगा।

* * * * * *

कागज़ के फूल अगर गंदे हो गए हों तो उन्हें एक बड़े लिफ़ाफे में डाल कर थोड़ा नमक छिड़क देवें फिर लिफ़ाफा बंद करके उसे अच्छी प्रकार से हिलाएं कुछ देर के बाद जब आप फ़ूल निकालेगें तो वे पहले से साफ़ दिखाई देंगे।

* * * * * *

अगर शीशे के गिलास चटक जाएं तो उसे फैंकिए मत। उस पर आयल पेंटिग कर लीजिए। यह एक सुन्दर फूलदान का काम देगा।

* * * * * *

बरसात के दिनों में अक्सर मक्खियां तंग करती हैं। इसलिए फर्श को फिनायल या डिटोल वाले पानी से धोएं मक्खियां नहीं आएंगी।

* * * * * *

बाल धोने से दो या तीन घंटे पहले तेल की अच्छी तरह मालिश करवाएं। बाद में जब आप बाल धोएंगी तो बाल बहुत मुलायम और साफ होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

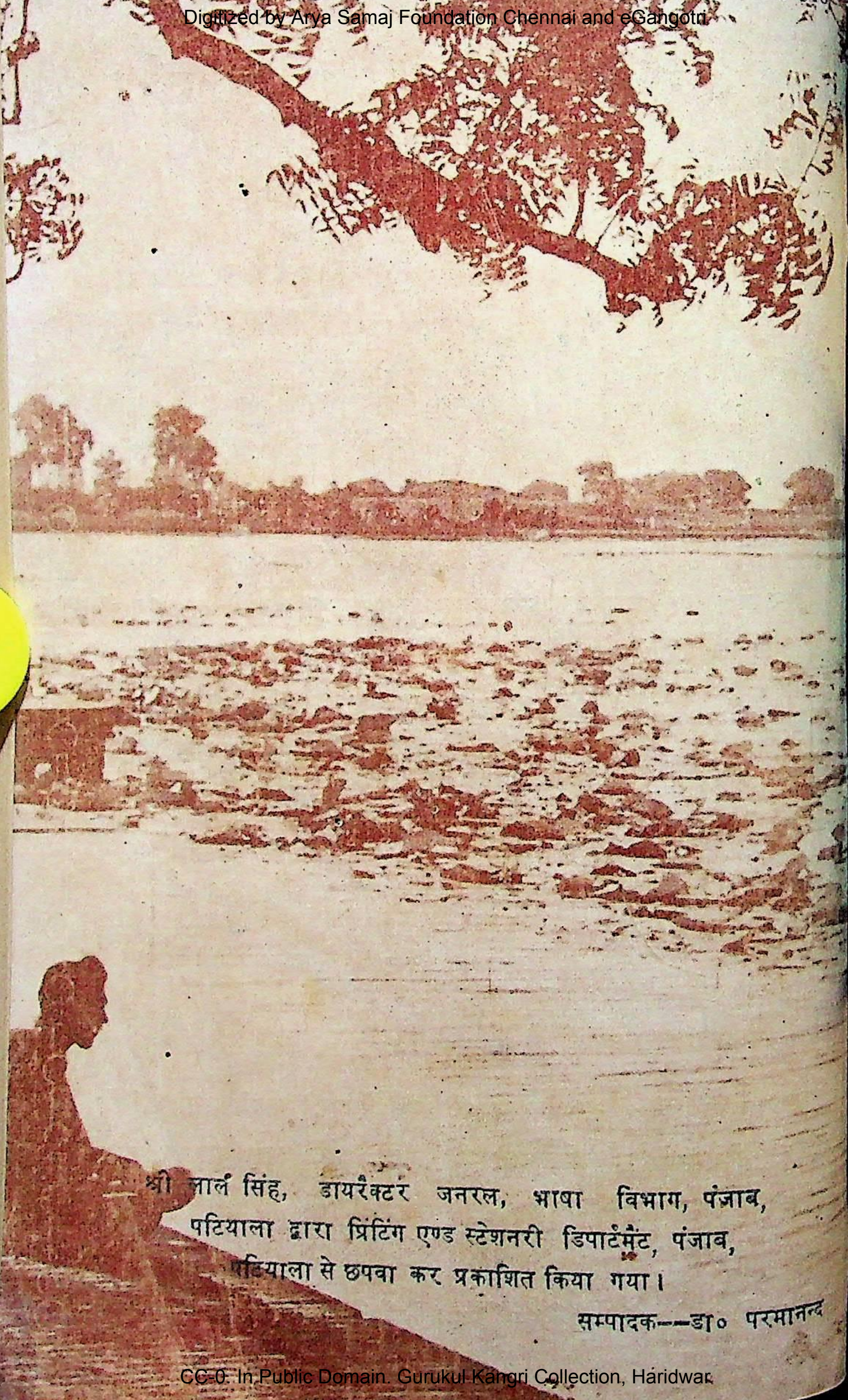

श्री लाल सिंह, डायरैक्टर जनरल, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला द्वारा प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी डिपार्टमैंट, पंजाब, पटियाला से छपवा कर प्रकाशित किया गया।

सम्पादक——डा० परमानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

सप्त सिन्धु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो व्यक्ति अपना स्वामी (इन्द्रियजित) नहीं वह कभी स्वतन्त्र नहीं ।

इपिक्टेटस

स्वाधीनता विकास का प्रथम चरण है ।

—विवेकानन्द

मानव के लिए क्रूरतम अभिशाप है—पराधीन रहना

सु: बोस

स्वतन्त्रता केवल अनुशासन की शृंखलाओं द्वारा प्राप्त की जा सकती है ।

—म: गांधी

मानवात्मा का संगीत स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर होता है ।

—सु: बोस

सत्य से स्वाधीनता मिलती है, केवल यही बात ठीक नहीं है । उसके साथ-साथ यह भी ठीक है कि स्वाधीनता हमें सत्य प्रदान करती है ।

—रवीन्द्र

सत्य एक विशाल वृक्ष है, उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है, त्यों-त्यों उसमें अनेक फल आते हुए नज़र आते हैं; उनका अन्त ही नहीं होता ।

—म: गांधी

पवित्रता के फूल मन के बग़ीचे में ही खिलते हैं ।

—नेहरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त सिन्धु

(मासिक प्रकाशन–सितम्बर–१९६६)

१.	रेखाचित्रकार आचार्य विनय मोहन शर्मा	डॉ० कैलाश चन्द्र भाटिया, हिन्दी विभाग मु० वि० वि०, अलीगढ़	१
२.	ईश्वर भक्ति का विकास	डॉ० गोपी नाथ तिवारी, विन्ध्यवासिनी नगर, गोरखपुर (उ० प्र०)	८
३.	शान्ति पर्व में राजनैतिक सिद्धान्त	प्रो० देवीदत्त भट्टि, संस्कृत विभाग, राजकीय शिक्षण महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र	२४
४.	व्यावहारिक जीवन के परिपेक्ष में कबीर	श्री साधुराम शारदा, पंजाबी विभाग, पंजाब, पटियाला	२८
५.	व्यास जी—एक बहुमुखी प्रतिभा	श्री नन्द लाल निर्दोष', मकान नं० २६१ अर्जुन नगर, गुड़गाँव	४०
६.	कहावत–उसकी विशेषताएँ	श्री शिवण कृष्ण रेणा, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (पँजाब)	४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७.	अभिज्ञान शाकुन्तलम् में चित्रित पशु-पक्षी	प्रो० इन्द्र देव, महेन्द्रा कालेज, पटियाला	५०
८.	कला कला के लिए अथवा लोक हित के लिए	कुमारी मोहिनी ओबराय हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला	६२
९.	गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य	संगोष्ठी विवरण	७२
१०.	आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रेम-संचार	श्री राम कृष्ण दास गोयल, जिला भाषा अधिकारी संगरूर (पंजाब)	७८
११.	आवश्यक सूचना		८३

सम्पादक—

डॉ० परमानन्द मूल्य—५० पैसे

डायरैक्टर, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला ।

परामर्श समिति

श्री कृष्ण मधोक (सहायक निदेशक, अनुवाद)

श्री त्रिलोकी नाथ रञ्जन (सहायक निदेशक, कोश)

श्री ओम् प्रकाश भारद्वाज संयोजक (सहायक निदेशक, विकास)

श्री गुरुदत्त शर्मा (सहायक निदेशक, अनुवाद)

श्री हरिचन्द पाराशर (सहायक निदेशक, अनुवाद)

हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखाचित्रकार आचार्य विनयमोहन शर्मा

डा० कैलाश चन्द्र भाटिया

आचार्य विनयमोहन शर्मा हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ साहित्यकारों में से हैं। आलोचना के क्षेत्र में तो आपने 'साहित्य कला', कवि प्रसाद, आंसू तथा अन्य कृतियों, 'साहित्यावलोकन' आदि ग्रन्थों से अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। 'हिन्दी को मराठी संतों की देन' शोध प्रबन्ध हिन्दी-शोध की परम्परा में नई दिशाएँ खोलता है। 'साहित्य, शोध, समीक्षा' तथा 'दृष्टिकोण' आपके विवेचनात्मक निबन्धों के संग्रह हैं। प्रोफेसर, निबन्धकार, आलोचक आदि रूपों में तो कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष आचार्य विनयमोहन जी को सभी जानते हैं पर रेखाचित्रकार के रूप में डा० शर्मा को कम ही जानते हैं। अभी हाल में आपके "रेखा और रंग" पुस्तक का द्वितीय संस्करण शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी लि० आगरा से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में चौदह रेखाचित्र संग्रहीत हैं। प्रथम संस्करण में एक रेखाचित्र कम था, इस संस्करण का प्रकाशन बहुत समय पूर्व नागपुर के प्रज्ञा प्रकाशन से हुआ था। अधिकांश रेखाचित्र बहुत पहले ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे जिसकी सूचना आचार्य जी ने १५ सितम्बर, १९६४ के पत्र द्वारा इस प्रकार दी "रेखाचित्रों में 'नजर नसाय गई मालिक' संभवत: ४१–४२ में विशाल भारत में, 'वह वृक्ष ! और वह चिड़िया' नागपुर से प्रकाशित आलोक में (४३–४४), "जग्गू काका" हैदराबाद की कल्पना में (५३–५४), "ब्लैकी" 'मध्य प्रदेश संदेश' के १९५५ के किसी अंक में, 'इला' विशाल •भारत (१९४४) के किसी अंक में छप चुके हैं।'

पुस्तक का रंगीन आवरण अपने में सार्थक है। आरम्भ में सात पृष्ठों में रेखाचित्र का शास्त्रीय विवेचन है जो संक्षिप्त होते हुए भी मौलिक है, अन्य विधाओं से रेखाचित्र का अन्तर भी स्पष्ट किया गया है।

'रेखा और रंग' के रेखाचित्रों में आचार्य जी ने सभी शैलियों में चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत किये हैं। पात्रों का वाह्यांकन तो है ही उनके 'भीतर की झलक' भी है।

'डवली बाबू' शीर्षक से उनका पहला रेखाचित्र नर्सरी में काम करने वाले एक व्यक्ति का है "जिनका कद न ऊंचा, न ठिगना, मज़े के मझोल आदमी हैं। न मोटे हैं, न पतले। आंखें भी मझोली ही हैं, कपोलों में फंसी हुई पीली-पीली-सी। दाँत विरल हैं। उनका कथई रंग पान और तम्बाकू के अतिरेक की शहादत दे रहा है। धोती बाबूआना ढंग की पहने हुए हैं पर मैल खाने से बादामी रंग की हो गयी है। पैरों में कौकणी चप्पल है, जो काफ़ी मोटी और मजबूत है। और हां, काले धारीदार कुरते के ऊपर बटन-विहीन खाकी रंग का कोट भी पहने हुए हैं। दाहिने हाथ में एक छड़ी झुलाते हुए वे चले आ रहे हैं।'

दूसरा एक नौकर 'शंकर' पर 'नज़र नसाय गई मालिक' शीर्षक से है। 'एक अधेड़ उम्र का दुबला और लम्बा-सा आदमी अपने दोनों हाथों को जोड़े खड़ा था। शरीर पर एक मैला कुर्ता था, जो कंधों और बालों पर फट कर अपने जीर्ण होने की शहादत दे रहा था। वह घुटनों तक पहुंचन वाली बरसाती पानी के रंग की धोती पहने था। सर पर सिर्फ़ बाल थे और पैरों में बिवाई की दरारें। भाल चन्दन से पुता हुआ था। आँखों में आशा-निराशा। आँख-मिचौनी-सी खेल रही थी।'

तीसरा चित्र वकील साहब 'गदाधर सिंह' का है जिनको मुख सुख के कारण 'गद्दू वकील' से उच्चरित किया जाता है।

चौथे रेखाचित्र 'वह वृक्ष! और वह एक चिड़िया' शीर्षक से है। निर्जीव पदार्थों का भी उतना ही सजीव चित्रण है जितना इससे पूर्व सम्पर्क में आने वालें व्यक्तियों का किया गया है। एक चित्र देखिए,

"खड़ खड़ खड़" सुन पड़ता है। पानी, पत्थर चट्टानों की छाती को चीरता हुआ बहाव ढूंढ रहा है, सतह पर आने के लिये उसे बड़ा श्रम उठाना पड़ता है, इसलिये उसमें 'कल कल' की मस्ती नहीं है। फिर भी उस प्रवाह से आसक्ति है, उस वर्षीले वृक्ष की। वह किनारे पर खड़ा है। न जाने कितनी बार सूरज आग बरसा चुका है। न जाने कितनी बार अमृत चुआ कर, उसे जिला चुका है। वह खड़ा है अपने मारने और तारने वालों को समान भाव से असीसता हुआ, सिर के ऊपर 'भुजाओं' को जोड़े हुए! जब प्रभंजन खीझता है, तो कांप उठता है, घबरा कर चारों तरफ से झुकने लगता है। बिजली चमकती है तो समझता है, कोई वरदान मिलने वाला है, खिला उठता है। तुषार में न जाने कहां से आ जाने वाले कम्पन के दर्द को खुद ही पी जाता है, वह किसी की आंखों तक नहीं पहुंच पाता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस चित्र का कारुणिक अन्त भी द्रष्टव्य है, "वह तारा अब भी आकाश की ओर चहचहाहट सुन कर आंखें फैला देता है । पर वह पक्षी, जिसने कोटर को एक बार बसा कर सूना कर दिया है, दिखाई नहीं देता ! अब उसकी शाखाओं पर हरियाली नहीं रही । पतझड़ के पूर्व ही उसके पत्तों को निपात होने लगा । रोज सवेरे उसके आसपास की धरती भीगी दिखाई देती है । लोग कहते हैं, "मालूम होता है, उस बेवफा पक्षी की याद में यह वृक्ष रात-रात भर आँसू बहाया करता है !"

पाँचवां रेखाचित्र 'जग्गू काका' शीर्षक से पुलिस में नौकरी करने वाले एक व्यक्ति का है । 'उनके कोई संतान नहीं थी। वे थे और उनकी पत्नी थीं घर में गाय-भैंस पली रहतीं । कमरे में तोते का पिंजरा टंगा रहता, पर जब अम्मा उसे उंगली उठा कर कहती' "राम-राम बोलो, बेटा मिट्ठू सीताराम कहो, राम-राम कहो !" तो वह गम्भीर होकर एक-दो बार 'सीताराम-सीताराम' बोल कर फिर "टैं टैं" शुरू कर देता ।

अम्मा को बिल्ली का भी बड़ा शौक था। काका को तंत्र-मंत्र का शौक था । भूत-प्रेत भी वे उतारते थे । उन्हें पेड़ पर कीलते और शीशी में भी उतारते । लेखक के अनुसार 'जग्गू काका की आझाई बड़ी प्रसिद्ध थी । उनका विश्वास ही नहीं, अनुभव भी था कि भूत, चुड़ेल. जिन आदि प्रेतात्माओं का अस्तित्व होता है । पर कमज़ोर मन वालों पर ही उनका विशेष प्रभाव दीख पड़ता है । इनसे बचने के लिये वे लोगों को हनुमान चालीसा और गायत्री के जप का नुस्खा बतलाया करते थे । वे मन्त्र से बिच्छू का विष उतारना जानते थे । शायद ही कोई दिन खाली जाता, जब एक दो बिच्छू के मारे हुए या प्रेत के सताए हुए उनके पास न आते हों । वे अपने इस गुण का पारिश्रमिक नहीं लेते थे । उनका विश्वास था कि जिस दिन उन्होंने हाथ से तांबे का पैसा छुआ कि उनकी विद्या उनके पास से गयी ।'

अगला शब्द-चित्र "ब्लैकी" शीर्षक से एक कुत्ते का है, "वह पूंछ हिलाता हुआ मेरे पास आ जाता और मेरी आंखों में आंखें डाल कर ऊँ-ऊँ, चूं चूं करने लगता है । कभी चित्त लेटकर, सामने के हाथ सिकोड़ कर दायें-बायें होने लगता है । बड़ी ईमानदारी के साथ मेरे घर की रखवाली करता है । रात को ज़रा भी कहीं से आहट पाता है, भौंकने लगता है । सजातीय स्वर को तो दूर से ही सुन कर उसकी जीभ बेहद खुजलाने लगती है । 'भौं-भौं से परेशानी हो जाती है ।' इसमें कुत्ते का भौंकना, रोना, गुर्राना, खेलना सब क्रियाओं का चित्रण है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक शब्द चित्र नागपुर के धरमपेठ में खाली जगह पर झौंपड़ी डाल कर रहने वाले उत्तर प्रदेश के एक ग्रहीर 'कन्हैया' का है। "वह जीते हुए खिलाड़ी की तरह 'हुर्रे हुर्रे' की ग्रावाजें लगाता बकरियों के झुण्ड के पीछे लपका जा रहा है। सिर पर किमचियों ग्रौर पत्तों का बना हुग्रा टोप, हाथ में बांस की गांठदार ग्रनगढ़ छड़ी, शरीर उघड़ा, धोती नितम्बों पर कमर की ग्ररगनी पर चढ़ी। देह की रंगत न डामर सी, न गेहूं सी, कुछ-कुछ मटमैले चने सी। ग्रांखें बिज्जू सी, धंसी सी। नासिका न चीनी-सी न सुग्गे सी, दोनों के बीच सी। ग्रोंठ सूखे, मुख खिड़की की तरह खुले हुए, सिर संन्यासी सा मुड़ा, मूंछ 'क्लीनशेव', ठुड्डी पर कभी-कभी बकरे की दाढ़ी की छटा। चिल्ला रहा है, "ग्ररे ईमू ग्राव ना.....कहां भागी जात हव :. !"

कन्हैया प्रथम महायुद्ध में फ्रांस तक की सैर कर ग्राया है। उसकी बहादुरी का सिक्का सब मानते हैं। कन्हैया के घरेलू जीवन की विस्तृत झांकी डा० शर्मा ने प्रस्तुत की है।

ग्राठवाँ रेखाचित्र एक पूसी बिल्ली का है।

नौवाँ रेखाचित्र हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रहलाद लाज के एक धोबी का है। यह चित्र ग्राज से ४० वर्ष पूर्व के धोबी का है जिसने एक कपड़ा खो जाने पर मरते समय ग्रपने भाई को ग्रादेश दिया था कि साल भर तक पैसा न लेना।

दसवाँ एक दूध वाले बंसी ग्रहीर पर 'ये बंसी हैं' शीर्षक से है। बंसी एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति है, "ठिगनी, थलथली, लम्बोदरी ग्राकृति, निर्मेघ नभ सा रंग, लट्ठे की दुकच्छ घुटनवां धोती, सिर पर मोटे कपड़े की गुंडली, उस पर लोहे का घड़ा, घड़े पर बायां हाथ ग्रौर दायें हाथ में सिर से ऊंची लाठी—ये गमकते चले ग्रा रहे हैं, बंसी ग्रहीर कांशी विश्वविद्यालय के निकट वर्ती चित्तूपुर ग्राम के रहवासी। छात्रावास का कमरा-कमरा झांकते चलते हैं, "दूध, दूध, चही बाबू बाबू ?"

एक बेईमान बाबू पर ग्रहीर की फबती देखिए—'ग्रगर पानी का पैसा पानी हो सकता था तो बेईमान बाबुग्रों की पढ़ाई पर भी तो पानी फिर सकता है।"

ग्यारहवां चित्र 'इला' शीर्षक से है जिसमें ग्राचार्य जी ने काव्यमय भाषा में वर्णन किया है, 'कई दिनों बाद इला मन्दिर की सीढ़ी पर बैठी है। संध्या की ग्रंजन-रेखा उसकी ग्रांखों में नहीं खिचती, उषा की व्रीड़ा उसके कपोलों का ग्रनुसरण नहीं करती। वह चकराई सी, पथराई सी बैठी है। रोना चाहती है, रो नहीं सकती। कहना चाहती है, कह नहीं सकती।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारहवां चित्र सन् १६५० के हैदराबाद स्टेशन पर 'थर्ड क्लास का डिब्बा' शीर्षक से है । डिब्बे के अन्दर का एक चित्र पृष्ठ ७६ से देखिए, "माफ कीजिए" कहता जाता और संभलता तथा गफ़लत करता जाता । जब आंखे खुलतीं तो चारों ओर यह दृश्य दिखाई देता—कोई किसी के चरण पर माथा टेके हुए है, कोई किसी के अंक को परिधान बनाए हुए है कोई किसी के कंधे पर सिर टेके हुए हैं, कहीं दो सिर रह-रह कर टकरा रहे हैं । ऐसा गांधी क्लास में से उतरते समय भी आचार्य जी को काफ़ी परेशानी होती है।

तेरहवां एक अस्पताल में पड़ी हुई रोगिणी का 'तेजस्विनी' शीर्षक से रेखा-चित्र है जिसमें से एक दृश्य चित्र उपस्थित है, "कमरा अनुमानतः दस फुट चौड़ा और पन्द्रह फुट लम्बा है । सामने बन्द जंगले के सहारे जहां दो तस्वीरें रखी हुई हैं, एक तरुण की, दूसरी असि-धारिणी तरुणी की जिस पर फूलों की माला चढ़ी हुई है, जो मुरझाए से जान पड़ते हैं । दरवाज़े के दोनों ओर दो लोहे की खाटें पड़ी हुई हैं।' रोगिणी का रेखांकन इस प्रकार है—उसका शरीर दुहरा है । रंग सांवला है । आंखें बड़ी हैं । नाक में सोने की लौंग है । भौंहों के मध्य न कांच की टिकुली है न सिन्दूर की लाल बिन्दी । इसी तरह माँग भी कंचन रेखा से रिक्त, पर मुख-मंडल तेज से आपूर है । गले तक कम्बल ओढ़े हुए है पर हाथ बाहर निकाले हुए है । दाहिने हाथ के कंधे का भाग पट्टियों से बंधा हुआ है । 'हम गोआ के लिये मरेंगे, गोआ के लिये जियेंगे ।' उन्हीं प्रणधारियों में यह रोगिणी थी—'सुभद्राराय' ।

चौदहवां १६१६ में खंडवा के हाई स्कूल के एक मास्टर का चित्र 'कुठार मास्टर साहब' शीर्षक से है । "वे बन्द गले का पारसी कोट और पतलून पहनते थे । सफेद रंग उन्हें बहुत प्रिय था । सफेद टोप, सफेद पेंट और केनवास के सफेद जूते उनके गोरे शरीर पर खूब फबते थे । शरीर यष्टि लम्बी थी, पर उसे दुबला नहीं कहा जा सकता —अंगों में अनुपात था, आंखों में गजब की आभा थी । उनमें असूया का अभाव था । वे कभी पर-छिद्रान्वेषण न करते, क्रोध से कभी उनकी भौंहों पर बल न चढ़ते ।"

सभी, रेखाचित्रों में आचार्य जी की सरस, सरल तथा प्रवाहमयी भाषा के दर्शन होते हैं । रेखाचित्र अधिकतर महाराष्ट्र के होने के कारण मराठी शब्दों को यत्र-तत्र प्रयोग यथार्थ चित्र खींचने में सहायता देता है, जैसे बाई, कुंडे, गमले, मिलून, साथ-साथ । खोली । कोठरी । हम्माल । कुली । ईमू । इस ओर । बुकरियन । बकरियों को । गर्दी । भीड़ । कहीं-कहीं पूर्वी रूप भी मिलते हैं । लोक भाषा के उदाहरण तो बिखरे पड़े हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दो ठौ ग्राम के बिरवा है । थोड़ा जमींदारी है । भाई है, भौजाई है । मुदा भौजाई से हमारी बनती नहीं है । रमैया की माँ मैके में है। उही का मनिग्राडर भेजत रहत हन ।"

"का कही महाराज । बुढ़ौना बहुतै तंग करता है । खाये का नहीं देत...... कपड़ा-लत्ता नहीं लात......का खांव ? का पहिरौं ? यहि का ऊ मनराखन ग्रहीर ब्रहकावत है.....सादी की बात चलाए है....।" कन्हैया से ।

भाषा को आलंकारिक रूप भी प्रदान किया गया । इससे चित्रों में जान पड़ गई है,

"स्वयं डबली बाबू बच्चों के आगे--आगे सारस-सी डगें धरते हुए बढ़े चले आ रहे थे ।"

"बंगले के पीछे ऊंघती-सी झौंपड़ी में डबलू बाबू वर्षों से रहते थे ।"

'रात जब कृष्णाभिसारिका बनती है रह रह कर सिहरन पैदा होने लगती है ।

भाषा में मोती की तरह सूक्तियों भी भरी पड़ी हैं, जैसे, नींद के मीठे नशे में समाज और प्रकृति के वर्ग-भेद का भान बहुधा नहीं रह जाता ।"

वातावरण को यथार्थ रूप देने के लिये प्रकृति का चित्रण भी पर्याप्त किया गया है, पहले ही पृष्ठ पर 'वन-महोत्सव का दिन था । नन्हीं नन्हीं फुहारें रिमझिमा रही थीं । आज का दिन कजरारे बादलों के साथ कितना मातल, कितना मोहक लग रहा था ! मेरी आंखें कभी अकाश में उड़ने वाले कज्जल-कूटों पर जमतीं, कभी उन पर चढ़ने वाले विशालकाय हाथियों पर और कभी सहसा इन्द्र धनुषी पुल पर।' पूसी के प्रारम्भ में ही, "पूस का महीना जाड़े की रात स-स-स-स दांत बजाने वाली शीत । नागपुर चिलकती धूप के चटकों के लिये प्रसिद्ध है, सर्दी के सीत्कार के लिये नहीं । पर आज तो उसकी प्रसिद्धि पर ही पानी फिरा जा रहा है । उसका विपर्य हो गया है। जिस प्रकार तारों की छाया के पूर्व ही पखेरू फरफर अपने घौंसलों की ओर उड़ कर पंख समेट उनमें समा जाते हैं, उसी प्रकार नगपुरिए भी साँझ होते ही सड़कों को खाली कर घरों में गरमाहट खोजने चले गये हैं ।"

व्यंग्य के छींटे भी बिखरे हुए हैं। इससे भाषा में चुटीलापन आ गया है और चित्र मार्मिक बन गये हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं,

१. स्वराज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् पुराने देशभक्तों और नये राजभक्तों ने इसका नाम 'जवाहर गंज' रख दिया ।
२. कुत्ते के ब्लैकी नाम पर 'मैंने कुत्ते को लोगों पर आतंक जमाने के लिए पाला है और अभी हमारे देश में अंग्रेजी का आतंक है ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. वह मनुष्य पर, जो विजातीय है, अकारण आक्रमण नहीं करता परन्तु स्वजातीयों से अकारण ही लोहा लेता रहता है। ज्यों ही वे उसके सामने पड़ते हैं, सम सामयिक कवियों की तरह उनकी ओर बुरी तरह घूरता, गुर्राता और झपटता है ।

४. जब ब्लैकी जान्हस्टन के पास से नहीं लौटा तो मित्र ने साश्चर्य कहा, "यह तो अजीब बात है! कुत्ता तो ऐसा प्राणी है जो वफ़ादार होता है, जिसने सब परिजनों के यहां तक कि अर्धांगिनी के त्याग देने पर भी युधिष्ठिर का अत तक साथ दिया था।"

मैंने हंस कर कहा, "मित्र! वह द्वापर का कुत्ता, धर्म-रूप था। यह कलियुग का कुत्ता, मनुष्य-रूप है।"

शब्द-चित्रों में आचार्य जी के व्यक्तिगत जीवन के संस्मरण भी घुले-मिले हुए हैं। कहीं-कहीं उन्होंने अपना चित्र भी प्रस्तुत कर दिया है। 'उनके भारी भरकम शरीर से मेरी दुबली-पतली हड्डियों का संस्पर्श असह्य हो गया।' (वकील साहब से)

इस प्रकार दिल को छू जाने वाले शब्द-चित्रों और रेखाचित्रों के मेल से उनकी चित्रण कला का स्तर अद्वितीय हो गया है। ब्लैकी का रेखाचित्र है। पहले तथा दूसरे रेखाचित्र के साथ भी चित्र है। शर्मा जी के यह चित्र केरल, गुजरात, महाराष्ट्र में विशेष लोकप्रिय हो चुके हैं। डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने तो 'तमिल' में ही इनका रूपान्तर कर दिया है। इससे इस पुस्तक का मूल्य स्वयं सिद्ध हो जाता है। पुस्तक का समर्पण भी 'नजर नसाय गई मालिक।' शीर्षक रेखाचित्र के पात्र 'शंकर' को सादर सर्मापित किया गया है। आशा है भविष्य में भी हमको आचार्य जी की लेखनी से ऐसे ही जीते जागते चित्र पढ़ने को मिलते रहेंगे।

○ ○ ○

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर भक्ति का विकास

डा० गोपी नाथ तिवारी

भक्ति पौराणिक युग की भव्य देन है – भक्ति का बीज वेदों में है, उपनिषद काल में यह अंकुरित हुआ, पुराणकारों ने इसे स्निग्ध एवं पुष्ट पौदा बनाया और १६वीं १७वीं शताब्दी के भक्ति-युग ने इसे छायादार वृक्ष का रूप दे दिया। भक्ति के सर्वमान्य परिभाषा महर्षि शांडिल्य की है —"भक्ति परानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात् ईश्वर "परानुरक्ति" का नाम भक्ति है। परिभाषा में—ईश्वर और परानुरक्ति प्राण हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में दार्शनिकों ने बहुत विचार किया है।[1] बौद्ध जैन एवं मीमांसा निरीश्वर वादी है। सांख्य दर्शन भी निरीश्वर वादी माना जाता है किन्तु विज्ञान भिक्षु जैसे नवीन सांख्यवादी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारते हैं। विज्ञान भिक्षु ने ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं माना है इनके मतानुसार ईश्वर-प्रकृति या सृष्टि को क्रिया शक्ति देता है वह पूर्ण एवं साक्षी स्वरूप है।[2] नैयायिकों एवं वैशेषिकों की दृष्टि में ईश्वर, सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्ता है। नैयायिकों के मतानुसार वह कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता है साथ ही ज्ञान एवं षडैश्वर्य (आधिपत्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य) सम्पन्न है। वह जीवों को कर्म का फल प्रदान करता है।[3] वैशेषिक उसे कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, अखिल सृष्टि का स्वामी एवं नियंता मानते हैं। पतंजलि के योगदर्शन में ईश्वर का सैद्धान्तिक मूल्य कम है व्यावहारिक अधिक है। योग दर्शन सम्प्रदाय में आगे जाकर ईश्वर को महत्व अधिक मिला और वह नित्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति मान, पूर्ण, सर्वव्यापी, सर्वोपरि

---

१. भारतीय दर्शन—सतीश चट्टोपाध्याय एवं धीरेन्द्र मोहन दत्त; भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याया।

२. (क) प्रवचन भाष्य (ख) सांख्य का व्यक्तित्व विचार (दि सांख्य कन्सैप्शन आफ पर्सनैलिटी) ए० के० मजूमदार।

३. न्याय भाष्य—४–१–२१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मल, निर्विकार, एवं निर्मुक्त, स्वीकृत हुआ। ईश्वर पूर्ण ज्ञान का भण्डार है। उसी की इच्छा से संसार चल रहा है। फलतः वह अन्य जीवों से भिन्न है। यह ठीक है कि सृष्टि की उत्पत्ति प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से होती है। इस संयोग का कर्त्ता ही ईश्वर है। ईश्वर ध्यान का विषय है, बड़ा ही कृपालू है एवं अपने उपासकों के दोषापराधों को दूर करता है।

ईश्वर की स्थिर प्रतिष्ठा करने वाला है वेदान्त। वादरायण व्यास ने उपनिषदों के सूत्रों का विरोध मिटाने के लिये "ब्रह्मसूत्र" का प्रयोग किया। ब्रह्मसूत्रों को सामने रख कर, अनेक आचार्यों ने उसकी व्याख्या की और अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। इन व्याख्याओं से वेदांत के कई सम्प्रदाय बने जिनमें से प्रमुख हैं। ये सभी सम्प्रदाय ईश्वरवादी हैं।

सम्प्रदाय	प्रवर्त्तक	समय	भाष्य का नाम
अद्वैत या निर्विशेषाद्वैत	शंकर	७८८–८२०	शारीरिक भाष्य
भेदाभेद	भास्कर	१०००	भास्कर भाष्य
विशिष्टाद्वैत (श्री वैष्णव-सम्प्रदाय)	रामानुज	११४०	श्रीभाष्य
द्वैत (ब्रह्म सम्प्रदाय)	मध्व	१२३८	पूर्णप्रज्ञ भाष्य
द्वैताद्वैत (सनक सम्प्रदाय)	निम्बार्क	१२५० ई०	वेदान्त पारिजात
शैव विशिष्टाद्वैत	श्री कण्ठ	१२७०	शैव भाष्य
वीर शैव विशिष्टाद्वैत	श्री पति	१४००	श्री करभाष्य
शुद्धाद्वैत	बल्लभ	१४७९–१५४४	अणुभाष्य
अविभांगाद्वैत	विज्ञानभिक्षु	१६००	विज्ञानामृतभाष्य
अचिन्त्यभेदाभेद	बलदेव	१७२५	गोविन्दभाष्य
वैष्णव गौड़ीय संप्रदाय (अचिन्त्य भेदाभेद)	चैतन्य	१४८५–१५३३	

शंकरस्वामी ने ब्रह्म को केवल निर्गुण माना है। सगुण ब्रह्म या ईश्वर जो सृष्टि-कर्त्ता है, मायिक या उपाधिधारी ब्रह्म है और निर्गुण ब्रह्म से निम्न है। विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज ने इसके विरोध में ब्रह्म को केवल सगुण स्वीकार किया। रामानुज के मत में जो निर्गुण शब्द उपनिषदों में प्राप्त होता है, उसका अभिप्राय हेय गुणों की हीनता है। अन्यथा ब्रह्म तो केवल सगुण ही है। यही सगुण ब्रह्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना का विषय है । उपासना में ईश्वर कृपा एवं प्रपत्ति (आत्मसमर्पण) को महत्व प्रदान दिया गया है । द्वैताद्वैत-वादी निम्बार्क की ईश्वर संबंधी कल्पना रामानुज के समान है। निंबार्क के अनुसार ब्रह्म सगुण है । वह प्राकृत दोषों—अविद्या, आस्मिता इत्यादि से विरहित है। आचार्य निम्बार्क ने इस सगुण ब्रह्म को नारायण या कृष्ण नाम दिया । नारायण की शरणागति ही जीव की भक्ति का साधन निंबार्क ने माना है । इसी तेरहवीं शती के दूसरे आचार्य मध्व द्वैतवादी हैं। आचार्या मध्व ने ब्रह्म का रूप साक्षात् विष्णु को माना । वह गुण सम्पन्न या सगुण है। भगवान् एवं भगवान् के अवतारों में भेद करना अनुचित है । विष्णु की माया लक्ष्मी हैं । ध्यान को भक्ति का श्रेष्ठ साधन माना गया है । ईश्वर अनुग्रह पर मध्व का भी विश्वास है ।

सोलहवीं-सत्रहवीं शती भक्ति इतिहास का स्वर्णयुग है । यही काल है। जिसमें हिन्दी के भक्त कवि—सूर एवं अन्य, अष्ट-छापी कृष्ण कवि एवं राम कवि तुलसीदास हुए । सूरदास पर आचार्य वल्लभ का प्रभाव था जो सूर के गुरु थे । बल्लभाचार्य शुद्धाद्वैत वादी हैं । इनके मार्ग का नाम "पुष्टिमार्ग" है.। पुष्टि का अर्थ है—ईश्वर कृपा१ । ईश्वर कृपा का माध्यम है—प्रपत्ति या शरणागति । व्यावहारिक रूप में गुरु से दीक्षा लेना, कंठी माला धारण करना इत्यादि सम्मिलित हैं। शुद्धाद्वैत का अभिप्राय है कि ब्रह्म विशुद्ध है अर्थात् माया के स्पर्श से अलग है । माया रहित ब्रह्म का जग का कारण एवं कार्या है । कृष्ण ही पर ब्रह्म है। एकांतिक एवं अन्य भक्ति का उपदेश वल्लभ ने दिया । सोलहवीं शती के चैतन्य महाप्रभु ने भी कृष्ण भक्ति की धारा को बड़ा वेग दिया । सिद्धान्त रूप से वे अचिन्त्य भेदाभेद के समर्थक हैं जो मध्व की ही विशिष्ट शाखा है। प्रेमा भक्ति की प्रधानता इस बौड़ी वैष्णवी सम्प्रदाय में स्थापित हुई । स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग एवं भाव, हार्दिक प्रेम के रूप हैं जो इस संप्रदाय में ग्रहीत हुए । प्रेम को मोक्ष से बढ़कर माना गया । जब मध्य देश आचार्य वल्लभ एवं कृष्ण भक्तों की बांसुरियों से उन्मत्त हो रहा था तभी चैतन्य एवं उनके शिष्यों ने पूर्वी प्रदेश को कृष्ण की स्नेहमयी यमुना में डुबो दिया ।

राम काव्यधारा का, अकेला प्रकाश स्तंभ तुलसी दास इतना सबल, समर्थ एवं प्रभावपूर्ण है कि बहुत ही कम प्रचारक एवं सुधारक इसकी समता में खड़े हो सकते हैं । गोस्वामी जी में पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धान्तों एवं साधनों की छाप

१. पोषणं तदनुग्रहः—श्रीमद् भागवत् २–१०–४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती है और साथ ही उनकी स्वयं की मौलिकता। इन छापों में दो छाप अधिक पुष्ट हैं और वे हैं शंकर एवं रामानुज की। शंकर का निर्गुण ब्रह्म भी उन्हें ग्राह्य है, शंकर का जगन्मिथ्या को वे स्वीकारते हैं और शंकर के ज्ञान मार्ग पर उनकी आस्था है। रामानुज के सगुण ब्रह्म को वे प्रधानता देते हैं, रामानुज के प्रपत्ति मार्ग को वे अपनाते हैं और उनकी भगवत कृपा पर उनकी पूर्ण आस्था है। अकेले तुलसी ने रामभक्ति के लिये उतना ही सबल क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया जितना अन्य सब ने कृष्ण भक्ति के लिये किया। एवं राम भक्तों का ही प्रयत्न फल था कि ईश्वर भक्ति का पौधा, अब सबल वृक्ष में अपने हाथ फैला कर एवं सिर ऊंचा कर खड़ा हो गया और सब को आनंद, शांति, सुख, छाया के लिये स्नेह पूर्वक बुलाने लगा।

इस विश्लेषण से सिद्ध है कि ईश्वर का अर्थ है—सगुण ब्रह्म या परमात्मा जो अत्यन्त कृपालु है और जिसके दो रूप प्रधान हैं, कृष्ण और राम। सगुण के साथ ईश्वर साकार भी हुआ। यही कारण है कि महर्षि शांडिल्य नें ब्रह्म शब्द का प्रयोग न करके ईश्वर शब्द का प्रयोग किया है। इस ईश्वर में परानुरक्ति ही भक्ति है। अनुरक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच कर परानुरक्ति कहलाती है। सांसारिक सभी अनुरक्ति—गुग, कलत्र, देह, गेह से अधिक अनुरक्ति, जब ईश्वर में घनीभूत हो जाय तो परानुरक्ति कही जायेगी। गोपियां, नारद एवं हनुमान इसके उदाहरण हैं।

वेदकाल में भक्ति का प्रारंभिक रूप—बीज-मात्र दिखलाई पड़ता है। इस काल के देवोपासक स्तुति करते थे। आर्त्त एवं अर्थार्थी श्रेणी के भक्त थे। अपनी स्तुतियों में ये धन (गोधन, गजधन, रथधन) एवं शत्रु से त्राण की याचना देवताओं से करते हैं। ऋग्वेद में अनेक देवताओं का अंकन है, जिनमें प्रमुख हैं, इन्द्र, वरुण, अग्नि, मरुद्, सूर्य, पूषा। ऋग्वेद में इन्द्र को सब से प्रधान पद प्राप्त हुआ है। उसकी सतुतियां अधिक हैं। ऋग्वेद कहता है कि सहस्रों धनदाताओं में इन्द्र ही श्रेष्ठ है और स्तुति ग्रहण करने वालों में वरुण।[1] इन्द्र मन के वेग वाला, सहस्रचक्षु एवं कर्म शील है।[2] इन्द्र से याचना करता हुआ ऋषि कहता है—

(१) हे इन्द्र! हमें गौ, बल, आयु एवं कीर्ति दो।[3]

१. ऋग्वेद संहिता, भाषाभाष्य (प्रथम खंड) भाष्यकार—पं जयदेव शर्मा एवं श्रीराम शर्मा (१–१७–३२)
२. वही १–२३–८
३. वही १–६–७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे इन्द्र ! हमें यश, धन और राज्य दो ।१

(३) हे महाबली इन्द्र ! गाय और अश्वों से युक्त धन दो । हमारी सम्पूर्ण इच्छाएं पूर्ण करो ।२

(४) हे इन्द्र ! हमारे शत्रु सोते रहें । सोते हुए ही इन शत्रुओं का काम तमाम कर दो ।३

(५) हे शक्तिमान् इन्द्र ! इस युद्ध में हमारी रक्षा के लिये कमर कस कर खड़े हो जाओ ।४

(६) हे इन्द्र ! हमें शक्ति दो एवं हमारे शत्रुओं को पीस डालो ।५

इन्द्र धन और बल का देवता है। उसके पास अपार वैभव है । उससे बार-बार धन (गो, अश्व, रथ) की याचना की गई है। स्थान स्थान पर शत्रु से त्राण भी मांगा गया है ।

वरुण

(१) वरुण ने मनुष्य के लिये अन्न की भरपूर स्थापना की है । वह हमारे उदर में अन्न ग्रहण की शक्ति देता है ।६

(२) वरुणादि देवता शत्रुओं को मार कर भगा देते हैं । उपासको ! इनकी प्रार्थना करो ।७

(३) वरुण सूर्य को स्थिर रखता है चन्द्रमा एवं समस्त ऋषियों को व्यवस्थित करता है, वरुण के नियम अटल हैं ।८

(४) भविष्य में जो भी घटनाएं होने वाली हैं उन्हें मेधावी वरुण जानता है । शत्रु उसे कभी भी धोखा नहीं दे सकते । द्रोही उससे द्रोह करके पराजित होते हैं । वरुण से शत्रुता करके भला कौन बच सकता है ।९

---

१. वही १–९–८
२. वही १–१७–३२
३. वही १–२९–२७
४. वही १–३०–२९
५. वही १–६–७
६. वही १–२५–१८
७. वही १–४१–२२
८. वही १–२४–१४
९. वही १–२५–१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) हे वरुण ! जैसे तुम्हारे व्रतानुष्ठान में मनुष्य प्रमाद कर बैठते हैं, वैसे ही हम भी कभी-कभी तुम्हारी व्यवस्था का उल्लंघन कर बैठते हैं । इसके लिये हे वरुण हमें दंड न देना, न हम पर क्रोध करना । स्तुतियों द्वारा हम आपकी कृपा की याचना करते हैं । १

(६) हे वरुण ! भय त्रस्त यजमान के पास आकर इसे अभयदान दो ।२

वरुण नियम एवं व्यवस्था का देवता है । वह बड़ा शक्तिमान है ।

अग्नि

(१) हे अग्ने ! तुम्हारे समान कोई देवता और मनुष्य महान् नहीं है । तुम मरुतों के साथ पधारो ।३

(२) हे इन्द्र और अग्नि ! दुष्टों को हमारे वश में करो । मनुष्य भक्षी दैत्यों को संतान-हीन बना दो । ४

(३) हे मानवो ! इन्द्र और अग्नि का स्तवन करो । यह दोनों उग्र देवता हैं ।५

(४) संतापदायक दाढ़ों वाले देव ! रात्रि में शस्त्र पर धार रखने वाले हमारे शत्रुओं को विनष्ट कर दो ।६

(५) तुम निर्बल के पिता और मूर्ख के ज्ञान दाता गुरु हो । देवताओं ने तुम्हें मनुष्यों का स्वामी बना दिया है ।७

(६) हे युवा अग्नि ! तुम देवों के मित्र हो । ऐश्वर्यवान् हो । हमें राक्षसों से बचाओ ।८

(७) हे अग्ने । तुम्हें कोई धोखा नहीं दे सकता है । आकश और भूमि में देवों सहित हमारी रक्षा करने वाले तुम ही हो । तुम वीर और धनी हो । तुम युद्ध में धार्मिक

---

१. वही १-२५-६
२. वही १-३६-७
३. वही १-१९-२
४. वही १-२१-५
५. वही १-२१-४
६. वही १-३६-११
७. वही १-३१-३४
८. वही १-३६-१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यों [illegible] को विनष्ट कर देते हो ।१

अग्नि तेज एवं सुरक्षा का देवता है, वैसे वह भी धनवान है और धन भी प्रदान करता है।

रुद्र

(१) शत्रु एवं दुष्टों को रुलाने वाले देव रुद्र ! दुष्ट दमन एवं विद्वानों को उपदेश करें । और हमें कल्याण दें ।२

(२) हे रुद्र ! दुष्टों को संताप दें, भलों (पुत्रों, शिष्यों, उपासकों) को उपदेश दें एवं उन्हें कष्टों एवं दु:खों से बचाओ ।३

(३) जो रुद्र मनीषियों एवं विद्वानों का स्वामी है, जो सुखकारी औषधियां एवं दुख से मुक्ति का मार्ग बताता है, वह हमें शांति और सुख दे, हमारा कल्याण करे ।४

(४) हे रुद्र ! शत्रुओं एवं दुष्टों को रुला, हमें ज्ञान, त्राण एवं कल्याण दे । तू शत्रु के सहायकों को नष्ट कर प्रजा पर सुखों की वर्षा कर । हम शत्रुओं से कभी पराजित न हों ।५ तू हमारे पुत्र एवं पौत्रों की वृद्धि कर, उन्हें ज्ञान दे । उन पर कभी कोप न कर।६

(५) हे रुद्र ! हमारी देहों को कुत्तों, गीदड़ों, गृद्धों एवं काले सर्पों, मक्षिकाओं एवं हिंसकों से बचाओ ।७ तुम्हें बार बार नमस्कार है ।८

रुद्र युद्ध का देवता है, भयंकर है, औषधि का दाता है एवं ज्ञानोपदेश करने वाला है ।

मरुत्

(१) हे मरुतो ! तुम बली सहायक हो। इन्द्र सहित हमारी सहायता करो । हमारे शत्रुओं को नष्ट कर डालो । देखना दुष्ट लोग हमारे स्वामी न बन जायें ।९

---

१. वही १–३१–३३
२. वही १–४३–३
३. वही १–४३–४
४. वही १–४३–५
५. वही १–१६–११४––३।४।५
६. वही १–११४–७।८।९
७. अथर्ववेद ११–२-२
८. वही ११–२–६
९. ऋग्वेद १–२३–९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे मरुतो ! हमारे शत्रुओं को मिटाने में लग रहो । हे रुद्र पुत्र मरुतो ! तुम मिल कर शत्रुओं को नाश करने वाली शक्ति बढ़ाओ ।१

(३) हे मरुतो ! शत्रु हमारे सामने आवें तो तुम उन्हें अपने तेज बल एवं अन्य साधनों से दूर भगा दो ।२

(४) मरुत्, वर्षा को पीने वाले, ३ आकाश पृथ्वी को कम्पाय-मान करने वाले अपनी गति एवं अपने क्रोध से मनुष्यों को भय देने वाले हैं ।४

पूषा

(१) हे पूषा देव ! हिंसक, चोर जुआरी हम पर शासन करना चाहते हैं। मार्ग बाधकों, एवं कुटिल दस्यु-चोरों को मार्ग से हटा दो । पपायियों को पैरों से कुचल डालो। हमारा मार्ग स्वच्छ एवं सरल बना दो । हमें वहां ले चलो जह कृषि योग्य भूमि हो । हम तुमसे धन मांगते हैं । ५

सूर्य

(१) सूर्य भी इन्द्र के समान धन और ऐश्वर्य का दाता है । ६ उससे प्रार्थना करता याचक कहता है—हे ऐश्वर्यदाता सूर्य देव ! हमें सभी प्रकार का ऐश्वर्य दो । हमारी रक्षा करो । ७ धन देने के लिये हमारे पास आओ । ८

विष्णु

(१) ऋग्वेद में विष्णु की चर्चा भी प्राप्त होती है किन्तु वह प्रमुख देवता नहीं है । उसकी प्रशंसा तो है किन्तु वह शत्रुओं को दंड देने वाला या अनन्त ऐश्वर्य देने वाला महत्वपूर्ण देवता नहीं है । ऋग्वेद में विष्णु के तीन पदों में पृथ्वी के समा जाने की चर्चा है । वेद कहता है—सब के रक्षक,

१. ऋग्वेद १–३९–१८
२. वही १–३९–१९
३. वही १–३७–१५
४. वही १–३७–१६
५. वही १–४२–२४
६. वही १–२२–५
७. वही १–२४–१३
८. वही १–३५–४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोखा न खाने वाले, नियम पालक
विष्णु ने तीन पैर धरे । वह
इन्द्र का मित्र और साथी है ।
विप्रलोग उसें ज्ञान से पाते हैं १

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि वेद कालीन उपासक अर्थार्थी और आर्च है । वह धन (गाय, अश्व, रथ, स्वर्ण, भूमि) की याचना करता है और शत्रुओं के विरुद्ध देव सहायता की इच्छा प्रकट करता है । सोम एवं मंत्रों से वह देवताओं को प्रसन्न करता है । वह इन्द्र से कहता है—हे इन्द्र ! इस सोम को पीकर मेरी आयु की वृद्धि करो एवं हमें धन दो । २ वह अग्नि को सोम प्रदान करते हुए कहता है—हे धनदाता ! अग्नि हम चौथी बार आपको सोम अर्पित कर रहे हैं । हमें धन दो । ३ हिंसक एवं विषैले जन्तुओं से त्राण के लिये प्रार्थना भी वह बार-बार करता है । वेदों में इन देवताओं के नाम तो प्राप्त होते ही हैं, गुण भी विस्तार से मिलते हैं ।

हे अग्ने ! तुम वीर और धनी हो ! तुम निर्बल के पिता और मूर्ख के ज्ञान-दाता गुरु हो । तुम बली, ऐश्वर्यवान् एवं महान् हो । तुम सत्य-स्वरुप हो । तुम प्रजापति एवं गृह-पालक हो । मन को प्रसन्नता देने वाले भी तुम ही हो । ४ तुम्हारे समान कोई देवता या मनुष्य महान् नहीं है जो तुम्हारे बल का सामना कर सके ।५ इन्द्र को मन के समान द्रुतगामी बताया गया है । वह कर्म शील देवता है। ६ वह अत्यन्त शक्ति एवं ऐश्वर्यशाली, सत्यस्वरूप, असंख्य साधन सम्पन्न है। और सच्चा सखा है । ७ नाम और गुण के अतिरिक्त रूप की भी चर्चा प्राप्त होती है किन्तु अपेक्षाकृत अल्पमात्रा में। अग्नियुवा है । ८ इन्द्र सहस्र चक्षु ६, अत्यन्त स्वरूपवान, सुन्दर नासिका वाला

१. ऋग्वेद १–२१–७
२. वही १–१०–११
३. वही १–१५–१०
४. वही १–३६–८
५. वही १–१६–२
६. वही १–२३–८
७. वही १–२६ एवं १–३०
८. वही १–२६–२०
९. वही १–२३–८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं पटू है, १ वह बली बहुत है । २ सूर्य सोने के रथ में श्वेत, अश्व जोत कर उसमें बैठ कर दौड़ता है । वह प्रकाशवान एवं अद्‌भुत रश्मियों से युक्त है । उसकी गति रुकती नहीं है । वह स्वर्णिम नेत्र, सुवर्ण पाणि एवं प्राणवान् है । ३ मरुत् क्रीड़ाशाली, प्रकाशमय, आभूषण धारी, निरतगति, और गर्जन करने वाले हैं। वे रथ पर आसीन हैं, उनके हाथ में चाबुक है, ४ और उज्ज्वल सरिताओं की ओर जाने वाले हैं ५ उनके रथ में बिन्दु मय मृग जुड़े हैं । वे बड़े तेजस्वी हैं । ६ लीला या चरित्र का वर्णन अत्यन्त अल्प है । यह वर्ण स्तुतियों के मध्य में प्रसंग से कहीं-कहीं आ जाता है ।

इन्द्र--इन्द्र ने वज्र से वृत्त नामक असुर को मार गिराया जिसने बादलों के जल को रोक लिया था । वृत्त की मां पुत्र के शरीर से लिपट गई । इन्द्र ने वज्र चलाया । मां-पुत्र दोनों सदा के लिये इस प्रकार सो गये जैसे कि गाय के साथ उसका पुत्र बछड़ा सोता है । ७

वरुण --शुन: शेष को पकड़ कर काठ स्तंभ से बांध दिया गया । शुन: शेष ने अदिति पुत्र वरुण की स्तुति की । ८ विष्णु--विष्णु ने तीन पदों में पृथ्वी को नाप डाला जिससे उसके पगों में धूल भर गई । ९

देवताओं के धाम की चर्चा लगभग नहीं के बराबर है ।

उपनिषद् काल में ये देवता एक ब्रह्म में समा जाते हैं जिसके जानने का प्रयास उपनिषदकार करता है । यह ब्रह्म इन्द्र, अग्नि, वरुण इत्यादि से श्रेष्ठतर है और इन्हें शक्ति देता है । उपनिषदों का उपासक न धन मांगता है और न शत्रु से त्राण । भौगोलिक एवं राजनीतिक स्थिति बदल चुकी थी । प्रजा में सुरक्षा एवं शांति व्याप्त हो गई थी । उसकी आर्थिक अवस्था सुखकर थी । फलतः उपनिषदों

१. ऋग्वेद १--२९
२. वही १--३०
३. वही १--३५--३१४
४. वही १--३७
५. वही १--३८--१६/१७
६. वही १--३९--१९
७. वही १--३२--३७--३८
८. वही १--२४--१२/१३
९. वही १--२२--७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आर्त्त या अर्थार्थी उपासक का स्वरूप प्राप्त नहीं होता है वरन् उपनिषदकार का उपासक सांसारिक वैभव को लात मारता है और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करता है । कठोपनिषद् के नचिकेता प्रसंग से ईस प्रवृत्ति पर पूरा प्रकाश पड़ता है ।

उद्यालक ऋषि ने विश्वजित नामक यज्ञ में अपना सम्पूर्ण धन दान कर दिया । उस काल में गोधन ही तो सब से बड़ा धन था । ब्राह्मण आ आकर उद्यालक से दान में गउएं पा रहे थे । अन्त में उद्यालक ने कुछ वृद्धा मरियल गउओं को दान किया जो दूध देने में असमर्थ थीं । उद्यालक के बाल पुत्र नचिकेता को यह अखरा । उसने जाकर पिता से इस दान का विरोध प्रकट किया । नाचिकेता ने कहा—पिता जी ! इन असमर्थ मरियल वृद्धा गायों को दान करने से कोई फल न मिलेगा । यदि दान के लिये इतना चाव है और दान का फल पाना ही चाहते हैं तो मुझे दान में दे डालिये । पहिले तो ऋषि ने अनसुनी कर दी । किन्तु जब बालक ने बार-बार हठ पकड़ कर सबके सामने यही कहा तो क्रुद्ध होकर पिता उद्यालक ने कहा—तो जा मूर्ख ! मैं यम को देता हूँ । बालक नचिकेता यमपुरी गया । वह यमराज के राजभवन तोरण पर पहुंचा । उन दिनों यमराज बाहर गये हुए थे । नचिकेता बिना अन्न जल ग्रहण किये द्वार पर धरना देकर बैठ गया । जब तीन दिन बाद राजा यम लौटे तो यम पत्नी ने बालक नचिकेता की बात बताई । यम तुरन्त बालक के पास गये । उन्होंने नचिकेता से बातें कीं । उसकी प्रतिभा, वाक-पटुता, एवं उसके सौम्य व्यवहार से महाराज यम अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने नचिकेता से कहा —बालक ! मैं प्रसन्न हूँ । जो इच्छा हो मांग ले । बालक बोला—आप देंगे वह जो मैं मागूंगा । यमरान ने कहा—अवश्य, मांग ले बालक । बालक ने कहा तो मुझे ब्रह्म ज्ञान दीजिये । घबड़ा कर यमराज बोले—बालक ! बड़ा भोला है तू । अरे मांगने की वस्तु मांग । अतुल धन मांग ले, लाखों गायें ले ले, बड़ी आयु ले, राज्य सुख ले, सतति सुख ले । पर बालक सिर हिला कर 'नाही' करता गया यमराज ने हताश होकर कहा—सबसे बड़ा सुख है स्वर्ग सुख । ले बालक मैं तुझे अनन्तकाल तक प्राप्त स्वर्ग सुख प्रदान करता हूँ । पर हठी बालक बोला—ना, ना, मुझे स्वर्गसुख भी नहीं चाहिए । मुझे प्रदान कीजिये केवल, ब्रह्म ज्ञान । मैं जानना चाहता हूँ ब्रह्म क्या है ? विवश होकर यमराज ने बालक नचिकेता की जिज्ञासा शांत की और ब्रह्म, एवं उसका जीव जगत् से संबंध एवं अध्यात्म विद्या के सबंध में ज्ञान दिया । १

१. कठोपनिषद-प्रथमवल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उदाहरण से कुछ तथ्य सामने आते हैं—

(१) उपनिषद का उपासक जिज्ञासु है, आर्त्त या अर्थार्थी नहीं ।

(२) कहानी कहने की प्रणाली उपनिषदों में यत्र-तत्र अपनाई गई ।

(३) संवाद शैली का प्रयोग हुआ है। उपनिषदों की यह शैली पुराण काल में, अधिक पुष्ट हुई । उपनिषदों में गुरु-शिष्य के संवाद द्वारा भी जिज्ञासा की तृप्ति प्रायः की गई है । केनोपनिषद् में शिष्य प्रश्न करता है—वह कौन देव है जिसके द्वारा मन आकर्षित होता है; प्राणगति भरता है, वाणी बोलती है, नेत्र देखता है एवं कर्ण सुनता है ? १ गुरु उत्तर देता है—जो कान, नाक, नेत्र इत्यादि इन्द्रियों को कार्य शक्ति देता है, उसी के पास जीवन्मुक्त पुरुष मृत्यु के पश्चात् पहुंचता है । २ इन इन्द्रियों एवं मन को शक्ति वह अवश्य देता है । किन्तु उस तक ये इन्द्रियां और यह मन पहुंच नहीं सकता है । उसका नाम है ब्रह्म । ३

केनोपनिषद के तृतीय खंड में कथा द्वारा ब्रह्म का परिचय दिया गया है। यहां भी ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा है। सुरासुर संग्राम में देवों ने दानवों पर विजय पाई। देवताओं को अभिमान हो गया और वे समझने लगे—हम कितने शक्तिवान् हैं । ब्रह्म ने उनके गर्व दूर करने का उपाय किया । सब देवता फूले बैठे थे। सहसा एक आत्मा का, एक प्रकाश का प्रादुर्भाव कुछ दूरी पर हुआ। विचित्र थी यह शक्ति जो यक्ष रूप में थी । देवताओं को जिज्ञासा हुई, यह कौन है ? देवताओं ने अग्नि को भेजा कि वह पताल जाकर आवे । अग्निवेदकालीन प्रधान देवता है । उपनिषदकार इस "जात वेद" को ब्रह्म का परिचय प्राप्त करने के लिये भेजता है। तेजोमय यक्ष के पास अग्नि देव पहुंचा। यक्ष और अग्नि में वार्तालाप हुआ—

यक्ष—तू कौन है ?

अग्नि—मुझे नहीं जानते ? मैं हूं जातवेद । मेरा प्रसिद्ध नाम अग्नि है ।

यक्ष—अच्छा अग्निदेव ! तुम्हारी शक्ति कितनी है ?

अग्नि—(अट्टहास कर) मेरी शक्ति पूछते हो । तो सुनो, यदि मैं चाहूं तो इस समस्त संसार को जलाकर ख़ाक कर दूं ।

---

१. केनोपनिषद—१–१
२. वही १–२
३. वही १–३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष ने एक सूखे तृण को अग्नि के सामने रख कहा––तो जातवेद ! इस तृण को जला दो। अग्नि जोर से हंसा और प्रचन्ड तेज के साथ वेग से उस तुच्छ तृण पर टूट पड़ा। किन्तु तृण का बाल बांका न हुआ । सिर नवा कर अग्नि लौटा । देवों ने पूछा––पता लगाया उस यक्ष का ? अग्निदेव ने संकुचाते कहा–– नहीं। मैं नहीं जान सका हूँ। अब देवताओं ने मरुद् की ओर देखा । मरुद् भी वेद-कालीन प्रसिद्ध है। देवताओं ने कहा–– पवन देव ! आप कष्ट कीजिये। आपकी सामर्थ्य अतुल है । पवनदेव का वक्ष फूल गया । उन्होंने सिर आकाश तक ऊंचा किया। तुरन्त दौड़ कर वे यक्ष के निकट पहुंचे ।

यक्ष —कौन ?

पवनदेव––मैं हूँ मरुद् ! मुझे मातरिश्वा कहा जाता है । मेरा प्रसिद्ध नाम पवन है ।

यक्ष ––अपनी शक्ति तो बताइये । देखूं कुछ सामर्थ्य भी है आपमें !

पवन––(हंसकर) मेरी सामर्थ्य जानना चाहते हो । कौन है जो मुझे नहीं जानता है, मेरी शक्ति को नहीं पहचानता है । संसार का है कोई दृढ़, शक्तिशाली और भारी पदार्थ जिसे मैं उठा कर उखाड़ कर या उड़ा कर फेंक न दूं ?

यक्ष ने एक तृण पवनदेव के सामने गिरा कर कहा––तो पवन देव, उड़ाइये इसे । पवनदेव ने नाक भौं सिकोड़ कर, पूरे वेग से आक्रमण कर दिया और पूरा बल लगा दिया किन्तु वह तुच्छ तृण टस से मस न हुआ। पवन देव के माथे पर पसीना बहने लगा , वे पसीना-पसीना हो गये। पर तृण ने तिल मात्र सरकने का नाम न लिया । लज्जित हो पवनदेव लौट आये। उन्होंने देवों से कहा––नहीं चला पता, वह कौन है ?

अब हार कर देवताओं ने देवराज से कहा––स्वामी ! आपकी शक्ति असीम है। आप हमारे राजा हैं, सबसे बुद्धिमान हैं। आप ही कष्ट उठाइये। इन्द्रदेव ने अपना वज्र उठाया, और दौड़े। ज्यों ही यक्ष जहां खड़ा था, वहां पहुंचे तो कुछ भी दिखाई न पड़ा । यक्ष, अन्तर्धान हो गया था। इन्द्र ने इधर-उधर खोजा । इन्द्र देखता है—एक सुन्दरी खड़ी है। वह हिम के समान श्वेत थी। क्योंकि हिमवान की पुत्री थी । इन्द्र, उमा के पास गये, और बड़ी श्रद्धा से बोले— भगवती ! यह यक्ष कौन है ? वह देवी जो पराविद्या थी बोली––इन्द्रदेव ! न पहिचान सके। यह ब्रह्म है । असुरों पर विजय पाकर तुम लोगों को गर्व हो गया था। तुम समझने लगे थे––हमने विजय पायी है। यह तुम लोगों की भूल थी। तुममें शक्ति आती कहां से है, यह जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लो। इन्द्र को अब ज्ञान हुआ कि वह ब्रह्म ही है।

इस कथा में संवाद शैली प्रमुक्त है। वेद कालीन तीनों प्रमुख देवता--इन्द्र, अग्नि और मरुद् ब्रह्म को जानने का प्रयास करते है और समझ जाते हैं, हममें उसी की शक्ति व्याप्त है। ये तीनों प्रमुख देवता ही ब्रह्म को देख सके थे। इनमें इन्द्र सर्वश्रेष्ठ था क्योंकि वह ब्रह्म को जान भी सका था। १ ब्रह्म विषयक जिज्ञासा प्रकट है ही। प्रश्नोपनिषद् में प्रश्न और उत्तर रूप में संवाद शैली ग्रथित है। वेद परायण छै ऋषि---सुकेशा, सत्यकामस, सौर्यायणी, आश्लायन, भार्गव एवं कबन्धी--ब्रह्म जिज्ञासा के साथ महर्षि पिप्पलाद के पास पहुंचे। प्रत्येक ऋषि ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की और महर्षि ने उसका समाधान किया। ब्रह्म, ब्रह्म प्रकाश, ब्रह्म लोक, जीव, जगत् के संबंध में अनेक प्रश्न पूछे ये। महर्षि ने इनका उत्तर देते हुए यह भी सिद्ध किया कि चन्द्र, सूर्य, मरुद्, रुद्र, इन्द्र इत्यादि का नियत एवं प्रेरक ब्रह्म है। ब्रह्म की शक्ति से ये कार्य करते हैं। २ मुण्डकोपनिषद् में भी संवाद शैली एवं ब्रह्म जिज्ञासा प्राप्त होती है। महर्षि शौनक के आश्रम में अठासी सहस्र मुनि ज्ञानार्जन के लिये रहते थे। शौनक ऋषि स्वयं ब्रह्म जिज्ञासा लेकर महर्षि अङ्गिरा के आश्रम में गये और उनसे ब्रह्म के संबन्ध में जिज्ञासा प्रकट की। महर्षि अङ्गिरा ने परा और अपरा विद्याओं को समझाया और ब्रह्म ज्ञान प्रदान किया। उन्होंने यह भी इसी सम्बन्ध में बताया कि इसी ब्रह्म से देवता (इन्द्र, सूर्य, मरुद्, अग्नि इत्यादि) उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्म से ही साध्य, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि जन्मे हैं।३ उस तक पर ये चन्द्र, सूर्य एक विद्युत पहुंच नहीं सकते हैं, यद्यपि प्रकाश उसी से पा रहे हैं।४

उपनिषद काल के वाद भक्ति का सर्वांगीण विकास पुराणों में प्राप्त होता है। अब तक उपासना का सम्बन्ध बुद्धि से अधिक था, पर पुराणों में उसका निकट सम्बन्ध हृदय से भी जोड़ा गया। हृदय का प्रभाव हृदय पर पड़ता है। हृदय की बात हृदय सुनता है। अतः ब्रह्म और उसके अवतारों में, अन्य देवी देवताओं को हृदय युक्त बनाया गया। इसके लिये उनका रूप आकार, वेश, धाम एवं उनकी लीलाओं का अंकन किया गया। देवताओं में ब्रह्म

१. केनोपनिषद--४-४।५
२. प्रश्नोपनिषद्--द्वितीय प्रश्न, ८, ९
३. मुण्डकोपनिषद द्वितीय मंडक प्रथम खंड, ७
४. वही २-२-१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्ति पूर्णतया प्रतिष्ठित की गई क्योंकि प्रत्येक देव जिसके ऊपर पुराण रची गई, अन्त में सर्वव्यापक ब्रह्म सिद्ध कर दिया गया। पुराण काल में विष्णु का महत्त्व सब से बढ़ गया और उसके दो रूप—कृष्ण एवं राम—भली-भांति प्रमुखतया प्रतिष्ठित हो गये। ब्रह्मा तो विष्णु की नाभि से उपजाये गये एवं शिव की रक्षार्थ विष्णु दौड़ कर जाते हैं। विष्णु की कथाएं विस्तार से लिखी गईं। उपनिषदों की संवाद शैली स्पष्ट रूप से पुराणों में प्रयुक्त हुई और पुराण प्रश्नोत्तर रूप में लिखे गये। उपनिषद काल का जिज्ञासु भक्त अब ज्ञानी बन जाता है जिसे ब्रह्म का, उसके अनेक रूपों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त है। बिना पूर्णतया जाने वस्तु का अनुभव नहीं होता है। पुराण काल का उपासक, ज्ञानी है जो जान कर ब्रह्म और उसकी शक्तियां ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश इत्यादि का अनुभव करता है। पुराण-काल में हृदय को भी स्थान मिला और देवता, विशेषतया विष्णु, भक्तों की पुकार पर दौड़ता है। पुराणों में ब्रह्म से ईश्वर—सगुण एवं साकार विष्णु का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है।

वैष्णव भक्ति के दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिन्होंने भक्ति सरिता को जल दिया है श्री मद्भगवत् गीता एवं श्री मद्भागवत्। इन दोनों ने कृष्ण भक्ति को पुष्ट किया। किन्तु ऐसा कोई ग्रंथ संस्कृत में राम भक्ति पर प्रणीत नहीं हुआ। रामभक्ति धारा में उत्तरी भारत को डुबाने और जीवन को कल्याण देने वाला अकेला प्रकाशस्तम्भ है तुलसी और उसका प्रसिद्ध, ग्रंथ, 'राम-चरितमानस' १६वीं एवं १७वीं शताब्दी भक्ति की दृष्टि से सिंहासनासीन युग है। हिन्दी भक्ति काव्य का यह स्वर्ण युग है। पुराण काल का ज्ञानी भक्त अब प्रेमी एवं प्रयत्न रूप में सामने आता है जो सर्वस्व छोड़ कर केवल ईश्वर अनुराग को वरण करता है। सूर और तुलसी—दोनों का भक्त ऐसा ही है। सूर की गोपियों के रूप में वह घर-बार छोड़ कर बस कृष्ण प्रेम में लीन है और भगवान् की शरण में पहुंच गया है। अंतर इतना है कि तुलसी का भक्त प्रेम और प्रपन्नता के साथ ज्ञान एवं विराग को भी साथ लिये चलता है। तुलसी ने भक्ति मार्ग का लक्षण देते हुए लिखा है—श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत विरति विवेक। तुलसी का सुतीक्षण भक्त ज्ञानी[१] होने के साथ साथ परम प्रेमी भी है[२] जो केवल अनन्य भगवद्भक्ति का याचक है। काक भुशुंडी को सिद्धि, निद्धि, मोक्ष, ग्यान, विरति, विज्ञान—सभी कुछ मिलता है।

१. निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी।
२. अविरल प्रेम भगति मुनि पाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काक भुशुंडि भक्ति वर मांगता है । अन्य देवता भी प्रेमा भक्ति मांगते हैं । ब्रह्मा तो ज्ञानानिधान हैं । वे भी राम से मांगते हैं—

नृपनायक दे वरदानमिदं ।
चरनांबुज प्रेम सदा सुभदं ।

ज्ञान के आगार वेदों की भी यही याचना है —

करुना यतत प्रभु सदगुनाकर देव यह वर मांगहीं ।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ।

सूर तुलसी ने भक्ति अश्वत्थ को जो विस्तार दिया वह फिर आगे न प्राप्त हो सका । भक्ति की प्रेमांम्बु भरी पावन धारा यहां आकर घनीभूत हो गई और आगे सिमट कर, संकुचित होकर प्रवाहित हुई ।

० ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिपर्व में राजनैतिक सिद्धान्त

प्रो० देवदत्त भट्टी

महाभारत के शान्तिपर्व में युधिष्ठिर को राज्य के लिये लालायित करने के व्याज से स्थान स्थान पर राजधर्मों का प्रतिपादन किया है । शतिन्पर्व के पन्द्रहवें श्रध्याय में दण्ड को मुख्यतम राजधर्म बताया गया है श्रौर कहा गया है कि संसार में श्रन्धकार छा जाए यदि दण्ड प्रजाश्रों को धारण न करे ––

श्रन्धे तमसि मज्जेयुः यदि दण्डो न धारयेत् ।

श्राज जब चारों श्रोर श्रनुशासन-हीनता श्रौर श्रत्याचार-भ्रष्टाचार का संक्रमण हो रहा है तो हमें चाहिए कि हम दण्ड को कठोर बनायें श्रौर समाज को विशृंखल होने से, दण्ड के पक्के सूत्र में बांध कर बचाएं, हमारे भीतर वह श्राचार की उच्चता नहीं है, जो समाज की इकाइयों को भ्रष्टाचार से रोकने में प्रेरणा दे । हम केवल दण्ड से ही उचित दिशा की श्रोर चल सकते हैं । दण्ड की शिथिलता हमारे लिये श्रसफल हो चुकी है । शान्ति, व्यवस्था श्रौर सदाचार के लिये दण्ड का श्रपनाना हमारे शासकों के लिये श्रत्यावश्यक हो गया है । हम सीख लें कि किस प्रकार हमारे पूर्वज दण्ड का प्रयोग समाज की गतिविधि को ठीक करने में किया करते थे ।

शान्तिपर्व के ही बत्तीसवें श्रध्याय में कहा है कि यदि राजा (शासक) समाज में प्रचलित पाप का उन्मूलन नहीं करता तो वह स्वयं पाप का भागी होता है ।

पापान् सर्वैरुपायैस्तान्निय-च्छेच्छातयीत वा ।
श्रतोऽन्यथा वर्त्तमानो, राजा प्राप्नोति किल्विषम् ॥

महाभारत में प्रतिपादित राजनीति युधिष्ठिर के राज्य के ढंग से प्रतीत होती है। युधिष्ठिर श्रपने शत्रुश्रों के साथियों को भी श्रपने राज्य में सम्मान देते हैं, लेकिन परख कर । वे राज्य के प्रतिष्ठित श्रधिकारीवर्ग में भी उन्हें स्थान देते हैं । प्रजाश्रों को सर्वप्रकार से तुष्ट करते हैं । युवराज पद पर भीमसेन को बिठाते हैं श्रौर मन्त्रिपद पर विदुर को । यद्यपि विदुर कौरवों के पक्ष में था तथापि उसकी बुद्धिमत्ता को देख कर श्रौर उसकी स्वामिभक्ति की भावना को देख कर उसे युधिष्ठिर इस सर्वमहत्वपूर्ण पद पर श्रासीन कराते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सञ्जय को (जो दिव्य दृष्टि युक्त था) आय व्यय का निरीक्षक नियुक्त करते हैं। सेनाओं के आधिपत्य एवं वेतन देने के काम पर नकुल को नियुक्त करते हैं और अर्जुन को विदेश मन्त्रि नियुक्त करते हैं। युधिष्ठिर की राजनीतिक कुशलता उसकी नियुक्तियों से स्पष्ट है। आगे युधिष्ठिर गृह-मन्त्री पद पर अपने राज-पुरोहित धौम्य को प्रतिष्ठित करते हैं। ऐसा इसी लिये किया होगा क्योंकि धार्मिक व्यक्ति सभी धर्मों की जानकारी रखता है और सभी धर्मों को समान आदर देता है। सब से छोटे भाई सहदेव को युधिष्ठिर अपना वैयक्तिक-सलाहकार नियुक्त करते हैं। और इस प्रकार स्वयं राज्य के ऐश्वर्यों से निर्लेप रह कर विदुर को कहते हैं--

उत्थायोत्थाय यत्कार्यमस्य राज्ञः पितुर्मम ।
सर्वं भवद्भिः कर्त्तव्य मप्रमत्तैर्यथा बलम् ।।

ऐसा सब कुछ होने पर युधिष्ठिर सन्तुष्ट नहीं और भीष्म से राजनीति का उपदेश करने की प्रार्थना करते हैं। भीष्म उपदेश देते हैं और कहते हैं :--

"जो सप्तांग राज्य की व्यवस्था में प्रत्यूह पैदा करे उसे मार देना चाहिए, चाहे वह गुरु हो, मित्र हो अथवा कोई सगा सम्बन्धी हो।" ५७.५ (शांतिपर्व)

भीष्म पितामह कहते हैं कि यदि गुरु भी पथ-भ्रष्ट हो जाए तो उसे दण्ड देना चाहिए--

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्या कार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः ।।

भीष्म पितामह ने राजा के लिये लोक-प्रिय बनना सनातन धर्म बतलाया है--

लोक रञ्जन मेवात्र राज्ञां धमः सनातनः।

राजधर्मों का प्रतिपादन करते हुए सत्तावनवें अध्याय में वे कहते हैं कि राजा को शत्रु छिद्रान्वेषी होना चाहिए। सप्तांग राज्य का स्वयं गुप्त रूप से निरीक्षण करना चाहिए। दण्ड के विषय में भीष्म कहते हैं कि दण्ड क्रोध में आकर नहीं देना चाहिए। राजा के लिए 'जित क्रोधः' विशेषण उन्होंने कहा है।

भीष्म ने राजा युधिष्ठिर का ध्यान स्पाशविभाग की ओर अधिक दिलाया है और कहा है कि जिस राजा के स्पंश तथा मन्त्रणाएं शत्रुओं के द्वारा समझी न जाएं वही राजा अच्छा होता है। शान्तिपर्व (५७.३९)

भीष्म ने जहां कोष की वृद्धि के लिये तरह-तरह का कर लगाना कहा है वहां समृद्ध कोष में से कुछ अंश अर्थिसात् करने की भी आज्ञा दी है।

एक प्रश्न के उत्तर में भीष्म राजाओं की उत्पत्ति के विषय में बताते हैं--"पहले पहल कोई राजा या राज्य, दण्ड या दण्ड लेने देने वाला नहीं था। लोग धर्मपूर्वक आचरण करते थे। कोई किसी को पीड़ा न देता था। सब अपने कर्त्तव्यों को नित्यकर्मों की भांति निभाते थे। कालान्तर में प्रजाओं में कुछ प्रमाद आ गया और प्रमादवश लोग अपने आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्त्तव्यों के निर्वहन में अनुत्तरदायी समझने लगे । इससे त्रस्त देवगण ब्रह्मा के पास गये । और ब्रह्मा से अपनी व्यवस्था भंग होने की बात कही । ब्रह्मा ने एक लाख श्लोकों के शास्त्र की रचना की । जिसमें दण्ड नीति आदि नीतियां, षड्गुण, चतुर्वर्ग आदि का वर्णन किया । जिसे पढ़कर लोगों ने अपने में से एक आदमी को राजा के पद के लिये नियुक्ति करनी सीखी । शान्तिपर्व ५९.१४–३६ ।

५९वें अध्याय में षड्गुण, साम, दान दण्ड और भेद का सविस्तार वर्णन किया है । साम, दान, दण्ड और भेद नीतियां राजा के लिये मौलिक नीतियां मानी जाती हैं ।

राजा के लिये धर्म के साथ-साथ धन का भी बड़ा भारी महत्व बतलाया है। क्योंकि धन से सब कामों का संचालन होता है। जो धन का अपहरण करता है वह केवल धन का ही अपहरण नहीं करता बल्कि धर्म का भी अपहरण करता है। क्योंकि धन के बिना धर्मों का संचालन असम्भव है—धनं संहरते तस्य, धनं हरति यस्य यः ।

राजा के लिये धन के साथ गौएं, भृत्य, आदि रखने भी आवश्यक थे—

यः कृशार्थः कृशगवः, कृश भृत्यः कृशातिथि.
स वै राजन् कृशो नाम, न शरीर कृशः कृश : ।।

राजा के लिये क्रूरता भी आवश्यक है। यह क्रूरता शत्रुओं के लिये होनी चाहिए। राजधर्मपर्व में एक उदाहरण प्रस्तुत किया है कि यदि इन्द्र वृत्र का हनन न करता तो आज इन्द्र न होता । अतः शत्रुओं के प्रति क्रुरता की नीति अपनानी चाहिए। उदारता या प्रेम नहीं ।

६०वें अध्याय में कहा है कि राजा को प्रजा के साथ समता का व्यवहार करना चाहिए,और पुत्रों के समान पालन करना चाहिए । ६१ वें अध्याय में वर्णाश्रम-साकर्य की ओर भी राजा का ध्यान आकृष्ट किया है और कहा कि राजा संकरता को समाज में न फैलने दे ।

६७वें अध्याय में भीष्म कहते हैं कि राजा को जितेन्द्रिय और वशी होना चाहिए ।

प्रजाओं के हित के लिये भीष्म ने कहा है कि राजा को चाहिए कि वह रास्तों पर वृक्ष लगाये, कुएं खुदवाए, लोगों के हितार्थ चिकित्सालय खुलवाए ।

गुप्तचरों को बताते हुए वे आगे कहते हैं कि गुप्तचर बुद्धिमान, भूख-प्यास सहने वाले, परीक्षित और कई बार अन्धे बधिर होने चाहिएं । उनकी वेष-भूषा तथा आचार-विचार सन्देहास्पद नहीं होने चाहिए ।

करों के बारे में विधान है कि लोगों को अपनी आय का छठा अंश राजा को कर के रूप में देना चाहिए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरदायित्व पूर्ण स्थानों में नियुक्ति करने के लिये हमेशा आत्मीय, परीक्षित और सज्जनों को ही अवसर देना चाहिए।

राजा के निवास का एक द्वार कहीं जंगल में अज्ञात निकला हुआ होना चाहिए। जिससे किसी आपत्ति के समय राजा सुरक्षित रूप में जा सके। इसका ज्ञान केवल राजा को ही हो। राज महल के (प्रासाद के) सभी कमरे आपस में मिले होने चाहिएं। ताकि कभी ज़रूरत पड़ने पर सभी जगह जाया जा सके।

शत्रु के अन्दर आ जाने की स्थिति में भीष्म जी कहते हैं कि राजा जल भण्डार को दूषित एवं विषाक्त कर दे ताकि शत्रु सेना पीकर मर जाए। राजमहल के निर्माण के समय इसकी भित्तियों में छोटे-छोटे छिद्र होने चाहिएं जिनमें से गोली निकल सके और तीर निकल सकें। प्रत्येक दरवाज़े पर तोपें खड़ी करे। किले और महल के चारों ओर एक परिखा खुदवाए जो पानी से भरी रहे। पानी में ऐसा विष घुला रहे जो स्पर्श करते ही मार डाले। नगर के चारों ओर दरवाजों वाला एक प्रवाद हो, जो रात के समय बंद हो जाए। यह सब विधान ११२वें अध्याय में है। अविश्वसितों को मार देने की भी आज्ञा है। देश-द्रोहियों एवं संदिग्धों को प्राणदण्ड देने का विधान है।

११३ वें अध्याय में कहा है कि बढ़ते हुए राजा का पहले ही प्रतिकार कर दे। समय पर शत्रु नहीं मारा जाया करता। अपने शत्रु को बलवान् देख कर वैतसी वृत्ति अपना लेनी चाहिए। इसी में राजा का कल्याण है :--संत्रयेद् वैतसीं वृत्तिम्।

११९वें अध्याय में उन्होंने कहा है कि भृत्यों को पारितोषिक दे, पदोन्नति न करे। क्योंकि कुत्ते के लिये एक ही स्थान निश्चित होता है :--

"एवं शुना समान् भृत्यान्, स्वे स्वे स्थाने नराधिपः।
नियोजयति कृत्येषु, स राज्यफलमश्नुते"।।
"न श्वा स्वं स्थानमुत्सृज्य प्रमाण मभि सत्कृतः"।

१२०वें अध्याय में राजधर्म का सार इकट्ठा किया है और कहा है कि राजा को 'गुप्तमन्त्र' होना चाहिए। सदा 'उद्यत दण्ड' होना चाहिए। जो शत्रु बलवान हो, साम नीति से वश में न आता हो उसे छद्म से मार डाले। मधुमक्षिका की तरह विभिन्न स्थानों से धन का संचय करके कोष समृद्ध करना चाहिए।

१२१वें अध्याय में फिर दण्ड पर बल दिया है और कहा है कि दण्ड ही ब्रह्म है, दण्ड ही विष्णु है, और दण्ड ही शिव है। "दण्डो हि बहुविग्रहः" कह कर दण्ड के अनेक रूप बताये हैं। दण्ड को लोहिताक्ष

(शेष पृष्ठ ३९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक जीवन के परिपेक्ष में कबीर

साधु राम शारदा

हिन्दी भक्ति साहित्य में कबीर का स्थान बहुत ऊंचा है। एक साहित्यिक रचना, अपने समय की परिस्थितियों के प्रति साहित्यकार की प्रतिक्रिया होती है। अतः साहित्यिक रचना का मूल्यांकन करते समय यह परीक्षा करनी होती है कि क्या परिस्थितियां थीं ? और साहित्यकार की ओर से उनके प्रति क्या प्रतिक्रिया हुई। कबीर का समय पन्द्रहवी शताब्दी है। पन्द्रहवीं शताब्दी उथल पुथल का समय था। यवनों का पहला सुदृढ़ राज्य अमीर तैमूर के आक्रमण से नष्ट हो चुका था, अब फिर से अलग-अलग राजनीतिक शक्तियां अपना प्रभुत्व स्थापित करने में लगी थीं। नए यवन हाकिम भी जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता देने को तैयार न हुए थे। शक्ति में अन्धे हुए हाकिम प्रजा पर धार्मिक दृष्टि से अत्याचार किए जा रहे थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त होने तक लोदी राज्य स्थापित हो चुका था और सिकन्दर लोदी एक शक्तिशाली बादशाह के रूप में राज्य चला रहा था। उसने भी जनता से धार्मिक असहनशीलता का व्यवहार किया। दन्त-कथाओं के अनुसार कबीर को उनके आदेश से कारावास मिला था। कबीर और नानक की वाणी में मुसलमान बादशाहों और मुल्लाओं को कसाई या अत्याचारी कहा गया है। मुसलमान जनता जहां राज्य की चहेती बेटी थी तो हिन्दु जनता उसकी दृष्टि में घृणा और अत्याचार का विषय थी। उसी प्रकार हिन्दु जनता मुसलमानों को म्लेच्छ और अपवित्र समझते थे और राजनीतिक शक्ति के अभाव से अपनी बेबसी के कारण कलियुग का राज्य कहते थे, जिसमें सच्चे और धार्मिक व्यक्तियों पर राक्षस अधर्मी अत्याचार करते हैं जैसे गुरु नानक ने कहा है।

कलि काति राजे कसाई कीए
धर्म पंख कर उडिया।

हिन्दू तथा मुसलमान समाज अपने-अपने संगठनों में विघटित था। हिन्दु समाज द्विजों और शूद्रों में बंटा था। शूद्र-सभी द्विजों ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये अछूत थे। भले प्रभु की भक्ति में सभी का समान अधिकार मानते थे किन्तु फिर भी द्विज लोग शूद्रों के स्पर्श के भय से उन्हें मंदिरों में नहीं जाने देते थे जैसे नाम देव की एक चर्चा से स्पष्ट है कि उन्हें मन्दिर में दाखिल होने से रोक दिया गया था। किन्तु मुसलमान राज्य के प्रभाव के कारण द्विजों की तथाकथित पवित्रता अब नहीं रही थी। शूद्र अछूत कहे जाने वाले लोग द्विजों के बीच आम मिलने जुलने लगे थे। द्विजों को इस बात का दुख भी था कि सभी वर्ण अब एक हो गए हैं भेद-भाव खत्म हो गया है जैसे गुरु नानक कहते हैं :—

खत्रियां ते अपना धरम छोडियां
म्लेच्छ भाषिआ गही
स्रिशटी सब इक बरण होई
धरम की गति रही ।

वे कहते हैं कि धर्म अब खत्म हो गया है क्योंकि क्षत्रियों ने अपना धर्म छोड़ दिया है; म्लेच्छों की भाषा को अपना लिया है और सारी सृष्टि एक ही वर्ण हो गई है भेद-भाव जाता रहा है।

दूसरी ओर, मुसलमान समाज राजनैतिक शक्ति होने से हिन्दु समाज की अपेक्षा अपने आपको ऊंचा समझता था किन्तु आन्तरिक दृष्टि से वह भी विघटित था। जो मुसलमान बाहर से आए थे वे भारतीय मुसलमानों की अपेक्षा ऊंचे समझे जाते थे और उनमें भी जो अरब के शाही कबीलों से सम्बन्धित थे वे सब से अधिक समादृत थे। हिन्दुस्तानी मुसलमानों को तो घटिया समझा जाता था ही किन्तु व्यावहारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से नीच जातियों की भावना मुसलमानों में भी थी। हां धार्मिक दृष्टि से मस्जिद में जाने की मनाही नहीं थी।

तुरक बादशाह निम्न जाति के लोगों से घृणा करते थे। अलतमश ने ३३ व्यक्तियों को उनके निम्न जातियों के होने के कारण ही नौकरी से निकाल दिया था। जमाल मरज़ूक की नियुक्ति पर आपत्ति उठाते हुए अज़ीज़बहरूज़ ने यह पद पढ़ा था :

बदस्ते दूं मदह खामा के गरदूं
रा मजाल उफतद
सिया संगे के दर काबा अस्त
साजद संगे इस्तंजा ।

(किसी नीचे घराने में पैदा हुए व्यक्ति को सरकारी पद न दो, क्योंकि इससे आकाश को उत्साह मिलेगा कि वह काबा के पवित्र पत्थर को पेशाब साफ करने के कंकर के रूप में बदल दे।)

अलतमश ने जमाल मरज़ूक को तो बरखास्त किया ही, उसकी सिफारिश करने वाले निज़ाम-मुलक जुनैदी के विरुद्ध भी पड़ताल का आदेश दे दिया। यह प्रमाणित होने पर कि वह जुलाहा जाति का है, उसे भी नौकरी से निकाल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्बन ने एक विभाग खोला हुआ था जिस में भारत के सभी हिस्सों से विशेषज्ञ नियुक्त किये हुए थे। यह विभाग सरकारी नौकरी पाने वालों के खानदानों की पड़ताल करता था कि कहीं ये नीच जाति के लोग तो नहीं। इत्यादि१.

कबीर आदि सन्त कवियों का यही युग था। ऐसे युग में कबीर का क्या कार्य था और उसमें उनको कहां तक सफलता मिली है ! यही विचार का विषय है।

कबीर भक्त थे यह तो निश्चित है राम नाम की महिमा उन्होंने खूब गाई है. वे अद्वैतवादी भक्त थे। मिलन की अवस्था में वे प्रभु से मिल कर एक हो जाते थे। किन्तु विचार का विषय यह है कि ऐसी परिस्थितियों में राम भक्ति को ही एक मात्र उपाय बताया है या जीवन सुखद करने के लिये कोई व्यावहारिक सुधार भी सुझाया है।

सुधारक के लिए सब से पहले यह आवश्यक है कि उसके सम्मुख सुधार का विषय हो; वह विषय उसके लिये महत्त्वपूर्ण हो; उसके वर्तमान स्वरूप में कोई दोष हों, फिर उन दोषों को दूर करने का सुझाव हो, और उस सुझाव से दोष के दूर होने की आशा हो; कार्यान्विति से दोष दूर हो जाए और उससे नया स्वरूप फिर स्वस्थ हो। परिस्थितियों में देखे जाने वाले साहित्य का विषय जीवन है, तो कबीर के लिए उद्देश्य विषय है 'जीवन'। अब देखना है कि क्या जीवन कबीर का विषय है? क्या जीवन का कबीर के लिये महत्त्व है ? यदि महत्त्व है तो उसमें उसे क्या दोष दिखाई दिया है, उस दोष को दूर करने का उपाय क्या किया है ? और वह दोष कहां तक दूर हुआ है और उनके प्रयत्नों से वह जीवन कहां तक स्वस्थ हुआ है ?

जीवन कबीर की दृष्टि में दुखों का घर है। इससे मुक्ति ही व्यक्ति का 'जीवन उद्देश्य' है। इस मुक्ति के लिये वे जीवन के त्याग और राम की भक्ति का उपाय बताते हैं। उनके अनुसार इसी मार्ग से आदमी दुख मुक्त हो जाता है।

उनके जीवन के त्याग में क्या कुछ आता है।

"एक तो वे पारिवारिक सम्बन्धों को त्यागने के लिये कहते हैं कि 'न तो तेरी कोई माता है, न कोई तेरा पिता है, न तेरी कोई पत्नी है।

(१) काकी मात, पिता कउ का को;
कबन पुरुष की जोई,
घट फूटे कोऊ बात न पूछै,
काढउ काढउ होई --।

(२) कउन को पूत, पिता को का को,
कउन मरे को देइ सन्तावै।

(३) पुत्र कलत्र लछिमी माया
इहै तजहु जीउ जानी रे

१. खलीक अहमद निजामीं। सम आस्पैक्टस आफ रिलिजन ऐण्ड पौलेटिकस इन इण्डिया।१९६१। पृष्ठ १०५ से १०९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) धृग तन धृग धन धृग इह माया
धृग धृग मत बुद्धि फन्नी ।

जीवन के दूसरे कार विहार को भी वे छोड़ने को कहते हैं क्योंकि वे भी बन्धन के कारण है ।

तनना बुनना सब तजिओ कबीर,
हरि का नाम लिखि लीओ सरीर ।

वे अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के काम त्यागने को कहते हैं क्योंकि दोनों ही प्रकार के कार्य बन्धन में डालते है ।

(१) पर हरु लोभु अरू लोकाचार,
पर हरु काम, क्रोध अहंकार,
करम करत बधे अहंमेव,
(२) पांचउ इंद्री निग्रह करई
पाप पुन्न दोऊ निरव रई ।

ज्ञानमार्गी निर्गुण सन्त, भक्त और फकीर सभी इस बारे में एक मत हैं । कबीर का भाणे का विचार उनके इसी संसार त्याग के विचार के ही अनुसार है वे कहते हैं कि 'जो तिस भावै सति करि माने, भाणा मनि वसाई'—जैसे ईश्वर रखे, उसी प्रकार रहिए । या वर्तमान स्थिति को ईश्वरेच्छा मान कर स्वीकार करें । अनुकूल अवस्था को सभी स्वीकार करते हैं, भला सुख का विरोध क्यों किया जाए । किन्तु प्रतिकूल परिस्थिति को स्वीकार करने का अर्थ अकर्मण्यता है और इस विचार का प्रचार अकर्मण्यता का प्रचार है । प्रतिकूल परिस्थिति को स्वीकार करना दम रहते, शक्ति होते असम्भव है । शक्ति न होते हुए भी दुख को स्वीकार नहीं किया जा सकता । और व्यक्ति उसको या तो स्वयं बदलने का प्रयास करता है या सामर्थ्य न होने पर प्रभु से प्रार्थना करता है कि वह उसके दुख को दूर करे । किन्तु दुख को स्वीकार करने के लिये मानव तैयार नहीं है। कबीर के भाणे के विचार से मानव की कर्मठता पर बुरा प्रभाव पड़ता है और पड़ा है। भाणे के इस विचार से मानव प्रतिकूल अवस्था को सुधारने की बजाये 'प्रभु इच्छा मान कर' स्वीकार कर ले तो उस प्रतिकूल अवस्था को बदलने के लिये उत्साह घट जाता है । अतः इस प्रकार के विचारों का लोगों पर दुष्प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और इस से राजनैतिक दासता का युग निश्चित रूप से लम्बा हुआ है ।

इससे तो यह सिद्ध होता है कि सांसारिक जीवन को सुधारने की बजाये कबीर स्पष्ट रूप से इसे त्यागने का उपदेश देते हैं । इसलिये संसार से वैराग्य उत्पन्न करने के लिये इसका घृणास्पद स्वरूप पेश करते हैं । मां बाप के प्रति सेवा के कर्त्तव्य का संकेत न करके उन्हें स्वार्थी कहते हैं । सब पारिवारिक संबंधों का खण्डन करते हैं । जहां तक जीवन का दुखपूर्ण होना है वह तो बात स्पष्ट है कि दोषपूर्ण स्थिति के ही सुधार का प्रश्न होता है। किन्तु यदि उस विषय को त्यागने का ही आग्रह हो तो निश्चित तौर पर उसके सुधारने का प्रश्न समाप्त हो जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये कबीर को सुधारक न कह कर वैरागी भक्त ही कहना उचित होगा ।

अब देखना यह है कि क्या त्यागमात्र से जीवन का दुःख दूर होता है ।

जो भी कोई उनकी ऐसी रचना पढ़े कि सब स्वार्थ के हैं—तो क्या वह अपने माता-पिता के प्रति सेवा का भाव रख सकेगा । क्या बूढ़े माता पिता की सेवा करना पुत्र का कर्त्तव्य नहीं है ? क्या व्याह कर लाई पत्नी या उत्पन्न किए बच्चे के प्रति उसका कोई कर्त्तव्य नहीं है ? क्या कोई संसार के कार्य को छोड़ कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकेगा । साधारणतः एक आदमी अपने सनातन कर्त्तव्य को नहीं छोड़ सकता । ऐसी शिक्षा को अनेकों बार पढ़ कर भी एक पुत्र बूढ़े माता-पिता की सेवा से मुख नहीं मोड़ सकता, एक पिता अपनी छोटी-छोटी सन्तान को स्वार्थी समझ कर भी रुलती नहीं देख सकता ।

कोई भी सामान्य व्यक्ति माता-पिता, भाई, पुत्र, पत्नी को त्यागने की इस शिक्षा को व्यवहार में नहीं अपना सकता और यदि कोई ऐसी शिक्षा के अनेक बार पढ़ने से असाधारण हो भी जाए तो क्या यह एक आदर्श जीवन कहा जा सकता है ? कि माता-पिता, पत्नी बच्चे तो भक्त की अवहेलना से रुल रहे हों और एक भक्त सब कुछ त्याग कर अपनी भक्ति में लगा हो । जिसके लिये माता पिता और बच्चे भार नहीं है, उस व्यक्ति का इस प्रकार भक्ति करना समझ आ सकता है किन्तु एक गृहस्थी व्यक्ति का आदर्श ऐसा जीवन कैसे हो सकता है ?

अपने समय के ब्राह्मणों से उसका झगड़ा भी इसी बात पर है कि ब्राह्मण इस व्यावहारिक जीवन के कर्त्तव्यों पर बल देते हैं तो कबीर इस व्यावहारिक जीवन को त्यागने का उपदेश देते हैं । यही कबीर और ब्राह्मणों का झगड़ा है ।

जिह मुखि बेद गाइत्री निकसै
सो किउ ब्रमनु बिसरु करै ।

वेद को सांसारिक या व्यावहारिक जीवन का ज्ञान कहा गया है, कबीर वेद के व्यावहारिक ज्ञान को छोड़ कर हरि का भजन करने को कहते हैं । गुरु नानक भी वैदिक ज्ञान को व्यावहारिक या सांसारिक जीवन का ज्ञान कहते हैं ।

चारे वेद कथहि आकार,
तीनि अवस्था कहहि बखिआनु
तुरी अवस्था सतिगुरु ते हरिजेन (नानक)

गीता में भी इसी प्रकार लिखा गया है ।

त्रै गुण्य विषया वेद निस्त्रो' गुण्यो भवार्जुन।
निद्रो नित्य सत्वस्थो निर्योगे क्षेम आत्मवान।
(२४५ गीता)

सब वेद तीनों गुणों के कार्य रूप संसार को विषय करने वाले अर्थात् प्राप्त करने वाले हैं ।— किन्तु यह झगड़ा कबीर के अपने युग का नहीं है कबीर से शताब्दियों पूर्व मुसलमान के प्रवेश से भी बहुत पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का है । और इसके निर्देश सिद्ध और योग साहित्य में भी उपलब्ध है। और नाथ योगी संसार त्याग को ही श्रेय समझते हैं। और वैदिक ज्ञान को सांसारिक ज्ञान बताते हैं ।

पुनः शब्दसृष्टिप्रकारमाह-- एका सूक्ष्मरूपिणी । द्वितीय स्थूल रूपिणी । सूक्ष्मरूपिणी प्रणवो महागायत्री योग शास्त्रमिति । स्थूलरूपिणी ब्रह्मगायत्री वेदत्रयीति । पुनः योगशास्त्रतस्तन्त्रशास्त्रं जातं, वेदात् स्मृत्यादिशास्त्रं जातम् । पुनर्नवनाथानां पश्चाद् द्वादश सिद्धाश्चतुरशीतिश्च द्वादश पन्थानोऽनन्तसिद्धाश्च जाताः । पुनर्योगात शेष योगसांख्यायोगादयोऽनेकयोगा अनेकभेदैर्जाता-स्तेन योगेन ज्योतिषन्यायादिकं शास्त्रं, श्रुतितः स्मृति-शास्त्र-व्याकरण पुराणोपुराणा अनेकेतिहासा जाता : ।

(गोरक्षासिद्धान्तसंग्रहः)

त्याग और सुधार का दृष्टिकोण एक उदाहरण से अधिक स्पष्ट हो सकेगा । काम वासना को पुरुष की सब से बड़ी कमजोरी गिना गया है । पुरुष की इसी कमजोरी का विषय है स्त्री । इस काम वासना को जीतने के लिये क्या उपाय किया जाय ? कबीर स्त्री का घृणास्पद चरित्र चित्रित करते हैं ताकि उसके लिये पुरुष में आकर्षण न रहे । वे कहते हैं ।

(१) छोटी मोटी कामिनी सब ही विष की बेलि,
वैरी मारैं दांव दे, ये मारैं हंसि खेलि ।।

(२). जहां जराई सुन्दरी तू जनि जाए कबीर
उड़ के भस्म जो लाग सी, सूना होय सरीर ।।

(३) नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग,
कबीरा तिन की कौन गति, जो नित नारी संग ।।

(४) नैनों काजर पारि के गाढ़े बांधे केस
हाथों मेंहदी लाई के, बाघिनी खाया देस ।

किन्तु क्या स्त्री से इस प्रकार भागा जा सकता है। इतने बड़े जीवन में स्त्री से कई क्षेत्रों में सम्पर्क पड़ता है । इस सीमा तक स्त्री से भागना असम्भव है । सुधार का दृष्टिकोण तो ऐसा हो सकता है कि इसे त्यागा भी न जाय और सम्पर्क से हानि भी न हो । इसके अतिरिक्त घृणा का भाव मानव के मन को रुचि कर नहीं है। मन घृणास्पद विषय से तो निश्चित भागता ही है किन्तु घृणा का भाव भी मानव मन को रुचिकर नहीं है, मन अपने में घृणा का भाव भी नहीं रखना चाहता । घृणा के उत्पन्न होते ही मन खिन्न हो जाता है, अतः ऐसा कोई उपाय स्वास्थ्यकर नहीं है जिससे घृणा का भाव सिद्धान्त रूप में पाया जाये ।

साधारण स्त्री के प्रति काम वासना को जीतने के लिए घृणा के स्थान पर कोई और ढंग भी हो सकता है। कबीर के पूर्ववर्ती और परवर्ती अनेकों धार्मिक नेताओं ने काम वासना के जीतने के अच्छे ढंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपनाये हैं । तुलसी दास, सामर्थक्ष्ये रामदास आदि 'माता के पवित्र सम्बन्ध की शरण लेते हैं और इस बात पर ज़ोर देते हैं कि अपनी पत्नी को छोड़ कर सारी स्त्री जाति को माता करके जानो ।'

"जननी सम जानहि सब नारी" (तुलसी)

किन्तु कबीर जननी के पवित्र सम्बन्ध का भी आदर नहीं कर सके । माता के पवित्र संबंध को अनादृत करने का दुस्साहस आज के उन प्रगतिवादी साहित्य-कारों को भी नहीं हुआ जो यौन भूख की वकालत में अपने तान्त्रिक पूर्वजों को भी पीछे छोड़ आए हैं । कबीर कहते हैं :—

सब सोने की सुन्दरी,
आवै बास सुबास ।
जो जननी होय अपनी
तऊ न बैठे पास ॥

स्त्री को माता रूप में देखना तो स्वस्थ और सुधारवादी दृष्टिकोण है, किन्तु उसकी निन्दा और घृणा किसी भी दृष्टि से सुधारवाद नहीं है ।

संसार त्याग का उपदेश देते समय उनका कहना है, कि संसार माया का उत्पन्न किया हुआ है । माया ठगनी है निन्दनीय है । इस को मार कर या जीत कर साधक निर्गुण राम का साक्षात्कार कर सकता है ।

हरि ठग जग कउ ठगउरी लाई–
कहि कबीर ठग सिउ मन मानिआ
गई ठगउरी ठग पहचानिआ

अब प्रश्न है कि क्या व्यक्ति माया को जीत सकता है या उसे मार सकता है क्या साधक की सामर्थ्य में हैं ? कबीर यह भी मानते हैं कि माया संसार को नचाती है और संसार में वही कुछ होता है जो राम चाहते हैं, साधक को चाहिए कि जैसे प्रभु राखे वैसे ही रहे । इन दोनों बातों के होते हुए राम की 'रज़ा' और राम की 'माया' पर्यायवाची बन जाते हैं ।

अर्थात् माया राम के आदेश से राम की इच्छा से राम को प्रसन्न करने के लिये संसार को नचाती है, या स्वयं प्रभु के प्रसन्न करने के लिये नाचती है । कुछ भी हो माया की सांसारिक रचना के पीछे राम की रज़ा है माया राम की चेरी है साधक की चेरी नहीं है जो साधक उसे मार सके या जीत सके ।

कबीर यहां दुविधा में है एक ओर वे स्वयं माया से लड़ना चाहते हैं दूसरी ओर राम की रज़ा को सर्वोपरि रखते हैं।

यह दुविधा उन्हें दो अलग धाराओं के सम्मिश्रण के कारण मिली । उनमें एक धारा नाथ योगियों की थी और दूसरी वैष्णव वैदान्तिक भक्ति की । नाथ योगी पुरुष और प्रक्रित के द्वैत को मानते हैं। और वैष्णव वैदान्तिक भक्त एक ब्रह्मको ही सर्वोपरि मानते हैं । किन्तु कबीर ने नाथ योगियों के क्षोभ सिद्धान्त को ले लिया और भक्ति के 'एक रज़ा' को ले लिया। दोनों के कारण कबीर को दुविधा मिली । कुछ भी हो, राम की एक रज़ा के रहते, मानव माया को नहीं जीत सकता, क्योंकि माया ने प्रभु की लीला या इच्छा के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पैदा किये हैं, यदि मानव इनको जीत ले तो प्रभु की लीला खड़ी हो जाय, किन्तु न मानव प्रभु की इच्छा को वंगार सकता है और न उसकी ऐसी कुचेष्टा को प्रभु पसंद कर सकते हैं। मायावी प्रतिक्रिया या क्षोभ भले सम्पर्क से होता है किन्तु सम्पर्क से मानव बच नहीं सकता । और सम्पर्क होना या न होना यह साधक के वश में नहीं राम के वश में है। ज़रूरत की चीज़ की कामना करना, उन्नति के लिये आगे लोभ करना, प्राप्त वस्तु की रक्षा के लिये मोह होना, कार्य की प्रेरणा के लिये अहंकार होना और पाप को रोकने के लिये क्रोध होना, यही माया है और एक सामान्य गृहस्थी को बांधने के लिये काफी है । यह ऐसे स्वाभाविक गुण हैं कि इनसे मानव जब तक जीवित है मुक्ति नहीं पा सकता जिसमें उक्त बातें नहीं होंगी वह या तो मुर्दा होगा या पागल । अतः संसार का त्याग भी अव्यावहार्य है और काम-क्रोध आदि का जीतना भी अनुपयुक्त है ।

ऐसे ही त्यागमय जीवन के अपनाने से जो कठिनाइयां आती हैं उन्हें झेलने का उपाय कबीर यह बताते हैं कि दुख और सुख को, मान और अपमान को समान समझो, क्योंकि सभी कुछ प्रभु की इच्छा और रज़ा से हो रहा है ।

(१) **जो तिसु भावै सति करि माने**
भाणा मनि वसाई --

(२) **बुरा भला कहु किस नो कहीए**
दीसै ब्रह्म गुरुमुख सचु लहीए ।

(३) **एक नूर ते सभ जग उपजिआ**
कवन भले ते मन्दे --

अब देखना है कि क्या जीवन के दुखों, और सुखों को, मान और अपमान को, निन्दा और स्तुति को समान समझा जा सकता है। क्या आदमी अपमान और निन्दा को प्रभु की इच्छा समझ सकता है। साधारणतः मान से सुख और अपमान से दुख होता है स्तुति से चित प्रसन्न होता है और निन्दा से खिन्न होता है । साधक कुछ देर के लिये निन्दा और अपमान को प्रभु की इच्छा कह कर टाल सकता है किन्तु स्वस्थ चित कोई भी व्यक्ति अपमान या निन्दा के बार-बार होने से खिन्न हुए बिना नहीं रह सकता । अन्तत : वह इस अपमान, निन्दा या दुख की स्थिति को बदलने का प्रयत्न अवश्य करने पर बाधित हो जाता है । इतिहास ने बताया है कि मुगलों के लगातार अत्याचारों को वे भी प्रभु की रजा समझ कर बरदाशत नहीं कर सके जो इस मार्ग को मानने वाले थे, वे सेवा और अत्याचार को समान नहीं समझ सके । उन्हें इस अत्याचार का खण्डन करने के लिये खड्ग बध होना पड़ा है। परिणामतः दुख-सुख को समान समझने की शिक्षा से जीवन सुखी या आदर्श नहीं हो सकता।

अन्तर्विषय के अतिरिक्त यही बात कबीर की शैली से भी ध्वनित होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर और अन्य सन्तों का उद्देश्य अपने मत का प्रचार तो अवश्य रहा है। अपनी वाणी द्वारा वे भक्ति रस की अमृत वर्षा भी करते थे और शेष समाज से अपने अनुयायी भी पैदा करते थे। प्रचारक के लिये प्रतिद्वन्द्वियों में अपने समर्थक पैदा करना और उनके मनों में अपने विचार उतारना यही मुख्य काम होता है। यही कबीर के लिये था। इसके लिये कबीर ने 'प्रतिद्वन्द्वियों की आलोचना' की पद्धति अपनाई है। कबीर की आलोचना उपहास प्रधान है; उसमें युक्ति का अभाव है।

उपहास प्रधान और युक्तिहीन आलोचना हिंसात्मक आलोचना कही जा सकती है।

यदि आलोचना युक्ति से की जाये तो प्रतिद्वन्द्वी आलोचना को ध्यान से सुनता है। बात समझने का प्रयास करता है और ठीक लगने पर उसे सधन्यवाद स्वीकार भी कर सकता है। ऐसी आलोचना स्वस्थ है। और सत्य की खोज में सामूहिक प्रयास प्रस्तुत करती है। किन्तु यदि आलोचना में युक्ति न हो, पर उपहास हो तो प्रतिद्वन्द्वी के लिये उसमें से ग्रहण करने के लिये कुछ नहीं होता और न उस आलोचना से प्रतिद्वन्द्वी के मत का खण्डन ही होता है। उपहास प्रधान आलोचना का जो एक प्रभाव होता है वह यह कि आलोच्य और आलोचक एक दूसरे के निकट आने की बजाय अधिक दूर हो जाते हैं, शत्रुता बढ़ती है और आलोचना का उद्देश्य सफल नहीं होता। स्थिति सुधरने की बजाये और बिगड़ जाती है। उदाहरणतः कबीर मुल्लाओं को कहता है कि तू इतनी ज़ोर से बांग देता है क्या तेरा खुदा बहरा है। इस आलोचना से न तो मुल्ला की बांग का खण्डन होता है और न मुल्ला इस आलोचना से बांग को छोड़ने वाला है। मुल्ला बांग देता है नमाज के समय की सूचना देने के लिये न कि खुदा को सुनाने के लिये। इसी प्रकार वह सन्यासियों को कहता है कि 'मुंड मुंडाइया जे रब मिले ता सब कोई लवे मुंडा, बार-बार के मूंडने भेड़ बैकुंठ न जाय'। एक सन्यासी जानता है कि मूंड मुंडाने और ब्रह्म प्राप्ति का परस्पर क्या संबन्ध है। किन्तु कबीर की आलोचना से न तो सन्यास का दर्शन का खण्डन होता है न मूंड मुंडाने की उपयुक्तता। और न ही इस आलोचना से आलोच्य का मन जीता जा सकता है।

कबीर के पूर्ववर्ती और परवर्ती सुधारवादी या अन्य धार्मिक नेताओं ने इनके अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। जिन से प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे के निकट आए हैं। निश्चित ही उन्हें सफल उपाय कहा जा सकता है। उनमें अपने मत का युक्ति-युक्त स्पष्टीकरण है, दूसरे का खण्डन नहीं है। प्रचार की दृष्टि से यह सर्वविदित है कि जिस का एक बार निन्दात्मक या उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हासात्मक ढंग से खण्डन कर दिया जाए वह अपने मत को नहीं छोड़ता, अपितु वह विपक्षी के दोषों की खोज में जुट जाता है, अपने दोषों को स्वीकार नहीं करता और न दूसरे की अच्छी बात को लेने को तैयार होता है। सफल नेताओं का अनुभव है कि यदि दूसरे को अपने मत का बनाना है तो दूसरे का स्वयं खण्डन तो एक तरफ उसके आक्रमणात्मक खण्डन को भी चुपचाप सहन कर लेना चाहिए। तभी उसके मन को जीतने की आशा रह सकती है।

वेदों के संकलन में और पौराणिक भक्ति साहित्य में यही शैली अपनाई गई है। कबीर के परवर्ती तुलसीदास ने भी यही शैली अपनाई है। उदाहरणार्थ वे निर्गुण आराधना की अपेक्षा सगुण भक्ति को अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। वे सगुण की ही स्थापना भी करते है। किन्तु उन्होंने एक बार भी निर्गुण का हिंसात्मक या उपहासात्मक खण्डन नहीं किया वे बार-बार यही कहते हैं —

अगुण सगुण दोई ब्रह्म सरूपा
अकथ अगाध–अनादि अनूपा
सगुणी अगुणी नहीं कछु भेदा,
गांवहि मुनि पुरान वध वेदा। इत्यादि

किन्तु बीच-बीच में युक्ति से संकेत करते हैं कि निर्गुण की प्राप्ति असम्भव है। उन्हें इस बात का सदा ध्यान रहता है कि कहीं निर्गुण के लिये आस्था रखने वाले का मन न दुख जाये। इसी प्रकार वे शैवों और वैष्णवों में वैषणों का पक्ष लेते हैं। लेकिन शिव के सम्बन्ध में वे सदा ही पूज्य भाव रखते हैं। उन्होंने राम की स्थापना की है किन्तु क्या मजाल जो किसी शैव भक्त के मन को चोट लगे। यही उनकी शैली थी जिसके कारण तुलसी के शैव भी; श्रद्धालु हैं, वैष्णव भी; निर्गुणी भी, सगुणी भी; भक्ति-मार्गी भी ज्ञान-मार्गी भी, गृहस्थी भी सन्त भी; वे सभी के लिये एकता का केन्द्र बने हैं और सभी ने तुलसी के, सगुण राम की भक्ति को अपनाया है।

कबीर की रचना में भक्ति है, शक्ति है; भाव है, काव्यात्मकता है, किन्तु उनमें अभाव है एक उत्तरदायित्वपूर्ण सूझ का उपाय का, व्यवहार का। उनमें भक्ति का रस है किन्तु व्यवहार की परिपक्वता नहीं है; आलोचक की शक्ति है सुधारक की सूझ नहीं है, कवि का जज़बा है किन्तु निर्माता की उत्तरदायित्वपूर्ण गहनता नहीं है।

समाज के प्रति कबीर की उदासीनता स्पष्ट है। कबीर ने व्यावहारिक जीवन को छोड़ने के लिये पारिवारिक सम्बन्धों को त्यागने के लिये, स्त्री से भागने के लिये स्पष्ट उपदेश किया है। किन्तु उस युग की वास्तविक समस्या है। बादशाहों और काजियों की धार्मिक असहनशीलता और अत्याचार जिस को रोकने या जिसके विरुद्ध आवाज उठाने के लिये कबीर का लोगों को कोई उपदेश नही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रसंग में कहा जाता है कि कबीर ने 'बाह्याचार' का खण्डन करके हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता का प्रचार किया है। किन्तु हिन्दुओं और मुसलमानों के बाह्याचारों के खण्डन से यह बात सिद्ध नहीं होती कि इनका कार्य एकता स्थापित करने की दिशा में प्रयास था।

कबीर के बाह्याचार के खण्डन का उद्देश्य प्रवृत्तिमार्गी मुसलमानों और हिन्दुओं को प्रवृत्ति मार्ग से हटा कर निवृत्ति मार्ग पर लाना है। उनके खण्डन का उद्देश्य वैरागी जीवन का प्रचार है; उनके सम्प्रदाय का प्रचार है इनका बाह्याचार का खण्डन सामाजिक सुधार वादी दृष्टिकोण से या साम्प्रदायिक एकता की दृष्टि से नहीं हैं।

सारांशत: कबीर ने पहले तो सांसारिक जीवन को त्यागने का उपदेश दिया है सुधारने का नहीं, दूसरे जिस प्रकार के त्याग का उन्होंने उपदेश दिया है वह व्यवहार के योग्य नहीं था, जिन्होंने उस त्याग के उपदेश को अपनाया उन्हें उसमें सफलता नहीं मिली। उन्हें व्यवहार में आकर उस उपदेश को छोड़ना पड़ा। किन्तु जो बात सबसे अधिक उद्धृत है वह है कि उसकी ब्राह्मणों की निन्दा, ब्राह्मणों का खण्डन उनकी वाणी में दो प्रकार का है एक तो ब्राह्मण का जातिगत प्रभुत्व और दूसरा है जीवन के प्रति दृष्टिकोण का भेद।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण के भेद के सम्बन्ध में पीछे लिख आए हैं कि कबीर ब्राह्मण के धर्म को व्यावहारिक या सांसारिक जीवन मान कर खण्डन करते हैं। कबीर के इस खण्डन से सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि संसार त्याग का प्रचार सामाजिक जीवन की दृष्टि से स्वास्थ्य कर नहीं है। पहले तो अपनाना व्यावहारिक ही नहीं है, जो इस प्रकार के त्याग को अपनाने की कोशिश करता है वह अच्छा आदर्श नहीं है। ब्राह्मणों का जातीयगत खण्डन महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता था यदि सैद्धांतिक दृष्टिकोण से कबीर व्यावहारिक जीवन का कोई स्वस्थ दृष्टिकोण दे पाते। बिना किसी व्यवस्था के दिये ब्राह्मणों की निन्दा ब्राह्मणों द्वारा व्यक्त कबीर के प्रति उनके घृणा की प्रतिक्रिया मात्र है, सुधारवादी या स्वस्थ नहीं है। कबीर के द्वारा की गई ब्राह्मण-निन्दा का हिन्दु समाज पर सुधारवादी कोई प्रभाव न पड़ सका। हिन्दु समाज में से उनकी अपनी जाति से ऊपर के लोग उनके अनुयायी न बन सके। कबीर मत मुख्यत: जुलाहा जाति तक ही सीमित रह गया। तथा-कथित शूद्रों का स्थान कबीर के प्रयास से हिन्दु समाज में बेहतर नहीं बन सका। हां मुसलमान राज्य के कारण, द्विजों तथा शूद्रों का अन्तर सम्भवत: घटा था। किन्तु गुरु नानक जैसे द्विज नेता भी इस भेद-भावना के घटने से सन्तुष्ट नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। तथाकथित शूद्रों का उद्धार उन्नीसवीं शताब्दी में राजाराम मोहन राय, प्रार्थना-समाज आर्यसमाज, गांधी आदि के प्रयत्नों से शुरू हुआ है। इस दिशा में पूर्ण सफलता कांग्रेस के राजनीतिक और लोकतांत्रिक प्रयत्नों से मिली है।

साराशत: कबीर त्यागी और वैरागी भक्तों में तो शिरोमणी कहे जा सकते हैं किन्तु पारिवारिक. सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से उन्होंने कर्त्तव्य, त्याग, निष्कर्मण्यता और अत्याचारों को प्रभु का भाणा स्वीकार करने की उपदेश देकर जहां व्यावहारिक जीवन में दुर्व्यवस्था को बढ़ावा दिया है वहां राजनैतिक जीवन में दासता के युग को लम्बा करने के कारण हुए हैं।

(पृष्ठ २७ का शेष)

भी कहा है । राजधर्म पर्व में दण्ड, हिंसा, संयम, धन इन चार बातों पर विशेष ध्यान आकर्षित किया है । ये चार गुण राजा में अवश्य हों ।

आज, समय की पुकार है कि हम प्राचीन विधिविधानों को कार्यरूप में परिणत करें । आज समाज का ढांचा विघटित है, अव्यवस्थित है ठीक उसी प्रकार, जैसे 'राजा' की उत्पत्ति से पहले था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यास जी—एक बहुमुखी प्रतिभा

नन्द लाल 'निर्दोष'

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में रत और हास्य व्यंग्य की मीठी चुटकियां लेने वाले पत्रकार श्री गोपाल प्रसाद व्यास से, क्या दिल्ली और क्या अन्य प्रदेशों के, सभी हिन्दी प्रेमी प्रायः परिचित हैं। उन का हास्यरूप सर्वाधिक लोकप्रिय है। जीवन और साहित्य में हास्य की उपयोगिता किसी से छिपी नहीं है। वस्तुतः हंसना मनुष्य का स्वाभाविक लक्षण है। पशु हंसकर अपना हर्षोल्लास प्रगट नहीं कर सकते, यह गौरव मनुष्य को ही प्राप्त है। विचित्रता असम्बद्धता तथा कथन का लहजा—ये हास्य के अनिवार्य प्रेरक तत्व हैं। हास्य रस का धर्म केवल हंसने-हंसाने तक सीमित नहीं, व्यंग्य-कटाक्ष द्वारा आलोचना करना, सुझाव देना भी है। हास्य अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक कुरीतियों पर प्रतिबन्ध का कार्य करता है। दण्ड का प्रत्यक्ष विधान इतना हितकारी नहीं जितना कि हास्य के रूप में किया गया व्यंग्य।

श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने हास्य की रचनात्मक शक्ति को, इसके मर्म को भली भांति समझा है। जिस समय उन्होंने हिन्दी कविता क्षेत्र में पदार्पण किया, हास्य र उपेक्षितप्रायः था। हास्य कवि व्यास ने व्यक्ति, समाज और राजनीतिक असंगति पर व्यंग्य-प्रहार किये और इस प्रका आह्लादकारी हास्य को उपयोगी पद प आसीन किया। व्यास जी के पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य में हास्य-रस का अभाव नहीं है आलोचक चाहें तो ऋग्वेद के जुआरियों प्रसंग तथा मण्डूक सूक्त से लेकर रामाय महाभारत, और संस्कृत-नाटकों में हा रस के उदाहरण सहज रूप में खोज सक हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य आदिकाल, मध्यकाल, तथा आधुनिकका में भी हास्य रस की परम्परा यत्किंचि देखने को मिल जायेगी। फिर भी व्या जी के हास्य और उक्त हास्य में एक वि अन्तर दिखाई देगा। 'व्यास जी की हा कविताओं की विशेषता है कि उन्हों दूसरों के सिर पर होली नहीं खेली है समाज की गहरी चुटकियां ली हैं, चिकौटियां काटी हैं किन्तु सभी अ को निशाना बना कर।' दूसरों के सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यास जी भले ही रियायत कर दें परन्तु वह अपनी असंगतियों एवं परिसीमाओं पर बिना झिझक खुल कर हंसते हैं। 'सच्चा हास्य दूसरों पर नहीं अपने पर हंसता है। वह छेदता नहीं छेड़ता है वह भी भाले की नोक से नहीं, फूलों की छेड़ी से, फुसलाता नहीं, हुलसाता है। वह सही अर्थों में कान्ता सम्मत है। हृदय में ऐसे बैठ जाता है जैसे सुगृहिणी की बात। उसी लिये हृदय-परिवर्तन की, विचारों के प्रचार की जितनी मीठी और सबल शक्ति हास्य रस में है उतनी किसी और में नहीं। हज़ार उपदेश और आदेश एक तरफ़ और व्यंग्य-विनोद की छोटी सी उक्ति एक तरफ़।' व्यास जी के स्वयं के उपर्युक्त शब्द हास्य के प्रति उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करने में समर्थ हैं।

व्यास जी हिन्दी में 'पत्नीवाद' के प्रवर्तक माने जाते हैं। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने उन्हें 'परिवार रस' का प्रवर्त्तक भी माना है। वह लिखते हैं—'परिवार रस का आलम्बन शास्त्रानुमोदित कोई एक विशिष्ट व्यक्ति न हो कर परिवार के अंग भूत वे सभी व्यक्ति हैं जो परिवार को संगठित करते हैं। पति-पत्नी, सास-ससुर बेटा-बेटी, भाई-भाभी, भतीजे-बुआ, मामा-चाचा, काका-काकी सभी को इसमें समान अधिकार है। संभवत: स्नातक जी का तात्पर्य इस हास्य शैली में आत्मीयता के तत्त्व के प्रत्यक्ष करना है। इन नातों में जो सामीप्य और स्नेह है, उसकी भूमि पर सहज, निष्कलुष हास्य खिल उठता है।

'पत्नीवाद' के माध्यम से व्यास जी ने पुरुष और स्त्री दोनों वर्गों पर फब्तियां कसी हैं और सामाजिक असंगतियों पर कशाघात किया है। आधुनिक नारी ने नारीत्व को छोड़कर जो तथाकथित प्रगति को स्वीकारा है उस पर व्यास जी ने 'मैं भी हड़ताल करूँगी' शीर्षक से तीखा व्यंग्य किया है। हड़ताल यानि अनशन की धमकी देती हुई पत्नी अंत में कहती है —

पहले यह मंजूर करो
पत्नी इस घर की दास नहीं है
व्यास–पयास कुछ नहीं
तुम्हें बस, बीबीदास कहाना होगा।

व्यास जी की विनोदी वृत्ति जिस प्रकार उनकी रचनाओं में दृष्टिगत होती है उसी प्रकार उनके व्यक्तिगत जीवन में भी। वह फक्कड़ स्वाभाव के मस्त ब्रजवासी हैं, खूब हंसते हैं, दूसरों को भी खूब हंसाते है। होली के दिन मूर्ख महासम्मेलन में उनका रूप देखते ही बनता है। लगता है साक्षात हास्यदेव प्रमथ धरा पर उतर आये हैं। इस दिन, वह बिना मुकुट के दूल्हा होते हैं, लाखों लोग उनकी निराली सजधज को देखने के लिये घंटों पहले दिल्ली के बाज़ारों में इकट्ठे हो जाते हैं। इस दिन वह किसी को नहीं छोड़ते अपने से लेकर प्रधान मंत्री तक को। मूर्ख महासम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में व्यास जी महामूर्ख का पार्ट अदा करते हैं। बड़े से बड़े राजनीतिक नेता को बनाने में नहीं चूकते और हंसी-हंसी में ऐसी गंभीर बात कह देते हैं जो दूसरे कभी नहीं कह सकते।

यद्यपि हास्य रस व्यास जी का प्रमुख क्षेत्र है तथापि हास्येतर साहित्य की सर्जना भी उन्होंने प्रभूत मात्रा में की है। हास्य के अतिरिक्त उन्होंने राष्ट्रीय कविताएं लिखीं जो पदे-पदे वीर रस से परिपूर्ण हैं। वह स्वयं स्वातन्त्र्य सेनानी रहे हैं। हास्य कविताओं के समान व्यास जी की इन कविताओं की भी कुछ निजी विशेषताएं हैं। इन कविताओं में 'शास्त्र-स्थिति-सम्पादन' व्यास जी को अभीष्ट नहीं रहा अर्थात् व्यास जी ने शास्त्रीय दृष्टि से वीर रसोचित टवर्ग आदि शब्दों तथा गौड़ी रीति को अपनाना आवश्यक नहीं समझा। शब्दों की केवल खड़खड़ाहट उन्हें रुचिकर नहीं, इसलिये उन का शब्द-चयन सहज है। इतना होने पर भी व्यास जी की राष्ट्रीय कविताओं में ओज किसी रूप में भी अपने पूर्ववर्ती वीर रस के काव्य से कम नहीं। विभाव आदि कृत्रिम विधानों के बिना वीर रस की इतनी मार्मिक व्यंजना सचमुच अनुपम है। एक बानगी देखिए ––

उठ पड़ी जवानी बल खाती
जुल्मों का नाम मिटाने को
उठ पड़ी दासता–शासक की
सत्ता को सत्व मिटाने को ।

इन पंक्तियों में ओज द्रष्टव्य है। साकार रूप से जागृति की ज्वाला धधक रही है।

व्यास जी की बहुमुखी प्रतिभा हिन्दी में अनेक रूपों में प्रकट हुई है। 'अजी सुनो', 'चले आ रहे हैं' तथा 'पत्नी को परमेश्वर मानो' व्यास जी की शुद्ध हास्य रचनाएं हैं। 'रंग-जंग और व्यंग' में ब्रज-भाषा राष्ट्रीय तथा हास्य रचनाओं की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। 'कदम-कदम बढ़ाए जा' खण्ड वीर काव्य है। कविताओं के अतिरिक्त 'उन्नीसवां पुराण' 'तो क्या होता' 'मैंने कहा' तथा 'कुछ सच कुछ झूठ' नामक संग्रहों में व्यास जी के व्यंग्य विनोद के निबन्ध संकलित हैं। 'हिन्दी साहित्य का अध्ययन' और 'साहित्य' दो आलोचनात्मक पुस्तकें हैं। संस्मरण और यात्रा-साहित्य पर व्यास जी ने दो पुस्तकें लिखी हैं। इनके नाम हैं––'हिन्दी की पुरानी पीढ़ी' और 'अरबों के देश में' व्यास जी ने महात्मा गांधी पर भी तीन पुस्तकें लिखी हैं––'हमारे राष्ट्रपिता' 'गांधी चरित' तथा 'चित्रमय बापू' इसके अतिरिक्त हिन्दी व्यंग्य-विनोद' 'जयघोष' तथा 'हास्य रस कवि सम्मेलन' नामक तीन पुस्तकों का व्यास जी ने संकलन सम्पादन किया है। दो अभिनन्दन ग्रन्थों की संयोजना की है––ये अभिनन्दन ग्रन्थ हैं–'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' और 'राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी व्यास जी की सेवा उल्लेखनीय है । उनके दो अनुपम स्तम्भ 'यत्र-तत्र सर्वत्र' तथा 'नारद जी खबर लाये हैं।' हिन्दुस्तान (नई दिल्ली) भारत (प्रयाग और प्रदीप (पटना) में साथ साथ छपते है । इन दोनों स्तम्भों ने हिन्दी को लोक प्रिय बनाया है। लगातार पिछले १५ वर्षों से लगभग १ करोड़ पाठक प्रतिदिन प्रति सप्ताह इन स्तम्भों द्वारा व्यास जी के वैचारिक व्यंग्यों का आनन्द ले रहे हैं ।

व्यास जी का साहित्य उनके जीवन्त पुरुषार्थ की कहानी है । व्यास जी जिस प्रकार से निज लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए हैं, वह सराहनीय है । उन्होंने अपना जीवन एक मामूली कम्पोज़ीटर से शुरु किया और आज समाज और साहित्य दोनों में प्रतिष्ठा के शिखर को छू रहे हैं । इस सफलता का आधार उनकी कतिपय विशेषताएं हैं । व्यास जी में अद्भुत कार्य-पटुता, संगठन, शक्ति तथा अदम्य उत्साह तीनों एक साथ हैं । साथ ही वे व्यवहार कुशल, सहृदय तथा निष्कपट व्यक्ति हैं ।

व्यास साहित्य हिन्दी में अनेक रूपों में प्रकट हुआ है यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है परन्तु व्यास जी के व्यंग्य-विनोद और हास्य ने इन सभी पक्षों को दबा लिया है । आज वह हिन्दी में दो रूपों में प्रसिद्ध हैं एक हास्यरसावतार के रूप में तथा दूसरे हिन्दी नेता के रूप में ।

व्यास जी का हिन्दी प्रेम राजर्षि टंडन की परम्परा में पड़ता है। हिन्दी के न्यायोचित अधिकारों के लिये संघर्ष करने वाले में वह मूर्धन्य हैं । उनकी हिन्दी सेवा साहित्यिक और सांस्कृतिक संगठन के रूप में प्रस्फुटित हुई है । 'अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल' तथा 'दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन' इसके ज्वलंत प्रमाण हैं ।

'अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल' के लिये व्यास जी ने असाधारण कार्य किया । उनके प्रधान मंत्रित्वकाल में मण्डल ने अखिल भारतीय स्तर पर सूर जयन्ती मनाने का निर्णय लिया । 'पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ' का आयोजन किया गया । मंडल ने 'ब्रज भारती' पत्रिका के माध्यम से ब्रज भाषा पर साहित्यिक शोध तथा रचनात्मक कार्य किये । सूरकुटी का जीर्णोद्धार किया गया तथा ब्रजभाषा कार्यक्रम को आकाशवाणी पर स्थान दिलाने का सफल प्रयास हुआ ।

'प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन' इस समय सर्वाधिक जीवन्त संस्था है । इसके संगठन के सम्मुख सभी नई पुरानी साधन सम्पन्न संस्थाएं भी मन्द पड़ गई हैं । सम्मेलन को जो जीवन शक्ति और व्यापक कार्य क्षेत्र प्राप्त हुआ है उसमें व्यास जी का योगदान अनुपम है । उन्होंने जब सम्मेलन संभाला तो उसका अस्तित्व एक क्षीण रेखा से अधिक नहीं था । न तो सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास अर्थ-व्यवस्था का कोई प्रबन्ध था और न ही कार्यालय । एक वर्ष से उसकी कोई बैठक भी नहीं हुई थी । व्यास जी के अनवरत परिश्रम से सम्मेलन के अब २५ से अधिक मंडल तथा ५ हज़ार से ऊपर सदस्य हैं । प्रतिवर्ष सम्मेलन द्वारा लगभग ५० हज़ार रुपये हिन्दी कार्यों पर खर्च किया जाता है । सन् १९६५ में २६ जनवरी को हिन्दी का विजयघोष इसी सम्मेलन की प्रतिध्वनि था । व्यास जी की योजना है कि राजधानी में एक ऐसा विराट हिन्दी केन्द्र स्थापित किया जाए जो अखिल भारतीय भाषाओं का मिलन स्थल हो ।

व्यास जी स्वयं में एक संस्था हैं। उनकी अमित सेवाओं का आदर करते हुए सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से अलंकृत किया है तथा साहित्यकारों ने व्यास जी का अभिनंदन कर उनकी सेवाओं को समादृत किया है ।

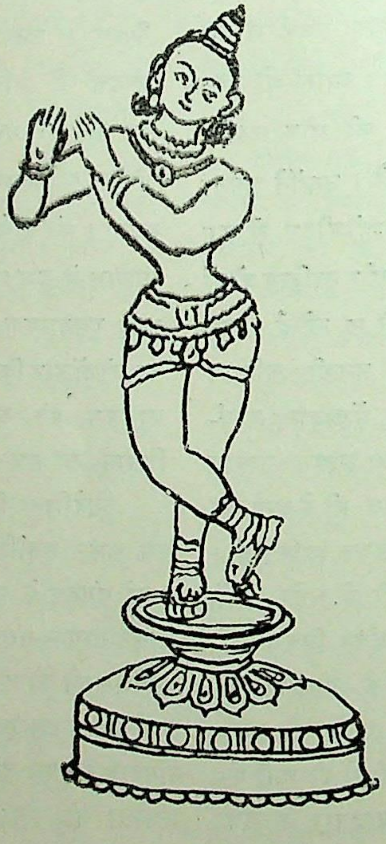

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहावत–उसकी विशेषताएँ

शिबन कृष्ण रैण ।

कहावत मानव जीवन के अनुभवों की मार्मिक, संक्षिप्त तथा सजीव अभिव्यक्ति है। यह एक ऐसा सप्राण तथा चुभता हुआ जीवन का सूत्र है जो जनता की जिह्वा पर निवास करता है तथा उसके मूल्यों की सम्यक् आलोचना प्रस्तुत करता है। वे सभी घटनाएं जो मनुष्य के हृदय को आलोड़ित कर उसके स्मृति-पट पर स्थायी रूप से अंकित हो जाती हैं, कालांतर में उसकी प्रखर बुद्धि के अवशेषों के रूप में कहावतें बन जाती हैं।

कहावत की मुख्य तीन विशेषताएं हैं—(१) संक्षिप्तता, (२) अनुभव और (३) लोक-प्रियता।

संक्षिप्तता

कहावत की सबसे पहली विशेषता है इसकी संक्षिप्तता, समास शैली या लाघव। कहावतों में कतिपय शब्दों में अधिक से अधिक भाव राशि संचित रहती है।१ ये आकार में भले ही छोटे लगें किन्तु इनमें विपुल भाव-सामग्री गुंफित मिलती है।२ 'आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी', 'एनसाइक्लोपीडिया एमेरिकानां' तथा 'हिन्दी साहित्य कोश' आदि में कहावत सम्बन्धी इस विशेषता पर विशेष बल दिया गया है। ३

सर्वन्ति के अनुसार कहावत एक ऐसा लघु वाक्य है जो दीर्घकालीन अनुभव पर आधारित है। इसी लाघव के कारण कहावत प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर सुगमता से सध जाती है तथा उसका कहीं पर भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। टी० टी० मूंगर लिखते हैं—"कहावतें चिरकालीन अनुभव-ज्ञान का

1. 'A proverb is much matter decorated into few words"
Thomas Fuller.
2. "Well short in words, and well long in wit."
Frere Lorenz.
3. "A proverb is a short sentence based on long experience."
Don Quixote.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार हैं। ये ऐसी संक्षिप्त, लाक्षणिक तथा सहज रूप में से कंठस्थ होने वाली उक्तियां हैं जिनका कभी भी कहीं पर प्रयोग किया जा सकता है इनमें सदैव प्रयुक्त होने की तत्परता विद्यमान रहती है।"१

कहावतों द्वारा युगों-युगों का अनुभव अल्प शब्दों में व्यक्त होता है। इन संक्षिप्त एवं सारगर्भित वाक्यों में किसी भी राष्ट्र की ज्ञान-राशि सहज रूप में अंकित मिलती हैं। यदि इनका संग्रह करके सम्य क् अनु-शीलन किया जाये तो ये मानव-जीवन के विषय में शिक्षा-निर्देश करने वाली महत्त्वपूर्ण सरणियां सिद्ध होंगी। इनके द्वारा थोड़ी भाषा में अधिक भाव मिलते हैं और वक्ता को समय की बचत होती है। विशिष्ट अवसरों पर कहावतें अनेक प्रश्नों के लिये सर्वोत्तम और सहज-सुलभ उत्तर के रूप में प्रयुक्त हो सकती हैं।२ कहावत की संक्षिप्तता पर प्रकाश डालते हुए डॉ० मार्च लिखते हैं—"कहावत में हजारों शब्दों के अर्थ और शक्तियां एक सरल व संक्षिप्त वाक्य के रूप में गुंथे रहते हैं। इसका प्रभाव तीव्र होता है क्योंकि यहां परिमित शब्दावली में अधिकतम अर्थ-शक्ति समाहित रहती है ३।"

कहावत की इस विशेषता से यह तात्पर्य नहीं कि जो उक्ति अपेक्षाकृत लम्बी हो वह कहावत नहीं है, विश्व के कहावती साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि आकार में लम्बी कहावतों की संख्या

---

1. "Proverbs are the condenced wisdom of long experience, in brief, epigrammatic form, easily remembered and always ready for use."

T. T. Munger.

2. "The wisdom of nations lies in their proverbs which are brief and pithy. Collect and learn them, they are notable measures of directions for human life; you have much in little, they save time in speaking, and upon occassions may be the fullest and safest answers."

—Penn.

3. "The proverb condences the meaning and power of a thousand words into one short and simple sentence, and it is the more effective, because it carries so much force in so compact form."

D—March.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कुछ कम नहीं है । वास्तव में—— कहावत की संक्षिप्तता से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि उसमें न्यूनतम शब्दों का प्रयोग हो, अनावश्यक एक भी शब्द उसमें न आने पाये ।१"

कहावत की दूसरी विशेषता है—— अनुभव । कहावतों में मानव जीवन के युग-युगों के अनुभवों का परिणाम और निरीक्षण सार रूप में सुरक्षित रहता है। कहावतें जनता के सामूहिक ज्ञान तथा अनुभव से जन्म लेती है अतः उनमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी के साथ प्रकट होते हैं । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं । अनंत काल तक धातुओं को तपा कर सूर्य-रश्मि नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती हैं, जिनका आलोक सदा छिटका रहता है । इन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है २ ।"

कहावतें जीवन के सजीव और स्वाभाविक तथ्यों का उद्घाटन करती हैं । मानव ने अपने अनुभव से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया उनका प्रकाशन इन कहावतों के माध्यम से होता है ३ । वास्तव में, अनुभव और जीवन का घनिष्ठ संबंध है । जीवन से ही अनुभूतियां स्फुरित होती हैं । कहावतों में व्याप्त मनाव जीवन की अनुभूतियों पर विचार करते हुए जॉन कीट्स लिखते हैं—— 'जीवन का कोई भी तथ्य तब तक स्वाभाविक नहीं बन सकता जब तक उसका अनुभव न किया जाए । इसी प्रकार कहावत भी तब तक कहावत नहीं कहला सकती जब तक उसका जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं किया जाय ४।"

कहावतें अनुभव-सिद्ध ज्ञान की निधि हैं । इन में मानव-जाति की प्रथाओं, घटनाओं तथा उनके गुणों——, अवगुणों का वर्णन दैनिक जीवन के अनुभवों के

१. 'राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन" डा० कन्हैया लाल सहल पृष्ठ १३

२. "मेवाड़ की कहावतें" भाग २(१) पुस्तक की भूमिका से

३. "समस्त लोकोक्तियों का सम्बन्ध मानव जीवन से ही है। इनके द्वारा मानव जीवन के विविध पहलुओं पर अनुभवपूर्ण प्रकाश पड़ता है । मानव-जीवन का कोई ऐसा तथ्य नहीं, जिस पर लोकोक्तियां प्रकाश न डालती हों ।" 'निमाड़ी और उसका साहित्य' डा० कृष्ण लाल हंस ३६१—३६२

4. "Nothing ever becomes real till it is experienced—even a proverb is no proverb to you till your life has illustrated it."

John Keats.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर होता है, तभी इन्हें दैनिक जीवन की मुहिताएं कहा गया है१ । वास्तव में, ये ज्ञान के क्षेत्र में घूमने फिरने वाले सिक्के हैं२ । सर्वान्ते ने कहावतों के अनुभव-पक्ष पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—'मैं समझता हूँ कि कोई भी कहावत ऐसी नहीं जिसमें सत्यता न हो क्योंकि ये सभी प्रत्यक्ष जीवन के अनुभवों से चुने हुए वाक्य हैं और वास्तव में, अनुभव ही प्रत्येक-विज्ञान की जननी है३ ।" श्री महावीर प्रसाद पोद्दार ने कहावतों में सन्निहित अनुभव पक्ष पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"कहावतें अनुभवों का खज़ाना हैं । इनमें शिक्षा है, उपदेश है, ज्ञान है, इतिहास है—समाज की तत्कालीन दशा का दर्पण है। ये लोगों के मन में उठने और मुख से प्रकट होने वाले सब प्रकार के भाव हैं, इनमें और ये भाव इतनी सुन्दरता से और इतने संक्षेप में प्रकट हुए हैं कि साहित्य की दूसरी शाखा में हमें शायद ही ही मिल सकें ४ ।"

संक्षेप में, कहावत एक ऐसा केन्द्र विन्दु है जिसमें असंख्य अनुभवों की कड़ियां संयुक्त रहती हैं ५ । इसमें संक्षिप्त और मार्मिक ढंग से मानव-मन के उद्गारों, हर्ष-शोक, संकल्प-विकल्प आदि का सजीव वर्णन मिलता है । तभी कहावतों को मानवता के अश्रु कहा गया है६ ।

लोक–प्रियता

कहावतों की तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता इनकी 'लोक-प्रियता' है, कहावतें ऐसी सटीक, अनुभवित, अलंकृत तथा शिक्षा

---

1. "Proverbs are daughters of daily experience."
A Dutch Proverb.
2. "Copper coinage of wisdom in the way of proverbs."
George Mevedith.
3. "I am of the opinion that there are no proverbial sayings which are not true, because they are all sentences drawn from experience itself, who is the mother of all science."
Cervantes.
४. "कहावतों की कहानियां" पृष्ठ ४-५ (महावीर प्रसाद पोद्दार)
5. "The proverb is the focal point of an infinite number of experiences."
'Oriental Humour'
By R. H. Blyth—P. 67
6. 'Proverbs have been called the tears of humanity."
'Curiosities in Proverbs'
D.E. Marving —Introduction.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण उक्तियां हैं जो एक कान से दूसरे कान और एक मुंह से दूसरे मुंह में पहुंच कर लोक-जिह्वा पर सध जाती हैं। इन सुन्दर और सजीव मर्म-वाक्यों की उत्पत्ति बैठकघरों, समाजों अथवा पुस्तकालयों में न होकर मिल कारखानों, रसोई घरों, खेत खलिहानों में होती हैं। किसान, श्रमिक, अशिक्षित स्त्रियां तथा समाज की नीची श्रेणी के अज्ञजन इनका विशेष रूप से प्रयोग करते हैं। वास्तव में, कहावत तब तक कहावत नहीं कहला सकती जब तक सामान्य जनता इसे स्वीकार नहीं करती।

संसार की कई भाषाओं में ऐसी भी कहावतें मिलती हैं जिन्हें कहावतों की संज्ञा नहीं दी गई है क्योंकि उनमें लोक-प्रियता का अभाव है, कहावतों के लिए यह आवश्यक है कि वे या तो उन साधारण की सहज अनुभूतियों से विकसित हों या सामान्य जनता उन्हें सत्य के रूप में स्वीकार करे१। कहावतों को जन-जनार्दन की उक्तियां भी कहा गया हैं।२ यहां तक कि हावेल ने कहावत को जनवाणी के रूप में ईश्वरीय वाणी कहा है ३।

संक्षेप में, लोकप्रियता कहावत का विशेष गुण है भले ही कहावत में कितना ज्ञान या अनुभव संचित क्यों न हो किन्तु लोक-प्रियता के अभाव में वह कहावत नहीं कहला सकती है ४।

---

1. "There are many sayings in all literatures which are not recognized as proverbs because they lack the element of popularity. To attain the rank of a proverb, a saying, must either spring from the masses or be accepted by a people as true."
Encyclopaedia of Religion and Ethics.

Vol. X, P. 412.

2. "Vox populi, vox dei" Latin.

"खलक की जबान खुदा का नक्कारा"

3. "The people's voice, the voice of God we call. And what are proverbs but the people's voice."

4. "A proverb, according to ebster, is 'An old and common saying, a phrase or expression aften repeated', 'old it must be and common, for a verbal statement, no matter how wise or witty it may be, rarely becomes a proverb until it is certified by the voice of the people."

Curiosities in Proverbs—Introduction.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अभिज्ञान-शाकुन्तलम में चित्रित पशु-पक्षी

प्रो० इन्द्र देव

भारतीय जीवन और साहित्य में वैदिक काल से ही प्रकृति और पशु-पक्षियों का विशेष महत्त्व रहा है। प्रकृति की गोद में संस्कृति और सभ्यता का विकास होने के कारण भारतीय मनीषियों को प्रकृति में उन्मुक्त विहार करने वाले पशु-पक्षियों के सम्पर्क में आने तथा उनके आहार विहार-स्वभावादि का निकट से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसलिये प्रकृति और पशु-पक्षी उसके जीवन के अभिन्न अंग बन गए। इनके अभाव में भारतीय जन-जीवन में शून्यता अनुभव होने लगी। वैदिक संस्कृति और सभ्यता के अनुयायी भारतीय के जीवन का तीन चौथाई भाग प्रकृति के आंचल में प्रकृति और पशु-पक्षिों के साहचर्य में व्यतीत होने लगा। मानव ने इनके साथ आत्मीयता अनुभव की तथा अपने भावों और क्रिया-कलापों का इन पर आरोप करना प्रारम्भ कर दिया। वह इनके सुख दुःख का समभागी बनने लगा और अपने सुख दुख में भी इनको भी सुखी-दुःखी अनुभव करने लगा।

वैदिक साहित्य में वैदिक ऋषि का यह प्रकृति प्रेम स्वाभाविक और निच्छल रूप में व्यक्त हुआ है। वह प्रकृति के नित नवीन रूपों पर मुग्ध होता है, आनन्द अनुभव करता है और प्रेरणा तथा जीवन-संदेश प्राप्त करता है। हिंसक पशु उसे भयभीत नहीं कर पाते और पालतू पशु तो उसके जीवन-साथी हैं। कृषि-प्रधान, पशु-पालक और आश्रमजीवन प्रधान व्यवस्था में यह अभिन्नता और सौहार्द परम स्वाभाविक हैं।

उत्तर-वैदिक साहित्य में भी यह प्रवृत्ति बनी रहती है। रामायण और महाभारत में भी प्रकृति के मुक्त-विहारी पशु-पक्षियों को दैनिक जीवन और साहित्य में सम्मानित स्थान प्राप्त है। प्रकृति के विभिन्न रूपों और पशु पक्षियों की स्वाभाविक शारीरिक और मानसिक क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं को वाणी दी जाती है। उनको मानव जीवन का अपरिहार्य एवं अभिन्न अंग समझा जाता है। महाकवि वाल्मीकि की हृदय-व्यथा हंस मिथुन के दाम्पत्य सुख में व्याघात को देख कर प्रबल वेग से प्रवाहित होने लगती है और महाकाव्य का रूप धारण कर लेती है। यह परम्परा संस्कृत साहित्य में अविच्छिन्न रूप में पनपती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है । प्रकृति के विविध रूपों का—वन, पर्वत, सागर आदि का——काव्यमय अथवा प्रकृत, आलम्बक अथवा उद्दीपक चित्रण काव्य का अविच्छेद्य अंग माना जाता है । परन्तु प्रकृति-चित्रण -विकास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि कवियों पर नागरिक जीवन का प्रभाव बढ़ता जाता है और उनके काव्य में अभि-व्यक्त प्रकृति-चित्रण में अस्वाभाविकता तथा कृत्रिमता बढ़ती जाती है । अतः इन वस्तुओं के प्रति भी शिथिलता और उपेक्षा में वृद्धि होती जाती है । कबि काव्य-नियमों का पालन मात्र करने के लिये प्रकृति का चित्रण करता है।

आधुनिक युग में नागरिक सभ्यता और नागरिक जीवन के अत्यधिक विकास के कारण मानव का प्रकृति से सम्बन्ध न्यूनतर होता जा रहा है। वैज्ञानिक प्रगति और बड़े-बड़े उद्योगों के विकास ने इस क्षेत्र में अविस्मरणीय प्रभाव डाला है । कवि अथवा लेखक नागरिक सभ्यता की चका चौंध से चुंधिया कर नगरों तक सीमित रह गया है । उसके जीवन से प्रकृति तथा पशु-पक्षियों से पूर्व की सी आत्मीयता, सौहार्द और परिचय लुप्त हो चुके हैं । जीवन की समस्याओं और जटिलताओं ने उसे इस सुख से वंचित कर सीमित बना दिया है । आधुनिक साहित्य में पूर्वकाल में रचित साहित्य में अभिव्यक्त प्रकृति तथा पशु-पक्षियों से सहृदयता और आत्मीयता के अभाव का यही कारण है ।

X X X

संस्कृत-साहित्य-संसार में कविकुल गुरु कालिदास का आविर्भाव रामायण-महाभारत काल के पश्चात् होता है । भारतीय जीवन में वैदिक संस्कृति मुखरित हो रही है तथा उसके जीवन में प्रकृति और पशु-पक्षियों का विशेष महत्त्व है । संस्कृति और सभ्यता में समयानुसार विकास होने पर भी मूल भावना अपरिवर्तित एवं सबल रूप में विद्यमान है । वैदिक आदर्श जन-मानस को अनुप्राणित कर रहे हैं। वैदिक संस्कृति के मूल-स्रोत और मूलाधार ऋषि और ऋषि-आश्रम पूजा और श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं। राष्ट्र का कण-कण पवित्र और देवत्व भावों से समन्वित है । गार्हस्थ्य जीवन के अतिरिक्त तीनों आश्रमों में नागरिक को प्रकृति का साहचर्य और पशु-पक्षियों का बान्धवत्व सुलभ होता है । सशक्त और धन-संपन्न व्यक्ति आखेट आदि के व्याज से प्रकृति से सम्पर्क स्थापित करते हैं। धर्मप्राण जनता तीर्थाटन के प्रसंग में मातृभूमि और उसके निवासियों से परिचय पाती है। अतः ब्राह्मण-धर्म का सन्देश देने वाले कवि कालिदास के काव्य में प्रकृति और पशु-पक्षियों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक है । कवि पशु-पक्षियों की गतिविधि का सहज स्वाभाविक चित्रण करता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उनके स्वभाव में मानव स्वभाव की समता पाता है। वह उनको सुख-दुःख में सुखी-दुःखी तथा सहानुभूति और समवेदना पूर्ण पाता है। वह प्रकृति और पशु-पक्षियों से अपने जीवन में पूर्णता अनुभव करता है तथा सम्पर्क और साहचर्य से उनके जीवन को पूर्ण बनाता है। उसके पात्रों को प्रसन्न पाकर पशु-पक्षी हर्ष-विभोर हो जाते हैं। वे कलरव व्याज से संगीत-सुधा का पान कराते हैं। उनको अप्रसन्न तथा शोकमग्न देख कर प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। हरिणियां आधा चबाया हुआ घास उगल देती हैं, मोर नाचना बन्द कर देते हैं, भौंरे ने फूलों पर मण्डराना छोड़ दिया है तथा पादप-बल्लरियां पीले-सूखे पत्तों को गिराने के व्याज से अश्रुपात करने लगती हैं।[1]

कालिदास की कृतियों में पशु-पक्षियों की प्रकृत (सहज) अभिव्यक्ति के अतिरिक्त करुण और शृंगार में सहायक क्रिया-कलापों एवं स्वभाव का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। भ्रमर और मृग, कोकिला और चक्रवाक कवि को विशेष रूप से आकर्षित कर सके हैं। भ्रमर के माध्यम से कवि रूप और रस के लोभी मानव के स्वभाव को अभिव्यक्ति देता है। चक्रवाक स्नेह की पराकाष्ठा और विरह-व्यथा को व्यक्त करता है तथा कोकिला मधु ऋतु समय और स्त्री स्वभाव की विशेषताओं को वाणी देती है। कवि की कृतियों में अलंकारों और लोकोक्तियों के माध्यम से भी पशु-पक्षियों को स्मरण किया गया है।

महाकवि की रचनाओं के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कवि का भारत की चप्पा-चप्पा भूमि से प्रगाढ़ परिचय है। कवि गौड़ देश (बंगाल) से पारसीक देश (ईरान) तक और हिमालय से कन्या-

१. हिंसक पशुओं से युक्त वन में एकाकिनी सीता को छोड़ कर लक्ष्मण के चले जाने पर ––विलाप करती हुई सीता को देख कर––

नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृंगा,
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव–
मत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि। (रघु० सर्ग १४, श्लो. ६९)
उद्गलितदर्भकवला मृग्यः
परित्यक्त नर्तना मयूराः
अपसृत पाण्डुपत्रा
मुञ्चन्त्यश्रूणीव लता ।। (अभि०, चतुर्थोङ्क, श्लो० १२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारी तक विस्तृत भूभाग की भौगोलिक राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों से पूर्णतया परिचित है ।१ इस विस्तृत क्षेत्र की प्राकृतिक वन-सम्पदा, पर्वत-उपत्यका, सर-सरिता और पशु-पक्षियों से उसका निकट का परिचय है। उष्ण और शीत प्रदेशों के निवासी वन्य और ग्राम्य पशुओं की गतिविधियां और स्वभाव कवि की सूक्ष्म-दृष्टि और सूक्ष्म-निरीक्षण से छिप नहीं पाते । 'कुमार संभव' में विशेष रूप से शीत प्रदेश के पशु-पक्षियों का चित्रण है । विवेच्य नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में उष्ण प्रदेश में प्राप्त होने वाले पशु-पक्षियों का ही वर्णन है । इसमें मृग, कृष्ण सारंग, (काला हरिण) शार्दूल (व्याघ्र), सिंह (केसरी), वराह (सूअर), गज (हाथी), ऋक्ष (भालू), महिष (भैंसा), तुरग (घोड़ा), शुन (कुत्ता), विडाल (बिल्ली), गोध (गोह), सर्प (सांप), मूषक (चूहा) आदि स्थल चर पशु-जन्तुओं का; कोकिल शुक (तोता), चक्रवाक (चकवा), चातक (पपीहा), मयूर (मोर) हंस, गृध्र (गीध) नभचर पक्षियों का; जलचर मत्स्य (मछली) का तथा इनके अतिरिक्त भ्रमर, शलभ (टिड्डी), मक्षिका (मक्खी) कीट-पतंगों का चित्रण अथवा नाम उपलब्ध होता है ।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्" की मुख्य रंगभूमि 'मालिनी' नदी के तीर पर स्थित कण्वाश्रम२ है । हिमालय की उपत्यका में स्थित इस प्रदेश में आधुनिक काल में भी पूर्वोक्त वन्य पशु सुख से विहार करते हैं । पक्षिवृन्द उषा-सन्ध्या का मधुमय स्वर से स्वागत करते हैं । मालिनी नदी तरंग-हस्त से आगन्तुकों को आमन्त्रित करती है तथा शीतलता तथा शान्ति सुख प्रदान करती है। परन्तु इस प्रदेश में आज शकुन्तला तथा आश्रमवासी वैखानसों से पालित-पोषित और सुरक्षित मृग-मृगी तथा होम धेनुओं (यज्ञ के लिए सुरक्षित गौओं) का अभाव खटकता है । हिंसक पशुओं से आत्मीयता तथा सुहृद्भाव स्थापित करने वाले ऋषि-मुनियों के दर्शन नहीं होते । केवल आखेटक ही दुष्यन्त के समान इस प्रदेश की पावनता, नीरवता और शान्ति को भंग करते हैं ।

विवेच्य नाटक में वर्णित पशु-पक्षियों को स्थलचर, नभचर, जल चर, कीट-पतंग और काल्पनिक नाम से पांच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । कवि की

१. भौगोलिक और राजनैतिक परिचय के लिए मेघदूत और रघुवंश काव्य का रघु-दिग्विजय प्रसंग विशेष रूप से दर्शनीय है । सामाजिक और सांस्कृतिक परिचय का सूक्ष्म ज्ञान महाकवि की प्रत्येक रचना से प्रकट होता है ।

२. एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते । (अभि० प्रथम अंक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत कृति में पशु-पक्षियों का अधोलिखित रूप से चित्रण हुआ है :—

स्थलचर पशु

१. **मृग, सारंग, कृष्ण सारंग** :— इस नाटक में मृग-मृगी और कृष्ण सारंग को आश्रमवासियों के जीवन के अभिन्न अंग के रूप में चित्रित किया गया है। आश्रम निवासियों का मृग-शावकों के साथ साथ वयों विकास होता है। हरिणियां आश्रम वासिनी बालिकाओं को भोली चितवन की शिक्षा देती हैं।[1] ये बालाएं मन्मथ विकार से अपरिचित हैं। सहवास के कारण दोनों परस्पर हिल मिल जाते हैं और हर्ष शोक में समभागी बनते हैं। प्रियंवदा और अनुसूया मृग-शावक को उसकी माता को मिलाने के ब्याज से ही शकुन्तला और दुष्यन्त को प्रथम एकान्त मिलन का का सुयोग देती हैं। पतिगृह को जाती हुई शकुन्तला को देख कर हरिणियां आधा चबाया हुआ घास उगल देती हैं तथा वह भी मृग-वधू की सकुशल प्रसूति का सुसंवाद पाने के लिए समान रूप से उत्कण्ठित है। पति के द्वारा विस्मरण किये जाने पर संकटावस्था में शकुन्तला पति की स्मृति के लिये उस घटना की ओर संकेत करती है जिसमें प्यासा हरिण दुष्यन्त के हाथ से पकड़े हुए कमलपत्र-पुट से जल नहीं पीता शकुन्तला के हाथ से पानी पीता है।

मृग आखेटकों का लक्ष्य है। वन्य मृग की भ्रान्ति से आश्रम-मृग का अनुसरण करते हुए दुष्यन्त मालिनी नदी के तट पर स्थित कण्वाश्रम में पहुंच कर आंखों का सुफल शकुन्तला-दर्शन पाता है।

इस प्रसंग में प्राणरक्षा के लिये भागते हुए मृग का सहज वर्णन दर्शनीय है :—

"ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा।
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥"[2]

(अभि०, अंक १, श्लो० ७)

२. **वाजिन्, तुरग, तुरंग**:—नाटक के प्रारम्भ में ही रथ के घोड़ों का चित्रण

---

१. सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः
कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः। (अभि०, अंक २, श्लो० ३)

२. गर्दन को बारम्बार मोड़ने से सुन्दर मालूम पड़ने वाला यह हरिण पीछा करने वाले रथ की ओर देखता हुआ, तीर लगने के डर से पिछले आधे शरीर के अगले भाग से सिकोड़ कर मिलाता हुआ, श्रम के कारण खुले हुए मुख से आधे चबाए हुए दर्भ घास को मार्ग में बिखेरता हुआ—लम्बी छलांग से आकाश में अधिक किन्तु भूमि पर बहुत कम दौड़ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है। यातायात के साधन अथवा भारवाहक रूप में इस पशु का उपोग किया जाता है। इसकी थकावट को दूर करने के लिये इन्हें स्नान कराया जाता है या घूमने-फिरने के लिये छोड़ा जाता है। कवि कालिदास हरिण का पीछा करते हुए रथ के घोड़ों का प्रकृत चित्र अंकित करते हैं—

"मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्व कर्णाः ।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः ।।"[1]
(अभि०, अंक १, श्लो० ८)

३. **धेनु** :—गाय भारतीय जन-जीवन में महत्त्वपूर्ण और अविच्छिन्न है। रघुवंश के प्रथम-द्वितीय सर्गों में इसका विशेष विवेचन किया गया । गाय का अनजाने में भी अनादर करने के कारण दिलीप शापग्रस्त हुआ । परन्तु इस नाटक में प्रसंग न होने के कारण यह नाम मात्र संकेत की गई है । प्रस्तुत नाटक से प्रतीत होता है कि यज्ञ आदि के लिये एकाध गाय को विशेष रूप से चुन लिया जाता है और सामान्य गायों के विपरीत उसे गोचर भूमि में विचरने के लिये न भेज कर यज्ञ-शाला के समीप ही बांधा जाता है । इस नाटक में दुष्यन्त अपनी यज्ञशाला में बैठ कर गोमती, शकुन्तला और कण्व-शिष्यों से संभाषण करता है । इसी प्रसंग में होमधेनु को पार्श्व में बंधा सूचित किया गया है :—

प्रतीहारी—'अभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहित होमधेनु-रग्निशरणालिन्दः ।'
[अभि० अंक ५ श्लोक ६ से पूर्व]

४-८ **वराह, शार्दूल,, महिष, ऋक्ष, गज** :—आखेट के प्रसंग में सूअर, बाघ, भैंसा, भालू और हाथी आदि जंगली पशुओं का नाम आता है । कवि ने सूअर के मोथा घास से विशेष स्नेह, भैंसे, के जोहड़ों में लोटने के चाव तथा भालू के मनुष्य

---

१. लगाम ढीली करने पर पूर्व शरीर को लम्बा करने वाले, कम्पन रहित (स्थिर) चामर शिखा वाले निश्चल ऊपर खड़े कानो वाले और अपनी टापों (खुरों) से से उड़ायी धूलि से भी न लांघे जाने वाले थे घोड़े मानो मृग के वेग को न सह सकने के कारण दौड़ रहे हैं ।

२. गाहन्तां महिषा निपान सलिलं शृंगैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु ।
विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले ।
विश्रामं लभतामिदं चशिथिलज्यावन्धमस्मद्धनुः ।।
(अभि०, अंक २, श्लो० ६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मुख पर प्रथम प्रहार करने के स्वभाव[1] को विशेष रूप से उद्घाटित किया है । हाथी को मानव शरीर के डील-डौल का मापक माना है तथा उसकी मस्ती और प्रभाव पर प्रकाश डाला है । आखेट के संदर्भ में भयभीत हाथी के पलायन का दृश्य प्रस्तुत है :—

तीव्राघात प्रतिहततरुः स्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासंग संजातपाशः ।

मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्न सारंग यूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः।२

(अभि., अंक १, श्लो. २९)

९. केसरी (सिंह) :—केसरी अथवा मृगेन्द्र का नाम नाटक के सातवें अंक में मिलता है । इस प्राणी की शक्तिमत्ता का संकेतमात्र किया गया है । इसकी ग्रीवा पर अयाल लटकती है । इसी लिये इस पशु को केसरी कहते हैं । सर्वदमन—शकुन्तला का पुत्र भरत—माता का दूध पीते हुए सिंह शावक को अपने साथ खेलने के लिये बलपूर्वक घसीटता है और उसके दांतों को गिनता है । इसी स्थल पर दुष्यन्त अपने पुत्र का प्रथम साक्षात्कार करता है।

१०. यज्ञवलि पशु[3] (अजा—मेढ़ा):-यज्ञ में वलि दिये जाने वाले पशुओं की ओर केवल इशारा ही किया गया है। अजा या मेढा का नाम नहीं लिया गया। पुनरपि कवि का इनसे परिचय अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

११. शुनः —नाटक के पांचवें अंक में शुन शब्द आता है। सिपाही धीवर को कहते हैं कि तुम कुत्तों से नोचे जाओगे।[4] इससे स्पष्ट होता है कि अपराधी को कुत्तों के सामने डलवा कर नुचवा दिया जाता

---

१. विदूषक.—त्वं तावदटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो
नरनासिकालोलुपस्य जीर्णर्क्षस्य कस्यापि
मुखे पतिष्यसि । (अभि०, अंक २, श्लो० ६ से पूर्व)

२ तीव्र आघात से वृक्षों को तोड़ने वाला, स्कन्ध में लगे एक दांत वाला, पैर से खींचे जाने वाले लता-मण्डल से फन्दे में बंधा हुआ, मृगों के समूहों को तितर-वितर करने वाला, रथ को देख कर भयभीत हाथी मूर्तिमान् विघ्न के समान तपोवन में प्रवेश करता है ।

३. (क) पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ।।
(अभि०, अंक ६, श्लो० १)

(ख) अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन
स्वांगतोनभिनन्द्यते । (अभि०, अंक ६, श्लो० २९ के बाद)

४. ......शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि । (अभि०, अंक ६, प्रवेशक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था तथा उसके लिये यमलोक का मार्ग खोल दिया जाता था ।

१२-१३. **विडाल** (बिल्ला) और मूषक (चूहा) :—इन दोनों जन्तुओं का वर्णन लोकोक्ति के रूप में हुआ है । इन दोनों का स्वाभाविक वैर है । इनमें से प्रथम भक्षक और दूसरा भक्ष्य है । निराश, दुःखी तथा कर्त्तव्य न पालने की मानसिक स्थिति वाले दुष्यन्त को कुपित करने तथा कर्त्तव्य पालन करने की सहज स्थिति में लाने के लिये इन्द्र-सारथी दुष्यन्त के प्रिय मित्र, विदूषक माधव्य को धर-दबोच लेता है। वह सहायता के लिये राजा को पुकारता हुआ कहता है—

'विडाल-गृहीतो मूषकइव निराशोऽस्मिन् जीविते संवृत्तः (अभि०, अंक ६ श्लो० २८ से पूर्व)

१४. **गोध** (गोह) :—गोध शब्द धीवर के विशेषण के रूप में आया है। सिपाही स्वयं स्वीकार करते हैं कि यह धीवर गोह को खाता है[१] और मछलियां मारना तथा बेचना इसका व्यवसाय है ।

१५. **सर्प** (सांप) :—सर्प मानव स्वभाव का चित्रण करने के लिए मुख्य रूप से उपमा के माध्यम से सम्मुख लाया गया है।[२] जिस प्रकार सताया गया सांप कुपित होकर फण उठाता है । उसी प्रकार क्षभित मनुष्य अपने उत्कट रूप को प्रकट है । अन्यत्र शकुन्तला से अपराध के लिय क्षमा मांगता हुआ कहता है—

'स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धनोत्यहि शंकया ।'

(अभि०, अंक ७, श्लोक २४)

एक अन्य स्थल में कवि सांप के कैंचुली उतारने[३] तथा चन्दन वृक्ष पर लिपटे रहने[४] के स्वभाव से परिचय प्रकट करता है। तपस्या में मग्न मारीच ऋषि पर बनी बाम्बी में सांपों की कैंचुलियां लटकी हुई हैं ।

---

१. जानुक ! विस्रगन्धी गोधादि मत्यबन्ध एव निःसंशयम् । (अभि०, अंक ६, प्रवेशक)

२. .....विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात्प्रतिपद्यते हि जनः ॥
(अभि०, अंक ६, श्लोक ३१)

३. 'वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पतवचा'
(अभि०, अंक ७, श्लो० ११)

४. सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः ।
(अभि०, अंक ७, श्लो० १८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. **कोकिल** :––नभचर प्राणियों में कोकिल को सर्वाधिक प्रमुखता मिली है। पुंस्कोकिल मधुमास के आने पर उन्मत्त हो जाता है। कोकिला दूसरे पक्षियों से अण्डे सेवाती है। उसकी वाणी में स्वाभाविक मिठास है––इन विशेषताओं को कवि ने अत्यधिक स्पष्ट किया है। कण्वाश्रम से पतिगृह को गमन करती हुई शकुन्तला को आश्रम के वृक्ष कोकिल–स्वर के माध्यम से ही अनुमति देते हैं। १ दुष्यन्त गौतमी के प्रत्युत्तर में परभृत (कोकिल) का उदाहरण देकर कहता है २ कि मनुष्य जाति की स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य जाति की स्त्रियों में भी बिना सिखाई (प्रकृति-प्रदत्त) चतुरता देखी जाती है, फिर विचार शक्ति रखने वाली स्त्रियों के सम्बध में क्या पूछना? कोयल अपने बच्चों को––उड़ने की शक्ति आने से पहले––दूसरे पक्षियों से पालन कराती है।

२. **शुक** :––तोता दो स्थलों पर आता है। प्रथम आश्रम वर्णन में ३ तथा द्वितीय नलिनी पत्र के विशेषण के रूप में। शकुन्तला मानसिक व्यथा को अभिव्यक्त करने के लिये तथा दुष्यन्त तक आत्म-निवेदन पहुंचाने के लिये शुकोदर के समान कोमल नलिनीपत्र पर––लेखनी के अभाव में नाखूनों से प्रणयपत्र लिखिती है।४ इनसे शुक का हरा रंग तथा

---

१. अनुगत गमना शकुन्तला
तरुभिरियं वनवासबन्धुभि :।
परभृतविरुतं कलं यथा
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ।।
(अभि०, अंक ४, श्लोक १०)

२. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुतयाः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात–
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ।।
(अभि०, अंक ५, श्लो० २२)

३. नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरुणामधः
(अभि०, अंक १, श्लो० १३)

४. प्रियंवदा––एतस्मिञ्छुकोदर सुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु।
(अभि०, अंक ३, श्लो० १३ से पूर्व)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोंसला न बना कर वृक्ष कोटर में रहने का स्वभाव व्यक्त होता है ।

३. **चक्रवाक** (चकवा) :——चकवा-चकवी रात्रि आने पर वियुक्त हो जाते हैं और सूर्योदय होने पर उनका पुर्नमिलन होता है। 'इस कवि-समय' का उपयोग अन्योक्ति के द्वारा किया गया है । गौतमी शकुन्तला की रुग्णावस्था का समाचार पाकर उपचार के लिये उपस्थित होती है। अनुसूया और प्रियंवदा प्रणय-लीन शकुन्तला और दुष्यन्त को संकेत करती हैं कि ऋषि-पत्नी आ रही है, अलग-अलग हो जाओ । १

एक अन्य प्रसंग में कवि कहता है कि जिस प्रकार चकवा और चकवी विरह गम्भीर और वियोग से बहुत लम्बी हुई रात्रि को व्यतीत करती हैं उसी प्रकार प्रेमी और प्रेमिका पुर्नमिलन की आशा पर गुरु गम्भीर वियोग-व्यथा को सहन करते हैं ।२

४. **चातक** (पपीहा) :——इस पक्षी का नाम सातवें अंक में है। भूमि से थोड़ा ऊपर आकाश में वायुयान (इन्द्र-रथ) की सूचना देने के लिये कहा गया है कि रथ के अरों के विवरों में से गुजरते हुए चातक आकाश में उड़ रहे हैं। इससे पपीहों का बादलों के साथ सम्बन्ध तथा आकाश में ऊंचे उड़ने की क्षमता का ज्ञान होता है ।

५. **मयूर** :——मयूर पक्षी का वर्णन चौथे और सातवें अंकों में आता है । शकुन्तला की विदाई वेला में सम्पूर्ण कण्वाश्रम शोकमग्न हो जाता है । मोर नाचना छोड़ देते हैं।३ कवि इस पक्षी की नाचने की विशेषता का उद्घाटन करने से नहीं चूकता ।

६. **हंस** :——हंस को स्मरण लोकोक्ति के माध्यम से हुआ है। कवि का कथन है कि राजा दुष्यन्त का शस्त्र अपराधियों पर पड़ता है और निरपराधियों को कुछ नहीं कहता——

राजा——'एष तमिषुं संदधे;
यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम् ।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ।"
(अभि०, अंक ६, श्लो० २८)

---

१. चक्रवाक वधु ! आमन्त्रयस्व सहचरम् । उपस्थिता रजनी ।
(अभि०, अंक ३, श्लोक २१ के बाद)

२. एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम् ।
गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ।
(अभि०, अंक ४, श्लो० १६)

३. ......परित्यक्त नर्तना मयूराः ।
(अभि०, अंक ४ श्लो० १२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्य प्रसंग में दुष्यन्त शकुन्तला के भावचित्र को जहां उसकी सखियों प्रियम्वदा और अनुसूया के अभाव में अपूर्ण समझता है वहां पर हंस मिथुनों से युक्त मालिनी नदी के रेतीले किनारों की पृष्ठभूमि[१] भी पूर्ण चित्र के लिये अपरिहार्य है।

७. **गृध्र** (गीध):—पांचवें अंक में धीवर को सिपाही कहते हैं कि तुम्हें फाँसी दी जाएगी तथा तुम्हारी लाश गीधों का भोजन बनेगी।[२] इससे जहां अपराधियों को फांसी की सजा देने का विधान स्पष्ट होता है वहां गीधों के मृत शवों को खाने की विशेषता भी प्रकट होती है।

जलचर

मछली :—इस नाटक में जलचर जन्तुओं में से प्रसंगवश केवल मछली का नाम ही आता है। शक्रावतार में रहने वाला, मछलियों को पकड़ने, बेचने और खाने वाला धीवर शकुन्तला की अंगुली से गिरी, मछली के पेट में से निकली दुष्यन्त नाम से अंकित अंगूठी को बेचते हुए पकड़ा जाता है। परन्तु राजा का प्रिय कार्य-शकुन्तला-स्मरण—कराने में सहायक होने के कारण पुरस्कृत होता है। यह स्पष्ट करता है कि उस समय भी मछली खाने का प्रचलन था।

कीट—पतंग

उपरोक्त पशु-पक्षियों के अतिरिक्त निम्न कीट-पतंग नाटक में वर्णित हैं:—

१. **भ्रमर** : भौंरा रस लोभी है एक फूल का रसपान कर दूसरे फूल पर उड़ जाता है इसके माध्यम से कवि ने दुष्यन्त के रसलोभी स्वभाव को व्यक्त किया है। केवल एक बार प्यार की गई हंस पदिका दुष्यन्त को उपालम्भ देती हुई कहती है :—

अभिनवमधुलोलुपो भवां-
स्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृत्तो
मधुकर ! विस्मृतोऽस्येनां कथम्॥
(अभि०, अंक ५, श्लो० १)

इस नाटक में भ्रमर-बाधा ही दुष्यन्त को शकुन्तला के सम्मुख आने का बहाना और सुअवसर देती है। शकुन्तला के चारों ओर, मण्डराते हुए भ्रमर को ललचाई नजर से देख कर प्रतिद्वन्द्वी प्रेमी के समान दुष्यन्त अपने आप को बदकिस्मत और भौंरे को सौभाग्यशाली मानता है। क्योंकि **'चलापांगां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपुथमतीं रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः**

१. कार्या सैकतलीन हंस मिथुना स्रोतोवहा मालिनी।
(अभि०, अंक ६, श्लो०)

२. 'गृध्रबलिर्भविष्यति'। (अभि०, अंक ६, प्रवेशक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर ! हतास्त्वं
खलु कृती ॥"

(अभि०, अंक १, श्लोक २०)

तृतीय अंक में कामातुर होने पर भी शकुन्तला दुष्यन्त के सम्मुख समर्पण नहीं करती। बन्धन से मुक्त होकर जाने का प्रयत्न करती हुई शकुन्तला को दुष्यन्त कहता है —

'अपरिक्षत कोमलस्य याव-
त्कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन ।
अधरस्य पिपासता मया ते
सदयं सुन्दरि ! गृह्यते रसोऽस्य॥१

(अभि०, अंक ३, श्लोक २१)

एक अन्य प्रसंग में दुष्यन्त चित्र-लिखित शकुन्तला के चारों ओर मण्डराते हुए भ्रमर को समझाता है :—

'एषा कुसुमनिषण्णा तृषिताऽपि सती
भवन्यमनुरक्ता ।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना
त्वया पिबति॥ २"

(अभि० अंक ६, श्लो० २६)

परन्तु परामर्श और आज्ञा का उल्लघंन होने पर वह धमकी देता है कि विना मसले हुए नवीन वृक्ष के पत्ते के समान सुन्दर रति-क्रीड़ा में मेरे द्वारा धीरे-धीरे पिये गये, प्यारी के बिम्बफल के समान अधरोष्ठ को स्पर्श करोगे तो तुम्हें कमल के उदर रूपी कारागार में कैद कर दूंगा।३

२. **शलभ** (टिड्डी) :—शलभ शब्द तुरंग—खुरों से उठी हुई धूलि का चित्रण करने में उपमा रूप से प्रयुक्त हुआ है। कवि टिड्डियों के आक्रमण से भली-भांति परिचित है। दल बद्ध टिड्डियां सूर्य के प्रकाश को मन्दाभ कर देती हैं तथा समस्त वनस्पति पर छा जाती हैं। इसी प्रकार घोड़ों के खुरों से उठी हुई धूलि सर्वत्र व्याप गई है ।४

३. **मक्षिका५** (मक्खी) :—यह शब्द दो तीन स्थलों पर लोकोक्ति के रूप में आया है। राजा और विदूषक आपसी वार्तालाप के प्रसंग में सब सेवकों को भेज देते हैं और स्थान एकान्त हो जाता है।

४. **रेशमी कीड़ा** :— यद्यपि प्रस्तुत नाटक में रेशमी कीड़े का नाम नहीं आता पुनरपि क्षौम६ शब्द से रेशमी साड़ी का उल्लेख किया गया है।

(शेष पृष्ठ ८२ पर)

१. अक्षत और कोमल नवीन पुष्प के समान इस तुम्हारे अधरोष्ठ का, भ्रमर के समान मुझ तृषित से, जब रस धीरे-धीरे ग्रहण कर लिया जायेगा।
२. हे भ्रमर ! यह फूल पर बैठी हुई भ्रमरी प्यासी होने पर भी तुमसे स्नेह होने के कारण तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है और तुम्हारे बिना मधुपान नहीं करती ।
३. अभि०, अंक ६, श्लोक २० ४. अभि०, अंक १, श्लोक २८
५. 'हृतं भवता निर्मक्षिकम्।' (अभि०, अंक २, श्लोक ७ के बाद)
६. अभि०, अंक ४, श्लोक ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला कला के लिए अथवा लोकहित के लिए

मोहिनी ओबराए

यद्यपि कला की सृष्टि 'स्वांतः सुखाय' हुई है तथापि वह लोकहित से सम्बद्ध होने के लिए बाध्य है क्योंकि सच्चा कलाकार देश का प्रतिनिधि होता है । उसकी लेखनी में जनसमाज की वाणी मुखरित होती है । वह अपने युग की सृष्टि भी होता है और स्रष्टा भी । वह जनरुचि का प्रसादन भी करता है और परिष्कार भी, अतः कला तथा जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। परन्तु कुछ लोग कला को नीति सदाचार तथा उपयोगिता आदि प्रयोजनों से परे मान कर 'कला कला के लिये' का समर्थन करते हैं ।

इस प्रकार साहित्य जगत् में दो प्रमुख वादों को जन्म मिला । 'कला कला के लिए' वाद का जन्म यूनान में हुआ और पालन पोषण फ्रांस में । इसके प्रमुख प्रवर्तक आस्कर वाइल्ड माने जाते हैं । 'कला कला के लिये' तथा 'कला जीवन के लिये' इन दोनों वादों को जन्म देने का श्रेय प्लेटो तथा अरस्तू को है । अरस्तू ने कला को जीवन की प्रतिकृति माना था। उनका विचार था कि कला तथा जीवन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इन दोनों को एक दूसरे से पृथक् करना सम्भव नहीं वे वास्तव में एक वस्तु के दो पहलू हैं।

इसके विपरीत सुकरात प्लेटो ने उपरोक्त कथन को कुछ परिवर्तन के साथ कहा उसका कथन था—'कला जीवन की अनुकृति है।' प्रतिकृति तो वह हो ही नहीं सकती । अतः भारतवर्ष को 'कला कला के लिए' का नारा यूरोप से प्राप्त हुआ।

कला का उद्देश्य विशुद्ध कला या सौन्दर्य मानने वाले विद्वानों में आं... आस्कर वाइल्ड, वाल्टर पेटर, स्पिनगार्न आदि प्रमुख हैं ।

रस्किन, मेथ्यू आर्नल्ड, रिचर्ड्स तथा एबर कोची आदि विद्वान 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त का समर्थन करने वाले थे ।

'कला जीवन के लिए' वाले सिद्धान्त की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अनेक विद्वा...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला को जीवन से निरपेक्ष सिद्ध करने के प्रयत्न करने लगे । कला में नीति, सदाचार तथा मर्यादावाद को निषेधात्मक माना गया । अपने विरोध की पुष्टि में कलावादियों ने अनेक तर्क प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार प्रत्येक वर्ग का अपना स्वतन्त्र उद्देश्य और कार्यक्षेत्र होता है । जिस प्रकार विज्ञान, दर्शन, गणित आदि विद्यायें सौन्दर्य के मापदण्ड से नहीं नापी जा सकती इसी प्रकार कला को भी सत्य और नीति के बन्धन से बद्ध नहीं किया जा सकता । नीति को वे धर्म का विषय मानते हैं कला का नहीं । व्यवहार क्षेत्र या ज्ञान क्षेत्र में कला की कोई उपयोगिता नहीं । उसका सम्बन्ध भावना से है मनोभावनाओं की मनोमुग्धकारी सौन्दर्यप्रतिभा ही उसकी उपयोगिता है । कला का प्रयोजन उसकी उपयोगिता में नहीं है और उसका मूल्य आर्थिक या नैतिक मन से निश्चित करना उसके साथ अन्याय करना है । कला के परे किसी अन्य वस्तु को उसका प्रयोजन रूप से नियामक मानना उसके स्वायत्त शासन में अविश्वास प्रकट करना है और उसको स्वाधीनता के स्वर्ग से घसीट कर पराधीनता के अन्धकार के गर्त में ढकेलना है । कला की मनोमुग्धकारिणी सुन्दरता ही उसकी चरम उपयोगिता है । सहृदयों में रस और आनन्द का संचार करना ही उसका उद्देश्य है ।

आस्कर वाइल्ड ने सदाचार की अवहेलना करते हुए कहा है "समालोचना में सबसे पहली बात यह है कि समालोचक को यह परख हो कि कला और आचार के क्षेत्र पृथक्-पृथक् हैं"।

जे० ई० स्पिनगार्न ने इस विचारधारा को कुछ हास्योत्तेजक रूप दिया है । उनका कथन इस प्रकार है--'शुद्ध काव्य के भीतर सदाचार या दुराचार ढूंढना ऐसे ही है जैसा कि रेखागणित के समत्रिकोण त्रिभुज को सदाचारपूर्ण कहना और समद्विबाहु त्रिभुज को दुराचार पूर्ण ।"

जो लोग कलावाद के सम्बन्ध में ऐसी उक्तियां प्रस्तुत करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि कला का सम्बन्ध मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से है । बेकन ने तो यहां तक कहा है कि 'मानव-संयुक्त प्रकृति का नाम ही कला है ।' कला के साथ हमारे जीवन का घनिष्ठ संबंध है। मानव जीवन से पृथक् कर देने पर कला का महत्त्व नहीं रहता । कला का सम्बन्ध जब मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से है तब वह नीति सदाचार और उपयोगिता की अवहेलना नहीं कर सकती । इसी लिये एक विद्वान् ने कहा है -- Art is the application of knowedge to real life. अर्थात् कला का अर्थ वास्तविक जीवन में ज्ञान का प्रयोग है ।

हिन्दी लेखकों पर भी इस मत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इलाचन्द्र जोशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने एक स्थल पर कहा है—"विश्व की इस अनन्त सृष्टि की तरह कला भी आनन्द का ही प्रकाश है। उसके भीतर नीति अथवा शिक्षा का स्थान नहीं। उसके मायाचक्र से हमारे हृदय की तन्त्री आनन्द की झंकार से बज उठती है, यही हमारे लिये पूरा लाभ है। उच्च अंग की कला के भीतर किसी तत्व की खोज करना सौन्दर्य देवी के मन्दिर को कलुषित करना है।"

प्रो० ब्रेडले ने 'काव्य, काव्य के लिए' शीर्षक लेख में इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है कि कला को सौन्दर्य के मापदण्ड से ही नापना चाहिए। हां, नैतिकतापूर्ण रचनाओं को नागरिकों की दृष्टि से प्रकाशित न भी किया जाय तो कोई बात नहीं। ब्रेडले ने यह भी बतलाया रूजेरी ने अपनी एक कविता को जिसे मर्यादावादी टेनीसन ने भी पसंद किया था, लोकमर्यादा के भय से प्रकाश में नहीं आने दिया। इस सम्बन्ध में ब्रेडले महोदय का कहना था कि उसका यह निर्णय नागरिक की दृष्टि से था, कलाकार की हैसीयत से नहीं।

विक्टर कज़िन का कहना है कि 'कला की सृष्टि कला के लिये' है।

दूसरी ओर मैथ्यू आर्नल्ड ने साहित्य कला को 'जीवन की आलोचना' कह कर 'कला जीवन के लिए' वाले सिद्धान्त का समर्थन किया है। भारतीय विद्वानों में रवि बाबू, महात्मा गांधी कला को जीवन के उत्कर्ष साधन में सहायक मानते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र कला को प्रयोजन से परे मानते हुए भी उसे मंगलमय देखना चाहते हैं। "सौन्दर्य मूर्ति ही मंगल की पूर्ण मूर्ति है और मंगल मूर्त्ति ही सौन्दर्य का पूर्ण स्वरूप है।" महात्मा गांधी का कथन है कि—'कला वह है जो जीवन को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए। कला से जीवन का महत्त्व है। कला जीवन को वास्तविकता की ओर ले जाती है।'

थोरो ने भी यह कह कर कि 'सबसे महान् कलाकार वह है जो अपने जीवन को ही कला का विषय बनाए'—'कला जीवन के लिए' वाले सिद्धांत को ही माना है। पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी के कथनानुसार "कला जीवन की प्रकाशिका कही गई है।"

आधुनिक हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा है। बहुत से हिन्दी विद्वान् पाश्चात्य कला कला के लिए वाले सिद्धान्त का समर्थन करने लगे हैं। छायावादी कवि इसी सिद्धान्त के समर्थक प्रतीत होते हैं। छायावादी कविताओं में पलायनवाद का समावेश इसी सिद्धान्त से प्रेरित हो कर किया गया था।

नाटककार पं० उदयशंकर भट्ट ने 'कुमार सम्भव' नामक नाटक में नीति पर कला की विजय दिखलाई है। स्वयं देवी सरस्वती कलापक्ष का ही समर्थन करती है। यह पाश्चात्य कलावाद का ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव प्रतीत होता है । कलावादी भावुक कवि जीवन की विषमताओं और संघर्षों में परास्त सा हो जाता है । उसका करुणा कलित हृदय किसी शान्त निर्जन स्थान की खोज करता है । प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियों में किसी एकान्त कल्पना-लोक के प्रति उत्कंठा दिखाई पड़ती है :--

"ले चल वहां भुलावा देकर
मेरे नाविक ! धीरे धीरे
जिस निर्जन में सागर-लहरी
अम्बर के कानों में गहरी--
निश्चल-प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे ।

आधुनिक मनोविश्लेषकों में भी अनेक ने कलावाद का समर्थन किया है । फ्रायड के काव्य को अतृप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति माना है । ऐसी स्थिति में काव्य में कामुकता और अश्लीलता का आ जाना स्वाभाविक है। इस धारणा से साहित्यकारों को नग्न दृश्यों से चित्रण की छूट मिल गई । वे कला के आवरण में अपने कुत्सित मन की गंदगी को प्रस्तुत करने लगे हैं । मनोविज्ञान का गम्भीर विश्लेषण करके फ्रायड इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मनुष्य अपनी अपूर्ण वासनाओं की पूर्ति कल्पना के द्वारा स्वप्न में करता है क्योंकि साहित्य सृजन का आधार कल्पना है अतः यह स्वाभाविक है कि उसमें अपूर्ण वासनाओं की अभिव्यक्ति अधिक मात्रा में हो । उनका तर्क है कि अतृप्त कामनाओं की पूर्ति में बाधा देख कर मानव उन्हें अपनी विभिन्न कलाकृतियों में अभिव्यक्त करता है ।

परन्तु इस सिद्धान्त में लेशमात्र भी सत्यता नहीं है। क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि भक्त कलाकार ही ईश्वर की मूर्ति का निर्माण करे । कलाकार असाधारण प्राणी होता है। वह साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक भावुक और संस्कृत होता है। अतः उसकी रचना में प्रत्येक स्थान पर उसके व्यक्तित्व को खोजना उसके प्रति अन्याय करना है । यह दृष्टिकोण एकांगी है। यदि कला को जीवन से पृथक् कर दिया जाएगा तो आचार का कुछ भी महत्त्व नहीं रहेगा । ध्यान पूर्वक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि--'संसार की अब तक की सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियां अधिकांश में विवेकवान और आचारनिष्ठ व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं ।'

साहित्य में यथार्थवाद और क्रौचे का अभिव्यंजनावाद आदि धाराएं 'कला कला के लिए' वाले सिद्धान्त की पृष्ठ-पोषक थीं ।

यथार्थवादियों की धारणा है कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि उसकी स्वाभाविक तथा प्राकृतिक वृत्तियां हैं, अतः वे दृढ़भूत हैं । किन्तु सदाचार नीति आदि उदात्त वृत्तियां सभ्यता प्रसूत हैं, इस लिए वे दृढ़ नहीं हैं । अतःयह स्वाभाविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि मनुष्य की मूलवृत्तियां ही उसकी रचना में स्फुरित हों ।

परन्तु 'कला जीवन के लिये' वाले सिद्धान्त वालों को यह मान्य नहीं थी । उनका कहना है कि यह आवश्यक नहीं क्योंकि "सभ्यता के विकास के साथ साथ मनुष्यों को भले बुरे का ज्ञान दृढ़ हुआ और इस प्रकार आचार मनुष्य प्रवृत्ति का एक अभिन्न अंग बन गया।" (श्यामसुन्दरदास) सम्पूर्ण साहित्य में मनुष्य के आचार की छाप लगी हुई है । क्योंकि मनुष्य विवकशील प्राणी है । विवेक ही सदाचार का जन्म दाता है। अतः यह स्वाभाविक है कि रचना सदाचार आदि उदात्त वृत्तियों से ओतप्रोत हो । सच्चा कलाकार ऐसे साहित्य का निर्माण करता है जो समाज के लिय कल्याण कारी हो । इसलियें यह आवश्यक नहीं है कि प्राकृतिक वृत्तियां ही उसकी कला में प्रस्फुटित हों । पंकज की उत्पत्ति यद्यपि पंक में हुई है, परन्तु पंक के कुछ भी संस्कार पंकज पर नहीं होते मानव हृदय में अनुभव किया करता है और मस्तिष्क से विचार करता है । अतः हृदय तथा मस्तिष्क के योग से उत्पन्न कलाकृति जीवन से पृथक् कैसे हो सकती है और जीवन से अलग उसका महत्त्व ही क्या हो सकता है ।

क्रोचे ने वस्तु को गौण रख कर शैली को प्रधानता दी है । उसका कथन है "Expression is Art."

साहित्य के दो पक्ष माने गये हैं— भावपक्ष और कलापक्ष । भावपक्ष का सम्बन्ध वस्तु, भाव या अनुभूति से है और कलापक्ष का सम्बन्ध अनुभूति की अभिव्यक्ति से है । अतः काव्य के लिये भावपक्ष और कला पक्ष दोनों आवश्यक है । वस्तु के अभाव में आकार श्री हीन है और सुन्दर आकार के अभाव में वस्तु का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाता । जिस प्रकार मानव के लिये आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के सौन्दर्य अपेक्षित हैं उसी प्रकार काव्य के लिये भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों का ही सौन्दर्य आवश्यक है । अतः इस सिद्धान्त में सत्यांश कम ही है ।

वस्तुतः क्रोचे, स्पिन्गार्न, ब्रेडले, फ्रायड आदि सभी कलावाद के समर्थकों के विचार अतिवादी हैं । सर्वप्रथम क्रोचे ने अभिव्यक्ति को ही सौन्दर्य मान कर एक बड़ी भारी भ्रांति का प्रचार किया । प्रत्येक व्यक्ति में थोड़ी बहुत अनुभूति की मात्रा तो होती ही है और वह किसी-न-किसी रूप में उसे अभिव्यक्त भी करता है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक भावाभिव्यक्ति काव्य का रूप धारण नहीं करती । जब दो व्यक्ति परस्पर झगड़ते हैं तो उनकी उक्तियों में क्रोध की सफल अभिव्यक्ति होती है । पर क्या उसे हम काव्य की संज्ञा दे सकते हैं ? अभिव्यक्ति काव्य का साधन है साध्य नहीं । दूसरे व्यक्ति का चरित्र भी उसकी विकसित भावनाओं पर आधारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है, अतः चारित्रिक वृत्तियों——नैतिकता आदि——का हमारी भावनाओं से गहरा सम्बन्ध है तथा काव्य की भी मूलाधार भावनाएं होती हैं। इस दृष्टि से नैतिकता और काव्यात्मकता——दोनों का प्रेरणा स्रोत एक ही है। अतः कला को नैतिकता से सर्वथा पृथक् मानना उचित नहीं।

यह ठीक है कि कला का सर्वोपरि गुण उसका सौन्दर्य है, किन्तु वह सौन्दर्य यदि नैतिकता से शून्य होगा तो उसके प्रभाव में न्यूनता आ जाएगी। यदि किसी उपन्यास का एक पात्र एक ऐसी स्त्री के रूप वैभव एवं उसके यौवन की छटा का वर्णन कर रहा है जो उसकी सगी माता हो तो इस वर्णन को पढ़ कर हमारे हृदय में अरुचि ही उत्पन्न होगी। अतः स्वयं सौन्दर्य को सौन्दर्य बनाये रखने के लिये भी नैतिकता की प्रधान रूप से न सही——गौण रूप में आवश्यकता है। सौन्दर्य का लक्ष्य हमारे जीवन में आनन्द की प्रतिष्ठा करना है किन्तु जो तत्त्व ऐसा करने में समर्थ न हों उसे सौन्दर्य की उपाधि से कैसे विभूषित किया जा सकता है?

कलावादियों की सी अतिवादिता नीतिवादियों में भी मिलती है। 'कला जीवन के लिये' है इस सिद्धान्त का बीजारोपण करते हुए प्लेटो ने लिखा है कि मानव समाज के नैतिक विकास का भार कवियों पर होता है। गेटे ने लिखा है कि साहित्य समस्त जगत का मानवकृत रूप कहा जा सकता है। 'Poetry and Contemplation' नामक रचना में कला का लोकहित से घनिष्ट सम्बन्ध माना है। प्लेटो, सुकरात, रस्किन आदि विचारकों ने तो नैतिकता को ही सौन्दर्य का पर्यायवाची सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। सुकरात ने उपयोगिता को ही सौन्दर्य मानते हुए कहा है : 'एक मैली कुचैली गोबर की टोकरी भी सुन्दर कही जा सकती है यदि वह किसी उपयोग में आने योग्य हो, जब कि स्वर्ण-घटित ढाल भी असुन्दर है यदि उपयोग की दृष्टि से उसमें कोई दोष हो।'

अतः हम देखते हैं कि दोनों ही पक्ष वालों ने अतिवादिता का परिचय दिया है। नीतिवादियों ने इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं रखा कि यदि कलाकार सौन्दर्य को भूल कर विशुद्ध नैतिकता के प्रतिपादन में संलग्न हो जायेंगे तो कला कला न रह कर नीति शास्त्र का रूप धारण कर लेगी। जहां प्रथम पक्ष ने सौन्दर्य को इतना अधिक महत्त्व दिया है कि उससे नैतिकता अस्वस्थ हो जाती है तो इन्होंने नैतिकता को इतना बढ़ावा दिया है कि सौन्दर्य का दम घुट जाता है।

हमार प्राचीन आचार्यों ने इस सम्बन्ध में एक संतुलित दृष्टिकोण का परिचय दिया है। रस-सिद्धान्त के अनुसार कला का लक्ष्य सामाजिक को रसानुभूति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या आनन्द प्रदान करना है । स्थूल दृष्टि से रस–सिद्धान्त पाश्चात्य कलावाद के निकट प्रतीत होता है क्योंकि दोनों में ही कलाओं का लक्ष्य सौन्दर्य या आनन्दानुभूति स्वीकार किया गया है । किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर दोनों में गहरा अन्तर दृष्टिगोचर होता है । पाश्चात्य कलावाद में जहां स्वयं रचयिता का आनन्द ही साध्य है वहां रस सिद्धान्त में सामाजिक या पाठक का । इस स्थिति में कला समाज-विरोधी रूप धारण नहीं कर सकती । यदि कला नैतिकता का विरोध करेगी तो वह सामाजिक हृदय को प्रभावित करने में असमर्थ सिद्ध होगी । यही कारण है कि हमारे यहां कवियों की उच्छृंखल प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के लिये 'रसाभास' जैसे विशेषणों का आविष्कार किया गया है।

रस-सिद्धांत के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के आचार्यों ने भी कला का मानदंड तो सौंदर्य ही रखा है किन्तु वे उसका लक्ष्य सामाजिक की तृप्ति ही मानते हैं । अस्तु भारतीय, काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में कला स्वतन्त्र रहती हुई भी नैतिकता के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करती रही है, अतः दोनों में कोई विरोध नहीं मिलता ।

आधुनिक भारतीय विद्वानों के दृष्टिकोण में अवश्य पाश्चात्य प्रभाव के कारण थोड़ी अतिवादिता आ गई है । जहां हजारी प्रसाद द्विवेदी कला का चरम लक्ष्य मानव-जाति का हित साधन करना मानते हुए बिहारी और देव के साहित्य को गंगा में फेंक देने की भी सिफारिश करने को प्रस्तुत हैं वहां इलाचन्द्र जोशी कला में नीति को ढूंढना पाप समझते हैं । उनके शब्दों में––"उच्च अंग की कला के भीतर किसी तत्व की खोज करना सौन्दर्य देवी के मन्दिर को कलुषित करना है ।"

यदि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त एक ओर लिखते हैं

"मानते हैं जो कला को कला के अर्थ ही
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही"
(साकेत)

तो दूसरी ओर महाकवि दिनकर जी का विचार है––"मैं यह मानता हूं कि बसन्त का गुलाब और कवि के स्वप्न अपने में पूर्ण होते हैं, वे किसी को कुछ सिखाने के लिये नहीं होते ।"

हमारे यहां अनादि काल से लेकर आज तक काव्य का जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है । भारतीय साहित्य का जन्म ही लोक-हिताय हुआ है। क्रौंचवध के करुणापूर्ण दृश्य से द्रवित होकर ही बालमीकि रामायण की मन्दाकिनी प्रवाहित कर सके थे ।

हमारे देश का साहित्य लोकमंगल की भावनाओं से ओत-प्रोत है । रघुवंश आदि महाकाव्यों का प्रणयन सर्वभूत हित को दृष्टि में रख कर किया गया था । वीरगाथाकालीन साहित्य में यद्यपि राजा महाराजाओं के यश, वैभव तथा वीरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है, परन्तु वह भी जीवन से सम्बन्धित होने के कारण लोकहित से सम्बद्ध है। इन काव्यों में नीति तथा सदाचार को प्रधान स्थान दिया गया है। भक्तिकालीन साहित्य तो जीवन से पूर्णतया सम्बन्धित है ही। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने तो हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा साधारण धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रधान रूप में किया है। प्रेम-मार्गी शाखा में भी लोक-पक्ष प्रबल है। तुलसी तथा सूरकी रचना में तो लोक-संग्रह की प्रधानता है ही: तुलसी तथा सूर ने अपनी रचनाओं के सुधारस से मुरझाए हुए हिन्दू जीवन को फिर से सींच कर हरा भरा कर दिया।

रीतिकालीन साहित्य में यद्यपि सुरा तथा सुन्दरी का ही वर्णन मिलता है, परन्तु उसमें भी भूषण, लाल, सूदन आदि कवियों ने देश तथा जाति की भावनाओं से प्रेरित होकर रचनाएं की हैं। महाराजा जयसिंह पर बिहारी के निम्नलिखित दोहे ने जो कार्य किया वह सैंकड़ों उपदेश मिल कर नहीं कर सकते थे :—

'नहिं पराग, नांही मधुर मधु, नांहि विकास इंहि काल।
अली कली हीं सों बंध्यो, आगे कौन हवाल।'

वर्तमान युग का नव-उत्थान तो लोक-संग्रह के भाव को लेकर हुआ है। भारतेन्दु युग में देश के कल्याण के लिये प्राचीन भारत का गौरव गान होने लगा द्विवेदी युग में आकर गुप्त जी तथा उपाध्याय जी को राम-भक्ति तथा कृष्ण-भक्ति में देश-प्रेम तथा देश-सेवा की भावना का परिदर्शन होने लगा। गुप्त जी के राम तो इसी पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने के लिये अवतरित हुए हैं :—

"संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।"

छायावादी कवियों ने भी लोकहित के प्रवृत्ति मार्ग को ग्रहण किया है। प्रगतिवाद का दृष्टि कोण भी लोक-संग्रह का भाव लेकर अग्रसर हुआ है।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य तथा जीवन का शाश्वत सम्बन्ध है। किसी भी युग का साहित्य अपने युग की परिस्थितियों का प्रतिफलन होता है। साहित्य की प्रगति समाज की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा ही निसृत होती है।

यद्यपि साहित्य तथा जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु इसका यह भी अभिप्राय नहीं है कि वह प्रचार का साधन है। "हम जो कुछ साहित्य में कहें आकर्षक रूप में कहें, उससे यह अभिव्यक्त न हो कि यह प्रचार के लिये है, क्योंकि राजनीति धर्मशास्त्र तथा साहित्य में अन्तर है।"

(एंगिल्स)

साहित्य के द्वारा ही हमारी वृत्तियों का परिष्कार होता है। अच्छे बुरे का ज्ञान साहित्य के द्वारा ही सम्भव है —

'Poetry is not concerned with

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

telling people, what is to do, but with extending our knowledge of good and evil.' (Auden)

नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत मुनि ने स्पष्ट लिखा है काव्य के अध्ययन से मानवों का धार्मिक, नैतिक और दार्शनिक विकास होता है। उसी के प्रभाव से कायर, साहसी, वीरजन, उत्साही, शोकार्त लोग शान्त, भय, उद्विग्न चित्त वाले विश्रांति-पूर्ण बन जाते हैं। यश और द्रव्य आदि की प्राप्ति तो काव्य से होती ही है। रुद्रट ने काव्य से समस्त मनोभिलाषाओं की पूर्ति पर बल दिया है। 'भामह ने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष सबकी प्राप्ति काव्य से ही बतलाई है।

'प्रेमचन्द' ने कहा है कि—"साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और सुन्दर बनाता है। दूसरे शब्दों में उसकी बदौलत मन का संस्कार होता है। यही इसका मुख्य उद्देश्य है।"

यद्यपि कवि संसार के शिक्षक हैं, परन्तु कवि सुधार की बात भी सौन्दर्य के आवरण में कहेगा।

बंकिम चन्द्र ने कहा है "कवि संसार के शिक्षक हैं किन्तु नीति की व्याख्या करके शिक्षा नहीं देते, वे सौन्दर्य की चरम सृष्टि करके संसार की चित्त शुद्धि करते हैं। यही सौन्दर्य की चरमोत्कर्ष साधक सृष्टि काव्य का मुख्य उद्देश्य है। पहला गौण दूसरा मुख्य।"

साहित्य ही हमारी वृत्तियों का परिष्कार कर हमें ऐसी उच्च भावभूमि पर ले जाता है जहां हम स्वत्व एवं परत्व की भावना से रहित हो जाते हैं और मानव मात्र के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध हो जाता है। कला के द्वारा ही मनुष्य के विचार संस्कृत, उन्नत एवं परिष्कृत होते हैं। अतः स्पष्ट है कि कला जीवन से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं रखती और कला का आदर्श एवं उद्देश्य भी होता है। टाल्स्टाय ने एक स्थल पर कहा भी है, "कला को बुद्धि द्वारा भाव की ओर अग्रसर होकर विश्व-मानव को एक करना होगा, प्रचलित पद्धति और अत्याचार समूह का नाश कर संसार में भगवान् का, प्रेम का राज्य स्थापित करना होगा। यही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है।"

सच्चा साहित्य जीवन का तिरस्कार नहीं कर सकता। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना साहित्य के द्वारा ही आती है। कलाकार की कृति में लोकहित की भावना तो स्वयमेव आ जाती है। काव्य अथवा कला में शिवत्व की भावना तो कूट कूट कर भरी होती है। कला मनुष्यों के मानसिक स्तर का उन्नयन कर उनमें देवत्व के गुणों की प्रतिष्ठा करती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कला का जीवन से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं 'कला कला के लिये' सिद्धान्त के पृष्ठ-पोषक कला को जीवन से पृथक् मानते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स प्रकार उसे नितान्त अप्रयोगिक समझते हैं। 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त के समर्थक कला में आज जीवन का प्रचार करने के पक्ष में हैं। अतः ये दोनों अतिवादी सम्प्रदाय दोष-युक्त हैं। जो सामयिक समस्याएं हैं, सामयिक परिस्थितियां हैं, हमारी कला उन पर आधारित होनी चाहिए। जो साहित्य केवल प्रचार के लिए लिखा जाता है वह क्षणिक तथा अस्थायी होता है। परन्तु जो साहित्य मानव की मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होता है वह शाश्वत तथा सार्वभौम होता है। ऐसा साहित्य देश और काल की सीमा का अतिक्रमण कर सार्वदेशीय तथा सार्वकालिक हो जाता है। प्रसाद की कामायनी कभी पुरातन नहीं हो सकती क्योंकि प्रसाद ने कामायनी में जिन मानवीय भावनाओं तथा विचारों को अभिव्यक्त किया है--वे शाश्वत हैं। आज कितने युग व्यतीत हो गए परन्तु वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, सूर, प्रसाद आदि इसलिए अमर हैं कि उनका साहित्य प्रचार साहित्य न होकर शाश्वत साहित्य है?

कलाकार के लिये मध्यम मार्ग या सामंजस्य वादी मार्ग का अनुसरण करना भी श्रेयस्कर है। काव्य में कला का मूल लक्ष्य तो सौन्दर्य ही होना चाहिए। किन्तु उसमें नैतिक तत्त्वों का ऐसा मिश्रण न हो जिस से समाज को क्षति पहुंचाने लगे। यदि उसकी कलात्मकता को ठेस पहुच बिना कुछ उपयोगी तत्वों का भी समावेश किया जा सके तो यह उसका विशेष गुण होगा। कला के क्षेत्र में सौन्दर्य को नष्ट कर देने वाली अति नैतिकता और नैतिकता को ठेस पहुंचाने वाली सुन्दरता--दोनों त्याज्य हैं। वस्तुतः कला में सौन्दर्य और नैतिकता का संतुलित एवं समन्वित रूप ही श्रेयस्कर है।

न तो 'कला कला के लिए' है और न 'कला जीवन के लिए' है। कला तो सत्यं, शिवं, सुन्दरं का रूप है। ये वाद व्यर्थ में भ्रम उत्पन्न करते हैं। श्रेय और प्रेय का समन्वय ही सच्ची कला है : वह आन्तरिक तथा बाह्य सौन्दर्य का सम्पादन कर जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। वास्तव में 'कला जीवन की सुन्दरं में अभिव्यक्ति है'। कला 'के द्वारा ही हम शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हैं। इस विषय की समाप्ति पर कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्द द्रष्टव्य हैं।

"साहित्य शब्द से साहित्य में मिलने का एक भाव देखा जाता है। वह केवल भाव भाव का, भाषा भाषा का, ग्रन्थ ग्रन्थ का ही मिलन नहीं है, किन्तु मनुष्य का मनुष्य के साथ का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यन्त अन्तरंग मिलन साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी से सम्भव नहीं।"

० ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के तत्वावधान में आयोजित 'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य' संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कुरुक्षेत्र विश्व-विद्यालय के उपकुलपति श्री दीपचन्द वर्मा ने राज-भाषा के रूप में हिन्दी का महत्त्व स्थापित करते हुए और देश में फैले भाषायी विवाद की तीव्र भर्त्सना करते हुए कहा—"आज जब हमारा राष्ट्र गंभीर संकट के दौर से गुज़र रहा है उस समय सब से निरर्थक एवं लज्जाजनक विषय भाषा-सम्बन्धी विवाद है। भारत की राजभाषा का स्थान केवल हिन्दी ही ले सकती है। मैं सोच भी नहीं सकता कि इस पर किसी विवाद या मत भेद की गुंजाइश हो सकती है। भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से ही सह-अस्तित्व की भावना से प्रेरित रही है। उसने अत्यन्त सहिष्णुता एवं उदारता-पूर्वक बाह्य प्रभावों को स्वीकार किया है। वह उस सरिता के समान है जो नाना-विध जलधाराओं को आत्मसात करते हुए आगे की ओर बढ़ती है। भारतीय महा-पुरुषों ने इस देश की मूलभूत एकता को पहचानते हुए कभी भी भाषायी-भेद-भावों की कल्पना तक नहीं की। जाति-धर्म एवं प्रदेश की सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर अपनी प्रतिभा द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्धि एवं प्रतिष्ठा दी। मैं चाहता हूँ कि इस उदार भावना से आज भी हिन्दी अपनी सहवर्ती भाषाओं का सहयोग पाकर आगे बढ़े।"

इससे पूर्व विभिन्न प्रान्तों से आए सभी विद्वानों का स्वागत करते हुए विश्व-विद्यालय हिन्दी विभागाध्यक्ष आचार्य विनयमोहन शर्मा ने कहा—"कुरुक्षेत्र प्राचीन काल से ही विद्वानों की संगोष्ठी का तीर्थ रहा है। हमारी यह महत्त्वा-कांक्षा है कि हम यहां की प्राचीन परंपराओं की आधुनिक रूप में पुनरावृत्ति करें।.. हमारा देश राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न राज्यों में भले ही विभाजित रहा हो परन्तु उसकी सांस्कृतिक एकता सदा अविभाजित रही है और उसका एक प्रमुख कारण यह है कि वह अपनी एक सम्पर्क भाषा का आश्रय लेता रहा है।..अहिन्दी भाषा-भाषी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हिन्दी में रचना कर अपने को गौर-वान्वित अनुभव करते रहे । यही कारण है कि देश की विभिन्न-मलयालम, फारसी, तमिल, कन्नड़, तेलगु, गुजराती, असमिया आदि लिपियों में ब्रजभाषा हिन्दी की रचनाएं मिलती हैं । जब देश के सुदूर प्रान्तों के कवि हिन्दी में ख्यात हो रहे थे तब हिन्दी की जन्म-भूमि पंजाब में हिन्दी की उपेक्षा कैसे संभव थी । तेरहवीं शताब्दी के बाबा फरीद की वाणी से लेकर सिक्ख गुरुओं और अनेक सन्त कवियों तक ने गुरुमुखी लिपि में हिन्दी की उत्कृष्ट रचनाएं की । पर पंजाब की युद्धमान परिस्थितियों के कारण इस तरह का बहुत सा सम्पन्न साहित्य या तो नष्ट हो चुका है या अनेक ग्रन्थागारों में छिपा पड़ा है। उसे प्रकाश में लाने के लिये अनेक प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं । यह संगोष्ठी इसी कार्य का लेखा-जोखा लेने के लिये आयोजित की गई है ।"

समारोह के अध्यक्ष हिन्दी विभाग के निदेशक डा० परमानन्द ने अपने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, उद्भाव-क्षेत्र एवं विकास पर विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा करते हुए अपने इस मत की स्थापना की कि हिन्दी मुख्यत: पंजाब की भाषा रही है। यहीं उसका जन्म हुआ । यह पहले पंजाब में बसे मुसलमानों की बोली थी और उनके साथ ही यह दूसरे प्रदेशों में जाकर फैलती गई ।

समारोह के अन्त में अतिथियों को धन्यवाद देते हुए संगोष्ठी के मंत्री डा० जयभगवान गोयल ने आशा प्रकट की कि इस संगोष्ठी में विचार-विमर्श के माध्यम से अनेक क्रान्तिकारी तथ्य एवं शोध-निष्कर्ष सामने आयेंगे जिनसे हिन्दी साहित्य के इतिहास के चिंतन को एक नई दृष्टि एवं दिशा प्राप्त होगी ।

यह संगोष्ठी ३ जुलाई से ६ जुलाई, १९६६ तक चली जिसमें लगभग ४० विद्वानों ने भाग लिया और 'गुरुमुखी लिपि में रचित मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित विषयों पर सात गोष्ठियों में ९ शोधपत्र पढ़े गए ।

पहला शोधपत्र, डा० परमानन्द जी की अध्यक्षता में--दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० महीपसिंह ने "दशमग्रंथ के कर्तृत्व पर पढ़ा ।" इसका कर्तृत्व अत्यन्त विवादास्पद है । इस ग्रंथ के कर्तृत्व के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है । एक मत के लोग बड़े आग्रहपूर्वक इसे गुरु गोविन्द सिंह द्वारा रचित मानते हैं । दूसरे विद्वान् इसे उनके दरबारी कवियों की कृति स्वीकार करते है। डा० महीपसिंह ने इन दोनों मतों की विशद समीक्षा करते हुए अन्त: साक्ष्य के आधार पर इस सम्पूर्ण रचना को गुरु गोविन्द सिंह कृत सिद्ध करने का प्रयास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया ।" "चौबीस अवतार" कथाओं में उल्लिखित राम, श्याम और काल, इन नामों को उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह का ही नामान्तर माना है । इसके साथ डा० महीपसिंह ने मध्यकालीन धार्मिक काव्य ग्रन्थों की आलोचना पद्धति पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि हमें साम्प्रदायिक एवं जातीय आग्रह की दृष्टि से मुक्त होकर विशुद्ध साहित्यिक मानदण्ड के आधार पर ही उदारतापूर्वक वस्तुवादी परीक्षण करना चाहिए, इसी में शोधकार्य की सार्थकता है ।

शोध-पत्र वाचन के बाद परिचर्चा में विशेष रूप से भाग लेते हुए डा० सत्यदेव चौधरी, श्री ओम प्रकाश भारद्वाज, श्री कैलाशचन्द सिहल, श्री ओम प्रकाश वाशिष्ठ, श्री कैलाश चन्द सिहल, श्री ओमप्रकाश आनन्द और डा० जय भगवान गोयल ने इस बात पर बल दिया कि किसी रचना की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये अन्तःसाध्य के साथ बाह्यःसाक्ष्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए और शैली की विरूपता, छन्द-वैविध्य एवं भाव-वैषम्य के आधार पर भी विचार किया जाना चाहिए इन शंकाओं का समाधान करते हुए डा० महीपसिंह ने तर्कपूर्ण ढंग से अपने मत की पुष्टि की । अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० परमानन्द ने इस ग्रंथ के महत्त्व का उल्लेख करते हुए वैदिक आख्यानों से लेकर उत्तर मध्यकालीन पौराणिक आख्यानों पर आधारित काव्य ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा डा० महीपसिंह के पक्ष का समर्थन किया।

दूसरी गोष्ठी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग के रीडर, प्रो० गुरबचन सिंह तालिब की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इसमें श्री शमशेरसिंह अशोक ने "गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों का सर्वेक्षण" विषय पर अपना शोध-पत्र पढ़ा । श्री अशोक ने गुरुमुखी लिपि में लिखित हिन्दी साहित्य के व्यापक सर्वेक्षण में प्राप्त हिन्दी ग्रंथों की पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डाला । उनके अनुसार इस समय पंजाब में लगभग ५०० हिन्दी लेखकों की पांच हजार से ऊपर मौलिक एवं अनूदित रचनाएं उपलब्ध हैं। इनके प्रकाश में आने पर हिन्दी-साहित्य के इतिहास की चिंतन दिशा बदल सकती है । इस परिचर्चा में डा० ओमप्रकाश शास्त्री, श्रीकृष्ण मधोक, सहायक निदेशक, हिन्दी विभाग एवं डा० जयभगवान गोयल ने इस विषय से सम्बन्धित अनेक तथ्यों का उल्लेख किया।

इसके अनन्तर श्री. ओम् प्रकाश भारद्वाज, सहायक निदेशक (विकास) हिन्दी विभाग; पंजाब पटियाला ने गूरु गोविंद कृत रामावतार पर अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध-पत्र पढ़ा । उन्होंने अपने शोध निबन्ध "दशम ग्रन्थ" में रामावतार के कथा के स्रोतों एवं उपजीव्य ग्रंथों का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने रामावतार की कथाओं की "बाल्मीकि रामायण" "पद्मपुराण" और "अध्यात्म रामायण" से तुलना करते हुए कहा कि कवि ने इन सभी से प्रसंगों का चयन किया है परन्तु उसकी रुचि युद्ध-वर्णन में ही अधिक रही है।

अध्यक्षीय भाषण में प्रो० तालिब ने हिन्दी के विद्वानों के लिये अनेक भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि उन्हें कम से कम उत्तर भारत की सभी भाषाओं की जानकारी होनी चाहिए । तभी वे सही रूप में इस विशाल प्रदेश में फैले साहित्य की प्रवृत्तियों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन कर सकते हैं। उन्होंने "रामावतार" कथा की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना के मूल्यांकन पर भी बल दिया ।

तीसरी गोष्ठी पंजाब विश्वविद्यालय के पंजाबी विभागाध्यक्ष डा० सुरेन्द्रसिंह कोहली की अध्यक्षता में हुई, जिसमें डा० मनमोहन सहगल ने पंजाब के एक कवि सेनापति की काव्य रचना "गुरुशोभा" पर अपना गवेषणापूर्ण शोध-पत्र पढ़ा। इस शोध-पत्र में उन्हने इस काव्य-रचना की वस्तु, भक्ति-भावना, आध्यात्मिक विचार एवं शिल्प पक्षों पर प्रकाश डालते हुए उसकी विविध नवीन प्रवृत्तियों एवं विशिष्टताओं का समीक्षात्मक आकलन प्रस्तुत किया और उसे इस युग की ऐसी उत्कृष्ट वीर रसात्मक रचना सिद्ध किया, जिसमें गुरु गोविन्दसिंह के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को कथा का आधार बनाया गया है। इसी गोष्ठी में श्री प्यारा सिंह पद्म ने भी आनन्दपुर दरबार के सेनापति तथा अन्य कवियों की रचनाओं की संक्षिप्त परिचयात्मक सूची प्रस्तुत की ।

चर्चा में भाग लेते हुए श्री शमशेरसिंह अशोक, श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी, डा० सत्यदेव चौधरी, डा० ओमप्रकाश शास्त्री आदि विद्वानों ने सेनापति की जन्मतिथि, जन्म-स्थान एवं मूल नाम आदि की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये । अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० सुरेन्द्रसिंह कोहली ने इस विषय से सम्बन्धित अन्य महत्त्वपूर्ण प्रसंगों की चर्चा की और प्रस्तुत संगोष्ठी की सार्थकता एवं सफलता के प्रति अपनी शुभाकांक्षा प्रकट की और साथ में कहा कि पंजाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में गुरुमुखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हस्तलेखों में ७५ प्रतिशत ग्रन्थ हिन्दी के हैं।

चौथी गोष्ठी प्रो० गुरुबचन सिंह तालिब की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई जिसमें दिल्ली विश्वविद्यालय के डा० ग्रोमप्रकाश शर्मा ने गुरुमुखी लिपि में हिन्दी ग्रौर काव्य" विषय पर ग्रपना शोध पत्र पढ़ा। इसमें उन्होंने गीता के युद्ध-दर्शन की चर्चा करते हुए पंजाब के वीरकाव्य को उसी के न दैन्य न पलायन के ग्रादर्श से ग्रनुप्राणित बताया। उन्होंने पंजाब के लग-भग १७ वीर काव्यों का परिचय देते हुए उनकी वस्तुपरक एवं शैल्पिक समीक्षा प्रस्तुत की ग्रौर इन काव्य-ग्रन्थों से ग्रनेक उद्धरण प्रस्तुत करते हुए पंजाब की समस्त हिन्दी काव्य-परम्परा को वीर एवं शृंगार रस के उभय सीमान्तों से सम्बद्ध घोषित किया। उपस्थित विद्वानों की परिचर्चा के ग्रनन्तर सभापति का भाषण हुग्रा।

पांचवीं गोष्ठी ग्राचार्य विनयमोहन शर्मा की ग्रध्यक्षता में हुई जिसमें डा० जयभगवान गोयल ने "संतयोद्धा गुरु गोविन्दसिंह के ग्राध्यात्मिक विचार एवं जीवन दृष्टि" पर शोध निबन्ध पढ़ा। उन्होंने ग्रकाल ग्रस्तुति के ग्राधार पर गुरु गोविन्दसिंह के विचारों को व्यक्त किया ग्रौर कहा कि दशमगुरु सही ग्रर्थों में संत योद्धा थे।

इस शोध-पत्र के वाचन के बाद गुरु गोविन्द सिंह की दार्शनिक विचार-धारा पर चर्चा हुई जिसमें डा० ग्रोम प्रकाश शास्त्री, डा० मनमोहन सहगल, श्री ग्रोम-प्रकाश भारद्वाज, श्री के० सी० सिंहल, एवं डा० सत्यदेव चौधरी ने भाग लिया। ग्रन्त में सभापति पद से बोलते हुए ग्राचार्य विनयमोहन शर्मा ने विषय से सम्बन्धित ग्रनेक समस्याग्रों पर प्रकाश डालते हुए काव्य एवं दर्शन के पारस्परिक सम्बन्धों एवं इनकी सीमारेखाग्रों की विशेष रूप से चर्चा की। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि इस संगोष्ठी में केवल काव्य की ही नहीं बल्कि गुरुमुखी लिपि में प्राप्त ग्रन्य काव्येतर ग्रंथों की भी शोध चर्चा एवं समीक्षा होनी चाहिए।

छठी गोष्ठी डा० परमानन्द की ग्रध्यक्षता में हुई जिसमें डा० गोविन्दनाथ राजगुरु ने दाराशिकोह कृत "सिर्र ए ग्रकबर" के ग्रनुवाद पर ग्रपना शोधपत्र प्रस्तुत किया, जिसमें पंजाब में ग्रनुवादकार्य की परम्परा का उल्लेख करते हुए उन्होंने पंजाब में खड़ी बोली गद्य की चार सौ वर्ष पुरानी परम्परा की ग्रोर संकेत किया ग्रौर यह भी सिद्ध किया कि "योग वाशिष्ट" का मूल लेखक 'रामप्रसाद निरंजनी' नहीं था बल्कि उनके जन्म से भी पूर्व की पाण्डुलिपियां मिलती हैं।

उन्होंने दारा द्वारा किए गए उपनिषदों के ग्रनुवाद की विशेष रूप से चर्चा की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यक्षीय पद से बोलते हुए डा० परमानन्द ने अनुवाद की समस्या एवं उसके रूप पर प्रकाश डाला और कहा कि इन सभी पुराने अनुवाद ग्रंथों का इस दृष्टि से ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत कर सकते हैं कि हमारे यहां (हिन्दी में) अनुवाद कला किस प्रकार विकसित हुई और भाषा के निर्माण एवं विकास में उसने किस प्रकार अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।

"गुरुमुखी लिपि में प्राप्त हिन्दी साहित्य" विषय पर आयोजित इस गोष्ठी का समापन समारोह हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । इस कार्यक्रम में सब से प्रथम संगोष्ठी के मंत्री ने अब तक की कार्यवाही का संक्षिप्त परिचय दिया । इसके बाद डा० रत्नसिंह जग्गी ने अपने संक्षिप्त सार गर्भित भाषण में "जन्म साखी" के कर्तृत्व पर प्रकाश डाला और साथ ही उन्होंने अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर प्रमाण प्रस्तुत करते हुए दशमग्रन्थ के गुरु गोविंदसिंह की रचना होने में गहरा सन्देह प्रकट किया ।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में पंजाब में प्राप्त इस विशाल हिन्दी साहित्य के शोध, अध्ययन, सम्पादन एवं प्रकाशन की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि इसके व्यापक रूप में सामने आने पर आज के पाठक को अतीत में हिन्दी भाषा की व्यापकता अन्तर्देशीयता एवं सर्वजनग्राह्याता के तथ्य का बोध होगा । हिन्दी का इस प्रकार साहित्य सभी प्रादेशिक भाषाओं में लिखा गया है । यह भाषा सामान्य जनता की भाषा बन कर आगे बढ़ी है, किसी बादशाह की उंगली पकड़ कर सयानी नहीं हुई । बाद में "साखी" शब्द की चर्चा करते हुए आचार्य जी ने इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मध्यकालीन सिद्ध कवि कण्हया द्वारा कृत बताया । मध्यकालीन इतिहास एवं साहित्य से अनेक उद्धरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने इस शब्द के क्रमिक विकास एवं भिन्नार्थक प्रयोग की चर्चा की । इस महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी के आयोजन के लिये कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के सदस्यों को बधाई देते उन्होंने आशा प्रकट की कि इस प्रकार के आयोजन यहां आगे भी होते रहेंगे जिनसे हिन्दी साहित्य के अध्येताओं को नयी चिंतन दृष्टि एवं अभिनव प्रकाश मिलेगा ।

अंत में सभी अभ्यागत अतिथि विद्वानों एवं मुख्य अतिथि को धन्यवाद देते हुए डा० छविनाथ त्रिपाठी ने इस संगोष्ठी में पठित शोधपत्रों एवं भाषणों की संक्षेप में चर्चा की तथा उनसे प्राप्त नवीन शोध निष्कर्ष की हिन्दी साहित्य के चिंतन की दिशा में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग को विनम्र योगदान के

(शेष पृष्ठ ८२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रेम-संचार

राम कृष्ण दास गोयल

आज के वैज्ञानिक युग में कठोर वास्तविकताओं की ही सर्वत्र छत्रछाया है। काल्पनिक सुनहले चित्रों का स्थान उत्तरोत्तर घटता जा रहा है और घटता ही चला जायेगा। परन्तु ऐसी विकट स्थिति में भी महादेवी वर्मा जी ने आत्म-विश्वास के साथ उच्च स्वर में बड़े गर्व के साथ कहा है कि "कवि को वास्तविक द्रष्टा के साथ स्वप्न-द्रष्टा भी होना चाहिए।" इन्हीं स्वप्नों में खोया कवि केदार अग्रवाल हृदय की कोमल भावनाओं की हिलोर को भी सहन नहीं कर सकता और निःसर्गतः पुकार उठता है :—

"जिन कलियों ने प्रेम छिपाया, वे झूठी कहलाईं,
जिन नदियों ने नेह छिपाया, वे सूखी अकुलाईं,
जिन आंखों ने राग छिपाया, वे रोईं पछताईं,
तब क्यों मैं ही प्रेम छिपाऊं ?"

यह है एक भावुक व कोमल हृदय कवि की अन्तर-आत्मा की पुकार। उसमें इतना सामर्थ्य नहीं कि वह उस प्रेम को छिपा सके जो उसकी नस-नस में घर किये बैठा है, उसकी मस्तानी आंखों से छलक रहा है, उसके विशाल हृदय में अब समा नहीं सकता और बाहर आने के लिये आकुल है। बेचारे कवि में इतना साहस भी नहीं कि वह इस जीवन-दायिनी शक्ति को बर-बस दबा सके, क्योंकि उसने यह देख लिया है कि प्रेम छिपाने वाली कलियां, नदियां और आंखें अपनी वास्तविकता को इसलिये खो बैठी हैं क्योंकि उन्होंने प्रेम छिपाने का प्रयत्न किया। इसी भय-कारण यह प्रेम-प्यासा कवि प्रेम-प्रवाह को और अधिक देर तक दबा कर रखने का दुस्साहस नहीं कर सकता और इस प्रेम-स्रोत के अबाध गतिमान प्रवाह से संसार की प्रेम-प्यास को शान्त कर देता है और प्रेम-विहीन मानव समाज उसकी ओर आशामयी दृष्टि से ताकता रहता है।

साहित्यिक क्षेत्र में यही प्रेम-प्रवाह शृंगार रस के नाम से सुशोभित होता रहा है और इसे रसराज का उच्च पद भी दिया जाता है। संयोग और वियोग इसके दो पक्ष हैं। दोनों में से वियोग को ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक महत्ता दी जाती है, परन्तु फिर भी संयोग का भी अपना निजी स्थान व मान है। "उसमें ब्रह्मानन्द तो नहीं, लेकिन उसका सादृश्य अवश्य आ जाता है । उसमें मनोनुकूल उच्चतम अनुभव आ जाता है, तभी तो रहस्यवादी ईश्वरोन्मुख प्रेम के रहस्यानुभव का उपमान बताते रहे हैं"। १

आधुनिक युग में, जबकि समस्त संसार जीवन की क्रूर समस्याओं में ही उलझा पड़ा है और मानव को अपने जीवन में प्रेम के दर्शन मात्र स्वप्न में भी नहीं होते, ऐसी विकट दशा में भी प्रेमातुर कवि अपनी प्रेममयी वाणी से दुखी समाज के दुःख का हरण कर, उसके आशा-विहीन, प्रेम-शून्य जीवन को प्रेम रंग में रंगने से चूकता नहीं और हम देखते हैं कि प्रेम के इस संयोग पक्ष का पूर्ण विकास हमारे हिन्दी साहित्य के आधुनिक कवियों में पूर्णतः हो जाता है।'

मधुशाला से निकले कवि बच्चन का साक्षात्कार उस सुन्दर कनक छड़ी सी कामिनी के साथ हो जाता है जिसके नील झील-से नैन, नीर निर्झर से केश हैं। उसके कलामय करों में 'लतरों का लचकाव' है तथा 'करतलों में फूलों की बास' है। मन स्वतः ही ऐसी परम मनोहर अप्सरा की ओर खिच जाता है आंखें उधर ही जम जाती हैं। एक बार नहीं सौ बार देखने पर भी दिल नहीं भरता और कवि सुमन की भी यही शिकायत है :—

"किनी बार तुम्हें देखा,
पर आंखें नहीं भरीं।"

भला आंखें भरें भी कैसे । क्योंकि आंख का आंख से मिलना ही था कि दोनों के हृदय में प्रेम-प्यार का कोमल अंकुर पनपने के लिये बेचैन हो उठा और कवि भी उसे एक सुन्दर वृक्ष में परिणत हुआ देखने के लिये अधीर हो उठता है और वह अधिक देर तक इसकी प्रतीक्षा भी नहीं कर सकता। दिनकर जी अपनी प्रियतमा को ढूंढते फिरते हैं और न मिलने पर थक कर हार कर कह देते हैं :—

"मन में मिलन की आस है,
दृग में दरस की प्यास है,
पर ढूंढता फिरता जिसे,
उसका पता मिलता नहीं।'

परन्तु इतनी आसानी से कवि हार मानने वाला नहीं और न ही निराशा इतनी शीघ्र उसे उसके पथ से विचलित कर सकती है । प्रयत्न निरन्तर चलता रहता है और युग-युग से साथ रहने वाली प्रेमिका के इशारों को कवि दिनेश जी पहचानने में देर नहीं लगाते और संकेत पाते ही समझ जाते हैं कि:—

"कोकिला की कुहुक में, तुमने पुकारा है,
जानता हूँ, यह बुलाने का इशारा है।"

१. "सिद्धान्त और अध्ययन" पृष्ठ १३५– गुलाब राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस इशारा क्या था, अपने गुप्त स्थान का परिचय कराना तथा मिलन का एकमात्र, निमन्त्रण देना था। प्रकृति, जो सदा से ही प्रेमियों के हृदयों को उद्वेलित करती रही है और समय-समय पर अनेकों रूप बदलती रहती है, उसी की सहायता से श्री अरुण जी अपनी चिर-साधना का पता लगा लेते हैं, क्योंकि उन्हें पता है :—

"तुम जहां हो, वहीं हंस रही नीलिमा,
तुम जहां हो, वहीं है शरद पूर्णिमा",

इस प्रकार खोजने पर उस देवी के दर्शन कवि घनश्याम अस्थाना को 'अशान्त समीर में' या 'चकोर की अशेष पीर में' हो जाते हैं। परन्तु इसके लिये कहां-कहां भटकना पड़ा और किस-किस दर की ठोकरें खानी पड़ीं उसका हरिकृष्ण प्रेमी जी को ही पता है, इसलिये वह अपनी प्रेयसी को उपालम्भ रूप में कहते हैं :—

'है सरल नज़रें मिलाना,
दिल मिलाना है कठिन'।

और इस कठिनाई का ज्ञान राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी को भी अच्छी प्रकार से है और प्रेम के नैतिक आदर्श को वह भूले नहीं हैं। इसलिये अपनी जीवन-सहचरी को समझाते हैं :—

'दोनों ओर प्रेम पलता है,
सखि पतंग भी जलता है, हा!
दीपक भी जलता है।'

इधर गुप्त जी का तो यह नीरस उपदेश तथा दूसरी ओर गोपाल कृष्ण की यह उत्तेजना पूर्ण कविता में चेतावनी कि :—

'प्रेम चोरी तो नहीं है,
क्यों छिपाती पाप-भय से
आग की यह राह, इस पर,
मत चलो कायर हृदय से।'

दोनों ही गोपालसिंह नेपाली ... जीवन-साधना को एक आंख भी न... भाते, क्योंकि वह तो प्रेम-क्रिया-कला... से अनजान नहीं और उसे प्रेम मार्ग ... आने वाली अनेकों बाधाओं तथा उन... मार्ग से हटाने के ढंगों का, पूरी तरह ... ज्ञान है, इसी लिये आवेश में आ... उसके हृदय से स्वतः ही निकल पड़ता है

'मेरे प्राण मिलने के भूखे,
ये आंखें दर्शन की प्यासी'

अब प्रश्न यह उठता है कि भूखा औ... प्यासा क्या कुछ नहीं करता? वह ... सब कुछ करता है जो मरता करता है ... वह अपनी समस्त शक्तियों को एका... भाव से संजो कर अपनी उद्देश्यपूर्ति में ... जाता है और फल-प्राप्ति पर खुशी ... नशे में झूम उठता है और तब तो ... नीरज यह भी सहन नहीं कर सकता ...

'देखती ही न दर्पण रहो प्राण! ...
प्यार का यह महूरत निकल जायेगा ...

कितनी तीव्र उत्कण्ठा है मिलन ... प्रत्येक प्रेमी को यह अभिलाषा होती ... कि उसकी जीवन-आराधना अधिक ... अधिक सज-धज कर उसके सामने ... परन्तु उसको यह भी सह्य नहीं कि वह ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृंगार में भी कुछ पल और व्यतीत करदे क्योंकि एक ओर चिर-प्रतीक्षा के पश्चात् मिलन हुआ है और दूसरी ओर साथ ही चन्द्रमा हंस रहा है, चांदनी खिल रही है, पवन गन्ध की रागिनी गा रही है और कोकिला आम की डाली पर बैठी कूक-कूक कर कह रही है ! 'आज की रात तो प्यार की बनी ।'

प्रकृति के इतने मनोमुग्ध व मादक प्रभाव में कोई भी प्रेम-बद्ध जोड़ी अपना प्रेम-आदान-प्रदान किये बिना नहीं रह सकती और नर्मदा प्रसाद खरे को प्रेमी अपनी प्रेमिका को अपने हृदय-स्पंदन का कारण बताता हुआ कहता है, --

'क्षण भर की मुस्कान तुम्हारी,
जीवन का आधार बन गई ।
जाने कब की देखा-देखी,
धीरे धीरे प्यार बन गई ।'

इधर प्रेम प्रसंग व प्रेम-व्यवहार में माखन लाल चतुर्वेदी की नायिका भी कोई दूध-पीती बालिका नहीं, उसके दिल में भी समान रूप से भावों का तूफान मचा हुआ है। बरबस ही उसके कोमल होठों से यह ध्वनि निकली सुनाई पड़ती है :—

'तुम मिले प्राण में रागिनी छा गई'

बस दोनों का मिलन क्या था कि उसकी हार जीत हो गई और पीर गीत हो गई । जीत हो भी क्यों न ? आखिर उसने अपने जीवन साथी को मन्त्र-मुग्ध कर अपने प्रेम पाश में इतना जोर से जकड़ लिया है जहां से वह कभी छूट कर जाने की कल्पना तक भी नहीं कर सकता । तारा पाण्डय ने भी अपने सुपनों के स्वामी को इस प्राकृतिक तथा भौतिक नियम का संकेत कर उसे अपने बन्धन में जकड़ लिया है :—

रवि भी बंधा हुआ है देखो,
अपनी किरणों के बन्धन में,
तुम को बांध चुकी हूँ मन में ।

इस प्रकार मन की गहरी गहराइयों व खाइयों में फंसा प्रेमी किसी प्रकार भी अपना छुटकारा प्राप्त नहीं कर सकता और उसका पीछा यहां पर ही नहीं छूटता । प्रेम-दीवानी महादेवी वर्मा जी तो इसके लिये भी प्रयत्नशील हैं :—

"तुम्हें बांध पाती सपने में।"

और प्रेमी अपनी गीतों की रानी से दूर जाये भी क्यों ? उसके भी तो दिल है, उसने भी तो दिल की धड़कनों के आघात को सहन किया है तथा अपने तन का दिया और प्राण की बाती बना कर रात भर जलता रह कर व अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर अपनी परम-प्रिय सुपनों की रानी को प्राप्त किया है, और जब वह कवि के सांस में सांस मिला कर उसके साथ मिल कर एक हो गई है तब उस प्रेम-दीवाने को रात की काली कालिमा भी मीठी चांदनी का चोला पहने दिखाई देने लग जाती है । अब उसे अपनी प्रियतमा के मदभरे नयनों, हंसते खिलते कपोलों तथा पवन में लहराते काले केशों के सिवाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी दिखाई नहीं देता और वह उसकी ओर ही एकटक नज़र टिकाये जा रहा है तथा मीठी मधुर निद्रा की हिलोर के आने पर भी वह अपनी आंख झपकता तक नहीं, क्योंकि उसे भय है कि कहीं ऐसा न हो कि उसकी पलकों के झपकते ही उसकी जीवन तारिका उस से छिप जाये और उसे फिर खोज में खग-मृग व मधुकर श्रेणी से यह पूछना पड़े :—

"अरे बता दो खोया मेरा सूत,
शिव, सुन्दर प्यार कहां है ?
और रूपहला रातों का वह,
प्रेयसि की मनुहार कहां है ?"

(पृष्ठ ७७ का शेष)

रूप में परिभाषित किया । इस संगोष्ठी के आयोजन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं अपने उपकुलपति महोदय के महत्त्वपूर्ण सहयोग के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि इनकी कृपा से ही यह काव्यशास्त्र-विनोद संभव हो सका, उसके अभाव में इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

(पृष्ठ ६२ का शेष)

काल्पनिक पशु

इस निबन्ध को समाप्त करने से पूर्व विवेच्य नाटक में वर्णित काल्पनिक जीवों का विवेचन अप्रासंगिक नहीं होगा। 'अभिज्ञान शाकुतल' में दो काल्पनिक जीवों को स्मरण किया गया है। थके हुए राजा दुष्यन्त को कर्त्तव्य के प्रति सचेत करने के लिये सूर्याश्वों और शेषनाग का स्मरण कराया गया है। सूर्य के घोड़े आदिकाल से सूर्य के रथ को खींच रहे हैं। वे क्षण मात्र के लिये भी विश्राम नहीं करते । शेषनाग भूमि भार को फण पर उठाए हुए है वह अपने कर्त्तव्य को नहीं त्यागता । इसी प्रकार हे दुष्यन्त ! तुम राजा हो। तुम्हारा कर्त्तव्य प्रजा पालन व प्रजा-संरक्षण है । तुम अपने सुख का ध्यान किये बिना इस कर्त्तव्य का पालन करो।[१]

५. अभि०, अंक ५, श्लोक ४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की सर्वोत्तम पुस्तकों पर पुरस्कार

आवश्यक सूचना

पंजाब सरकार के हिन्दी विभाग द्वारा वर्ष १९६६–६७ के लिए हिन्दी की सर्वोत्तम वैज्ञानिक / तकनीकी तथा साहित्यिक पुस्तकों को पुरस्कार !

हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला द्वारा अपनी वार्षिक योजना के अन्तर्गत वैज्ञानिक / तकनीकी तथा साहित्यिक सर्वोत्तम रचनाओं को पुरस्कार देने के लिए १ अप्रैल १९६५ से ३१ मार्च, १९६६ के बीच लिखी अथवा प्रकाशित पुस्तकें पुरस्कारार्थ आमन्त्रित की जाती हैं ।

प्रकाशित पुस्तकों की ६ प्रतियां अथवा हस्तलिखितों की ३ प्रतियां हिन्दी विभाग, पंजाब,पटियाला के पास २६ सितम्बर, १९६६ तक अथवा इससे पहले पहुंच जानी चाहिएं ।

पुस्तकें निम्नलिखित विषयों पर हो सकती हैं :—

(क) वैज्ञानिक तथा तकनीकी

१—कृषि और वनस्पति विज्ञान,

२—डाक्टरी और जीव विज्ञान,

३—रसायन विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान,

४—साधारण विज्ञान तथा उद्योग विद्या ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) साहित्यिक

१--कविता (मौलिक)

२--नाटक मौलिक

३--कथा (उपन्यास तथा कहानी) मौलिक ।

४--आलोचना, भाषा विज्ञान, निबन्ध, जीवनी, यात्रा संस्मरण, अनुवाद

पुरस्कार दो प्रकार के होंगे प्रथम पुरस्कार की दो श्रेणियां होंगी । अर्थात् १००: रुपए सर्वोत्तम तथा अनुवाद श्रेणी के लिये, 800 रुपए साधारण उत्तम के लिए । द्वितीय पुरस्कार 500 रुपये का होगा । ये पुरस्कार प्रतियोगिता के उपर्युक्त सभी वर्गों पर लागू होंगे ।

प्रतियोगिता में भेजी जाने वाली प्रत्येक रचना का विषय / श्रेणी विशिष्ट रूप से लिखा होना चाहिए ।

यह प्रतियोगिता केवल पंजाब के लेखकों तक सीमित है, अर्थात् जो पंजाब के निवासी हैं अथवा इस प्रदेश में पैदा हुए हैं । इस तथ्य की पुष्टि के लिए उन्हें पुस्तक भेजते समय प्रमाण पत्र भेजना होगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तसिन्धु की उपादेयता

अच्छा साहित्य अच्छे जीवन का निर्माण करता है। और अच्छा जीवन राष्ट्र में सुख और शांति बनाये रखने में सहायक सिद्ध होता है। सप्तसिन्धु में प्रकाशित साहित्य इस कथन का प्रतिनिधित्व करता है।

किसी देश और जाति का गौरव-पूर्ण अतीत उसके वर्तमान और भविष्य को उज्ज्वल बनाने में सहायक होता है और उस गौरवपूर्ण अतीत के चित्र निबन्ध, कहानी एवं एकांकी आदि द्वारा 'जन साहित्य' हर महीने आप के समक्ष प्रस्तुत करता है।

साहित्य के अनमोल मोती प्राचीन ग्रंथों के रूप में अनेक प्रान्तों में छिपे पड़े हैं। उन ग्रंथों के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले खोजियों द्वारा लिखित अनुसन्धान एवं अन्वेषणात्मक लेख सप्तसिन्धु में प्रकाशित किये जाते हैं।

सप्तसिन्धु डी० पी० आई० पंजाब, परिपत्र संख्या ४६६७–एस० ५५–५८ बी–४३५३ दिनांक ६ अक्तूबर १६५८ द्वारा पंजाब के सभी स्कूलों, कालेजों एवं लायब्रेरियों के लिए स्वीकृत है।

–आज ही–

६ रुपए भेजकर वार्षिक ग्राहक बनिये।

अपनी उत्कृष्ट रचना भेजकर सहयोग दीजिए।

एक प्रति का मूल्य ५० पैसे | वार्षिक चन्दा ६ रुपये

पत्र व्यवहार के लिए पता :–
डायरैक्टर, हिंदी विभाग, पंजाब, पटियाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R. No. P-318
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री लाल सिंह, डायरैक्टर जनरल, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला द्वारा प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी डिपार्टमैंट, पंजाब, पटियाला से छपवा कर प्रकाशित किया गया।

सम्पादक——डा० परमानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल

25-10-6

सप्त सिन्धु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदामृत--

प्रभु-स्तुति

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ।। (ऋग् १, २२, २०)

जैसे आकाश की ओर लगी हुई आंख के सामने कोई रुकावट नहीं होती, वैसे ही व्यापक प्रभु के उस परम धाम पर भी पहुँच वालों की दृष्टि बिना रोक-टोक के सदा टिकी रहती है ।

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।। (यजु. ३२,४)

वही देव सब दिशाओं में विराज रहा है । वही (सर्वत्र सब से) पहले होता है, वही (सब के) अन्दर होता है । जो हो चुका और जो (अभी) होने वाला है --वह सब वही है । वह है हम सब के अन्दर, पर उसका मुख सब ओर है ।

सर्वे निमेषाः जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ।। (यजुः ३२,२)

वह चमकीला पुरुष सब प्रकार की क्रिया का मूलकारण है । न कोई कभी इसके ऊपर चढ़ सका है और न कोई कभी इसके अन्दर घुस कर या आर-पार होकर इसे पा सका है ।

--'वेदसार' से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तसिन्धु

(मासिक प्रकाशन—अक्तूबर—१९६६)

वर्ष १३ अंक १०

१. सन्त कबीर के नाम से प्राप्त अज्ञात रचनाएँ	श्री अगर चन्द नाहटा, नाहटों की गवार, बीकानेर	१
२. स्व. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल	डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन, ८।७ हरि-नगर, अलीगढ़	१२
३. कालिदास की रचनाओं में अति-मानवीय तत्त्व	डॉ० देवी दत्त शर्मा, पंजाब विश्व-विद्यालय, चण्डीगढ़	१६
४. छन्द व्यवस्था : महत्त्व एवं प्रयोजन	डॉ० छविनाथ त्रिपाठी, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र	२५
५. अवधी में कृष्ण काव्य का विकास	डॉ० मुरारि लाल शर्मा, 'सुरस,' आर्य-कालेज, लुधियाना	३६
६. सन्त मत की दार्शनिक पृष्ठभूमि	श्री हरिचन्द पाराशर, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला	४१
७. मन्त्रिपरिषद् की परम्परा	श्री शिवशंकर त्रिपाठी, लोकायन, दारागंज, इलाहाबाद—६	५२
८. भारत में राष्ट्रीय भावना का विकास	डॉ० राजमल बोरा, २८७ नाथमुनि स्ट्रीट, तिरुपति (आ. प्र.)	५६
९. नई कविता की अमरता का प्रश्न	प्रो. मदन लाल वर्मा, पटेल मैमोरियल कालेज, राजपुरा	६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०. हरियाणा नामकरण	श्री सोमदत्त बांसल, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला।	७२
११. उर्दू काव्य में प्रेम	श्री स० र० अबोहरी 'साबिर' कार्य-भारी अधीक्षक, केन्द्रीय तारघर, अम्बाला छावनी	७८

मूल्य ५० पैसे

सम्पादक—

डॉ० परमानन्द

डायरैक्टर, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला

परामर्श समिति

श्री कृष्ण मधोक
(सहायक निदेशक, अनुवाद)

श्री त्रिलोकी नाथ रञ्जन
(सहायक निदेशक, कोश)

श्री ओम् प्रकाश भारद्वाज
संयोजक
(सहायक निदेशक, विकास)

श्री गुरुदत्त शर्मा
(सहायक निदेशक, अनुवाद)

श्री हरिचन्द पाराशर
सहायक निदेशक, अनुवाद)

हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्त कबीर के नाम से प्राप्त अज्ञात रचनाएं

अगर चन्द नाहटा

हिन्दी सन्त साहित्य में सन्त कबीर के साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी अनुभव प्रधान और खरी वाणी ने भारतीय जन-मानस को बहुत आन्दोलित किया है। परवर्ती अनेक सन्तों और सम्प्रदायों को कबीर और उनके साहित्य ने बहुत प्रभावित किया। कबीर ने स्वयं तो कोई ग्रन्थ लिखा नहीं प्रतीत होता। समय-समय पर उन्होंने जो कुछ पद, साखी के रूप में कहा वह जितना जिसे याद रहा, लिख लिया गया और समय-समय पर अन्य लोगों ने कबीर के नाम से बहुत-सी छोटी-बड़ी रचनाएं करके उनकी वाणी में सम्मिलित कर दी। इसलिये कबीर की मूल रचनाओं का पता लगाना बहुत ही कठिन है। प्राप्त प्राचीन एवं बहुत सी प्रतियों के आधार से कबीर वाणी के दो संस्करण प्रकाशित हुए हैं। जिनमें से प्रथम स्व० श्यामसुन्दर दास जी ने सम्पादित करके नागरी प्रचारिणी सभा से इंडियन प्रेस प्रयाग द्वारा सन् १९२८ में प्रकाशित किया था। दूसरा संस्करण डा० पारसनाथ तिवारी ने सम्पादित करके 'हिन्दी परिषद्, प्रयाग द्वारा सन् १९६१ में प्रकाशित करवाया है। दोनों संस्करणों में कबीर के पद, रमैनी, और साखी को ही प्रमाणिक मान कर उनका सम्पादन किया गया है। दूसरे संस्करण की भूमिका में कबीर के नाम से प्राप्त रचनाओं की सूची भी दी गई है। कबीर की अन्य रचनाएं कई स्थानों से प्रकाशित भी हुई हैं और उनकी संख्या ५० से भी अधिक है।

हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का कार्य सन् १९०० से अब तक निरन्तर चल रहा है। ना. प्र. स. का यह कार्य वास्तव में हिन्दी साहित्य की जानकारी प्राप्त करने के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। संवत् २०२१ में सभा के द्वारा सन् १९०० से १९५५ तक की खोज रिपोर्टों का विवरण दो भागों में प्रकाशित हुआ है उसमें कबीरदास की १६० से भी अधिक रचनाओं की सूची दी गई है। संभव है १९५५ के बाद की रिपोर्टों में कबीर की रचनाओं के और भी कुछ नये नाम सम्मिलित हुए हों। यह तो निश्चित है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि इनमें से अधिकांश रचनाएं कबीर की नहीं हैं पर कबीर सम्प्रदाय और जन-साधारण में कबीर की ही मानी जाती हैं। कौन-सी रचना की सब से प्राचीन प्रति कब की एवं कहां मिलती है इसकी खोज की जाये तो विभिन्न प्रतियों के मिलान द्वारा यह निश्चित किया जाय कि उनमें परिवर्तन एवं परिवर्धन किस प्रकार होता रहा तो हम कबीर के नाम से प्राप्त साहित्य का विकास कैसे होता गया, इसकी कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। सम्भव है हम जिन रचनाओं को अन्य कृत परवर्ती या अप्रमाणिक मानते हैं उनमें कुछ अंश ऐसा भी मिल जाय जो वास्तव में कबीर द्वारा कथित ही हो। क्योंकि मौखिक रूप से बहुत से पद्य लम्बे समय तक ऐसे भी प्रचारित होते रहे हैं जो लिखे नहीं गये।

कबीर के नाम से कई पंथ भारत के अनेक स्थानों में प्रचलित हैं उन सम्प्रदायों में भी बहुत से अच्छे-अच्छे सन्त हो गये हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं को अपने आराध्य एवं गुरु के नाम से प्रचारित करने में ही अधिक लाभ देखा होगा क्योंकि कबीर के प्रति लोगों की जो श्रद्धा है उसके कारण अन्य व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण रचना को भी वह स्थान प्राप्त नहीं हो सकता जो कबीर के नाम से प्रचारित साधारण रचना को भी प्राप्त हो सकता है। कबीर सम्प्रदाय के जहां-जहां भी मठ या स्थान हों वहां कबीर साहित्य की खोज तो करनी ही चाहिए क्योंकि यह भी सम्भव है कि किसी रचना की प्रति जिस व्यक्ति को प्राप्त हुई हो उसने उसे वहीं तक सीमित रखा हो और अन्य प्रतिलिपि प्राप्त की जा सकी हो। साम्प्रदायिक संकुचित वृति आदि के कारण बहुत सी ऐसी रचनाओं को लोग बहुत छिपा कर रखते हैं, दूसरे को देने की बात तो दूर किसी को दिखाते तक भी नहीं।

गतवर्ष अहमदाबाद जाने पर सौजन्य मूर्ति आगम प्रभाकर मुनिवर्य श्री पूज्य विजय जी के संग्रहीत गुटकों को देखने का सुअवसर मिला तो उसमें दो गुटके कबीर की रचनाओं के संग्रह वाले भी मिले। इनमें से एक गुटका तो बहुत ही बड़ा है। काफी वर्षों तक यह लिखा जाता रहा है। यह कई व्यक्तियों के हाथ का लिखा हुआ है। संवत् १८१९ से १८७३ तक यह लिखा जाता रहा है। अधिकांश रचनायें कबीर और धर्मदास की हैं। गोरख बोध नामक एक रचना गोरखनाथ की भी है। कई रचनाओं में कर्ता का नाम नहीं मिलता। प्रति गुटका या पुस्तकाकार है। प्रारम्भ के २५० पत्र की स्याही और लिपि से उसके बाद के पत्रांक २५१ से २७… और २९२ से ५३५ की स्याही और लिपि बहुत कुछ भिन्न है। प्रारम्भ में उस… प्रकाश ग्रन्थ लिखने से पूर्व कई गुरु परम्परा के नाम दिये गये हैं वे नीचे दिये जा रहे हैं जिससे यह गुटका क…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के किस सम्प्रदाय से संबंधित है, विदित हो सकेगा—

नज समरथ महापुरुष की दया । कबीर धर्मदास की दया । गुसांई साहेब दास की दया । गुसाई दलहन दास जी की दया । गुसांई गणपत दास जी की दया । गुसांई लछमणदास की दया । गुसांई हरीदास जी की दया । गुसांई ईसरदास श्यामदास खोजी अंश की दया । गुसांई मोहेनदास नरवंद साहेब की दया । गुसांई ज्ञान साहेब विच्यार अंश की दया । गुसांई लछिदास धीर **अंश** की दया । सबई गुरां की दया । अंश हंस बंश सुरत सतायन की दया । सकल गुरां की दया ।

ग्रन्थ भंडार मुलका महन्त गुसांई नरवंद साहेब मोहनदास जी ग्राम उणियारा मध्य दयाकर पोथी सोंपी सष ज्ञानदासजी दसखत अटलदास जी का हाथ का कबीर गुरु कुं दंडोत कीजिये कोट कोट प्रणाम कीट न जाण भृग कुं गुरु करलै आप समान कबीर सत्यनाम सतगुरु कबीर धनी धर्मदास की दया लिखतं ग्रन्थ उदय प्रकाश ।

उदय प्रकाश का उल्लेख खोज रिपोर्ट में न होने से उसके आदि अन्त के कुछ पद्य नीचे दिये जा रहे हैं :—

अग्मधर जोत्य अनुप अपारा,
सत्य कहुँ मुल बृत सबते सारा ।
सत्यटेकर की धरै जो शेवा,
ज्ञान गुरू का पावै मेवा ।१।
सेवा बिन शब जुग भर्मावै,
सो शेवा जो नावही पावै ।।
नांव ही पाय श्रुत्यं लौ लावै,
जेही ते आवागमन मिटावै ।२।

अन्त——जल की आदि गहै जीय कोई,
आतम तत्त्व शों परचै होई ।
सब कोई जल को जाप जपावै,
कदल ब्रह्म कौ पार न पावै ।२४४।
साखी—मुनीजन शब खोजत फिरैं,
पार अग्म नहीं पाव ।
कहै कबीसंत गुर मिलै,
तब ही अलख लखाव ।२४५।

इति श्री ग्रन्थ उदै प्रकाश संपुरण समापते ।१।

जांवन खंड ——
प्रथम मही सत्य अभि अंतरगंउ,
घट भीतर का भेद बतांउ ।
प्रथम पंखुरी सिर्जनहारा ।।१।।
दूसरी पंखुरी तेज हमारा ।।२।।
तीसरी पंखुरी जक्तगुर होई ।।३।।
चौथें पंखुरी आप है साई ।।४।।
पांच पंखुरी बाजान बाजा ।।५।।
छठें पंखुरी चंदा राजा ।।६।।
सातई पंखुरी बहै बहु पवनां ।।७।।
आठवें पंखुरी जन्म मरना ।।८।।
नवें पंखुरी मन प्रकांसा ।।९।।
दसै पंखुरी काल के बासा ।।१०।।
ऐकादश पंखुरी जोग के ध्यांन ।।११।।
द्वादस पंखुरी पदनि्बांन ।।१२।।
अन्त-दोहरा——निर्बिष बिषमै कथे ज्ञांन का
करहु विचार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास कबीर मुक्ति के बहीयां जाकी
लीला अबगत्य अगमअपारा ।

इति श्री जांवन खंड घट मथन काया
विचार ।

भिन्य भिन्य कैडारि आदि अंत कर ज्ञान।
षौडसमो खंड ।।१६।। इति श्री ग्रंथ
जांबन खंड संपुरन समापते ।।३।।
कबीर साहिब ।।

स्वांसाटक-सार––यह रचना ८८ पद्यों की है ।

आ०––निस बासरि काहै बिस्तारा,
छसै आगरइ की शहजारा ।
इह निज भेद रहै लौ लाई,
जो सतगुर निज खेप लखाई ।।१।।
पांच तत्व आवैं और जाई,
घट का भेद कहै समुझाई ।
तत्त्व तत्त्व का भेदनि नारा,
चंद श्रुरत के संग धारा ।।२।।

अन्त––बिन रसनां रस पीवै नां जांनै
कहे नह अक्षर पाव ।
कहैं कबीर ताहि परहरौ काल कला धरि
आव ।।८७।।
सूक्ष्म भेद नहीं जांनै कथनी कथि लिपटांन ।
कहैं कबीर कबहुं नहीं छुटै ज्मके हाथ
बिकांन ।।८८।।

इति श्री ग्रन्थ स्वांसा टकसार संपुर्ण समापते
।।६।। कबिर्सत्य ।।

दहिनां वृत्त––पद्य संख्या १३४ है । आदि अन्त इस प्रकार है ।

छांडओ सुन्य सरोवर जहीयां,
आऐओ प्रवत ताल चिरईयां ।
ताल चिरईयां चरवर चैनां,
तब जंमरासन बोलेओ बैंना ।।१।।
स्कल बिस्वाहैता कर कीन्हां,
तेही के पार बैकुंठ ही दीन्हां ।
खेल खिलावैं बालक भोरा,
ताकौ नांम जो कहीयैं जोरा ।।२।।

अन्त––द्वारिका हुतेओ त्रपठावा,
संदेसा संन्यासी ले आवा ।
त्रुर्जकनी ऐक दीन्ह पठाई,
रांम नांम जो पत्री लिखाई ।।३३।।
इतने दिवस गए तब बीती,
तब तुम पिता गबने गोती ।
बौहोरी अनगन भयौ तेरह मांसा,
तब चित चिंता कीन्ह प्रकासा ।
अबसोंपुंसब्द देहुं टकसारा,
धरमदास लीन्हो अवतारा ।।

इतिश्री ग्रंथ दहिनां व्रत संपुरन समापतो।।
कबीर्सत्य ।।

नालिपांजी––इस रचना की पद्य संख्या ६८ है। आदि अन्त इस प्रकार है––

धरमदास जो बिन तीलाई,
कायानालि गुरदेहु बताई ।
अहो साहिब तुम भाखौ लेखा,
काया बंधान का कहौ बिबेखा।।१।।
काया की निरक्षणिज भाखौ बांनी,
केते बंधान काया जो ठांनी ।
आगै सब्द मोहि देहु बताई,
घट घट लेखा देहु चिन्हाई ।२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त--जो तुम प्रथीन आवते ज्ञांनी,
ठीका ठीका को कहै बखांनी ।
तुम सब जांनों लोक मंझारा,
आप पुकारे इह संसारा ।
तुम प्रताप स्कल हम जांनाँ,
तुम जीवन का कीन्ह छुटांना ।६७।
दोहरा--बड़े प्रताप तुम भाखै नालिनओपर लेख ।
धरमदास बिनती करैं हम देखी बस्त अदेख ।६८।।

मुल पांजी--९१ पद्यों की इस रचना के आदि अन्त इस प्रकार हैं --

प्रथम ही पुर्ष कहां धौंर हे ओ,
तादिन बोल बांनी नहीं कहे ओ ।
तब कोई पुर्ष ह ते नहीं छाया,
तब नहीं बोल वफ निरमाया ।१।
तब नहीं लोक नहीं तब काया,
कौन बरन धौं पुर्ष रहाया ।
तब नहीं लोक दीप की बानी,
तब नहीं हंसहते कोई खानी ।।८।।
पुंन्य संपुट का कहों बखान,
जहां वां पुरुष जाय समांनां ।
वहां बैढि इतनां सब कीऐओ,
आपुन जाय गुपत होय रहेओ ।।९०।।
वही संपुट का लेखा काहु नहीं कहेओ
जहां पुरष की बैठक रहेओ ।।
सोई पवन जो अंम्रत ठांनै ।
कहैं कबीर और नहीं आनै ।९१।।
इति श्री ग्रन्थ मुलपांजो संपुरण । समापते।
कबीर्सत्य ।।

आरंभ द्वार की पांजी--यह रचना ४२ पद्यों की है। आदि अन्त के पद्य इस प्रकार हैं--

आदि--धरमदास उठि बिनती कीन्हां,
अब भाखहु पांजी कर चीन्हां ।
अब तुम काया पांजी भीखौ,
कितनां परवांन द्वार तुम राखौ ।१।
जहां होय हंसा देयरिं गाई,
कितनां परवांन द्वार निरमाई ।२।
उमंग चौंतरा हंसन दीन्हा,
आप हंस पुन्य दरसन कीन्हा ।
मस्तक हाथ पुरष जब दीन्हां,
अजर अमर करि हंसा लीन्हां ।४१।
जब हंसा जो दरसन कीन्हां,
पुरुष के चरन मस्तक पर दीन्हां ।
करिचरनोदिक पीयो अघाइ,
बैठे हंस लोकै मै जाई ।।४२।।
दोहरा--कहैं कबीर धरमदास सुं हंसा बैठे सुख निवास ।
अचलहिरंब्रर होय रेहे छारि खलक की आस।
आरंभ द्वार की पांजी संपूर्ण ।।

दगज पांजी--रचना काफी बड़ी है। आदि अन्त नीचे दिये जा रहे हैं --

आदि--नांव निजमुल मुक्ति पदारथ जो कोई पावै ।१।
सतगुर सुं कपट न लावै ।
सो उतरैं भौं जल पारा,
बौहौरिन आवै इह संसारा ।।
धरमदास पुछैं चितलाई,
पांजी मुल मोहि देहु बताई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसैं हंसा लोक ही जाई,
सो मार्ग मोहि देहु बताई ।।
अन्त––स्कल गंम्य हम पाई ज्ञांनी,
तुंम परताप स्कल हम जांनी ।
अब मैं चोन्हेउं बस्त भंडार,
संम्र श्का देखा उजीयारा ।
धरमदास बिनती करै तुम जम सुं
लीन्ह छुडा ।
बस्त भंडार हम पाएेउ ,
सब जीव लेहुंउ बारि
इतनी बसत कहन की नांही,
प्रगट कहैं ते न्र कहीं जांहि ।
सबही अंस जगमगें सबकै छत्र सिरछाजा
कहें कबीर खबरि नहीं–परै कोंन रंक
कौन राजा ।।
इति श्री ग्रन्थ दगजपांजी संपुरण समापते ।।

गुपत पांजी––७८ पद्यों की इस रचना का आदि अन्त इस प्रकार है––

आदि––धरमदास जो बिनती लाई,
गुपत पांजी मोहि देहु बताई ।
गुपत पांजी कर भाखो लेखा,
अपने घट में करौं बिबेखा ।१।
करों बिबेख सुरत्य चित लाई,
अब गुपत पांजी मोहि देहु दिखाई ।
गुपत पांजी कर कैहा ठिकांना,
तहां चीन्हि गहिरहों निदांना ।।२।।
अन्त––जो इह सतगुर भेद बताई,
तासों चित न चोरीयै भाई ।
वभावै लाख जतन होय जाइ,
जोह इह सतगुर भेद बताई ।
सतगुर मर्कार सुरत्य लगावै,
वहां का गया बहुरि नहीं आवै ।।७७।।
पहुंचै हंस बहुत सुख पावै,
गुपत पांजी जो हंसा पावै ।
और सुखवार हैं भाई,
वह सम तुलि कोई सुख नर होई ।।

बलक बोध––२८ पद्यों की इस रचना का आदि अन्त इस प्रकार है––

आदि––बलक सहर ऐक नग्र-अनुपा,
तहां श्रुततांनी ज्ञान सरूपा ।
पाति साह साहन सिरदारा,
प्रेम प्रीति मन मांहि विचारा।१।
है बीराह म् अघाते नामां,
राजहीं मांहि भक्ति जिन्य ठांनां ।
ऐक दिवस तहावां पगुधारा,
साहके महल न जाय प्रकारा ।।२।।
अन्त––छाँडयौ राज तखत पतिसाई ।
भली खवासन्य गुर कै पाई ।
ताकूं तहावां अलख लखावा ,
करि परतिति प्रम पद पावा ।।२७।।
साखी कबीर––सोराह सहस्त्र सहेलियां
तुरी अठारह लख ।
सांई तेरै कारनैं छोड़या सहर बलक।२८
इति श्री ग्रन्थ बलक बोध संपुरण समापते ।।

आत्म बोध––रचना ४३ पद्यों की है । आदि अन्त इस प्रकार है––

आदि––पिंड ब्रह्मांड का कारै बिचारा,
आत्म ब्रह्म का करै निरवारा ।
सीखै सुनै समुझे जो कोई ,
सो जीव उलटि ब्रह्म पुन्य होई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहँ कबीर इह बेहद भेदा,
नेति नेति गावै जो बेदा ।।१।।
धरती हमारी काया कहीयें ।
पछिम दिसा ब्रह्मंडा ।
अर्धउर्ध बिच लोक हमारा मैं व्यापिक
प्रचंडा ।।२।।

अन्त--फल मैं फल उपजै फल मैं स्कल समाय
सो फल ज्ञांनी गहि रह्यौ,
सो अनतन भरमैं जाय ।।४२।।
कबीर सब कछ् निकल्या ऐक,
मैं डार पात फल फूल ।
ज्ञांनी पीछैं कहा रहौ
जब पकरौ निज मुल ।।४३।।

अग्र टकसार--आदि अन्त के पद्य यहां दिये जा रहे हैं ।

आदि--प्रथम ही सुमरुं सोहं सारा,
ता सुमरें हंस सहोय नियारा ।
सोई नांव सुं हंस बचावै,
सो निस बासरि बौहौरि न आवै ।
अमर घर लीन्ह अवतार,
अमर घर नीता दिन नहीं नहीं कुंभ
अस्थुल ।

अंत--तब कबीर स्वद अग्र उचारा,
अग्र अंजावन है ही हंस हमारा ।
अग्र अजावन है स्वास सरीरा,
अग्र की बात कहैं सत्य कबीरा ।
अग्रमुल मैं हंस समाई,
अग्र कौ मर्म कोई बिरला जांनां ।
कहै कबीर धरमदास सुंसु,
अग्र नांव परवांन
जोजन जांनै अग्रटकसार,
सोई हंस अमर अवतार ।
इति श्री ग्रन्थ अग्र टकसार संपुरन
समापते ।।२५।।

झुंभावली--यह रचना भी बड़ी है। आदि अन्त के पद्य यहां दिये जा रहे हैं ।

प्रथमही कुंझ लीन्ह अवतार,
ताकह दीन्ह सिखि कौ भारा ।
तापीछै भऐ धर्म अन्याई,
जिन्य धरमराय सब सिखि नसाई ।
अस आतुर सेवा बहु कीन्हा,
तीन लोक मांगि तिन लीन्हा ।
एक पांव तिन सेवा कीन्हां,
पुरष वचन हारितव दीन्हां ।
चौसठि जुग तब गऐ सिराई,
तब पुरष दया होय आई ।
बिनां स्बद श्रुरत्य अंधीयारी नां जांनै
कहां जाय ।
कहें कबीर फिरि भरम्प हैठां वही
ठांव बिलाय ।।
श्रुरत्य स्बद ऐकत भई तब कहा रहैनिहोर ।
क़ाकै डोरै डुंडै सोमोहि देहुन बेरि ।
सेवा सुरत्य निस दिन करै पल्क पल्क
घर जाय ।
कहैं कबीर मुर कह दीयो असथिर
दीयो बताय ।।
इति श्री ग्रन्थ कूंभावली संपुर्न समाप्ते ।२६

मुक्ति मंत्रावली--रचना के आदि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त के कुछ पद्य दिये जा रहे हैं ।

आदि--सत्य नांम सार ते सारा,
सोई नांम परिस अध्यका ।
ताही नांम कहसुमर हुतों न नांम है थोर
सार स्ब्द के बीरा लेउ तरे दास कबीर।

अन्त--सो फूल साधु संत कै हाथा ।
है नरीयर ब्रह्म कौ मांथा ।
मोरि नरीयर करहु मिठाई ।
तुरत ही काल दगा मिटि जाइ ।

दोहरा--कहैं कबीर धरमदास सुंइह मोर चढ़ाव,
दुत भुत जम भागि है काल के सिर पर पाव ।।

इति श्री ग्रन्थ मुक्तिमंत्रावली संपुरन समापते
कबीर धरमदास की दया ।।

ग्रभावली--आदि अन्त के कुछ पद्य नीचे दिये जाए रहे हैं --

आदि--भेद संदेसा जिन्य नहीं पाया,
पस होय पापी जन्म गमाया ।
जिन्य नहीं जांनौं काया को विचारा,
कैसे उतरि है भौं जल पारा ।
जिन्य काया को मरम न पाया,
मुक्ति खोजत जन्म गमाया ।
तन मन खोज जिन्य नहीं कीन्हां,
मारग रोकि जमराय तब लीन्हा ।

अन्त--एक द्वार कूंची कूल्फ ।
तहां लगै किवार । तहां काल डसै भ्रम भाजै । मन रहै, पवन रहै, शुन्य रहै, अनहद रहै, संतौ इह काया कौ विचार । सतगुर सब्द ते होय संभार । नाभी कवल दोय कोठरी । दोय मुख । अमीरस पीवैं। ऐक में बिंद झरै । भवर गुफा मै एक कोठरी । तहां प्रमहंस विश्राम करै । काल पावै नहीं । दहुं दिस धावै । सेत बरन होय । सतगुर लखावै । तौ काया कों धायैं, काल न पावै । बिंद मध्ये गुदा। गुदा मध्ये हाड । हाड मध्ये दुहीर । दुहीर्मध्ये तुचा । तुचा मध्ये रोमावली। संतो इह काया कौ बिचार । सतगुर तहां संभ है । जिन्य जांनों काया कौढि काना। सोहं सालोक पयांनां ।।
इति श्रीग्रंथ ग्रभावली संपुर्न समाप्ते ।।

भुपाल बोध--यह ५२ पद्यों की रचना है। आदि अन्त के पद्य इस प्रकार हैं--

आदि--अहो मीच प्रथमी चलि जाहु,
बांधि धरि जीवलै आवहु ।
मीच कहै प्रथमी नहीं जांऊ,
अपने सिर नहीं भार चढ़ाऊं ।।१।।
वह जुग जाय करि है बिसवासा
आंनहुं जीव हमारे पासा ।
खांसी खुंसी जुडी होइ,
ऐही बिध्य मारौ लखै न कोई ।।२।।

अन्त--बिन खंभा कउ मंड पछाया,
गज मोतिन के चौक पुराया ।
कंचन कलस धरेंस जोइ,
पांच रत्न की बाती जोइ ।
सखी आंन्य मिलि मंगल गाऐ,
सबही हंस बहुत सुष पाऐ ।।५१।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहरा--भांवरि परी सतलोक मैं,
हंस अंम्रत भोजन पाव ।
मांथै छत्रत नायकै बैठे जुण जुण
राजक राव ।।५२।।

इति श्रीग्रंथ भुपाल बोध संपुरण समापते ।।

पंचायन्मुद्रा--
आदि--मुंद्रा खेचरी थांन आकासं,
भ्रमर बरन तहा देखां प्रकासं ।
अन्त--ताकों जुरा मरन नहीं व्यापै,
आप सुमरि आपकों ताकै ।
कहे कबीर ज्ञांन सुन्य सार,
ऐते मारग समै निरधार ।।

निर्वाण लीला--
आदि--कर्म धर्म कुआदरै परसत है वे काम ।
सदा सहाई जीव कूंभ जोयै केवलरांम ।१।
अन्त--प्रमात्मा तत्त्व बिचारी,
कहैं कबीर ताकी बलिहारी ।।३२।।

अष्टपदी--
आदि--जब नहीं होते पवन न पानी,
तब नहीं होते सिष्ट उत पांनी ।
जब नहीं होते चंदन सुरा,
तब नहीं होते नाद नहीं तुरा ।।१।।

अन्त--जेंहयोह चित्र बनाई,
यासो सांचा सुच धारि ।
कहैं कबीर ते जन भला
चितवत लेय बार ।।३३।।

बारा पदी--
आदि--पहली मन मैं चितंउ सोई,
तासमतुल और नहीं कोई ।
कोई न पुजै वासों पांनां,
आदि अंत वोकिनहु जांना ।
अन्त--साखी--कहैं कबिर बिचारि के
झूठा लोही चांम ।
जोया देही रहती है सोहै रमिता
रांम ।।१२।।

ज्ञान बावनी--
आदि--बांवन अक्षर लोक त्रिय सबकू
छइ नहीं मांहि ।
ऐ सबक्षरि जांहिके वह अक्षर इनमैं
नांहि ।।१।।
अन्त--ज्ञानवंत कूं तत्त्व बिचार,
पंडित लोगन कुं ब्यौहार ।
जाकै घट जैसी बुध्य होय,
कहैं कबीर जांनेगा सोय ।।४४।।

नीरपवन--
आदि--कहैं कबीर इह अम्रतखांनी,
धरमदास इह आदि की बांनी ।
निरपवन कौ बिस्तारा,
जेहीते उपज्यौ इह संसारा ।।
अन्त--नीर पवन कौ भेद लखांउ,
सत्यकबीर सतगुर चित भाउ ।
दोहा--छतीस नीर कौ अंग सब धरम कह
दीन्ह ।
हुं कबीर समु जावल लोक पयांना कीन्ह ।

सात नाल की पांजी--
आ.--धरमदासा जो बिनती कीन्हा,
नालिन लेखा पुछै लीन्हां ।
बहुत भांति जो बिनती कीन्हां,
अब भाखौ नालिन का चीन्हां ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ.--कहै कबीर धरमदास णुंइह निज पांजी घाट ।
हंसा पहुंचै लोक कूं जमन रोकै बाट ।।

मुल पांजी मुल बाणी--

आ.--परथमही पुरष तबे रहेउ,
तबकौ बात काहु नहीं कहेउ ।

अं--सब गरंथ काहा कह,
ऐ सब तजे तब होइ न नार ।
कह कबीर जाण बिना,
जीवन जात जम दुवार ।।
ऐति मूल पाताल पाजी सपुरन ।।

मगल--

आ.--माथै भटकीकरन री अर गलै पोप की माल ।।
प्यार संत सु बीनवु काटौ करम जजाल ।।

अन्त--दाहूना अंग सू करो मीलाड,
चोदाजम दुतकोरी रहनपाड ।
सब कपल कपारस नाड,
पाछीला क्रम कटी जो जाड ।
कहै कबीर धरमदास सुऐ पारस मुगलकाना ।।
अव चल साहैब जी कौनावै --

आ.--औरसब छवह खंड तमे रसमेर खंड ब्रह्मंड है ।
थीर नहीं धन धाम जीवन सब धंध है ।

अन्त--पुरन पद कु चीन्हे दो,
सोभा सकल सरीर ।
ऐही संघ......ढकै गही,
असी कहं कबीर ।।

मुल प्रगास--

आ.--गुपत प्रगास अंगम भेद बुजी,
ध्रमदास बीनवे करी जोरी ।
साहेब संस मेटो मोरी,
ठीका मुल तुम मोही सुनावां ।

अन्त--कहै कबीर ध्रमदास सौ,
ये ही बसत नीज ठौर ।
अगंम साहेब की बुझ, संपुरन सही ।।

गुरगीता--

आ.--नमो नमो निज नाव,
नमो कबीर क्रपाल है ।
नमो संत सरनागति,
सरब पाप बिना संत ।।१।।

अ.--भवसागर जम देसह,
सबद सारक नीहार ।
गुरु कबीर बहीया भरो,
खेउ उतार पार ।। ....
गुरगीता सत गुर वचन,
खंड खंड को लेख,
कोइक संत वीर है,
जाकै हृदे विवेख ।।५६१।।

इति श्री गुरगीता संपूरन ।।विसराम तेरा ।।१३।। मिति वैसाख वदी ११ संवत् १९७३ शा. १७३९ भौमवासरे लिप्यकृतं श्री ।।

पाताल खंड--

आ०--कबीर बचन- नीछों नीछें अगन जोत रहाई, ता उपर पडदाह भाई
इस उपर अधरह सोई,
जीस उपर वांव सो होई ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त--साखी–कह कबीर धरमदास सु,
ये गुपत बिधि असथांन ।
येही निज बाचा बचन भाखु,
इनते और न आंन ॥
चौ. असी भांत विधिह भाई,
जंम राजा कोई गंम्यन पाई ।
कह कबीर सुणो धरमदासा,
असा भेद करो प्रकासा ॥
इति श्री ग्रंथ पाताल खंड संपुरण संमत् १८७३ पोससुदए ६ गुर्वार ॥

इनके अतिरिक्त ४ प्रभाती, १८ कहरा १४ देहला, भी इस प्रति में संग्रहीत है ।

इन रचनाओं में एक ही नाम की कई रचना भिन्न भिन्न प्रकार की मिलती हैं जैसे चर्चरी दो प्रतियों मे दो तरह की मिलती हैं । कई रचनाओं के नाम में साधारण अन्तर है जैसे बलक बोध और बलक की पैंज। पता नहीं यह दोनों एक ही नाम हैं और अलग अलग । कबीर गोरख गोंषी भी प्रस्तुत प्रति में ७९ और १०१ पद्यों की अलग अलग दो जगह हैं । खोजरिपोर्ट में इन दोनों में से किसका विवरण आया है, मिलान करने से ही निश्चित किया जा सकता है।

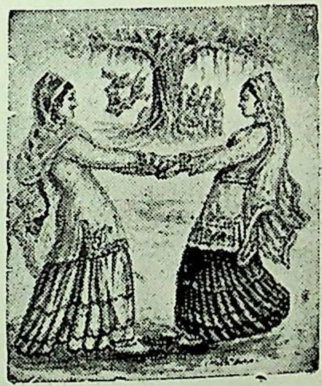

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—जीवन और साहित्यिक उपलब्धियां

डा० अम्बा प्रसाद सुमन

अभी मन यह स्वीकार नहीं करता कि काशी विश्वविद्यालय के प्रोफैसर एवं स्थापत्य तथा ललित कला-विभाग के अध्यक्ष डा० वासुदेव शरण अग्रवाल अब अपने पंच भौतिक शरीर से इस संसार में नहीं रहे, यद्यपि २७ जुलाई सन् १९६६ ई० को उनका दाह-संस्कार वेद मन्त्रों द्वारा काशी में पावनी भागीरथी के हरिश्चन्द्र घाट पर कर दिया गया।

हल्की सी श्यामल आभा वाले डा० वासुदेव शरण अग्रवाल खद्दर की धोती और कुर्ते में तन और मन से भारतीय संस्कृति की चेतन मूर्ति थे। वे भारत की ऋषि परम्परा में एक ऐसे मेधावी एवं कर्मठ तपस्वी थे जिनके लिये शास्त्र-चिन्तन जीवन की एक मात्र तपश्चर्या थी। वे भारती विद्या के विज्ञान कोष थे। पठन-पाठन और लेखन ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य था। सरस्वती की आराधना के लिये ही विधाता ने उन्हें इस संसार में भेजा था। वेदों से लेकर हिन्दी भाषा के जनपदीय साहित्य तक जितना उच्च स्तरीय वाङ्मय डा० अग्रवाल जी की लेखनी हमें बासठ वर्ष की आयु तक दे गयी है, उतना कोई सौ वर्षों में भी नहीं दे सकता। साहित्य-सृष्टि और आयु के अनुपात को देखते हुए जो आश्चर्य हमें जगद्गुरु शंकराचार्य और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मेधा एवं कर्मठता पर होता है ठीक वैसा ही आश्चर्य हमें डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की मेधा तथा कर्मठता पर होता है।

बालक वासुदेव शरण की जन्मभूमि मेरठ ज़िले की गाज़ियाबाद तहसील का खेड़ा गांव थी। वे अग्रवाल वंश में उत्पन्न हुए थे। आपका जन्म संवत् १९६१ वि० में श्रावण कृष्ण पक्ष में दशमी (शनिवार) को रोहिणी नक्षत्र में हुआ था।

श्री अग्रवाल जी की प्रारम्भिक शिक्षा सन् १९०९ ई० में खेड़ा के प्राइमरी स्कूल में हुई थी। उस समय उनकी आयु पांच व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की थी। पिता ओवरसियर थे, अतः नौकरी में जहां रहे, वहीं साथ उन्हें भी ले गये।

सन् १९२१ ई० के असहयोग आन्दोलन में हाई स्कूल परीक्षा छोड़ दी और गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस में सेवा-कार्य करने लगे। फिर सन् १९२२ ई० में उन्होंने काशी विश्वविद्यालय से प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। फिर क्रमशः सन् १९२४ ई० में इंटर और सन् १९२६ ई० में बी०ए० परीक्षा और सन् १९२८ में ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय से इतिहास में एम०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। विद्यार्थी जीवन में ही वासुदेव शरण अग्रवाल ने लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था। 'मेघदूत' पर एक लेख उन्होंने एम०ए० की कक्षाओं में लिख लिया था, जिसका बृहत् रूप फिर पुस्तकाकार में 'मेघदूत एक अध्ययन' के नाम से प्रकाशित हुआ।

शारदा संस्कृत विद्यालय, लखनऊ के प्रधानाचार्य श्री पं० जगन्नाथ जी से शास्त्री उपाधि कक्षा तक संस्कृत की शिक्षा अग्रवाल जी ने बड़ी निष्ठा और श्रद्धा से प्राप्त की थी। दिनांक ८ अगस्त सन् १९६६ ई० को काशी में स्व० अग्रवाल जी का त्रयोदशाह-संस्कार था। उस समय इन पंक्तियों के लेखक ने डा० अग्रवाल जी के संस्कृत-शिक्षा के गुरु पं० जगन्नाथ जी के दर्शन किये थे और कुछ वार्तालाप भी किया था। वार्तालाप के समय कुछ क्षणों तक गद्गद् कंठ स्वर में पंडित जी ने अपने प्रिय शिष्य वासुदेव की मेधा तथा कर्मशील निष्ठा का गुणगान करते रहे और अन्त में एक वाक्य यह कहा कि——"मैं इसे अपना सौभाग्य और परम गौरव मानता हूँ कि वासुदेव जैसे प्रतिभावान् एवं श्रद्धालु शिष्य का मैं गुरु बना। मध्यमा और शास्त्री की कक्षाओं में ही वासुदेव में शब्द के मर्म को गहराई के साथ पकड़ने की प्रवृत्ति जग गयी थी। बहुत से शब्दों की अर्थमयी आत्मा का प्रत्यक्षीकरण वासुदेव मुझ से भी अधिक अच्छी तरह करा दिया करता था। आज मैं अपनेको अभागा मानता हूँ कि शिष्य चला गया और मैं अभी जीवित हूँ। इसे मैं अपने खोटे कर्मों का फल ही मानता हूँ।"

श्री अग्रवाल जी के पी०एच०डी० तथा डी० लिट् के गुरु डा० राधाकुमुद मुकर्जी (अध्यक्ष, इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) थे। उन्हीं के निर्देशन में पाणिनी की अष्टाध्यायी का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करके अग्रवल जी ने पी०एच०डी० तथा डी लिट्. की उपाधियां लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राप्त की थीं। उनका शोध प्रबंध पहले अंग्रेज़ी में 'इंडिया ऐज़ नोन टू पाणिनि' नाम से प्रकाशित हुआ था। फिर उसका हिन्दी-अनुवाद 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' शीर्षक से सन् १९५५ ई० में मोतीलाल बनारसीदास, बनारस में प्रकाशित हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री वासुदेव जी ने हाई स्कूल परीक्षा (प्रवेशिका परीक्षा) उत्तीर्ण करने से पहले ही मासिक पत्रिकाओं में लिखना आरम्भ कर दिया था। सत्रह वर्ष की आयु में सर्व प्रथम श्री अग्रवाल जी ने चार कहानियां लिखीं थीं जो क्रमशः लखनऊ की 'माधुरी' पत्रिका म प्रकाशित हुईं। फिर उनके कुछ लेख भी उसी पत्रिका में उन दिनों क्रमशः छपते रहे थे। उनके सांस्_तिक, दार्शनिक एवं साहित्यक लेखों के दो संग्रह 'मातृभूमि' और 'उरु ज्योति' के नाम से सन् १९३२ ई० और सन् १९३५ ई० में प्रकाशित हुए थे।

सन् १९५१ ई० तक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने गंभीर अध्ययन तथा लेखन के बल पर भारत के प्रथम श्रेणी के विद्वानों म अपना स्थान बना लिया था। इस बीच में उन्होंने मथुरा, लखनऊ तथा मध्य एशिया, पुरातत्व संग्रहलयों में जो कार्य और गृहन अध्ययन किया उससे उनकी प्रतिभा बहुमुखी बनी और विशेष रूप से भारतीय संस्_ति के स्वरूप को जगत् के समक्ष प्रस्तुत करने लगी। उसी अध्ययन एवं पाण्डित्य के बल पर डा०अग्रवाल ने काशी विश्वविद्यालय में अध्यापन आरम्भ किया सन् १९५१ से १९६६ ई० तक वे काशी विश्वविद्यालय को ही सेवा करते रहे। वैदिक साहित्य और भारतीय संस्कृति के उस मनीषी मेधावान् उद्भट पंडित से काशी तथा काशी विश्वविद्यालय वास्तविक अर्थों में गौरवान्वित था। भारत के कोने-कोने से सैंकड़ों शोधार्थी डा० अग्रवाल जी से शोध के दिशा-निर्देशन के लिये काशी आया करते थे। जो व्यक्ति उनके पास दो मिनट भी बैठ गया, । वह कुछ न कुछ नया लेकर ही उठता था। वे शरीर से छोटे और पतले थे। किन्तु उनका आन्तरिक ज्ञान-शरीर परम विशाल और विराट् था। सामान्यतया वे मित भाषी बने रहने में ही आनन्दानुभव करते थे। ज्ञान की कोटि की ही उनमें विनय और शील भी था किन्तु सारस्वत क्षेत्र में वे बड़े दृढ़ रहे थे। यदि ऋषियों की भांति अध्ययन था तो जल-पान, भोजन आदि की चर्या भी प्राकृतिक ढंग पर ही चलती थी।

वास्तविक लेखक के रूप में डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की लेखनी ने सन् १९३१ ई०से ही साहित्य-सर्जना प्रारम्भ की थी। तब से लेकर शरीरान्त-दिवस से पंद्रह दिन पूर्व तक वे निरन्तर अध्ययन लेखन के कार्य में संलग्न रहे। निःसंदेह साहित्य-साधना में वे एक भीष्म पितामह थे। रोग रूपी बाणों की नुकीली शय्या पर पड़े-पड़े भी कई पुस्तकों तथा अनेक लेखों की सृष्टि करत रहे। लोक शब्दों के अर्थों का मर्म स्पष्ट करने में तो वे बीसवीं शती के यास्क मुनि ही थे। उनके मानस की ज्ञान लहरें निम्नांकित ग्रंथों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमर रहेंगी —

(१) उरु-ज्योति (२) मातृभूमि (३) पृथिवीपुत्र (४) मेघदूत एक अध्ययन (५) हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन (६) मारकण्डेय पुराण : एक अध्ययन (७) कादम्बरी: एक सांस्कृतिक अध्ययन (८) पाणिनीकालीन भारतवर्ष (९) ऋग्वैदिक व्याख्यान (१०) चतुर्भाणी (११) जायसीकृत पद्मावत (मूल और संजीवनी व्याख्या) (१२) कला और संस्कृति (१३) भारत सावित्री (१४ विद्यापति की कीर्तिलता (मूल और व्याख्या) ।

इनके अतिरिक्त उनके लगभग ५० लेख और अभिभाषण हैं । जो सौ-सौ पृष्ठों के हैं । उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित कराया जाए तो प्रत्येक लेख अपने में एक पुस्तक ही सिद्ध होगा । कई वर्षों से उनकी यह इच्छा बलवती रही थी कि हिन्दी का एक विराट् व्युत्पत्तिमूलक कोश बनना चाहिए, जिसमें हिन्दी की सारी बोलियों के शब्द भी समाविष्ट किये जाएं । उसमें एक मास तक इन पंक्तियों के लेखक ने भी कुछ कार्य कियाथा, उनके चरणों में काशी-वास करते हुए । यह बात सन् १९५७ ई० के मई मास की है । उस समय तक उनके संग्रह में लगभग बीस हज़ार शब्दों की अद्भुत ज्ञान-राशि संचित थी उन शब्दों की व्युत्पत्ति और विकास पर लिखी हुई डा० अग्रवाल जी की टिप्पणियों को देख कर उनके ज्ञान-विस्तार का दिव्य आभास मुझे तभी हो गया था । निश्चय ही वे ज्ञान-विज्ञान के ऐसे चेतन कोश थे जिसके पृष्ठों पर संस्कृति, दर्शन, भाषा, कला आदि के विस्तृत अध्याय अपने-अपने स्थान पर सजे हुए पूर्णत: सुरक्षित थे ।

शोध करने और कराने में सच्चे साहित्यिक की ईमानदारी जैसी मुझे गुरुवर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल में मिली, वैसी आज दुर्लभ है । शोधार्थी-शिष्य निर्देशक गुरु वासुदेव शरण अग्रवाल जी को सारस्वत कर्म से ही प्रसन्न कर सकता था, अन्य प्रकार से नहीं । वे अपने शोधार्थी को सच्चा सारस्वत पुत्र देखना भी चाहते थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास की रचनाओं में अतिमानवीय तत्त्व

डा० देवी दत शर्मा

अतिमानवीय तत्वों के रूप

भारतीय साहित्य में अतिमानवीय तत्त्वों की सत्ता वैदिक साहित्य की प्रत्यक्ष देन कही जा सकती है, कालिदास से पूर्व ही महाकाव्यों तथा पुराणों में वैदिक साहित्य की इस दाय का पूर्णतः उपयोग हो चुका था। महाभारत के अनेकों ही आख्यान इन अतिमानवीय तत्त्वों से भरपूर हैं, इनमें बहुत सी बातें ऐसी हैं जोकि हमारे विश्वास की अङ्ग बन चुकी हैं और परम्परा से हमारे साहित्य में स्थान पाती आ रही हैं। उनके प्रति हमारी आशंकात्मक भावना ही समाप्त हो चुकी है।

कालिदास ने भी ऐसे अनेकों अतिमावीय तत्त्वों को अपनी रचनाओं नें स्थान दिया है जोकि या तो उनसे पूर्व ही साहित्य में प्रचलित हो चुके थे या लोक-मानस में स्थान पा चुके थे। योग या तपस्या से प्राप्त होने वाली चमत्कारात्मक शक्तियों, देव, गन्धर्व, यक्ष, अप्सरस् आदि मानवेतर जातियों में पाई जाने वाली सचेतन व्यवहारों तथा शुभाशुभादि के संसूचक विश्वासों के प्रति जनता में आस्था बन चुकी थी। महाकवि कालिदास भी इस प्रबल प्रभाव से अछूते न रह सके। कहीं तो उन्होंने पूर्व स्वीकृत कथानकों के अभिन्न अङ्ग के रूप में उसे मान्यता दी है तथा कहीं जन विश्वासों के रूप में उसे अभिव्यक्त किया है। किन्दु प्रकृति से सम्बन्धित अतिमानवीय तत्त्वों के चित्रण में तो स्वयं कालिदास ने इसमें एक नये अध्याय की योजना की है—ऐसा प्रतीत होता है।

शाप—अतिमानवीय विषयों की सूची में शापका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋषि मुनि वा दिव्य जाति के व्यक्तियों को इस अमोघ शक्ति से सम्पन्न माना गया है। कालिदास ने अनेक स्थानों पर पुरातन कथानकों के अंश के रूप में उसका उल्लेख किया है तथा स्वयं भी इसका अनेकत्र लक्ष्य सिद्धि के लिये उपयोग किया है। यह कामधेनु का ही शाप था जिसके कारणा राजा दिलीप इतनी आयु तक निःसन्तान रहे और अन्त में इससे मुक्त होने के लिये उन्हें ऋषि विशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आश्रम में जाकर सपत्नीक नन्दिनी की सेवा करनी पड़ी। और अन्त में उसकी प्रसन्नता से शाप का अन्त हुआ।१

ऐसा ही एक प्रसंग "रघुवंश!" के पांचवें सर्ग में देखने को मिलता है। इन्दुमती के स्वयंबर में भाग लेने को जाते हुए कुमार अज ने जब नर्मदा नदी में स्नान करते हुए वन्यगज पर अपना वाण चलाया तो वह बाण का स्पर्श पाते ही अपना हाथी का शरीर छोड़ कर दिव्य गन्धर्व हो गया (५१)। उसने उसी समय अपने दिव्य प्रभाव से कल्पवृक्ष के फूल मंगा कर अज पर बरसाये (५२) और अपना परिचय बतलाया कि वह गन्धर्वों के राजा प्रियदर्शन का पुत्र प्रियंवदक है और मतंग ऋषि के शाप से उसे गज योनि में आना पड़ा और शाप की शर्त के अनुसार अज के वाण स्पर्श से उसका मोक्ष हुआ (५३-५६)। उसने अज को प्रत्युपकार के रूप में सम्मोहनास्त्र नामक गन्धर्वास्त्र दिया और उसके प्रक्षेपण तथा समोहन की प्रक्रिया भी बतलाई। इस दिव्य अस्त्र का प्रयोग अजने इन्दुमती के स्वयंवर के बाद क्रुद्ध राजाओं की युद्धोन्मुख सेना पर किया था तथा उन्हें इसके प्रभाव से जड़ित सा कर दिया था। ६/६२। ऐसे अतिमानवीय तत्त्वों से सबंलित है यह प्रसंग।

'रघुवंश' के आठवें सर्ग में इन्दुमती के प्रसंग में भी अतिमानवीय तत्त्वों की योजना की गई है। नारद जी अपनी वीणा को लिये भगवान् शंकर के दर्शनों के लिये आकाश मार्ग से गोकर्णधाम को जा रहे हैं। वीणा पर लटकती हुई फूलों की माला खिसक पड़ती है और नीचे अज के साथ विहार करती हुई महारानी इन्दुमती के वक्षस्थल पर जा लगती है। और वह उसको छूते ही भूमि पर गिर पड़ती है और अज के देखते ही देखते उसका शरीर निर्जीव हो जाता है। इस अप्रत्याशित तथा अाकलिपत घटना से बेचारा अज तो हक्का बक्का रह जाता है। रोता है, विलाप करता है, माला को अपनी छाती से लगाता है पर मृत्यु के इस रहस्य को नहीं समझ पाता। अन्त में उसे मरने के लिये उद्यत देख कर परम ज्ञानी वशिष्ठ जी उसे अपने शिष्य द्वारा उसे समझाते हुए बतलाते हैं कि यह इन्दुमती पूर्व जन्म में हरणी नाम की अप्सरा थी। इसने इन्द्र के कथन पर तृणबिन्दु ऋषि की तपस्या को भंग करने का यत्न किया था और ऋषि ने क्रुद्ध होकर इसे मानव योनि में जाने का शाप दिया था और फिर उसके द्वारा प्रार्थना करने पर स्वर्गीय फूलों के दर्शन तक उस शाप की अवधि को सीमित कर दिया था। इसलिये नारद जी की वीणा से गिरी हुई माला में गुम्फित स्वर्गीय

१ रघु० १/७७, ७९, ८१ तथा सर्ग २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूलों के दर्शन मात्र से ही उसकी मृत्यु हो गई। (८–७९, ८१)

इसके बाद ही कालिदास बतलाते हैं कि महाराजा अज ने जब यह पार्थिव शरीर त्यागा तो उन्हें तत्काल ही दिव्य शरीर प्राप्त हो गया और वे पहले से भी अधिक सुन्दर शरीर धारण करने वाली अपनी पत्नी के साथ नन्दन वन में विहार करने लगे। (८।९५)

'शाकुन्तल' में भी तपस्वियों में विद्यमान इस अमोघशक्ति का उपयोग कुछ इसी रूप में किया गया है। शाप की यह घटना कालिदास की सर्वथा अपनी उद्भावना है और इसके द्वारा बहुत बड़े नाटकीय लक्ष्य की पूर्ति की गई है। बेचारी शकुन्तला पतिध्यान में खोई हुई बैठी है और घर आये अतिथि दुर्वासा ऋषि का आतिथ्य सत्कार नहीं कर पाती। क्रोधी ऋषि उसके इस व्यवहार से अपने को अपमानित समझ कर उसे शाप दे डालते हैं कि जिसके ध्यान में मग्न होने के कारण उसने घर आये हुए अतिथि के सत्कार की उपेक्षा की है, वह उसे ऐसे ही भूल जायेगा जैसे कि कोई पागल व्यक्ति स्वयं अपने किये हुए कार्य को भूल जाता है। और फिर प्रियंवदा के अनुनय-विनय पर उसे सीमित करते हुए कह देते हैं शाप का यह प्रभाव तभी तक रहेगा जब तक वह उस व्यक्ति को उसकी कोई निशानी न दिखा दे। (अंक ४) और हम देखते हैं कि पांचवें अंक में शाप अपना प्रभाव दिखलाता है, दुष्यन्त शकुन्तला को याद दिलाने पर नहीं पहचान पाता और अन्ततोगत्वा उसका प्रत्याख्यान हो जाता है। फिर छठे अंक में धीवर से प्राप्त अंगूठी के दर्शन से ही शाप का अन्त हो पाता है।

शाप के ही कारण 'मेघदूत' के यक्ष तथा 'विक्रमोर्वशीय' की अप्सरा उर्वशी को अपनी दिव्यशक्तियों से वंचित होकर नियत अवधि तक मानव रूप में मानव लोक में वास करना पड़ता है। कहा गया है कि श्रवण कुमार के माता पिता के शाप के ही कारण राजा दशरथ को पुत्र वियोग में प्राण देने पड़े थे। (रघु० ९।७९)

योग का प्रभाव––ऋषि मुनियों की अतिमानवीय शक्तियों का वर्णन कालिदास ने और भी अनेक रूपों में किया है––वशिष्ठ दिलीप की निःसन्तानता, वाल्मीकि सीता के परित्याग, कण्व शकुन्तला के गर्भिणीत्व का वृत्तान्त अथवा उनका मिलन वृत्तान्त अपने योगबल से ही जान लेते हैं। वशिष्ठ जी के मन्त्रों के प्रभाव से रघु का रथ अबाध गति से जल थल और नभ सर्वत्र जा सकता है। (रघु० ५।२७।) अत्रि ऋषि के तपोवन में शाश्वतिक वैर वाले जीवजन्तु अपना क्रूर स्वभाव त्याग कर साथ साथ रहते हैं, वृक्ष बिना फूलों के ही फल देते हैं। (रघु० ८।५०) योगबल से व्यक्ति चारों से बन्द स्थान में भी प्रवेश पा सकता है। (रघु० ६१६।७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चाप्सर में जल के भीतर शीतकर्णि मुनि का भवन है और उसमें रातदिन अप्सराओं का नृत्य संगीत चलता रहता है। पार्वती के तपोवन में भी उसकी तपस्या के प्रभाव से जीवों ने अपना पारस्परिक नैसर्गिक वैरभाव त्याग दिया था और लता वृक्ष यथेच्छ फल फूल प्रदान करते थे। (कुमार० ५।१७)

तिरस्कारिणी—मानवेतर जातियों में अतिमानवीय शक्तियों का निवास भी कालिदास पूर्वकाल से ही प्रचलित जन विश्वास का स्थान ले चुका था। प्रियंवदक गन्धर्व द्वारा अज को दिव्यास्त्र देने का उल्लेख हम ऊपर कर ही चुके हैं। इसके अतिरिक्त 'शाकुन्तल' में सानुमति का तिरस्कारिणी के बल से अदृश्य होकर उद्यान पालिकाओं, राजा तथा विदूषक की बातों को सुनना, मेनका का ज्योतिरूप में आकर रोती हुई शाकुन्तला को उठा ले जाना, 'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी और उसकी सखी चित्रलेखा का तिरस्कारिणी से प्रतिच्छन्न होकर राजा और विदूषक की बातें सुनना, अपनी दिव्यशक्ति से भूर्जपत्र उत्पन्न करके उसमें लिखना, अपने गर्भ को राजा से छिपा कर रखना आदि ऐसी बातें ही हैं।

कुमार सम्भव के अतिमानवीय कृत्य—'कुमार सम्भव' में भी काम द्वारा अकाल वसन्त का प्रसार (३।२५–३९), भगवान् शंकर द्वारा मदनदाह, शिवजी के द्वारा सप्तर्षियों का स्मरण करने पर उनका आकाश मार्ग से अवतरण (६।४) तथा आकाश मार्ग से ही हिमवान् के पास गमन (६।४९) शंकर के जाज्वल्यमान वीर्य का कपोत रूपी अग्नि के शरीर में प्रवेश (१०।१४), अग्नि का उसे गंगा को अर्पित करना (१०।२१) गंगा का उसे कृत्तिकाओं को देना (१०।५४) उनका उसे शरवण वन में छोड़ना (१०।५९), और उसमें तेजस्वी कुमार का जन्म होना (१०।६०), गंगा द्वारा उसे फिर उस कुमार को स्तन्य पान कराना (११।१), छः दिन के कार्तिकेय का तारक के साथ युद्ध करना और उसे मारना, तारक के द्वारा छोड़े गये बाणों का सांप बन कर देवताओं के गलों में लिपट जाना, कार्तिकेय की दृष्टि विक्षेप मात्र से उनका हट जाना (१७।५७) तारक और कार्तिकेय के बीच वायव्यादि दिव्यास्त्रों का प्रयोग एवं प्रतिरोध (१७।२५–४०) आदि सभी कुछ तो अतिमानवीय है।[1]

अतिमानवीय शक्तियों से सम्पन्न मानव-पात्र—देवताओं के अतिरिक्त रघु,

१. यद्यपि भारतीय साहित्य में प्रचलित अतिमानवीय तत्वों के आधार पर समस्त कुमार सम्भव के तत्वों का यहां उल्लेख कर दिया गया है। पर लेखक का विशवास है कि ८ सर्ग से आगे कुमार सम्भव कालिदास की रचना नहीं।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुष्यन्त, पुरुरवा, राम, कुश आदि अपने मानवीय नायकों में अतिमानवीयता के अंशों को प्रदर्शित करने का यत्न किया है। रघु के जल-थल-नभ गामी रथ की बात हम अभी कह चुके हैं। वरतनु के शिष्य कौत्स की गुरु दक्षिणा पूरी करने के लिये जब वह कुबेर पर चढ़ाई करने की सोचता है तो उसका कोष रात्रि में ही सुवर्ण मुद्राओं की वर्षा से भर जाता है। (रघु० ५।५६) उसके जन्म पर देवलोक में खुशियां मनाई जाती हैं (रघु० ३।१६) (पार्वती के जन्म पर भी ऐसा ही होता है) राम के जन्म पर भी स्वर्ग में देवताओं ने दुन्दुभियां बजाई और फूल बरसाये (१०।७६–७७) राम के जन्मते ही रावण के मुकुट से कुछ मणि पृथ्वी पर गिर पड़े, (१०।७५)। उनके चरणरज से अहिल्या का उद्धार हो गया (१३।३४), उनका एक वाण सदा के लिये परशुराम जी का स्वर्गमार्ग रोक कर खड़ा हो गया (११।८८), उन्होंने वन में सीता जी के साथ विश्राम करते हुए शक्ति से वृक्ष की छाया बांध दी थी (१२।२१) मुनिवेश में महाकाल का राम से वार्तालाप (१५/९२–९३) और राम का सरयू तट पर जा कर योग मार्ग से शरीर त्याग (१५।९५) विमान में बैठ कर स्वर्गारोहण आदि सभी कुछ तो अतिमानवीय है।

उनके पुत्र कुश के चरित्र में अतिमानवीयता का पर्याप्त अंश पाया जाता है। कुशावती में रात्रि के समय अयोध्या की राज्यलक्ष्मी का दर्शन (१६।४।२५), राम द्वारा प्रदत्त अगस्त्य मुनि से प्राप्त जैत्र नामक भुजबन्ध का जल विहार के समय सरयू में गिर पड़ना, बहुत खोज करने पर भी न मिलने पर तथा उसके कुमुद नामक नाग द्वारा हरण की आशंका प्रकट किये जाने पर कुश द्वारा सरयूतट पर जाकर अपने धनुष पर गरुड़ास्त्र का संधान करना तथा उसके शरसंधान के साथ ही भयभीत कुमुद का वहां प्रकट होकर भुजबन्ध तथा विवाह के लिये अपनी बहिन कुमुद्वती को प्रस्तुत करना और कुश द्वारा उन दोनों को स्वीकार करना (१६।७२–८८) आदि वर्णन इसी भाव की पुष्टि करते हैं।

पातिव्रत की शक्ति––पतिव्रता नारी में भी भारतीय परम्परा के अनुसार जिस दिव्य, अतिमानवीय तेज और शक्ति की विद्यमानता में विश्वास किया जाता है कालिदास ने भी उसका उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। वाल्मीकि के आश्रम में सीता के सतीत्व का प्रश्न उपस्थित होने पर सीता अपनी पवित्रता का साक्ष्य देने के लिये पृथ्वी को पुकारती है। उसकी पुकार पर पृथ्वी फटती है और उसमें से एक तेजोपुंज का प्रादुर्भाव होता है और सभी देखते हैं कि नागफण पर समुद्र मेखला पृथ्वी प्रकट होती है और उन सबके देखते ही देखते सीता को अपनी गोद में लेकर वहीं लुप्त हो जाती है। (१५।८२।८४)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिव्रता शकुन्तला भी ऐसे ही एक तेजस् पुञ्ज के साथ विलुप्त हो गई थी (शाकु० ५।३०)। पार्वती के चरणों से निष्द्यूत 'संगमनीय मणि' का प्रभाव भी दर्शनीय है ? (विक्रम. ग्रंक ५) ।

मानवेतरों द्वारा मानवी वाणी का प्रयोग--ऐसे ही ग्रनेक ग्रंश हैं जिनमें कि ग्रतिमानवीय ग्रंश विशेष रूप से मुखरित हो उठता है । राजा दिलीपसिंह जब सिंह पर प्रहार करने के लिये ग्रपना दाहिना हाथ तूणीर पर ले जाते हैं तो वह वहीं पर बाणों से चिपक जाता है।(रघु० २/३१) सिंह ग्रौर नन्दिनी दोनों ही मनुष्य की वाणी में बोलते हैं ग्रौर सिंह वहीं ग्रन्तर्धान हो जाता है । सिंह के सम्मुख ग्रात्म-बलिदान के लिये प्रस्तुत दिलीप पर विद्याधर लोग पुष्प वृष्टि करते हैं (२।६०)

मरणोतर जीवन--ग्रज-राजन्य युद्ध में एक वीर का शिर शत्रु की तलवार से कट गया । वह तुरन्त देवता बन गया ग्रौर ग्रपने वामाङ्ग में एक ग्रप्सरा को लेकर विमान से ग्रपने धड़ को युद्ध करते देख रहा है।(रघु० ७।५१)। दो वीर एक ही साथ मारे गये हैं ग्रौर दोनों ही स्वर्ग में जाकर एक ग्रप्सरा के लिये परस्पर झगड़ रहे हैं ।(७।५३) ।

दिव्यावतरण--राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञाग्नि में एक पुरुष प्रकट होता है । उसके हाथ में एक सोने का कटोरा है, उसमें खीर है ग्रौर उस खीर में त्रिलोकीनाथ विष्णु स्थित हैं । (रघु० १०।५०-५१)। मार्ग में जाते हुए विश्वामित्र जी राम ग्रौर लक्ष्मण को बला ग्रौर ग्रतिबला नामकी विद्या सिखाते हैं जिसके प्रभाव से बन का उबड़ खाबड़ मार्ग भी उनके लिये मणिखचित प्राङ्गण सा हो जाता है ग्रौर उन्हें थकावट प्रतीत नहीं होती । (रघु०११।९)

रूपान्तरण--'विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ ग्रंक में भी ग्रतिमानवीयता की सुन्दर झांकी प्रस्तुत की गई है गन्धमादन पर्वत पर पुरुवा को एक गन्धर्वकन्या की ग्रोर ग्राकृष्ट होता देख कर उर्वशी ईर्ष्यावश रूठ कर कुमार वन में चली जाती है ग्रौर वहां कार्तिकेय के नियम के ग्रनुसार लतारूप में परिणत हो जाती है । फिर ग्रन्त में पार्वती के चरण राग से निस्सृत संगम-नीय-मणि के स्पर्श से पुनः ग्रपने स्वरूप को प्राप्त हो जाती है (विक्रम० ४।६३, ६६,७०) ।

प्रकृतिगत दिव्यात्मकता--प्राकृतिक रूपों द्वारा व्यक्त होने वाले ग्रतिमानवीय तत्त्वों का संकेत भी कालिदास की रचनाग्रों में पर्याप्त मिलता है । 'रघुवंश' में वन देवता वनकुंजों में दिलीप का यशोगान करते हैं. पवन निर्झर-सीकरों व पुष्पगन्ध से उसका ग्रातप निवारण करती है (२।१२।१३), तो राजा दशरथ को देखने के लिये वन देवता लताग्रों के शरीर ग्रौर मोरों की ग्रांखें धारण कर लेते हैं।(८।५२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ही 'शाकुन्तल' में केसर वृक्ष उसे इशारे से बुलाता है, बन ज्योत्स्ना उसके लिये भौरे को उकसाती है, तो वन देवता वृक्षों के द्वारा उसे वस्त्राभूषण प्रदान करते हैं (४।५) उसके वियोग में व्यथित होते हैं और उसे भावी का संकेत करते हैं।

भावी के संसूचक शुभा-शुभ तत्त्व—भावो के सूचक शुभ और अशुभ शगुनों का भी उल्लेख मिलता है। दोनों ही बार आश्रमों में प्रवेश करते ही दुष्यन्त की दक्षिण भुजा फड़कने लगती है। राजदरबार में जाने से पूर्व शकुन्तला की दाहिनी आंख फड़कने लगती है, मेघ के पहुंचने पर यक्षपत्नी की बाई आंख और बाई भुजा का स्फुरण होता है।

'विक्रमोर्वशी' में भी पुरुकी दक्षिण भुजा के स्फुरण को शुभ शगुन कहा गया है। मालविकाग्निमित्र में भी स्त्री के अक्षिस्पन्दनात्मक शगुन का सूचक है। 'रघुवंश' तथा 'मेघदूत' भी भावी कार्यसिद्धि की संसूचक अनुकूल मन्द पवन का उल्लेख किया गया है, १ नाम लेते ही उसी का उपस्थित हो जाना भी कार्यसिद्धि का सूचक माना गया है।२ पूज्यजनों की पूजा का व्यतिक्रम कार्यसिद्धि का बाधक दर्शाया गया है।३ कामधेनु की पूजा न करने के कारण ही दिलीप का सन्तति निरोध होता है। दैवज्ञों, ज्योतिष के फलादेश अथवा हस्त रेखा विज्ञान के प्रति अभिव्यक्त आस्था भी अतिमानवीयता की स्थिति व विश्वास की परिचायक है।४

दिव्यशक्ति सम्पन्न आभरण—कालिदास ने ऐसे आभरणों का भी उल्लेख किया है जिनमें कि विशेष प्रकार की शक्ति होती थी, तथा उसके धारण करने से धारण करने वाले को वह प्राप्त हो जाती थी। अगस्त्य से प्राप्त राम का जैत्राभरण ऐसा ही था जिसे कि उन्होंने अपने पुत्र कुश को दिया था। इसे ही 'जयश्रीवलय' के नाम से भी उल्लिखित किया गया है (रघु० १६।७४) शाकुन्तल का 'रक्षाकरण्डक' भी ऐसे ही अतिमानवीय शक्ति से सम्पन्न है। इस रक्षा कवच में निहित 'अपराजिता' नामकी औषधि को अद्भुत शक्ति सम्पन्न कहा गया है। यह कवच को धारण करने वाले की रक्षा तो करती है पर उस व्यक्ति से पृथक् हो जाने की स्थिति में माता पिता को छोड़ कर और किसी के द्वारा स्पर्श किये जाने पर सर्प

१. रघु० १/४२; मेघ० मन्दं मन्दं नुदति पवन :

२. रघु० १।८७

३. अनुवध्नाति हि श्रेयः पूज्य पूजा व्यक्तिक्रमः ॥ रघु० १।७९ ॥

४. कुमार० ५।५८ ; मालविका०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन कर उसे डस लेती है (शाकुन्तल अंक ७ मारीचि आश्रम दृश्य) 'सगमनीय मणि' के स्पर्श से लता रूप उर्वशी पुनः पुरुरवा को प्राप्त हो जाती है ।१

भूतप्रेतों की सत्ता--भूतप्रेत जैसी अदृश्य, पर हानिकारक शक्तियों की सत्ता को भी कालिदास की रचनाओं में स्थान मिला है । शाकुन्तल में उसकी छायाओं के घूमने (३।२४) तथा उनके द्वारा मानवों पर क्रूर आक्रमण किये जाने का उल्लेख पाया जाता है। मातलि द्वारा अदृश्य रूप से विदूषक के उत्पीड़न की घटना में इसका रूप स्पष्ट हो जाता है।२

विहायस गति--देव-गन्धर्व-अप्सरस् आदि जातियों के अतिरिक्त मानवीय चरित्रों में भी आकाश मार्ग से गमन की शक्ति का उल्लेख कालिदास में मिलता है। महर्षि कण्व के पास दुष्यन्त और शकुन्तला के पुनर्मिलन का शुभ सन्देश देने के लिये महर्षि मारीच अपने शिष्य गालव को विहायस गति से वहां जाने को कहते हैं।३ रघु का रथ जल थल और नभ सर्वत्र समान गति से चलता है ।(रघु० ३।२७) कुश दुष्यन्त, पुरुरवा आदि रघु प्रवीर गमनचारी रथों में बैठ कर स्वर्गादि लोकों की यात्रा करते हैं । देवताओं की ओर से दानवों से युद्ध करते हैं 'कुमारसम्भव में सप्तर्षियों का अवतरण तथा कन्या की याचना के लिये औषधि प्रस्थ गमन् आकाश मार्ग से ही होता है ।४

आकाश वाणी-- इसके अतिरिक्त आकाशवाणी के रूप में भी कालिदास ने अतिमानवीय शक्तियों की स्थिति को स्वीकार किया है । कुमारसम्भव में जब रति पति के साथ सती हो जाने को उद्यत होती है तो उस समय पुनर्मिलन का आश्वासन देकर आकाशवाणी ही उसे ऐसा करने से रोकती है । (कुमार०४।३६). शाकुन्तल में कण्व को शकुन्तला के गर्भिणीत्व का वृत्तान्त 'अशरीरिणीवाक्' से ही लगता है ।५

अतिमानवीय तत्त्वों के सूचक पौराणिक संकेत--कपिल की कोपाग्नि से सगर के पुत्रों का विनाश (रघु० ३।५०) अगस्त्य का घट से जन्म (वही ४।५१)

---

१. विक्रम० ४/७४ (पू०)

२. दुष्यन्त—ममापि सत्वैरभिभूयन्ते गृहा :; तिष्ठ कुणपासन ; भो तिरस्करिणी गर्वित० आदि अंक ६।२६—२८ मध्य ।

३. मारीच : गालव इदानीमेव विहायसा गत्वा० अंक ७।३५ पू०

४. कुमार० ६।४,३६,४६.

५. प्रियंवदा अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या अंक (४।४ पू०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णु के चरण से गंगा की उत्पत्ति (कुमार० ६।७०) शिलावणी पर्वत (रघु० ४।४०) महावराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार (रघु ७।५१) अत्रि के नेत्र से चन्द्र का जन्म (२।७५) आदि और भी अनेकों ऐसे पौराणिक संकेत पाये जाते हैं जोकि अति-मानवीय तत्वों से सेवित हैं ।

कालिदास के ग्रन्थों में प्राप्त अति-मानवीय तत्वों पर विचार करने से हमारे सम्मुख तत्कालीन जन-विश्वासों आस्थाओं का रूप स्पष्ट हो जाता है युग भावनाओं पर अच्छा पड़ जाता है।

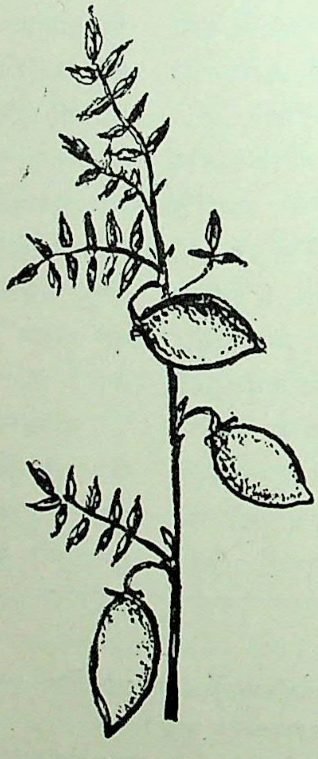

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्द व्यवस्था : महत्त्व एवं प्रयोजन

डा० छवि नाथ त्रिपाठी

काव्य में छन्द-विधान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक युग में छन्दों की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है जो एक विकसित परंपरा की युगीन मूर्ति कही जा सकती है। छन्दों के इस विकास क्रम में समाज की अपनी छन्दगत धारणा रही है और उनके उपयोग तथा भाव-प्रकाशन में उनके योगदान के प्रति उस की अपनी दृष्टि रही है। आज के युग में भावानुकूल छन्दों के प्रयोग के प्रति भले ही उपेक्षा दिखाई जाती हो ; उसके महत्त्व को आलोचकों का एक बड़ा वर्ग आज भी स्वीकार करता है। छन्द संबन्धी विविध विचारों में मधुर छन्द-पाठ भी काव्य की सरसता का वर्धक कहा जाता है।

छन्द के अर्थ के सम्बन्ध में भी कई व्युत्पत्तियां प्रस्तुत की जाती हैं। यह शब्द अनेकार्थक भी है। पाणिनि ने इसे आह्लादन और दीप्ति अर्थ में लिया है।१ यास्क ने इसका अर्थ आच्छादन किया है २। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार देवताओं ने मृत्यु भय से अपने को मन्त्रों से आच्छादित किया था (ते छन्दोभिराच्छादयन् यदेभि राच्छादयस्तं छन्दसां छन्दस्त्वम्। १।४।२)। छन्द के आश्रय से देवों की अमरता निश्चित हो गई। छन्द का आह्लादक गुण रस-सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है।

ऋग्वेद के समय छन्द का अर्थ 'स्तोत्र' था३ ये मन्त्र श्रोताओं को सम्मोहित, आकृष्ट और आह्लादित करते थे। परवर्तीकाल में छन्द समूह को ही वेद माना गया।४ शतपथ ब्राह्मण में छन्द

---

१. पाणिनि के अनुसार चढ़ि (आह्लादने दीप्तौच) धातु से 'चदेरादेशश्च छ: उणादि सूत्र द्वारा चन्दतिका छन्दति बनता है।
२. छदि संवरणे। मन्त्र: मननात् छन्दांसि छादनात्। निरुक्त देवैतकाण्ड ७।१२
३. द्रष्टव्य-निघण्टु ३।१६।
४. गीता १५।१।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है १। ऐतरेय उपनिषद् के अनुसार प्रजापति ब्रह्म के अंग तुल्य यह विशाल विश्व एक छन्द पुञ्ज है २। छन्द का एक अर्थ कामना या इच्छा है। पादवद्ध, समसंख्यक अक्षरयुक्त, तन्त्रीलय समन्वित वाल्मीकि के मुख से निकले, श्लोक पर ब्रह्मा ने कहा था कि मेरी इच्छा से ही सरस्वती आपकी वाणी में प्रवृत्त हुई है।३ चाणक्य ने भी छन्द का एक अर्थ इच्छा माना है।४

'छन्द वह वैरवरी ध्वनि है, जो प्रत्यक्षीकृत निरंतर तरंग-भंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभियंजना कर सके।५ मानवीय विशेषत्व की उच्चतम उदात्त परिकल्पना 'देवत्व' से छन्द का सम्बन्ध मानव ने ही जोड़ा है, अतः छन्द एवं छन्दः शास्त्र की सीमा वैरवरी ध्वनि के ही अन्तर्गत है।६ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी छन्द को आवेग का वाहन, अनुभूति को संचारित करने वाला साधन तथा अभिव्यंजना का उपकरण मानते हैं। उनकी दृष्टि में अर्थमयी भाषा और संगीत के मिलने से छंद की सृष्टि होती है। वे सामाजिक धर्म के प्रस्फुटित मंगल को छन्द का ही व्यापार मानते हैं। वस्तुतः अर्थहीन छन्द-प्रवाह भी संगीत ही है।७

वैदिक परंपरा के अनुसार उच्चतम आनन्द की निष्पत्ति करने वाला आदि छन्द, प्रणव या उद्गीथ है और लौकिक परंपरा में भावावेग से निस्सृत वाल्मीकि का प्रथम श्लोक है।८ यह श्लोक शापमय है और यही आदि कवि का शाप छन्द को वाहन बना कर अब तक चल रहा है और शास्वत रूप से, काल-कालान्तर से, अनेक कंठों में ध्वनित हो रहा है।

इस शाश्वत कथा को प्रकाशित करने के लिये ही छन्द है।९

---

१. द्रष्टव्य–शतपथ ब्राह्मण –रसो वै छन्दांसि ७।३।१।३७ ।। तथा २।२।१।१७। ८।२।३।१३।,८।२।४।१६।, ८।५।२।१,३,४,६।। •
२. ऐतरेय उप० २।१८।।
३. मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती ।वा० रा० १।।
४. यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी । चाणक्यनीतिः २।३।
५. द्रष्टव्य –आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना–डा० पुत्तूलाल शुक्ल । पृष्ठ २१।
६. द्रष्टव्य-सर्वतन्त्र सिद्धान्त लक्षण –पृ० २५५
७. द्रष्टव्य-साहित्य का मर्म–पृ० ४१ और ४६
८. 'प्रणवश्छन्दसामिव' । रघुवंश १।११।। तथा 'मा निषाद' श्लोक वाल्मीकि।
९. द्रष्टव्य–रवीन्द्र रचनावली भाग २१ । पृ० २९१।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० पुत्तूलाल ने छन्द के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि 'जो हो, यह निश्चित है कि मनुष्य को प्रकृति ने ही छन्द का दान दिया है, चाहे वैदिक धारणा को स्वीकार किया जाय, चाहे आधुनिक भौतिक व्याख्या को। निर्झरों का निनाद, पत्रों का मर्मर संगीत, पवन का सन सन, बांसों का चुरमुर, उत्सों का कल कल, बादलों की रिमझिम, वज्र का गर्जन, पक्षियों का कलकल, गायन सिन्धुओं का हिल्लोल, और वृक्षों का सवेग कंपन, मनुष्य के लय-संस्कार बनाने में सहायक अवश्य हुआ है। प्रकृति के गायन और नर्तन से मनुष्य ने बहुत कुछ सीखा है। संभवत: भावावेग ने अविकसित मानव को लयच्छन्द प्रदान किया होगा, जिसे उसने वाग्विकास और कला-प्रियता के साथ साथ अनुशासित करके साहित्यिक छन्द का रूप दिया है।"१

छंद का स्वरूप

छन्द शास्त्रीय दृष्टि से परवर्ती वैदिक काल में छन्द एक शास्त्र या वेदांग के रूप में अध्ययन और ज्ञान का एक मुख्य विषय बन चुका था। निश्चित प्रमाण के छन्दों को निश्चित संज्ञायें दी जा चुकी थीं। ऋक् प्रातिशाख्यों में छन्दों का विस्तृत विवेचन हुआ है। इस समय अक्षर गणना के आधार पर ही छन्द का निर्णय होता था, चरण या वृत्त को गौण स्थान प्राप्त था।२ पाणीनीय शिक्षा में वेद ज्ञान की पूर्ण पुरुष के रूप में कल्पना करते हुए छन्द को उसका चरण बताया गया है।३ पिंगल छन्द सूत्र के टीकाकार हलायुध ने छन्द को अक्षर संख्या का परिणाम बताया है।४

अक्षर-संख्या-परिमाण रूप -छन्द की वैदिक-मान्यता, लौकिक छन्दों के लिये निरर्थक हो जाती है। वैदिक अनुष्टुभ छन्दों से विकसित वाल्मीकि का अनुष्टुभ अक्षर संख्या के अतिरिक्त चरण ताल और लय पर भी आश्रित है।

भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में छन्द को नात्तार्थ संयुक्त चार पद और वर्णों से विभूषित वृत्त (विशेष अक्षर क्रम) बताया है। दूसरी परिभाषा में नियत अक्षरों से युक्त, छन्दों यति से समन्वित

१. द्रष्टव्य—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना—पृ० २७।

२. एव क्लृप्त प्रमाणानां छन्दसामुपदिश्यते। ऋक् प्राति० १७।१।.
अक्षराण्येव सर्वत्र निमित्तं बलवत्तरम्।
विद्या द्विप्रतिपन्नानां पादवृत्ताक्षरैर्ऋचाम्॥ वही १७।१३॥

३. छन्दः पादौ तुवेदस्य। पा० शि० ४१॥

४ छन्दः [illegible]नाक्षर संख्यावच्छन्दोऽत्राभिधीयते ॥२।१ की कारिका॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ताल के अवरोह से युक्त पदों को छन्द कहा है । वहां छन्द-सिद्धान्त की कुछ पंक्तियां भी हैं—जैसे न कोई शब्द छन्द हीन है और न कोई छन्द शब्द हीन ।१ भरत ने विविध रसों में अक्षरों और विशिष्ट वृत्तों के प्रयोग का भी निर्देश किया है। जैसे श्रृंगार के लिये नारी वृत्त, वीर रस के लिये जगती, अतिजगती, संकृति छन्द युद्ध और उपद्रव वर्णन में उत्कृति छन्द तथा वीभत्स रस में गुरु अक्षरों का प्रयोग आदि ।२ उन्होंने शेष रसों के अर्थानुसार प्रयोक्ता को यथा योग्य छन्दों के उपयोग की सम्मति दी है। इस प्रकार छन्द सम्बन्धी सभी धारणाओं का बीज नाट्य शास्त्र में ही उपलब्ध हो जाता है ।

प्राकृत पैंगलम् में छन्द की परिभाषा नहीं दी गई है, परन्तु उसमें वृत्त (वार्णिक) और जाति (मात्रिक) दोनों प्रकार के छन्दों का निदर्शन है। छन्दों मंजरी में पहली बार वृत्त के साथ जाति की परिभाषा दी गई है । पद्य चार चरण का होता है, उसके वृत्त और जाति दो भेद हैं । वृत्त निश्चित अक्षर संख्या से नियन्त्रित होता है और जाति मात्राओं की संख्या से ।३ केदार भट्ट के अनुसार चार, पांच, छः आदि अक्षर संख्या के लौकिक छन्द होते हैं । इनका चतुर्थांश पाद कहलाता है और यति से उनका विच्छेद होता है।४

वृत्तरत्नाकर तक छन्दों के स्वरूप और उनमें से मुख्य छन्दों के लक्षण पूर्णतः निर्धारित हो चुके थे । छन्द का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

छन्द की परिभाषा—निश्चित वर्ण संख्या या मात्रा संख्या का सयोजन छन्द कहलाता है, जिसमें ताल और लय का समावेश हो ।

चरण—प्रत्येक छन्द के चार चरण होते हैं ।

यति—छन्द के पढ़ते समय ताल और लय के अनुसार जहां विराम हो, उसे यति कहते हैं ।

प्रकार—छन्द दो प्रकार के होते हैं—वार्णिक (वृत्त) और मात्रिक (जाति)

---

१. एव नानार्थ सयुक्तैः पदैर्वर्ण विभूषितैः ।
चतुर्भिस्तु भवेद्युक्त छन्दोवृत्ताभिधानवत् ।।ना० शा० १४।४२।।
नियताक्षर संवन्धे छन्दो यति समन्वितम् ।
निवद्धं तु पदं ज्ञेय सतालपतनात्मकम् ।।वही ३२।२६ ।।
२. द्रष्टव्यनाट्य शास्त्र, १६।१०६–११४।।
३. द्रष्टव्य–छन्दो मंजरी–प्रथम स्तवक ।।
४. अधिभूत रसादीनां ज्ञेयाः संज्ञास्तु लोकतः ।।
ज्ञेयः पादश्चतुर्थांशो यति विच्छेद संज्ञित :।।वृत्तरत्नाकर १।१२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्णिक छन्द—इसके प्रत्येक चरण में गुरु लघु का एक निश्चित क्रम होता है।

मात्रिक छन्द—इसके प्रत्येक चरण में कुल मात्राओं की सख्या निर्धारित होती है ।

वार्णिक छन्दों का नियन्त्रण गणों से होता है । ये आठ हैं —भगण —ऽ।।, जगण ।ऽ।, सगण ।।ऽ, यगण ।ऽऽ, रगण ऽ।ऽ तगण ऽऽ।, मगण ऽऽऽ और नगण ।।।,

मात्रिक छन्दों का नियन्त्रण उनकी संख्या या शब्दों के मात्रा समह (द्विकल, त्रिकल आदि) करते हैं ।

आवश्यकतानुसार दोनों प्रकार के छन्दों में 'यति' होती है ।

चरण-साम्य के आधार पर भेद—
समवृत्त—जिसके चारों चरणों में समान नियम प्रवृत्त हों। अर्धसमवृत्त —जिसके प्रथम और तृतीय चरण में एक प्रकार का और द्वितीय तथा चातुर्थ चरण में उससे भिन्न प्रकार का नियम प्रवृत्त हो ।

विषमवृत्त—जिसके प्रत्येक चरण के लिये पृथक् पृथक् नियम हो । सम, अर्ध-सम और विषम भेद वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के ही छन्दों के होते हैं ।

मात्रा—मूल स्वरों या इनसे युक्त व्यंजनों की एक मात्रा तथा संयुक्त स्वरों अनुस्वार और विसर्ग तथा इनसे युक्त व्यंजनों की दो मात्राएं होती हैं प्रथम को लघु और द्वितीय को गुरु कहते हैं । संयुक्ताक्षरों (व्यंजनों) के पूर्व का लघु भी गुरु मान लिया जाता है । मात्रा का संबन्ध उच्चारण के काल से है ।

छन्दों की जातियां—एक अक्षर से लेकर २६ अक्षर तक के छन्दों की निम्नलिखित जातियां हैं :—

१ उक्ता २ अत्युक्ता ३ मध्या ४ प्रतिष्ठा ५ सुप्रतिष्ठा ६ गायत्री ७ उष्णिक् ८ अनुष्टुभ् ९ वृहती १० पंक्ति ११ त्रिष्टुप १२ जगती १३ अतिजगती १४ शक्वरी १५ अतिशक्वरी १६ अष्टि १७ अत्यष्टि १८ धृति १९ अतिधृति २० कृति २१ प्रकृति २२ आकृति २३ विकृति २४ संकृति २५ अतिकृति २६ उत्कृति ।। इससे अधिक अक्षरों वाले छन्दों की जातियां चण्डवृष्टि और दण्डक हैं । वृत्तरत्नाकर के अनुसार तीन-तीन या छः छः पादों वाले या गुरु लघु की भिन्नता वाले छन्द 'गाथा' के अन्तर्गत आते हैं ।[1] जातियों के ये नाम ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार ही हैं । इनके विविध भेदों में वहां ६१ छन्दों और १४ अति छन्दों का विवरण है । ५ से लेकर ९ चरणों वाले वार्हत-प्रगाथा त्रैष्टुभ्-प्रगाथा आदि की भी वहां चर्चा है।[2] प्रस्तार भेद से छन्दों की संख्या लाखों बन जाती हैं।

१. द्रष्टव्य वृत्त रत्नाकर—१।१७—२१ ।।
२. द्रष्टव्य—ऋक् प्रातिशाख्य–१५–१८ पाताल और ८ तथा १२ वां पाताल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्द का महत्त्व और प्रयोजन

वैदिक काल से ही छन्द का महत्त्व सुप्रतिष्ठित है। छन्दों का आश्रय लेकर ही देवताओं ने अमरत्व और स्वर्ग लोक प्राप्त किया।१ विभिन्न छन्दों के पाठ से विविध अभीष्ट फल-प्राप्ति का उल्लेख भी वैदिक साहित्य में मिलता है। उदाहरण के लिये—अनुष्टुभ् छन्द से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।२ विराट् छन्द (४० वर्ण का) अश्वमेध में सभी देवताओं को प्रसन्न करके सभी कामनाओं को प्राप्त कराता है।३ त्रिष्टुप, ओज, इन्द्रिय और वीर्य का प्रतीक होने से इनको ही शक्तियां प्रदान करता है।४

स्वर, वर्ण और अर्थ से संयुक्त, छन्द का ज्ञान करके जो वेद का अध्ययन करता है, वह ब्रह्म लोक का भागी होता है।५ निघण्टु में छन्द और स्तोत्र को पर्यायवाची माना गया है और भोज प्रबन्ध के अनुसार मयूर, वाण आदि ने कायिक-पीड़न से मुक्ति-स्तोत्र, रचना द्वारा ही प्राप्त की थी। राम भक्त आज भी राम चरित मानस का पाठ, अभीष्ट पूर्ति के लिये करते हैं। छन्द, चिरस्मरणीय और काल की धारा से अप्रभावित होने के कारण मानव संस्कृति के विकास से परिचित कराने में अधिक सहायक रहा है।

काव्य में इसकी उपयोगिता पर प्रथम आचार्य भरत ने ही प्रकाश डाला था और विविध रसों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की छन्द योजना का संकेत दिया था। क्षेमेन्द्र ने सुवृत्त-तिलक के तृतीय परिच्छेद में काव्य रस के अनुसार और वर्णन के अनुगुण से वृत्तों का विनियोग बतलाया है।६ इनके मतानुसार प्रबन्ध में यथा स्थान, निर्दोष गुण-संयुक्त सुवृत्त का प्रयोग मोतियों की तरह शोभा पाता है।७ अन्य आचार्यों ने भी प्रसंगानुसार छन्द और रस या भाव के सम्बन्धों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। करुण में मन्दाक्रान्ता और पुष्पिताग्रा, शृंगार में पृथ्वी, वीर में स्रग्धरा, शिखरिणी, शार्दूल

---

१. छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं लोकं समाश्नुयते। शत० ब्रा० २–३।४।३२।। या छन्दो० उप० २।४।१।
२. द्रष्टव्य—ऐतरेय ब्राह्मण १।५।।
३. द्रष्टव्य—शतपथ ब्रा० १३।४।१।१३२।।
४. द्रष्टव्य—ऐतरेय ब्राह्मण १।५।।
५. द्रष्टव्य—पाणिनीय शिक्षा–५२।। 'इन्द्र शत्रु' का उदाहरण यही है।
६. काव्य रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित्।।सु० वि० ७।।
७. प्रबन्ध सुतरां भाति यथा स्थान विवेचकः।
निर्दोषै गुण संयुक्तते सुवृत्त मौक्तिकै रिव।। वही तृतीय परि०
करुणे मन्दाक्रान्ता.........।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रीड़ित और हास्य में दोधक का प्रयोग अनुकूल होता है। अग्निपुराण के अनुसार वृतान्त बदलने पर पुष्पिताग्रा आदि तथा कोमल भाव वाले सर्ग में मात्रा छन्द अभिनन्दनीय हैं ।"[१]

छन्द और संगीत

छन्द वह नियमित मुखध्वनि-रचना है, जो ताल और लय के साथ भाव और अर्थ की आह्लादपूर्ण व्यंजना कर सके । जब शब्द और अर्थ, जो काव्य के मूल आधार भूत तत्त्व हैं, निकल जाते हैं तब शेष जो कुछ रह जाता है, वह संगीत ही है। ताल, लय और स्वरों के आरोहावरोह से भाव-प्रकाशन, और आह्लादन संगीत का चरम लक्ष्य है। स्पष्ट है कि संगीत के तत्वों में शब्दार्थ-रूप-काव्य के समावेश से जो कुछ निर्मित होता है, वह गीत, प्रगीत आदि काव्य के उस रूप को मूर्तिमान करता है, जो गेय होता है। सामान्य रूप से प्रत्येक छन्द गेय होता है, क्योंकि उसमें ताल और लय का एक निश्चित नियमन होता है। ये ही संगीत के प्राण हैं ।

छन्द, भाव-प्रेषण के लिये सर्वोत्तम साधन है। गद्य में भी जहां छन्दांश का समावेश हो जाता है या वृत्तगन्धिता[२] आ जाती है, वहां एक क्षण के लिये उसकी संगीतात्मकता उभर कर उस गद्य-खण्ड को तरलित कर देती है। छन्द में गद्य की अपेक्षा, बिम्ब ग्रहण कराने की और व्यंजना व्यापार की क्षमता अधिक होती है।

'शब्द समस्त इन्द्रियों के संवेदना-संस्कारों को उद्बुद्ध करने में सफल होते हैं और छन्द, उस शब्दावली को स्वरधारा में बहा कर सरलता और सुकरता से अनुभव शृंखला को सवेग, गतिमान तथा भाव को परिपुष्ट करके रस की निष्पत्ति करता है । छन्द, शब्द के अर्थानुवाद में मन की सहायता नहीं करता है, अपितु तीव्र संवेदनाओं को संघटित करके संगीत में दोलायमान करता हुआ, मनोव्यापार के श्रम को भी दूर करता है। छन्द (लयच्छन्द) संगीत का एक रूप है, अतः वह अर्थ रूप (भाषा) को संगीत स्वर की संवेदना से भी युक्त करता है। छन्द, स्वयं संगीत की भांति अपने स्वरूप म ही भाव को दीप्त कर सकता है ।[३]

आत्मा की संगीतात्मकता ने छन्दो-जगत का विस्तार किया । बुद्धि के योग

---

१. द्रष्टव्य-अग्नि पुराण ३३७।२६-२८।।
विभिन्न रसों में प्रयुक्त छन्दों की सूची के लिये द्रष्टव्य-आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० ४६–४७ ।

२. रवीन्द्र ने गद्यच्छन्द को भावच्छन्द कहा है—रवीन्द्र रचनावली, भाग २१,पृ० ३६८

३. द्रष्टव्य—आ० हिन्दी काव्य में छन्द योजना—पृ० ४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने उसे सुव्यवस्थित और शास्त्रीय रूप दिया । प्रत्येक छन्द अपनी क्षमता और वृत्ति के अनुसार विशेष प्रकार के भाव के अभिव्यंजन में सहायक बना । वैदिक युग में प्रत्येक छन्द का एक विशिष्ट देवता बना और उसकी प्रसन्नता के लिये विविध मन्त्रों में उन उन छन्दों का प्रयोग हुआ ।१

दो दो छन्दों के सम्मिश्रण से नूतन मिश्र छन्द बनाने का प्रचार वैदिक कल में ही हो चुका था । जैसे वृहती और सतो-वृहती से वार्हत,२ ककुभ और सतो वृहती के युग से काकुभ,३ त्रैष्टुभ्, और जगती के योग से त्रैष्टुभ्४ आदि । छन्दों के विविध चरण की संख्याओं के भी कई रूप हैं—जैसे द्विपद गायत्री, त्रिपदगायत्री, चार पक्तियों का विराज, पांच पक्तियों का महापाद पंक्ति, ६ पंक्तियों का महापक्ति सात चरणों का अत्यष्टि, आठ चरणों का अतिवृत्त छन्द आदि ।

पुरस्ताद् वृहती में पहला चरण ११ अक्षर के और शेष तीन चरण आठ-आठ अक्षर के होते हैं । यहां छन्दक में भिन्न लय है और प्रवाही चरण भिन्न लय के हैं ।५ इससे स्पष्ट है कि टेक और अन्तरा युक्त छन्दों का विकास अत्यन्त प्राचीन काल में ही हो चुका था । इन्हीं वैदिक छन्दों से अनेक छन्दों का विकास हुआ। त्रिष्टुभ् छन्द के विकसित छन्दों में इन्द्रवज्रा सर्व प्रधान हुआ तथा शृंगार और वीर भावों की अभिव्यक्ति के लिये अधिक ग्राह्य ।६

संस्कृत वृत्तों के नामकरण, अधिकांश में उनकी वृत्तियां गुण से सम्वद्ध हैं। कोमल छन्दों का स्त्रीलिंग और कठोर छन्दों का नाम पुल्लिग में रखा गया है। इसके अपवाद भी हैं, और एक ही छन्द के भिन्न भिन्न नाम भी मिलते हैं । जैसे पिंगल का कनकप्रभा, केदार भट्ट का मंजुभाषिणी है ।

मध्यकाल में अत्यधिक प्रयुक्त घनाक्षरी का सम्बन्ध डा० शुक्ल ने वैदिक अनुष्टुप् से माना है और सवैया के वार्णिक

---

१. द्रष्टव्य—ऋक्प्रातिशाख्य, पाताल, १७।।
संगीत की उत्पत्ति के लिये द्रष्टव्य छान्दोग्य उप० १।२ ।

२. ८,८, १२, ८+१२, ८, १२, ८।।

३. ८,१२,८+१२,८,१२,८ ।

४. ११,११,११,११+१२,१२,१२,१२,ऋक् प्रातिशाख्य में लगभग ऐसे २४ छन्दों का उल्लेख हुआ है ।

५. द्रष्टव्य—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना—पृ० ७७ ।

६. वही पृ० ८१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्द से मात्रिक छन्द के रूप में परिवर्तन का भी परिचय दिया है ।१ मात्रिक छन्दों का संस्कृत और प्राकृत में भी प्रयोग हुआ है। वैदिक छन्दों में अक्षर गणना के विधान के अतिरिक्त स्वरों का भी प्रयोग होता था, अन्यथा केवल अक्षर संख्या से लय विधान संभव नहीं था । 'मात्रामैत्री उसके लिये आवश्यक है । जनगीतों की प्राकृत परम्परा वैदिक युग में भी थी । वैदिक छन्दों की सुप्रयुक्त, अभ्यस्त और बहुशः आवृत लयों को वृत्त का रूप मिल गया। इन वृत्तों के विकास में भी जनगीतों ने योग दिया। वृत्तों के आवर्तक वर्ग से मात्रिक छन्दों का विकास हुआ ! इसका **प्रमाण** यही है कि अधिकांश मात्रिक छन्द आवर्तक वर्ग में आते हैं ।'२

धम्मपद और जातक से उद्धरण देकर उन्होंने (डा० शुक्ल ने) सिद्ध किया है कि मात्रिक छन्दों का प्रयोग अपभ्रंश काल से भी पूर्व होता आ रहा है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है --

सिनिद्ध नील मुदु कुंचित केसो ।
सुरिय निम्मल तलाभि ललाटो ।
युत्त तुंग मुदकायत नासो ।
रंसि जाल विततो नर सीहो ।।३

यह १६ मात्राओं का चौपाई जैसा छन्द है । अपभ्रंश युग में मात्रिक छन्दों की परम्परा इतनी प्रौढ़ हो गई थी कि मात्रा छन्दों में आद्योपान्त महाकाव्य की रचना की गई थी । नवीं सदी के बाद का सिद्ध और जैन साहित्य मात्रिक छन्दों का ही उपयोग करता रहा और इनके प्रभाव से कई संस्कृत कवियों ने भी वर्ण वृत्तों को छोड़ कर मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया । गोवर्धनाचार्य और जयदेव के नाम उदाहरण स्वरूप लिये जा सकते हैं ।

स्वर माधुर्य, संगीतात्मकता, छन्द संतुलन, छन्द-सौष्ठव, विश्राम, सहज स्मरणीयता आदि की दृष्टि से अन्त्यानुप्रास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । प्राकृत पैंगलम् के उदाहरण और गीत **गो**विन्द के पद अधिकतर अन्त्यानुप्रास युक्त हैं और अपभ्रंश के कई उदाहरण स्वयंभू की कृतियों से पहले उद्धृत किये जा चुके हैं । ललितान्त्यानुप्रास में चारों चरणों में तुक होता है । इस अन्त्यानुप्रास के अनेक रूप प्राप्त होते हैं । मध्यानुप्रास और यमक के प्रभाव से भी संगीतात्मकता में वृद्धि होती है ।

अर्ध समवृत्त का जन्म सम छन्द की एकरसता को समाप्त करने के लिये हुआ जान पड़ता है । इस छन्द के चरण

१. वही पृ० १६०–७१२ तक
२. वही पृ० १९५–१९६
३. वही पृ० १९८ पर से उद्धृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मात्रा क्रम से ही आवृत्त होते हैं, अतः इनमें भी संगीतात्मकता उपलब्ध होती है। इनमें दूरान्तर अन्त्यानुप्रास होता है। दोहा सोरठा आदि मात्रिक छन्द इसमें आते हैं।

मिश्र छन्दों में एक से अधिक छन्दों की लयें मिला कर एक नयी इकाई तैयार की जाती है। कुण्डली, छप्पय, अमृत-ध्वनि, हुल्लास आदि मिश्र छन्द ही हैं। मिश्र छन्दों में इनकी निश्चित इकाई की आवृत्ति होती है। विषम छन्दों से ये भिन्न हैं, क्योंकि इनमें क्रम निर्धारित नहीं होता। टेक लगा कर लिखे गये गीत भी मिश्र छन्द के अन्तर्गत आते हैं। इन गीतों में अन्तराओं की मात्रायें समान ही नहीं होती, अपितु समान आवृत्ति भी होती है। आचार्य भरत ने टेक के अर्थ में छन्दक1 का प्रयोग किया है। विभिन्न छन्दकों के साथ विभिन्न सम्पदों (चरणों) का प्रयोग संस्कृत गीतों में होता था। छन्दक, सम्पद की अपेक्षा अधिक लचीला और संगीत प्रधान होता है। सम्पद के चरण प्रायः निश्चित छन्दों में बंध कर चलते हैं। छन्दक और सम्पद में छन्द की भिन्नता होते हुए भी एक आन्तरिक मैत्री रहती है।2 छन्दक और सम्पद दोनों ही सप्तक के आधार पर चलते हैं।

डा० पुत्तूलाल शुक्ल का यह कथन कि 'छन्दकों और सपदों का संयोग जयदेव से पहले नहीं मिलता है'।3 उचित नहीं है। इसी शोध प्रबन्ध में 'हनुमद्रास' का संकेत करते हुए जो उद्धरण दिये गये हैं उनमें छन्दक और सम्पद का पूर्ण लयात्मक प्रयोग हुआ है। संस्कृत में प्रयुक्त गेय मात्रिक छन्दों के उद्धरण यशस्तिलक चम्पू में मिलते हैं जो १०वीं सदी की रचना है।

विषम छन्द में भी चरणों की संख्या तथा विस्तार का निश्चय नहीं होता है पर लयाधार4 निश्चित होता है। भिन्न लयाधारों का संयोग अवांछित होता है इससे उस प्रवाह में बाधा पड़ती है, जो विषम छन्दों में भी संगीत का प्रतिष्ठापक है। सममूलक पर्व, अपने आवर्तन से समलय निश्चित कर लेते हैं पर विषम-विषम पर्वों के योग से भी समलय स्थापित हो जाती है।

छन्द-पाठ एक कला भी है और भाषा का निर्मल चरित्र भी। छन्द का माधुर्य

१. गीतानां छन्दकानां च भूयोवक्ष्याम्यहं विधिम्॥
सर्वेषामेव गीतानां अन्ते छन्दक इष्यते। ना० शा० १४।२६६॥
विधाने छन्दआमेषा संपदित्यभिसंज्ञिता।१४।१०३ वही।
२. द्रष्टव्य—गीतगोविन्द-रासविलास वर्णन—हरिरिह मुग्धवधू निकरे, आदि
३. द्रष्टव्य—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० ३७१॥
४. यह मात्रिक छन्दों में पर्व माना जा सकता है, द्विकल त्रिकल आदि इसी के रूप हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत का प्राण है और शब्दों का स्वराघात, अभिव्यंजना का अनुनय है। इन तीनों तत्त्वों से छन्द का व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक बन जाता है। निरन्तर भाव-संस्कार, सजग-संवेदना, तीव्र-अनुभूति, अभिव्यंजन-कुशलता, भाषा सौष्ठव और शब्द संगीत से काव्य का उद्भव ही नहीं होता, उसे मनोरम रूप भी मिलता है। वैदिक स्वर पाठ से लेकर मध्य काल के गीतों तक में संगीत की धारा अव्यक्त रूप से समाहित है और छन्दों के विविध रूप और प्रयोग काव्य में संगीत के समन्वयन के प्रयत्न हैं। काव्य, अर्थशून्य स्वर लहरी-मात्र नहीं है, अत. काव्य-कला, संगीत कला से उत्तम स्थान पर अधिष्ठित है। काव्य रचना में छन्द शास्त्र के पाण्डित्य की अपेक्षा लयात्मक संस्कारों की ही आवश्यकता पड़ती है। मधुमती-भूमिका में, अखण्डनाद में अनन्त छन्दों की वह धारा बहती है, जो भावानुकूल स्पन्दन से मनोमय कोश तक आकर छन्द को मूर्तरूप देती है। राजशेखर ने स्वीकार किया है कि सुसंस्कृत-आत्मा काव्य (छन्द) रचनाकर ही लेती है।[1]

छन्द और संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। छन्द लयाश्रित होता है। लय का सम्बन्ध ताल से है और स्वर-संयोजन का सम्बन्ध राग-रागिनियों से। ये ताल लयाश्रित होते हैं। अतः छन्द को संगीत से पृथक् नहीं किया जा सकता।

छन्द और गीतिकाव्य का तो व्यावहारिक रूप में अविनाभाव सम्बन्ध है। यदि रस काव्य की आत्मा है तो छन्द उसका मधुर-मोहक मांसल- सुवर्ण शरीर एक के बिना दूसरे का अस्तित्व व्यवहार जगत में संभव ही नहीं है। छन्द केवल नियमन ही नहीं करता, भाषा का शब्द भंडार भी भरता है। छन्द-बन्ध की दृष्टि से कवि को नूतन शब्दों की सृष्टि करनी पड़ती है। तुलसी जैसे महाकवि ने भी छन्द बन्ध के कारण नामों के भी पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है:—

रिपुसूदन पद कमल नमामी।

रामनाम नर केसरी कनककसि पुर्कलिकाल।

बा. का. ॥

रघुपति शिकट गयेउ घननादा। लंका० ॥

आधुनिक युगबोध अपनी बौद्धिकता के कारण छन्दों की संगीतमयता, सरसता और भावोन्मेषकता से वंचित हो रहा है तथा काव्य के एक उत्तम पक्ष की उपेक्षा कर रहा है, यह सहज ही कहा जा सकता है। काव्य में छन्दों के अनेक भेद तो अभी प्रयुक्त भी नहीं हुए, इस तथ्य को छन्द-शास्त्री भी जानते हैं। उनके प्रयोग में भी कुशलता प्रदर्शित की जा सकती है

1. करोति काव्यं प्रायेण संस्कृतात्मा यथा तथा काव्यमीमांसा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवधी में कृष्ण काव्य का विकास

डा० मुरारिलाल शर्मा 'सुरस'

जब मुसलमानी आतंक से क्षुब्ध जनता ने निराश होकर भगवान् की ओर देखना शुरू किया तभी जनता के प्रतिनिधि धर्माचार्यों ने अपने मुख्य पीठ धार्मिक क्षेत्र और तीर्थ स्थानों में बनाये। इन स्थानों पर रह कर उन्होंने लीलामय भगवान् के लोक-रक्षक और लोक-रंजक रूपों को समाज की मर्यादा के अनुरूप प्रतिष्ठापित किया और एतद्विषयक ग्रंथ एव भाष्य लिखे। उसी से प्रभावित होकर भक्त कवियों ने अपने काव्य को राग-रस-समन्वित करके शिष्ट रूप दिया जिससे जनता के जीवन में आशा और उत्साह का संचार होने लगा। उत्तरापथ में भगवान् के अवतारी रूप राम और कृष्ण हुए जिनके जन्म-स्थानों (अयोध्या और व्रज) की बोलियों ने साहित्यिक भाषाओं का रूप ग्रहण किया। द्रष्टव्य है कि राम काव्य की अपेक्षा कृष्ण काव्य का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ। व्रजभाषा का प्रचार केवल व्रज प्रदेश में ही नहीं अपितु अवधी क्षेत्र में भी प्रयाप्त रूप से हुआ। स्वयं तुलसीदास ने रामचरित मानस, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, बरवै रामायण और रामलला नहछू के अतिरिक्त शेष सभी रचनाएं परिनिष्ठित व्रज भाषा में लिखीं। इतना होते पर भी भक्त कवियों ने अपने काव्य में 'व्रज' और 'अवधी' दो भाषाओं के पार्थक्य की बात कभी नहीं कही क्योंकि उनका लक्ष्य 'भाषा विवाद' नहीं था, भगवान् का लीला वर्णन था। हां, यह अवश्य हुआ कि राम की जन्मभूमि अयोध्या होने के कारण रामकाव्य प्राय: अवधी में ही लिखा गया और कृष्ण काव्क प्राय: व्रजभाषा में फिर भी कवियों की रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राम का जीवन चरित व्रजभाषा में और कृष्ण का जीवन चरित अवधी भाषा में भी लिखा गया। व्रज भाषा के वरेण्य कवि सूरदास ने भी राम की लीलाओं का वर्णन किया और अवधी में कृष्ण काव्य की रचना लालचदास, आसानन्द, बलवीर लक्षदास, और चंददास आदि कवियों ने की। लालचदास रचित २ ग्रंथ उपलब्ध होते हैं: (१) विष्णुपुराण और (२) हरिचरित्र। इनमें से 'विष्णुपुराण' की तो खण्ड़ित प्रतियां ही मिलती हैं किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हरिचरित्र' की कैथी एवं नागरी लिपि में अनेक प्रतियां मिलती हैं । १ लालचदास रचित यह 'हरिचरित्र' ग्रंथ अवधी के कृष्ण काव्यों की परम्परा में उपलब्ध प्रथम काव्य है जिसमें कृष्ण का चरित वर्णन प्रबंध काव्य के रूप में (संवत् १५८७ वि०) लिखा गया । यह ग्रंथ उस समय इतना समादृत एवं प्रचलित हुआ कि उस काल में इसका अनुवाद फ्रांसीसी भाषा में भी हुआ।२ इससे विद्वनों की यह धारणा नितांत निर्मूल सिद्ध होती है कि कृष्ण काव्य प्रबंध काव्य या महाकाव्य के रूप में नहीं लिखा गया३ और जो लिखा भी गया है वह १९वीं और २०वीं शती में ही लिखा गया ।४

लालचदास के विष्णुपुराण का भाषानुवाद सं. १५८५ में किया था जिसकी खण्डित प्रतियां उपलब्ध होती हैं । इसके बाद उन्होंने भागवत दशम स्कन्ध का भाषानुवाद 'हरिचरित्र' नाम से सं. १५८७ में किया ।५ वस्तुतः लालचदास ने 'हरिचरित्र' की कथा की आधारभूमि विष्णुपुराण से ग्रहण करके भागवत की मंदाकिनी में अवगाहन किया और दशमस्कंध की कथा का ही वर्णन किया । लालचदास की मृत्यु के उपरान्त आसानन्द ने 'हरिचरित्र' ग्रंथ में वर्णित कृष्ण चरित के अन्य प्रसंगों को, भागवत के दशम स्कन्ध उत्तरार्ध के आधार पर, महाभारत तक की कथा से जोड़ दिया ।६

भगवान् कृष्ण के लोकरंजक रूप का वर्णन निसर्ग सुषमा निबद्ध है जिसमें हमारा मन भी कन्हैया की बाल-लीलाओं को अपने पुत्र की बाल-लीलाओं से सम्बद्ध करके उसी चिन्मय सत्ता की कल्पना करता हुआ नन्द और यशोदा के सौभाग्य की स्पृहा में संतुष्टि पाता है। राजकुमार होने के कारण राम का चरित्र जन जीवन से कुछ ऊंचा है किन्तु कृष्ण गोपग्वालों के सामान्य जन जीवन की एक इकाई हैं। भागवत के दशम स्कन्ध में कृष्ण का चरित बड़ी ही सुन्दरता से दर्शाया गया

१. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष १४ अंक ३ 'अवधी में कृष्णकाव्य के प्रणेता—कवि लालचदास, पृ० २३ ।
२. हिन्दुई साहित्य का इतिहास—तासी, अनु० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, १९५३ ई०, पृ० २७२।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, २००९ वि० पृ०१९४ ।
४. अवधी और उसका साहित्य—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० १८९ ।
५. साहित्य संदेश दिसम्बर, १९६०, मेरा लेख, 'हरिचरित्र और आसानंद का समय, पृष्ठं २६५ ।
६. साहित्य संदेश, दिसम्बर, १९५८ पृष्ठ २६७ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसमें पदे-पदे कृष्ण के जगत्कारण तथा आदि ब्रह्म होने और संसार के पापियों का संहार करने के हेतु पृथ्वी पर अवतरित होने की कथा कही गई है। कवि लालचदास के काव्य में उस निराकार ब्रह्म के सगुण-साकार रूप धारण करने का प्रमुख कारण यही बताया गया है। शिव, राम और कृष्ण को एक ही परब्रह्म की तीन शक्तियां मान कर उनमें समन्वय स्थापित करने की प्राचीन परम्परा का पालन किया गया है । अवधी के इन कृष्णकाव्यों में ब्रजभाषा में वर्णित कई महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक प्रसंगों--भ्रमरगीत तथा तार्किक पद्धति पर सगुणोपासना की प्रतिष्ठा और निराकार की भावना का खण्डन --को प्रायः नहीं अपनाया गया। उन्होंने तो सगुण तथा निर्गुण को एक बता कर सामान्य ढंग से उसका विवेचन किया । इस प्रकार के प्रसंगों की ओर इन कवियों का ध्यान संभवतः इसलिये नहीं गया क्योंकि भागवत का अनुवाद करते हुए भी वे केवल कृष्ण-चरित को ही प्रधानता देते रहे और ब्रज के कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों की परम्परा के प्रभाव से वंचित रहे । (माधवी दासी और लक्षदास इनमें अपवाद हैं ।) इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि ये कवि कृष्ण के लीलाधाम में जाकर किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं हुए और उन्होंने स्वतंत्र रूप से ही कृष्ण चरित का मुक्तक तथा प्रबंध कथा के रूप में वर्णन किया ।

सोलहवीं शती तक अवधी में लिखि[त] कृष्ण काव्य ब्रजभाषा के वरेण्य कवि[यों] (सूरदास आदि) से भी पूर्व की प्रचलि[त] परम्पराओं के आधार पर लिखा गया है[।] अतः इनमें उन प्रसंगों को उतने प्रांजल रू[प] में ग्रहण न किया जा सका जिस तरह [से] ब्रज के कवियों ने किया । अद्यावधि उपलब्ध प्राचीन साहित्य में ब्रज भाषा में 'प्रद्युम्न चरित' (सं. १४११)१ तथा कवि विष्णुदा[स] की रचना 'सनेह लीला' (स० १४९[२]) से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्राकट्य से ८०-९० व[र्ष] पूर्व ही ब्रजभाषा में कृष्ण काव्य लिख[ा] जाने लगा था ।२ वैसे कृष्ण चरित वर्ण[न] की यह परम्परा संस्कृत से प्रारम्भ होक[र] प्राकृत और अपभ्रंश के प्राचीन काव्यों में होती हुई, उत्तराधिकार के रूप में हिन्दी को भी प्राप्त हुई । इसी पूर्वापर परम्परा के अनुसार हमारे प्राचीन साहित्य में नैसर्गिक शोभा की आधारभूमि पर ऋतु वर्णन आदि की परम्पराएं मिलती हैं। प्रेमाख्यान काव्यों में बारहमासा त[था] षड्ऋतु वर्णन को सुन्दरता से अंकित कि[या] गया और अवधी के अन्य कवियों ने भी इसे परम्परागत दाय के रूप में प्राप्त किया। गो० लक्षदास जी के समय में भ्रमरगी[त]

१. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, १९५८ ई०, पृ० ३१५ ।
२. वही, पृ० १५१ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारहमासा, षड्ऋतु वर्णन, स्तोत्र तथा नामावली आदि का पर्याप्त प्रचलन हो चला था, अतः उन्होंने भी अपने काव्यों में इन सभी शैलियों में भावपूर्ण रचनायें कीं ।

व्रजभाषा के सूरसागर तथा कृष्ण-गीतावली आदि ग्रंथों की भांति अवधि के इन कृष्णकाव्यों को भी जन सामान्य की प्रचलित बोली में लिखा गया जिससे जनता अपने भगवान् की लीलाओं को समीप से पढ़, सुन तथा समझ सके । अवधी के कवियों ने विभिन्न स्थलों पर विविध रूपों में कृष्ण की शोभा का वर्णन किया है और कृष्ण के शक्ति, शील, सौन्दर्य समन्वित रूप की पवित्र झांकी प्रस्तुत की है। इन काव्यों में गोपियों का विरह वर्णन और नन्द यशोदा के वत्सल-भाव की चरम परिणति अवश्य दिखाई गई है किन्तु उनमें वह रस प्रवणता, सूर की सी मिठास और मनमोहकता नहीं आ सकी जो सूर ने प्राप्त की। परम्परा-गत कृष्ण चरित को प्रबंध कथा के रूप में लिखने का कार्यारम्भ किया गया । लालचदास, आसानन्द और लक्षदास आदि कवियों ने कृष्ण चरित को प्रबंध कथा के रूप में प्रस्तुत किया । भीम, बलवीर तथा गोविन्ददास आदि कवियों ने महाभारत के कुछ पर्वों का भाषानुवाद किया या स्फुट रूप में कृष्ण के सम्बन्ध में कविताएं लिखीं ।

अवधी में लिखित कृष्ण काव्य के प्रणेताओं ने व्रज प्रदेश के सम्प्रदायानु-मोदित सिद्धान्तों के आधार पर प्रायः अपनी कविताएं नहीं लिखीं । कृष्ण काव्य का जो भी वर्णन मिलता है वह भागवत के अनुवाद के रूप में तो है (उसे हम अविकल अनुवाद नहीं कह सकते) किन्तु कुछेक कवियों को छोड़ कर शेष ने स्वतंत्र रूप से ही कृष्ण चरित का वर्णन किया । कृष्ण काव्य में यह चरित वर्णन ३ रूपों में मिलता है : (१) मुख्य कथा के रूप में, कृष्ण की बाल लीलाओं तथा उन जीवन का वर्णन और गोपी का विरह । (२) गौण कथाओं के रूप में —सुदामा चरित, रुक्मिणी मंगल, दंगवै पर्व, महाभारत तथा जैमिनीयाश्वमेध पर्व आदि के आधार पर अन्य कथाएं । (३) अवान्तर कथाएं—प्रद्युम्न चरित तथा उषा-अनिरुद्ध की कथा आदि के प्रसंग ।

अवधी कृष्ण काव्य के प्रणेता कवियों में (१७वीं शती से अद्यतन) मुख्यतः नरहरि महापात्र , रहीम, रघुनाथ राम-सनेही, गोपाल कवि, बांकावती महाराणी, गिरधारी, भूपति, चंददास, व्रजवासीदास, भावनकवि, भागवतदास, ज्वाला प्रसाद मिश्र, विसाहूराम तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र आदि ३७ कवियों के सम्बन्ध में सूचनाएं मिलती हैं जिनमें से कुछ की रचनाओं के सम्बन्ध में तो यत्र-तत्र कुछ विवरण मिलता है और शेष के ग्रंथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उपलब्ध होते हैं। व्रजभाषा कृष्ण-काव्य में सर्वाधिक मिठास और रस प्रवणता होने पर भी सामाजिक मर्यादा और विधि-निषेधों का ध्यान न रखने की बात खटकती है किन्तु अवधी कृष्ण काव्य के प्रणेता कवियों की कृतियों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन कवियों ने इस ओर बहुत ध्यान दिया है। सामाजिक शिष्टता और मर्यादा का उल्लघंन न हो, इस ओर ये कवि सदैव जागरूक रहे हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर अवधी कृष्ण काव्य में प्रायः स्वकीया प्रेम की ही व्यंजना की गई है। गार्हस्थ्य जीवन की पवित्रता को बनाये रखने और सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन न होने देने में इन कवियों ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की है।

महाभारत तथा जैमिनी पुराण के भाषानुवाद के समय कवियों ने कृष्ण को श्रेष्ठ नायक, राजनीतिक नेता तथा कुशल महामानव के रूप में चित्रित किया है। युधिष्ठिर, भीम आदि के मुख से, कवियों ने यत्र-तत्र कृष्ण के पारलौकिक (ब्रह्म के अवतार होने) रूप की ओर भी संकेत कराया है और देवताओं की भांति कहीं कहीं तो उनकी (ब्रह्मरूप कृष्ण) स्तुति भी कराई है। इन रचनाओं में कृष्ण का व्यक्तित्व महिमामण्डित रूप में चित्रित किया गया है।

जिन रचनाओं में स्वतंत्र रूप से कृष्ण के व्यक्तित्व का विकास किया गया है वे कथानक की दृष्टि से भागवत, विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण आदि से प्रभावित हैं। भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद करते समय कवियों की मौलिक प्रतिभा ने उस वर्णन को और भी सजीव बना दिया है। कृष्ण की बाल-लीला केवल लोक रजक रूप में ही चित्रित नहीं की गई हैं, उनका लोक रक्षक रूप भी समाज के आदर्श की प्रतिष्ठा की रक्षा करने में तत्पर दिखा गया है। अवधी कृष्ण काव्य की इन परम्पराओं का सर्वोत्तम विकसित और समन्वित रूप पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र के 'कृष्णायन', ग्रंथ में चरम परिणति तक पहुँचता दिखाई देता है जहां सामाजिक शिष्टता और मर्यादा का उज्ज्वलतम रूप अंकित किया गया है।

अवधी कृष्ण काव्य मुख्यतः दोहा चौपाई, सोरठा और बरवै छन्दों में लिखा गया है। जिन कवियों ने व्रजभाषा में भी रचनाएं कीं उन्होंने व्रजभाषा में प्रचलित छदों—पद, छप्पय, कवित्त, विष्णु पद सवैया आदि—को भी प्रयुक्त किया है। इन कवियों के पद-राग रागनियों के परिवेश में निबद्ध किये गये भी मिलते हैं। प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भी वर्ण्य विषय में चारुता आ गई है।

० ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तमत की दार्शनिक पृष्ठभूमि

o

हरि चन्द पाराशर

(क)
परिवेश

काव्य की प्रत्येक धारा के दो कूल होते हैं एक परम्परा और दूसरा प्रयोग। इस लेख में केवल परम्परा पर विचार किया गया है।

सन्त काव्य की परम्परा में वैष्णवों और नाथों की परम्पराओं का सुष्ठु समन्वय है। नाथ और सिद्ध विचारधारा परस्पर संलग्न रही हैं। सिद्ध विचारधारा तो उत्तरी भारत में ही प्रधान रही, परन्तु नाथ मत समग्र भारत में प्रचलित हो गया था। सिद्ध नाथ विचारधारा को समझे बिना सन्त काव्य की विचारधारा सही रूप में समझ नहीं आ सकती। सिद्ध नाथ विचारधारा का संबंध अपभ्रंश काल के साथ है, और उसी समय इसके साथ दक्षिण से उठी वैष्णव धारा का मिलाप हुआ। उत्तर-पूर्व और दक्षिण का यह मिलाप ऐतिहासिक महत्त्व का है और यह मिलाप आठवीं शती से चौदहवीं शती तक बनारस के आसपास घटित होता रहा और बनारस के कबीर ने उत्तर-पश्चिम में इस समन्वित विचार का प्रचार किया, उधर महाराष्ट्री ज्ञानेश्वर ने उत्तर-पश्चिमी भारत में वैष्णवधारा बहाई।

अपभ्रंश काल में भारतीय समाज में कुछ नवागत जातियों का समावेश हुआ था। इस समावेश में भारतीय समाज के स्तर बदले। इस काल में जैसे जैसे नगरों का विकास होता गया, वैसे वे वैश्य लोग ग्रामों की खेती छोड़ कर नगरों में व्यापार के लिये आते गए, और होते होते ग्रामों में खेती का काम नवागत जातियां अपने हाथों में लेती गईं। इस तरह कुछ गांवों में उन जातियों का आर्थिक और सामाजिक महत्व स्थिर हो गया। ऐसे गांवों के आचार वैदिक आचार की तरह स्थिर नहीं थे, इसलिये उनमें तरह-तरह के मिश्रण हुए। वैदिक आचार इनमें कुछ सुधार करके इन्हें अपनी लपेट में लेता गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवागत जातियों के नए जनपद भगवान् मनु के विधान से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं थे। इनकी जीवनशैली अधिक प्रकृतिमूलक थी। परन्तु जैसे-जैसे इन नये जनपदों में भौतिक जीवन सम्पन्न होता गया वैसे-वैसे उनका बुद्धिजीवी गुरु वर्ग वैदिक साहित्य के निकट आता गया। अपभ्रंश काल में भारतीय जीवन दो भागों में स्पष्टतः बंट चुका था। एक था शिष्ट वैदिक समाज, और दूसरा था सामान्य लोक जीवन। जैसे गंगा धीरे-धीरे सागर में मिलती है, वैसे ही लोक-जीवन धीरे-धीरे शिष्ट होता चलता है। शिष्ट होने की प्रक्रिया में उन नई जातियों ने वैदिक आचार को अपना लिया और उधर वैदिक विद्वानों ने सचेष्ट होकर उन नई जातियों के लोक जीवन को अपने में मिलाने का भी प्रयत्न किया। आचार्य शंकर, कुमारिल भट्ट तथा दक्षिण के वैष्णव आचार्य इसी प्रयत्न का उदाहरण हैं।

सामाजिक दृष्टि से वैदिक आचार अधिक उपयोगी था, क्योंकि उसमें मर्यादाओं का आदर था, उसमें जीवन का विज्ञान था विकास का मार्ग था। शून्य की नकारात्मक भावना जीवन के किसी काम की नहीं। इसी लिये **महायान के आन्दोलन ने वैदिक धर्म की सनातन बातों को स्वीकार करके बौद्ध मार्ग को नई दिशा दी।** नई जातियों के तांत्रिक गुरुओं ने वैदिक देवताओं की उपादेयता को स्वीकार करके अवैदिक देवताओं को प्रतिष्ठित किया। चूंकि जीवन-विकास में नकारात्मक निर्वाण सहायक नहीं हो रहा था, इसलिये महायान-वज्रपात के अनुयायियों ने अपने पिंड को ब्रह्माण्ड का लघु रूप मान कर अपने पिंड के अन्दर ही नाना तीर्थों की कल्पना कर ली, स्पष्ट है कि लोक-जीवन ने निर्गुण मार्गियों को वैदिक आचार में निहित जीवन-विकास के विज्ञान को स्वीकारने के लिये मजबूर किया।

उस समय देश में स्वाधीन ग्रामों की आर्थिक व्यवस्था थी। जिस तरह आर्थिक प्रणाली में शिल्पी का अपना कौशल प्रमुख था, उसी तरह साधना में साधक का व्यक्तित्व प्रधान था, लोक मानस ने सिद्ध, यतियों और गुरुओं को शिल्पी की तरह किसी कौशल से सम्पन्न व्यक्ति समझना आरंभ कर दिया, होते-होते सिद्धों और गुरुओं के चारों ओर अलौकिक चमत्कारों का एक घेरा बन गया। इस तरह लोक-मानस ने प्रत्येक सिद्ध गुरु को वज्रसत्व या आदि नाथ के बराबर बना दिया। सिद्धों और गुरुओं की महत्ता का दूसरा कारण यह था कि वे भारतीय समाज में उसी वेश और परिवेश में विचरते थे जो सन्यासियों और त्यागियों का था और जिनके प्रति भारतीयों के हृदयों में पारम्पारिक आस्था पहले से ही थी। उधर यह सिद्ध-गुरु भी अपने विचारों का प्रचार अधिकांशतः वैदिक आचार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनभिज्ञ नई जातियों के जनपदों में ही किया करते थे क्योंकि वे सिद्ध-गुरु वैदिक आचार के शिष्ट और संस्कृत जनपदों के शास्त्रीय अक्षर-ज्ञान और शास्त्रीय मर्यादा से भय खाते थे, और प्रतिक्रिया वश नई जातियों के जनपदों में वैदिक ब्राह्मणों के व्यक्तित्व का होड़वश खण्डन किया करते थे ।

(ख)

सिद्ध नाथों का उत्थान

बौद्ध धर्म को लोक जीवन के निकट लाने के लिये कुछ बौद्ध विचारकों ने यह आवश्यक समझा कि बौद्ध विचारधारा को केवल सम्बुद्ध व्यक्तियों तक ही सीमित न रखा जाए, वरन् उससे समस्त लोक का कल्याण किया जाये । लोक में बौद्ध विचार को ले जाने के लिये लोक के आचार को कुछ सीमा तक अपनाना पड़ा। परिणामतः शून्यवाद और विज्ञान वाद का तिरस्कार हुआ ।

बौद्ध आचार्य नागार्जुन ने माध्यमिक शास्त्र में शून्यवाद की स्थापना की थी जिसका अभिप्राय यह है कि संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो कारणों पर निर्भर न हो, और कोई ऐसा धर्म नहीं जो हेतुओं पर आधारित न हो । कोई भी वस्तु और कोई भी धर्म स्वतंत्र नहीं, सभी परतंत्र है, इसलिये सभी स्वभाव शून्य हैं । यही शून्यवाद है । शून्यवाद के तर्क ने तथागत बुद्ध को निःस्वभाव ठहरा दिया था। यह बात लोक विश्वास के अनुकूल नहीं थी । अश्वघोष और वसुबन्धु और असंग जैसे चिन्तकों को इस बात का अनुभव हुआ, इसलिये उन्होंने शून्यवाद की त्रुटियों को दूर करने के लिये विज्ञानवाद चलाया, इसे भूततथतावाद भी कहा जाता है । विज्ञानवाद ने मनोभय जगत की सत्ता को स्वीकार किया था, और बाह्य जगत की सत्ता का निषेध । उनका विचार है कि विश्व केवल चेतनाओं, प्रत्ययों और विज्ञानों की शृंखलामात्र हैं। संसार केवल विज्ञान-प्रवाह है, और इसका अन्तिम लय विज्ञप्तिमात्र में है । प्रत्येक पदार्थ भाव और अभाव से परे हैं, न उसकी उत्पत्ति है और न ही अवसान। इस तथ्य की विज्ञप्ति ही निर्वाण है । विज्ञप्ति का आधार चित्त है, इसलिये चित्त साधना पर विज्ञानवाद ने जोर दिया, और महायान के अन्दर एक योगाचार सम्प्रदाय का जन्म हुआ । योगाचार के अनुसार बोधिचित्त को उत्पन्न करने के लिए छः पारमिताओं की साधना करनी पड़ती है। वे हैं, दान, शील, शान्ति, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा । प्रज्ञा की साधना के बाद ही बोधिचित्तोत्पाद होता है और उसमें शून्यता ज्ञान और करुणा का समावेश हो जाता है । तब बोधिचित ऊपर की ओर जाता है और दस विभिन्न भूमियों को पार करता है । चर्या की यह प्रणाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन सुलभ नहीं थी । लोक के लिये कुछ सरल मार्ग चाहिए था ।

बौद्ध विचारकों ने सरल मार्ग की खोज के लिये वैदिक धर्म से सहायता लेकर वैदिक देवों के समकक्ष बोधिसत्वों की कल्पना की । बोधिसत्वों की शरणागति के साथ पूजा-अर्चना के विधान ने जन्म लिया । इसके अतिरिक्त पारमिता-शास्त्र को भी संक्षेप में लिखा जाने लगा, और परिणामतः सूत्रों का जन्म हुआ । सूत्रों की संख्या को कम करते करते अन्त में केवल एक हृदय सूत्र रह गया । यही सूत्र मंत्र कहलाये , और एक मंत्रमय शाखा बनी । इस शाखा में तांत्रिक साधनाओं का अधिक समावेश हुआ, कारण यह कि नई जातियों के जनपदों में तांत्रिक आचार का प्राधान्य हो चुका था । तांत्रिक प्रभाव के कारण शून्यता और विज्ञान के दो सिद्धान्तों के साथ 'महासुख' नाम का एक नया सिद्धान्त स्थिर किया गया । 'महासुख' सिद्धान्त ने प्रज्ञोपाय साधना को जन्म दिया । तांत्रिक प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित महायान को बज्रयान कहा जाने लगा । महायान के शून्यवाद और विज्ञान-वाद में तो दर्शन प्रधान था, परन्तु वज्रयान में क्रिया, चर्या, अभ्यास, और अनुष्ठान प्रधान हो गये, इन्हीं से वज्रयान रहस्यमय हो गया । इन रहस्यों में स्नात आचार्यों को वज्रपानी सिद्ध कहा जाने लगा ।

अपभ्रंश काल के वैष्णवों, शैवों शाक्तों आदि से वज्रपानी सिद्ध काफ़ी प्रभावित हुए, और फिर सामान्य जनता को इन सिद्धों ने प्रभावित किया, कबीर प्रभृति सन्त कुछ सीमा तक इन सिद्धों की परम्परा से ही हैं ।

बौद्ध परम्परा के अनुसार गुरु गोरख नाथ वज्रयानी साधक थे, जो बाद में शैव हो गए । नाथ पथ का बौद्ध मार्ग के साथ क्या सम्बन्ध है, इस प्रश्न पर विचारकों के दो दल हैं, एक दल नाथ पंथ को वज्रपान की शैव शाखा मानता है, और दूसरा वज्रपानी सिद्धों को ही प्रच्छन्न नाथ पंथी मानता है । इन दोनों मतों के मध्य में एक तीसरा मत यह है कि कनफटी साधनाओं वाली नाथ परम्परा बहुत पुरानी है, गुरु गोरखनाथ तो केवल इन साधनाओं को व्यवस्थित और संगठित करने वाले थे । कायायोग के साधन समग्र भारत में प्रचलित थे, गुरु गोरखनाथ ने तो शैव परम्परा और आत्मानुभूति से चक्रों को नियत किया । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार गुरुगोरखनाथ ने ब्राह्मण विरोधी सारे साधनामार्ग को संस्कृत किया, उसकी अशिक्षाजनित रूढ़ियों को परिष्कृत किया । वज्रपानी साधना के परिभाषिक शब्दों के सांस्कृतिक अर्थ को बलपूर्वक पारमार्थिक रूप दिया । नाथ सम्प्रदाय ने वेद बाह्य उद्गम से उद्भूत सारे साधना मार्ग को सुसंस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, भले ही उसका रूढ़ि विरोधी रूप ज्यों का त्यों बना रहा, किन्तु उसकी अशिक्षा-जन्य प्रमाद पूर्ण रूढ़ियां परिष्कृत हो गईं ।

गुरु गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्र थे, जिन्होंने वाम-कौल तंत्र की पुस्तकें लिखी थीं । कुछ किम्वदन्तियां प्रचलित हैं कि तांत्रिक वामाचार की साधनाओं के विषय पर गुरु मत्स्येन्द्र नाथ और उनके शिष्य गुरु गोरखनाथ में मतभेद था। डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का विचार है कि **गुरु गोरखनाथ पर ब्राह्मणों के वैदिक आचार का प्रभाव** था। गुरु गोरखनाथ के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि वह पहले बौद्ध थे, और फिर शैव हो गए। वास्तव में गुरु गोरखनाथ की साधना का मूल स्वर शुद्धतावाद है। उन्होंने शील और संयम के आधार पर तांत्रिक उच्छृंखलताओं का विरोध किया। इस विरोध का फल यह हुआ कि कुछ तांत्रिक जो वैदिक आचार से बाहर थे, वे नाथ पंथ से भी बाहर रहे, और ऐसे तांत्रिक यवन आक्रमण के समय मुसलमान हो गए, परन्तु मुस्लमान बन जाने के पश्चात् वे भी अपनी तांत्रिक साधनाएं किसी न किसी रूप से करते रहे; इस तरह तांत्रिक साधनाएं सूफी मार्ग में प्रविष्ट हो गईं। पंजाब में कुछ ऐसे मुसलमान योगी हुए हैं जो मुहम्मद साहब की चमत्कार गाथाएं गाया करते थे। अभिप्राय यह कि तांत्रिक साधना के कुछ तत्त्व मुसलमान सूफियों में घुलमिल गये थे।

गुरु मत्स्येन्द्र और उनके शिष्य गुरु गोरखनाथ में प्रमुख भेद यह था कि गुरु मत्स्येन्द्र नाथ अधिक तांत्रिक थे, और गुरु गोरखनाथ वैदिक आचार से अधिक प्रभावित थे, गुरु गोरखनाथ में भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर लेने वाली भावना अधिकांश में व्याप्त थी। गुरु गोरखनाथ में ज्ञान और योग प्रमुख थे और भावना और भजन गौण थे, परन्तु कबीर आदि सन्तों में भावना और भजन प्रमुख थे। भावना और भजन की इस प्रधानता का कारण बौद्धों और वैष्णवों का समन्वय ही है। सन्तों पर बौद्ध प्रभाव सिद्ध नाथ परम्परा से आया। यह परम्परा सिद्ध साहित्य में निहित है।

सिद्ध साहित्य से अभिप्राय अपभ्रंश में लिखे उन दोहों और चर्यापदों से है जिनकी रचना वज्रयानी परम्परा के सिद्ध आचार्यों ने की है। दूहाकोषों के अध्ययन से प्रकट होता है कि सरहपा और कान्हपा आदि सिद्धों ने अक्षर ज्ञान की अपेक्षा अनुभव ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया, और अनुभव ज्ञान की अभिव्यक्ति सरल और सरस रूप में की। इसी से एक नई अभिव्यक्ति का जन्म हुआ। इस नई अभिव्यक्ति में वैष्णव मार्ग की रामानन्द शाखा की भक्तिभावना, शामिल हुई और परिणामतः एक नव **'भावधारा'** का प्रस्फुटन हुआ। यह भावधारा ही सन्त काव्य की संजीविनी है। सन्तकाव्य में भावधारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मधुर थी परन्तु उनकी अभिव्यक्ति का ढंग अक्कड़वाला था, उसमें रूखापन था। ऐसी रूखी अभिव्यक्ति भारतीय समाज की पारम्परिक मर्यादा के अनुकूल नहीं थी। इसी लिये गोस्वामी तुलसीदास ने सन्तों की रूखी अभिव्यक्ति का सुधार करके भारतीय समाज के अनुकूल मनोवैज्ञानिक और काव्यशास्त्रीय मधुर और प्रेषणीय अभिव्यक्ति का प्रचलन किया जिससे विरोधी स्वयं को हारा हुआ समझे बिना ही सगुण मार्ग की श्रेष्ठता को कबूल कर लेता है।

(ग)

शब्दावली का वैष्णवीकरण

विचार और शब्द को पृथक् करके किसी भावधारा का विकास नहीं आंका जा सकता। विचार प्रचलित शब्दावली का सहारा लेकर ही आगे बढ़ता है, उस शब्दावली के आर्थी विस्तार में घटा-बढ़ी करके अपना काम चलाता है और ऐसी घटाबढ़ी करते समय विचार प्रचलित शब्द से अवश्यमेव प्रभावित होता है। अभिप्राय यह कि विचार कभी भी शब्द की काली छाया से मुक्त नहीं हो सकता।

सन्त सम्प्रदाय ने नाथों-सिद्धों की शुष्क दार्शनिक शब्दावली को स्वीकार करते हुए उसे वैष्णववाद के भावबोध से अनुप्रमाणित किया, अर्थात् उन्होंने नाथ शब्दावली को वैष्णव अर्थ दिये और शब्दावली का वैष्णवीकरण हुआ।

शून्य

सिद्धों ने 'शून्य' शब्द का प्रयोग किया है परन्तु सिद्धों का 'शून्य' शब्द शून्यवाद के 'शून्य' शब्द से भिन्न है, वह विज्ञानवाद के 'शून्य' शब्द के अधिक निकट है क्योंकि विज्ञानवाद ने शून्य को तथता रूप माना है और सिद्धों ने इसी तथता रूप को प्रज्ञा अथवा महामुद्रा कहा है। तब तक 'शून्य' तत्वज्ञान था जो कि प्रतीत्य समुत्पाद की तर्क प्रणाली द्वारा प्रतिपादित था परन्तु नाथ सम्प्रदाय में आकर 'शून्य' 'ब्रह्म' का पर्याय बन कर रह गया। सन्त सम्प्रदाय ने वैष्णव भाव बोध के संदर्भ में शून्य को नया अर्थ दिया। सन्त सम्प्रदाय के कई पंथ बने, प्रत्येक पंथ 'शून्य' की व्याख्या अपने अपने ही ढंग से करता था। सन्तों के पूर्ववर्ती नाथ साहित्य में शून्य की व्याख्या इस प्रकार है :--

वसती न सून्यम् सन्यम् न वसती
अगम अगोचर ऐसा,
गगन सिषर यहि बालक बोले,
ताका नांव धरहुगे कैसा।

'बालक बोले' के पीछे हठयोग की वह धारणा है कि जिसमें सृष्टि का मूल कारण 'शब्द-ब्रह्म' को ही माना जाता है। बौद्ध आचार्य शान्ति रक्षित ने भी इस बात को स्वीकार किया था। इस शून्य को पूर्ण का भी द्योतक माना गया है :—

अन्तः शून्यो वहीः शून्यः शून्य कुम्भ इवाम्बरे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तः पूर्णं बहिः पूर्णं पूर्णं, कुम्भ इवार्णवे ।

कबीर का "फूटा कुम्भ" वाला पद्यांश इसी की पुनरावृत्ति है ।

नाथपंथियों की सिंगी नाद तत्त्व अर्थात् शून्य की ही प्रतीक है । नाथ परम्परा में शून्य परम तत्त्व नाद, शिवलोक तथा ब्रह्मरन्ध्र के लिये प्रयुक्त हुआ है । सन्त साहित्य में शून्य का अर्थ परम तत्वनाद और ब्रह्मरन्ध्र तो उसी प्रकार है, परन्तु शिवलोक के स्थान पर परम लोक हो गया है, इससे स्पष्ट है कि सन्त परम्परा इस दिशा में शैवमत की अपेक्षा वैष्णव मत से अधिक प्रभावित थी । सन्तों ने शून्य को बौद्ध परम्परा से अलग कर लिया और उसे परिशोधित करके निर्गुण राम की साधना में अन्तर्युक्त कर लिया । सिद्धों ने शून्य में वज्र की स्थिति मानी थी, और सन्तों ने उसमें राम-रसायण की ।

निरंजन और सत्य पुरुष नाम के दो देवताओं के संघर्ष की हार जीत से भी शून्य की पदवी घटती-बढ़ती रही है । "निरंजन-बोध" में निरंजन का वास शून्य में माना गया है और निरंजन बोध का शून्य सात द्वीप, नौ खण्ड, सात पाताल और इक्कीस ब्राह्मण्डों से परे है । परन्तु जब सत्य पुरुष की पदवी निरंजन की पदवी से ऊंचो मानी गई तो परमलोक की पदवी शून्य लोक से अलग करके ऊंची मानी गई :—

सुन्न के परे पुरुष धामा ।
तहं साहब है आदि अनामा ।

काण्हया ने अपने दोहा कोष में शून्य की चार पंखड़ियां बताई हैं । उसका सैद्धांतिक कारण यह है कि वज्रयानी साहित्य में शून्य के चार भेद बताये गए हैं, शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और सर्वशून्य। सन्त सम्प्रदाय के कबीर पंथ में आकर शून्य की बहुत वृद्धि हुई । ज्ञानपरक और तात्त्विक अर्थ से अलग होकर कहीं कहीं शून्य का प्रयोग वैष्णव देवता के अर्थ में किया जाने लगा । महायानियों ने तो शून्य के साथ करुणा को महत्त्व दिया था, **परन्तु कबीर ने शून्य के साथ राम-भक्ति को समन्वित किया** । होते-होते भक्ति प्रमुख हो गई और शून्य गौण । सन्त कवि रैदास ने हरि भक्ति को ही परमार्थ बताया है ।

गुरु गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्र नाथ ने सहज शून्य की भी कल्पना की है :—

सहज-सूनि तन मन थिर रहै
ऐसा विचार मछिन्द्र कहैं ।

इसके आधार पर नाथ पंथ में सहज शून्य को शून्य से श्रेष्ठतर समझा जाता है। सन्त दादू में सहज शून्य और शून्य में भेद स्पष्ट है, परन्तु अन्य सन्तों में यह भेद स्पष्ट नहीं है। कबीर पंथ के अनुसार सहज शून्य वह परमपद है जहां जीव द्वैत से मुक्त होकर पहुंचता है। यह परमपद वैष्णवों के वैकुण्ठ के समरूप समझना चाहिए ।

सहज

'सहज' शब्द के सर्वप्रथम प्रयोग के सम्बन्ध में विद्वानों का ऐसा विचार है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि बौद्ध और शैव दोनों पद्धतियों ने किसी तीसरी पद्धति से इस शब्द को ग्रहण किया है। नाथ सम्प्रदाय की वानियों में सहज का प्रयोग परम तत्त्व के लिये भी हुआ है, और परम ज्ञान के लिये भी। सन्त परम्परा तक आते-आते वैष्णव प्रभाव के कारण 'सहज' भी परमपद का समानार्थक बन गया :—

अवधू सहजैं लेणा सहजैं देणा
सहजैं प्रीति ल्यौ लाई,
सहजैं सहजैं चलेगा रे अवधू
तौ वासण करैगा समाई ।

सन्तों ने 'सहज रहनी' पर विशेष बल दिया है उन्होंने शिव और शक्ति के संगम के रूप में भी "सहज" की व्याख्या की है (सन्त परम्परा शिव और राम में भेद नहीं मानती)। संत परम्परा निर्गुण-वादी होते हुए भी सगुण भक्तिवाद के बहुत निकट थी। उसकी भावधारा में योग नहीं था और न ही तंत्र था, बल्कि शुद्ध भक्तिभाव था। सन्तों का परमतत्त्व एक वैयक्तिक ईश्वर के समान है, और यह बात सन्त परम्परा पर "वैष्णव" प्रभाव को प्रकट करती है। महायानी बौद्धों ने तथागत की तीन कायाओं में चौथी सहज काया की कल्पना जोड़ी जरूर थी, परन्तु वहां जीव स्वयं बुद्ध बनता था, इसलिये वहां तथागत की कृपा का महत्त्व नहीं था, परन्तु सन्तों ने राम की कृपा का महत्व स्थापित किया और उसकी कल्पना सहज रूप में की। यह भी सन्त परम्परा में वैष्णव प्रभाव का प्रमाण है। सन्त परम्परा में सहज सुहाग का भी वर्णन है :—

कहत कबीर मैं कछु नहि कीन्हा,
सहज सुहाग पिया मोहि दीन्हा ।

गुरु

सिद्धों से पहले वैष्णव संहिताओं में भी बाह्य अनुष्ठानों में साधक को दीक्षित करने के लिये गुरु की महत्ता को स्वीकार किया गया था। साधकों की मानसिक अवस्थाओं के अनुसार ही उनके लिये विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान नियत किये जाते थे। साधना पद्धति को चार पादों में विभाजित किया गया था, ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या। साधक की मानसिक अवस्था के अनुसार उसे किसी एक पाद में दीक्षित करने के लिये गुरु की आवश्यकता पड़ती थी। इसी कारण से वैष्णव संहिताओं में गुरु की महत्ता स्वीकार की गई थी। आठवीं शती में कुमारिल के पट्ट शिष्य प्रभाकर ने तो **"गुरुमत"** की स्थापना की थी। यह गुरु मत वैष्णव संहिताओं की पद्धति के अनुसार था।

वैष्णव सम्प्रदाय में गुरु महिमा का विकास वैदिक परम्परा के अनुसार हुआ है। वैदिक परम्परा में गुरु महिमा का महत्त्व वैदिक आश्रमों में वेद-शिक्षा देने के कारण था। उसके पश्चात् उपज्ञात चरण बने जिनमें पाणिनि का उपज्ञात चरण प्रसिद्ध है। इस चरण में लौकिक विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा व्याकरण आदि की विद्या दी जाती थी। वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के चरणों में गुरु का महत्त्व था। दक्षिण के वैष्णव मठों में भी इसी परम्परा में गुरु का महत्त्व था जो स्वामी रामानंद की परम्परा से उत्तर भारत में आया, वहां सिद्ध परम्परा के गुरु महत्त्व के साथ इसका समन्वय हुआ।

गुरु का महत्त्व सिद्धों की साधना पद्धति में स्पष्ट है क्योंकि उसमें तांत्रिक पद्धतियों का स्थान है। तिलोपा सिद्ध ने कहा है कि परम तत्त्व समस्त लोक और पंडितों के लिए अगम और अगोचर है, परन्तु गुरु के प्रसन्न होने पर वह सुगम हो जाता है। निगमन और आगमन से परे की तथता भी गुरु के उपदेश से ही हृदयंगम होती है। सिद्ध सरहपा ने भी गुरु के महत्त्व को कई स्थलों पर स्वीकार किया है। गुरु द्वारा प्रदत्त बोध से ही चित्त का निरोध होता है और इसी से पवन का श्वास निरोध होता है। सिद्ध लुईपा भी समस्त ज्ञान की प्राप्ति गुरु से ही मानते हैं। सिद्ध विचारधारा का यह सिद्धान्त है कि जगत प्रवाह में बहते हुए साधक को गुरु ही निरुद्ध करता है। गुरु की प्रसन्नता से ही शिष्य परम तत्व को ग्रहण करता है। गुरु के वचन पतवार के समान हैं जो शिष्य की साधना-नौका का निर्देशन करते हैं। परन्तु शिष्य को ये लाभ तभी होते हैं, यदि वह गुरु के सामने मुग्ध बालक की भांति सरल चित्त से रहे।

सिद्धों की विचारधारा की अन्य प्रमुख बातें तो बौध धर्म से सम्बन्धित हैं, परन्तु गुरु-भक्ति वाली बात तांत्रिक मार्ग से सम्बन्ध रखती है। बौद्ध धर्म में तो संघ का प्रधान स्थान था, गुरु का नहीं। तांत्रिक साधना में योग और अनुष्ठान का महत्त्व होता है। योग की दुरूहता के लिये गुरु की आवश्यकता थी, और एक अन्य कारण यह भी था कि तांत्रिक पद्धति वाले स्वयं को वैदिक ब्राह्मणों की भांति प्रसिद्ध करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने गुरु को केन्द्र में रख कर तांत्रिक पद्धति का संगठन करना चाहा। इन दो कारणों से तांत्रिक पद्धति की गुरु भक्ति महायानी सम्प्रदाय के सिद्धों में प्रविष्ट हो गई।

परवर्ती सन्त सम्प्रदाय में गुरु भक्ति सिद्धों और वैष्णवों दोनों ही स्रोतों से आई। सन्त कबीर पर स्वामी रामानन्द के प्रखर व्यक्तित्व का प्रभाव अधिक था इसलिये सन्त कबीर और कबीर से प्रभावित अन्य सन्तों के गुरुमतों पर वैष्णव संहिताओं का प्रभाव पड़ा। पंजाब में गुरु नानकदेव के वरिष्ठ समकालीन सिद्ध बाबा गुसाईं दास पर भी रामानन्द परम्परा का स्पष्ट प्रभाव है। गुरु नानकदेव के सुपुत्र बाबा श्रीचन्द की साधना पद्धति में शंकराचार्य के ज्ञान और वैष्णव संहिताओं की क्रिया और चर्या का सुष्ठु समन्वय है।

सिद्धों ने जहां तहां अनुष्ठानों का विरोध किया है वहां उनका अभिप्राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत प्रतिशत वैष्णव अनुष्ठानों से नहीं है वरन् उनके विरोध का अधिकांश विषय वे तांत्रिक अनुष्ठान हैं जो प्रज्ञोपाय की चेतना से रहित थे । परिस्थितियों के ऐसे संपुट में से सन्त कबीर की सृष्टि हुई । सन्त कबीर एक ऐसे बिन्दु पर खड़े हैं जहां से एक ओर तो निर्गुणवाद निकल जाता है और दूसरी ओर से सगुणवाद । एक ओर से परम ब्रह्म निकल जाता है, और दूसरी ओर से सगुण ईश्वर अथवा उसका प्रतिनिधि राम । कबीर की विचार धारा का अधिकांश भाग अपने समय की परिस्थितियों में अपना स्थान बनाने में लग गया क्योंकि वैदिक आचार के साथ प्रत्यक्ष रूपेण सन्त कबीर सम्बद्ध नहीं था, इसलिये उसे अपने अनुभव के आधार पर एक लम्बा मार्ग करके वैदिक आचार के तथ्यों पर पहुंचना पड़ा । तांत्रिक सम्प्रदाय की त्रुटियां सन्त सम्प्रदाय के समय तक प्रचलित थीं, इसलिये सन्तों ने भी ऐसे अनुष्ठानों का खण्डन किया है। सन्तों के खण्डन को वैष्णव अनुष्ठानों का ही खण्डन समझना एक भ्रांति है जो कि उस युग की परिस्थितियों के संपुट को पूरी तरह उधेड़े बिना हो जाती है ।

सन्त मत की पृष्ठभूमि में वैष्णवों और नाथों की भावधारा का समन्वय स्पष्ट रूप से समझ लेने के पश्चात् ही सन्त मत को सही रूप में प्रकट किया जा सकता है। सन्त मत के इन दोनों तत्त्वों में कुछ घटा-बढ़ी हुई, और इस घटा-बढ़ी के अनुसार सन्त मत में विभिन्न पंथ बने। विभिन्न पंथ बनने के पीछे एक अन्य कारण यह था कि भारतीय समाज की परम्परा के अनुसार वैदिक चरण, लौकिक चरण और वैष्णव मठ पहले से ही प्रचलित थे, उन्हीं के अनुरूप प्रत्येक सन्त अपना मठ अलग से स्थापित करना चाहता था। उसी मठ-इच्छा से अलग अलग पंथ बने । विभिन्न पंथों की दार्शनिक पृष्ठभूमि में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं था।

सन्त काव्य में यक्ष परम्परा की कोई प्रतिक्रिया है, अथवा नहीं, यह विषय अनुसन्धित्सु विद्यार्थियों के लिये एक रोचक विषय है ।

परवर्ती शैव सिद्धों ने कानपा को भी अपनाया और जालन्धरपाद को भी। कानपा (कृष्णपाद) का यह मत था कि चरम प्राप्तव्य की प्राप्ति इसी शरीर में होती है। अनङ्गवज्र ने भी कहा था कि चित्तरत्न को संक्षुब्ध नहीं होने देना चाहिए। जालन्धरपाद कानपा के गुरु बताये जाते हैं और जालन्धर पीठ को वज्रयानी साधना का एक प्रधान केन्द्र माना जाता है। प्राचीन काल में जालन्धरायणन का पार्वती क्षेत्र यक्षों की क्रीड़ास्थली मानी जाती थी ।

यक्षों का महत्त्व बुद्धपूर्व काल में भी था। कामदेव, कुबेर और वरुण यक्ष देवता ही हैं। बौद्धकाल में मणिभद्र और वज्रपाणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि प्रमुख यक्षों को महात्मा बुद्ध का शिष्य बताया गया है । वज्रयानी साहित्य में वज्रपाणि एक महान देवता हैं । कुछ वज्रयानी देवताओं को शैव मत में शिव के समान माना गया । उसके पश्चात् उन्हीं वज्रयानी देवताओं का ब्राह्मणीकरण हो गया । आज जालन्धरपीठ के पार्वती क्षेत्र में वज्रेश्वरी देवी, चिन्तापूरणी देवी तथा मनु और व्यास के आश्रम इसके उदाहरण हैं तथा नंगल भाखड़ा से लगभग दस मील ऊपर सिद्ध बाबा ड्यूट सिद्ध का डेरा इस क्षेत्र में सिद्ध परम्परा का द्योतक है ।

वास्तव में सन्तकाव्य के दो स्पष्ट और अलग रूप हैं । एक रूप है रहस्य और साधना का, और दूसरा रूप है भक्ति-भावना और सामाजिक जीवनयापन का । रहस्य और साधना में सन्त कवि-गुरु यक्ष मार्ग, वज्रमार्ग, सिद्ध, मार्ग नाथमार्ग और शैव मार्ग की क्रिया-प्रतिक्रिया की परम्परा से सम्बद्ध थे परन्तु भक्तिभावना में दक्षिण से उठी वैष्णवधारा के राम-मार्ग कृष्णमार्ग से अवश्यमेव प्रभावित थे । रामकृष्ण मार्ग को सन्त कवि-गुरुओं ने सिद्ध मार्ग के अनुकूल बनाने के लिये उसे निराकार रूप में ग्रहण करने का यत्न किया परन्तु उसे निर्गुण के स्थान पर सगुण कर लिया । **सन्तों का "सगुण निराकार" वैष्णवाद का सिद्धमार्ग में अनुकूलन है ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्रि-परिषद की परम्परा

शिवशंकर त्रिपाठी

'मन्त्र सम्पदा हि राज्यं वर्धते' राज्य-विकास के लिये मन्त्री ही सर्वश्रेष्ठ साधन अथवा सम्पत्ति है, राजा या राज्य के लिये सुयोग्य मन्त्री चाहिए। मन्त्री को तर्कशास्त्र, दण्डनीति और वार्ता आदि समस्त शास्त्रों का पूर्ण अध्येता होना चाहिए। मूलतः यह परम्परा वेदकालीन समाज-व्यवस्था से ही चली आ रही है। उसी समय के राजकृत और रत्नी ही कालोपरान्त मन्त्री की संज्ञा से अभिहित होने लगे। सेनानी, पुरोहित, राजन्य, सूत, ग्रामणी, क्षत्रिय, संगृहितृ, समाहतृया समाहर्ता, भागदुह (राजकर का संग्रश करने वाला), अक्षावाप और गोविकर्तृ आदि ग्यारह रत्नी कहे जाते थे। ये रत्नी ही मिल कर निर्वाचन के समय राजा की बाहु पर धारण करने के लिये पलाशकाष्ठ से निर्मित एक मणि प्रदान करते थे जो राजा के लिये राज्याधिकार-सूचक चिन्ह माना जाता था। राजा उसे ग्रहण करते समय कहता था--"हे पर्ण, हे धीवान्, रथकार और मनीषी कारीगर तथा मेरे पार्श्व में उपस्थित सभी जन हमारी रक्षा करें।"--(अथर्ववेद ३:५।६-७)। एक प्रकार से इन्हीं का सामूहिक रूप मन्त्रि-परिषद् अथवा मन्त्रियों की एक समिति का निर्माण करता था। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने ऐसे ही सामूहिक संगठन का नामकरण परिषद् किया है जो वेदकालीन हिन्दुओं की राष्ट्रीय सभा का दूसरा नाम प्रतीत होता है। इस परिषद् शब्द का उल्लेख वृहदारण्यकोपनिषद् में भी किया गया है--'पांचालानां समितिमेयाय, पांचालानां "परिषदमाजगाम।" इसके पश्चात् रामायणादि ग्रन्थों में राजकृत शब्द का प्रयोग मन्त्री के लिये हुआ है।

मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या के विषय में कोई एक निश्चित विधान नहीं प्राप्त होता। प्रायः मन्त्रिपरिषद् का विस्तार समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है। वृहस्पति के राजनीतिक ग्रन्थ में मन्त्रियों की संख्या सोलह तथा मानवशास्त्र में वारह ही बतायी गयी है--"मन्त्रिपरिषदं व्दादशामात्यां कुर्वेतेति" मानव मन्त्रिपरिषद् की सदस्य सँख्यामात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात अथवा आठ ही मनुस्मृति तथा शुक्रनीति में स्वीकार किया गया है--

अष्टप्रकृतिभिर्युक्तो नृपः कैश्चिन्नस्मृतः सदा।
सुमन्त्रः पण्डितो मन्त्री प्रधानः सचिवस्तथा।
अमात्यः प्राड्विवाकश्च तथा प्रतिनिधिः स्मृता ॥ शुक्रनिति ०॥ २:७१-७२

सुमन्त्र या अर्थमन्त्री, पण्डितामत्य या धर्मशास्त्र का ज्ञाता मन्त्री, मन्त्री अथवा गृह विभाग का मन्त्री, प्रधान या मन्त्रि-परिषद् का सभापति, सचिव या युद्ध का मन्त्री, अमात्य या भूकर और कृषिविभाग का मन्त्री, प्राड्विवाक या न्यायविभाग का मन्त्री और प्रधान न्यायाधीश और आठवां होता था प्रतिनिधि। इस प्रतिनिधि का पद अन्य मन्त्रियों की अपेक्षा अधिक महत्त्व का होता था। किसी भी कार्य को करने अथवा न करने के लिये यही राजा को प्रेरित करने का अधिकारी था। इसे प्रधान मन्त्री से भी प्रथम स्थान प्राप्त होता था। इसी ग्रन्थ में आगे भी सभी मन्त्रियों के विषय में विस्तृत विवेचन भी प्राप्त है--

सर्वदर्शी प्रधानस्तु सेनावित् सचिवस्तथा।
मन्त्री तु नीतिकुशलः पण्डितो धर्मतत्त्ववित्॥
लोकशास्त्रनयज्ञस्तु प्राड्विवाकः स्मृतः सदा।
देशकालप्रविज्ञाता ह्यमात्य इति कथ्यते॥
आयव्ययप्रविज्ञाता सुमन्त्राः स च कीर्तितः।
कर्तुं यद्धितमपि राज्ञः प्रतिनिधिः सदा।
बोधयेत्कारयेत्कुर्यान्न कुयान्न प्रबोधयेत्॥
सत्यं वा यदि वा सत्यं कार्यजातंच यत्किल।
सर्वेषां राजकृत्येषु प्रधानस्तद्विचिन्तयेत्॥
इत्यादि।

मन्त्रणा अथवा परामर्श देने वाले मन्त्री को प्रधान मन्त्री कहा गया है। अर्थ यह है कि अर्थशास्त्र में इसीलिये प्रधान मन्त्री को सर्वप्रधानमन्त्री की संज्ञा से अभिहित किया गया है। महाभारत, शांतिपर्व के पचीसवें अध्याय में मन्त्रि-परिषद् के विस्तार पर चर्चा करते समय भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है—"तुम जिस भाव से जैसे मन्त्रियों को संगठित करोगे, उनका दुर्लभ शील स्वभाव जैसा होना चाहिए, इस बात को मैं प्रयत्नपूर्वक संक्षेपतः कह रहा हूँ--राजा का कर्त्तव्य है कि वह, जो वेदविद्या में विद्वान् सब प्रकार से शुद्ध एवं स्नातक हों ऐसे चार ब्राह्मण, बल वीर्यवान् शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धन और धान्य से सम्पन्न इक्कीस वैश्य, पवित्र आचार-विचार वाले तीन विनयशील शूद्र और आठ गुणों से युक्त एक पौराणिक सूत जाति का मनुष्य, इस प्रकार इन सब लोगों का एक मन्त्रिमण्डल बनाये। उस सूत की आयु लगभग पचास वर्ष की हो और वह निर्भीक, दोषदृष्टि से रहित, श्रुति-स्मृति के ज्ञान से सम्पन्न, विनय शील, समदर्शी, वाद-प्रतिवाद का निर्णायक, लोभरहित तथा अन्य भयंकर दुर्व्यसनों से रहित हो। ऐसे आठ मन्त्रियों से राजा को मन्त्रणा करनी चाहिए।" मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को राजभृत् अथवा राष्ट्रभृत् की संज्ञा से भी अभिहित किया गया है --

राज्यं प्रजा बलं कोशः सुनृपत्वं न बर्द्धितान् ।
यन्मन्त्रतोऽरिनाशस्तैर्मन्त्रिभिःकिं प्रयोजनम्।।
रोधनं न भवेत्तस्माद्राज्ञास्ते स्युः सुमंत्रिणः ।
न विभेति नृपो यैन्यस्ते स्यात्किं राज्यवर्द्धनम् ।
यथालंकारवस्त्राभिः स्त्रियो भूत्वास्तथा हि ते ।।

--शुक्रनीति० । २:८१-८३ ।

सुराजत्व अथवा सुनृपत्व के लिये परमावश्यक है कि राजा की मन्त्रिपरिषद् के सभी मन्त्री शास्त्र तथा नीति में सर्वथा कुशल हों । यदि राज्य, प्रजा, बल और कोश, सुशास्त्र या सुराजत्व का वर्धन न हो और मन्त्रियों की नीति अथवा मन्त्रणा द्वारा शत्रु का नाश न हुआ तो मन्त्रिपरिषद् से कोई लाभ नहीं। मन्त्रिपरिषद् का मुख्य कार्य वास्तव में राजा पर अंकुश रखना होता है । यदि यह मन्त्रिपरिषद् राजा को नियन्त्रित न कर सके तो वह राज्य की मात्र शोभा ही है। राष्ट्र संघटन के विचारकों ने राजा से भी अधिक महत्त्व मन्त्रिपरिषद को ही दिया है । यों राजा को ईश्वर के अंशरूप में प्रतिष्ठित कर, उसमें धर्म एवं नीति के साक्षात् रूप का संयोजन करते हुए मानवशास्त्रकार ने लिखा है --

तदर्थं सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
ब्रह्म तेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ।।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।
स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः
तं राजा प्रणयन्सम्यक्त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते ।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ।
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चा कृतात्मभिः
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ।।

--मानवशास्त्र ।७।१७, २७ व २८

'ईश्वर ने स्वयं अपने पुत्र की सृष्टि की और उस समस्त भूतों (जीवों) की रक्षा के लिय धर्म बनाया तथा उस धर्म की व्यवस्था के लिये दण्ड स्वरूप जो ब्रह्म के तज से तेजोमय था, निर्मित किया।

'स्वयं धर्म की व्यवस्था अथवा शासन ही वास्तविक राजा है। वही दण्ड अथवा शासन का प्रधान अधिकारी तथा चारों आश्रमों के धर्म का प्रतिभू या रक्षक है।'

'जो राजा सम्यक्रूपेण उसका पालन करता है, वह सब प्रकार से अभिवर्द्धित होता है परन्तु वह यदि स्वार्थी तथा छल कपट वाला हुआ तो उसका हनन स्वयं यही दण्ड ही कर देता है ।'

'दण्ड ही महत् तेज है। दुर्धर लोग इसे नहीं धारण करते । जो राजा धर्म से विचलित हो जाता है दण्ड उसका तथा उसके सभी बन्धु-बान्धवों तक का नाश कर डालता है ।'

ईश्वर के अंशरूप राजा को धर्म तथा नीति-पथ पर अविचल स्थिर रखने के लिये ही मन्त्रिपरिषद् का संगठन होता था। राजा सब प्रकार से इस मन्त्रिपरिषद्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धन में निबन्धित रहता था। कोई भी कार्य राजा मन्त्रिपरिषद् की स्वीकृति के बिना करने का अधिकारी नही होता था। इस विषय में हमारे प्राचीन सभी धार्मिक तथा राजनीतिक ग्रन्थों में एकसा नियम प्राप्त होता है। मनु ने तो मन्त्रिपरिषद् की स्वीकृति के अभाव में कार्य करने वाले राजा को सर्वथा मूर्ख कहा है। मनु का विधान है कि सामान्य कार्य करने के पूर्व राजा मन्त्रियों के मध्य बैठ कर विचार-विमर्श करे——

सोऽसाहयेन मूढ़ेन लुब्धनाकृत्बुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नतुं सक्तेन विषयेषु च॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा ।
दण्डः प्रणयितुं शक्तः सुसहायेन धीमता ॥
अपि यत्सुकरं कर्म्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किमु राज्यं महोदयम् ॥
तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धि-विग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्ति लब्धप्रशमनानि च ॥

–मनु० ७–३०,३१ तथा ५५,५६

वीरमित्रोदय में तो यहां तक उल्लेख है कि राजा को किसी अभियोग का निर्णय भी एकाकी नहीं करना चाहिए। राजतन्त्र के प्रबल समर्थक श्री कौटिल्य ने लिखा है—— "जब कोई विशेष प्रसंग राजा के समक्ष उपस्थित हो जाये तो उस पर विचार-विमर्श करने के लिये मन्त्रियों को आवाहित करते हुए नियमतः उनको सूचना देनी चाहिए। समस्त मन्त्रिमण्डल के निर्णयानुसार जो उचित हो उसी को राजा को भी करना उचित है। ——(आत्यायिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्यात् ।। यद्भूयिष्ठा : कार्यसिद्धकरं ब्रूयुस्तत्कुर्यात्।।–अर्थशास्त्र ।१:१५।११)। इतना ही नहीं इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा है कि इन्द्र की परिषद् में एक हजार बुद्धिमान मन्त्री अथवा सदस्य थे जो उनके नेत्र के समान कहे जाते थे। (इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रं तच्चक्षु :। तस्मादिमं द्वयक्षं सहस्राक्षं आहु :।। इसी प्रकार का कथन शुक्रनीति में भी है। "राजा चाहे समस्त विद्याओं में कितना ही कुशल और नीति अथवा व्यवहार में दक्ष क्यों न हो परन्तु उसे मन्त्रियों की सहायता के बिना राज्य के किसी विषय पर विचार नहीं करना चाहिए। बुद्धिमान राजा को सदा अपनी परिषद के सदस्यों, अधिकारियों या विभागीय मंत्रियों, उनके सभापति और प्रजा की सम्मति के अनुसार कार्य करना चाहिए। जब राजा अपनी परिषद् से स्वतन्त्र हो जाता है तब वह मानो स्वयं ही अपने नाश की कल्पना या योजना तैयार करता है। समय पाकर वह अपना राष्ट्र या राज्य और प्रकृति अर्थात् प्रजा दोनों को खो देता है।" (शुक्र० २:२,३ व चार)। अर्थ यह है कि शासन सम्बन्धी जो कार्य पूर्णतः नियमानुमोदित तथा धर्म संगत हो, उसके लिये राजा को चाहिए कि वह अनुभवी निज मन्त्रियों की सम्मति एवं स्वीकृति प्राप्त करने के ही पश्चात् करे, यही उसके लिये श्रेयस्कर है——

धर्ममपि लोकविकुष्टं न कुर्यात् ।
करोति चेदाशास्यैनं बुद्धिमद्भिः ॥

——बृहस्पतिसूत्र ।१:४,५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में राष्ट्रीय भावना का विकास

डा० राजमल बोरा

राष्ट्रीय भावना का उदय विश्व के इतिहास में सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। राष्ट्र का सब से प्रथम उपादान है भौगोलिक सीमा का ज्ञान और उसके प्रति अनुराग। ये दोनों ही बातें हमें प्राचीन साहित्य में मिलती हैं, जो तत्कालीन राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करती हैं। भारत के प्रायः सभी लोग देश की भौगोलिक एकता को स्वीकार करते थे। राधा कुमुद मुकर्जी ने लिखा है—"एक जाति के रूप में भारतवासियों ने अपने मातृदेश के भौतिक व्यष्ठित्व को बहुत पहले अनुभव कर लिया था। उन्हें वह आवश्यक मूर्त्त आधार पहले ही प्राप्त हो चुका था जिस पर राष्ट्रवाद की भावना का निर्माण किया जा सकता था।"१ भौगोलिक एकता का अनुभव करते हुए यहां के निवासी अपनी मातृभूमि से प्रेम करते थे। स्वयं अथर्ववेद में मातृभूमि के प्रति ६३ भावुकतापूर्ण प्रार्थनाएं हैं। देशानुराग देशभक्ति की भावना तो थी ही इसके साथ-साथ इस देश के निवासियों मे आत्मसम्मान का भाव भी था। राष्ट्रीय भावना में आत्मसम्मान का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यही भावना उनमें और भावनाओं को बल देती है। राधाकुमुद मुकर्जी मनुस्मृति का आधार देते हुए लिखते हैं—"हिन्दु अपने अन्तस्तल में यह विश्वास करते हैं कि उनका देश ईश्वर द्वारा विशेष रूप से चुना गया देश है, जहां लोग अंतिम मोक्ष के योग्य बनने के लिये पैदा होते हैं। यह उस विषय में राष्ट्रीय विश्वास को निरूपित करती है और मनुस्मृति का वह संदर्भ काव्य का रूपक मात्र नहीं है बल्कि सारे देश में व्याप्त और गहराई से अनुभव की जाने वाली राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति है। मातृभूमि को उसकी संतान सब जगह स्वर्ग से भी अधिक पवित्र और स्वयं देवताओं के निवास के योग्य समझते हैं।"२

प्राचीन काल का भारत वर्णाश्रम की

१. हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद—राधाकुमुद मुकर्जी—पृ० ४८।

२. —वही—पृ० २८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

व्यवस्था में विश्वास करने वाला था । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब के अपने-अपने कर्म निश्चित थे । समाज व्यवस्था इसी प्रकार की थी । सामाजिक और धार्मिक नियमों के विधाता ब्राह्मण लोग थे और ये इस मामले में राजा महाराजाओं का हस्ताक्षेप नहीं चाहते थे । राजा महाराजा उनकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते थे । राजा का धर्म ब्राह्मणों की सेवा करना व उन्हें इच्छित वस्तुएं देकर प्रसन्न करना था । ऐतरेय ब्राह्मण (ऐ० ब्रा० ८,१) कहा गया है कि जो नृपति ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करेगा वह नष्ट हो जायगा । ऐसी स्थिति में यह माना जा सकता है कि समाज में यह वर्ग शक्तिशाली था । सामाजिक विधान के बनाने वाले और धर्मशास्त्र के रचयिता यही लोग थे । इस काल की राष्ट्रीय भावनाओं को पुष्ट करने में इस वर्ग का महत्वपूर्ण योग रहा । समाज के सभी वर्गों द्वारा इनका आदर होता था । ये एक राज्य से (इन दिनों के राज्य छोटे छोटे होते थे । महाभाष्य में निम्न देशों के नाम आये हैं --अजमीढ़, अंग, अम्बष्ठ, अवन्ति, इक्ष्वाकु, उशीनर, ऋषिक, कडेर, कलिंग, कश्मीर, काशि, कुन्ति, कुरु केरल, कोसल १ ...आदि आदि) दूसरे राज्य में जाते और सब जगह दान दक्षिणा पाते थे । प्राय: ये लोग धर्म का प्रचार करते, अध्ययन और अध्यापन का काम करते या वैयक्तिक साधना । इस वर्ग ने धर्म के आधार पर भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना के विकास में अपना योग दिया है ।

धर्म का राष्ट्रीय भावना से गहरा सम्बन्ध है । सच तो यह है कि धर्म की एकता की भावना ने ही भारतीय संस्कृति को अब तक जीवित रखा है । धर्म नैतिक कर्तृत्व का जनक है और धार्मिक नियमों का नैतिक अनुवर्तन वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को संगठित तथा शक्तिशाली बनाता है । डाक्टर विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ने लिखा है -- "मानव को क्षुद्रता तथा स्वार्थ के अतिक्रमण का संदेश तथा विशाल वृत्तों से तादात्म्य प्राप्त करने वाला कर्मयोग का संदेश भी धर्म से ही प्राप्त होता है । जब धर्म अहंभावोत्क्रमणकारी आत्मप्रसारणरूप कर्म-योग का उपदेश दता है तब राष्ट्रवाद का वह व्यापक धरातल प्रस्तुत करता है...... धर्म ज्ञातीय संस्कृति और परम्परा का रक्षण कर राष्ट्रवाद का ठोस आधार

१. धर्मशास्त्र का इतिहास---डा० पाण्डुरँग वामन काणे---(हिन्दी समिति प्रकाशन) ---पृ० १४६ ।
---उक्त पुस्तक में इनके अतिरिक्त प्राचीन भारत के अनेक राज्यों के नाम दिये हुए हैं ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्ट करता है।"१ प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावना में धर्म का तत्त्व ही प्रबल था। फिर ये धर्म हिन्दू हो, बौद्ध हो या जैन (उन दिनों भारत के यही प्रमुख धर्म थे।) इनमें हिन्दू धर्म का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण था। राजा महाराजाओं द्वारा इन धर्मों को प्रश्रय मिलता था। विश्वामित्र के आदेश पर महाराजा दशरथ को अपने लाडले राम को उनके साथ भेजना पड़ा। वशिष्ठ की आज्ञा से राजा दशरथ कार्य करते थे। ईश्वरसिंह बैस ने लिखा है—"प्राचीन भारत का राजा सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं की मुहर मात्र होता था। किसी भी सुधार या मान्यताओं की स्थापना राजा के हाथ में नहीं होती थी और न ही यह राज्य के कार्यक्षेत्र में शामिल होती थी।"२

राजनैतिक दृष्टि से भारत एक न होने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से एक था। बात यह थी कि भारतीय संस्कृति ने राजनैतिक भावना को उतना अधिक महत्व नहीं दिया। (जितना आज दिया जा रहा है)। धर्म और संस्कृति के सम्बन्ध में भारत का दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही बड़ा व्यापक रहा है। जीवन में उन्हीं का महत्त्व है। भारतीय जनता इस लोक की अपेक्षा परलोक की या मुक्ति की अधिक चिंता करती आई है। जीवन के विश्वासों के आधार भौतिकता की तुलना में आध्यात्मिकता के अधिक रहे हैं। इसी से उपनिषदों की रचना भारत में संभव हो सकी। राधा कुमद मुकर्जी ने ठीक ही लिखा—"भारत का भारतवासियों की मातृभूमि के रूप में विकास ब्रह्मांड के उस प्रक्रम के अनुसार ही हुआ है, जो ब्रह्म को घट में और घट को ब्रह्म में प्रकट करता है। यहां कोई ऐसी संकीर्ण संस्कृति नहीं है जो सार्वभौमिकता से रहित हो और न कोई ऐसी कल्पित संस्कृति है जो आश्रयहीन और इसीलिये निष्फल हो।"३

भारत की भौगोलिक एकता का उल्लेख पुराणों में है। भारतवर्ष हिमालय और दक्षिणी समुद्रों के मध्य के सारे भू-भाग को बताया गया है। इस देश भर में जगह-जगह तीर्थस्थान हैं। यह यहां की जनता के धार्मिक उत्साह का परिणाम है। मुकर्जी ने लिखा है—"तीर्थयात्रा की संस्था अंततोगत्वा मातृभूमि के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति है, यह देश की पूजा है

१. राजनीति और दर्शन—डा० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा—पृ० २२१।
२. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति—ईश्वरसिंह बैस—सरिता—फरवरी १९६[illegible] पृ० ७६।
३. हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद—राधाकुमुद मुकर्जी—पृ० ९०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाक्षणिक हिन्दु रीतियों में से एक है। १ तीर्थस्थानों का जाल भारत भर में उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओर फैला हुआ है। ये इस बात का द्योतक है कि भारत की जनता अपनी मातृभूमि के प्रति पुण्य भाव रखती थी। धार्मिक पुण्य, आध्यात्मिक लाभ के साथ-साथ स्थान-प्रेम भौगोलिक महत्व की दृष्टि और कलात्मक अभिव्यक्ति के तत्त्व भी इसके कारणीभूत हैं।

राष्ट्रीय भावना के प्रसार में, राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति में धर्म और संस्कृति के परिरक्षण में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत भाषा भारतीय भाषाओं की जननी है और यही संसार की सर्वप्रथम समृद्ध भाषा है। इस भाषा के साहित्य में भारतीय राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय दृष्टि में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन के लक्ष्य माने गये इनमें से प्रत्येक विभाग का अपना-अपना साहित्य विकसित हुआ है। संस्कृत भाषा केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, विचार विनिमय वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण रही। इसे साहित्यिक, धार्मिक महत्व तो प्राप्त था ही, लौकिक महत्त्व भी प्राप्त था। इसमें जो कुछ लिखा गया, वह देश भर में प्रामाणिक गया। संस्कृत की प्रामाणिकता पर आज भी भारतीय जनता की आस्था है। इस भाषा की महत्ता का ज्ञान इससे भी किया जा सकता है कि भारत की आधुनिक भाषाओं में तमिल को छोड़ कर अन्य सभी भाषाओं में संस्कृत की गहरी जड़ें जमी हुई हैं। एक दृष्टि से यदि इन भाषाओं में से संस्कृत को हटा दिया जाय तो इनका अस्तित्व क्या रहेगा? संस्कृत के बाद प्राकृत भाषाओं और तत्पश्चात् अपभ्रंश एवं देशी भाषाओं ने भी संस्कृत से शक्ति प्राप्त कर देश की परम्परा को बनाये रखने में एवं राष्ट्रीय भावना के वहन में अपना योग दिया है।

प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावना की विशेषताओं को अब संक्षेप में इस प्रकार से कहा जा सकता है:—

१. भौगोलिक एकता की अनुभूति राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक में थी।
२. भारतभूमि के प्रति अनुराग श्रद्धा और भक्ति का भाव यहां के निवासियों में था और साथ ही उससे सम्बन्ध होने के कारण आत्माभिमान का भाव भी।
३. राष्ट्रीय दृष्टि से धर्म और संस्कृति का स्थान राजनीति से ऊंचा था। एक प्रकार से राजा लोग इसके संरक्षक मात्र थे।
४. तीर्थस्थानों की संस्था भारत की राष्ट्रीय भावना की मूर्त्त और सजीव अभिव्यक्ति रही जिसमें

१. हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद—राधाकुमुद मुकर्जी—पृ० ७६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मकल्याण, मानवमात्र के कल्याण के साथ-साथ देशानुराग और भौगोलिक एकता का भाव भी निहित था।

५. राष्ट्रीय भावना के परिरक्षण और प्रसारण में संस्कृत भाषा का महत्त्वपूर्ण योग रहा और इसके पश्चात् इसी की परम्परा में चलने वाली प्राकृत और अपभ्रंश भाषा ने भी समयानुसार अपने उत्तरदायित्व को संभाला।

प्राचीन काल की राष्ट्रीय भावना में समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन हुआ। यद्यपि राष्ट्रीय भावना के मूल तत्त्व वही रहे किन्तु उस पर राजनीति का रंग धीरे-धीरे चढ़ने लगा। यवनों, शकों, कुषणों, हूणों-किरातों, अरबों-तुरकों तथा मुगलों के क्रम-क्रम से आक्रमण इस देश पर होते रहे। ये आक्रमण भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से हुए और इनकी प्रतिक्रिया भी भिन्न-भिन्न रूपों में हुई जिसके विस्तार में जाने की यहां आवश्यकता नहीं है। यहां इतना ही कहना अभिप्रेत है कि इन आक्रमणों के फलस्वरूप जब-जब भी यहां की राष्ट्रीय भावना को हानि पहुंचने की आशंका हुई तब-तब उसके प्रतिकार की चेष्टा देश भर में हुई है। यह पहले ही कह दिया गया है कि अब तक राष्ट्रीय भावना में राजनीति का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था।

डाक्टर पाण्डुरंग वामन काणे ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है—"धार्मिक दृष्टि से (राजनीतिक दृष्टिकोण से नहीं) सभी ग्रंथकारों ने भारतवर्ष या आर्यावर्त के प्रति भावात्मक सम्बन्ध जोड़ रखा था और सारे राष्ट्र को एक मान रखा था, इस तथ्य को स्वीकार करने में किसी को संदेह नहीं हो सकता। आज हम 'राष्ट्रीयता' शब्द का जो अर्थ लगाते हैं, उसके अनुसार प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयता में हम शासन सम्बन्धी अथवा राजनीतिक तत्त्व का अभाव पाते हैं।'

मध्यकाल में भी भारत में राष्ट्रीय भावना का स्वरूप प्रायः पुराना ही रहा। बाहर से होने वाले आक्रमणों के फलस्वरूप जो प्रतिक्रिया हुई वह सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में ही हुई। इस प्रतिक्रिया का उद्देश्य केवल राष्ट्रीय भावना की सुरक्षा मात्र था। जब सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रतिक्रिया से बाह्य शक्ति को हटाना कठिन हो गया तब फिर देश को राजनीति की ओर ध्यान देने की आवश्यकता भी हुई। इस्लाम की गद्दी दिल्ली में दृढ़ता के साथ स्थापित हो गई थी। यद्यपि ये पहले राजनीतिक रूप से स्थापित हुई थी और जिसमें यहां की जनता ने विशेष आपत्ति नहीं मानी थी तथापि कालान्तर में इस गद्दी पर विराजने वाले कुछ बादशाह ऐसे भी हुए जिन्होंने यहां की राष्ट्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना के मूलभूत तत्वों को हानि पहुंचाने की कोशिश की । अल्लाउद्दीन खिलजी इसी प्रकार का बादशाह था। बाद में औरंगज़ेब के समय में ये स्थिति चरमावस्था पर पहुंच गई । ऐसी स्थिति में सामाजिक और धार्मिक प्रतिक्रिया राजनीतिक शक्ति के अभाव में कुछ नहीं कर सकती थी अतः इस समय राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक प्रतिक्रिया का होना युग की आवश्यक मांग या पुकार थी । इस प्रकार की प्रतिक्रिया मध्यकाल के इतिहास में सर्वप्रथम महाराष्ट्र में हुई और इसके नेता छत्रपति शिवाजी थे । इस प्रतिक्रिया म योग देने वाले बुन्देले, जाट, राजपूत, सिक्ख आदि भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित थे ।

डाक्टर सावित्री सिन्हा ने लिखा है-- "इस समय मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था का आधार था व्यक्तिवादी निरंकुश राजतंत्र । इस प्रकार की व्यवस्था में शासक ही राष्ट्र के भाग्य का विधाता, युगचेतना का नियामक तथा कुछ सीमा तक एक विशिष्ट जीवन-दर्शन का प्रतिपादक भी होता है । उसके सार्वभौम व्यक्तित्व में समस्त अधिकार केन्द्रित रहते हैं । जब शासक विजातीय हो तो इस वैयक्तिक तत्व की निरंकुशता और भी बढ़ जाती है । उसकी दृष्टि यदि समन्वयवादी न हुई तो शासक तथा शासित का सम्बन्ध केवल शोषक और शोषित का ही रह जाता है ।"[२] वास्तव में औरंगज़ेब का यही हाल था । व्यक्तिवादी राजतंत्र पर भारत की जनता का विश्वास था ही साथ ही दिल्ली का बादशाह ईश्वर के रूप में भी पूजा जाता था । वही भारत का सम्राट् भी कहलाता था । जनता की इस भावना की अभिव्यक्ति पंडितराज जगन्नाथ द्वारा हुई है । उन्होंने अपनी पुस्तक भामिनीविलास में लिखा है-- दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा । ऐसी बड़ी शक्ति ने जब भारत की राष्ट्रीय भावना को हानि पहुंचाई तो उसकी प्रतिक्रिया निम्न रूप में हुई ।

औरंगज़ेब के पूर्व अकबर के शासनकाल से ही या उससे कुछ पूर्व ही भक्ति की लहर देश के कोने-कोने में फैल गई थी । संतो, साधुओं, आचार्यों और भक्तों ने देश को मध्यकाल में यह समझाने का प्रयत्न किया कि भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक है । शंकराचार्य का नाम इनमें प्रमुख रूप से लिया जा सकता है । बाद में भक्तों ने-- जो केवल उत्तर में ही नहीं, महाराष्ट्र

1. धर्मशास्त्र का इतिहास--डा० पांण्डुरंग वामण काणे--(द्वितीय भाग))-- पृ० ६४२ ।
२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६, रीतिबद्ध काव्य सं० डाक्टर नगेन्द्र, पृ० १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्नाटक, आन्ध्र आदि दक्षणी भागों में भी—भी आचार्यों के इन विचारों को काव्य के माध्यम से जनता तक पहुंचाया। ज्ञान और भक्ति की तुलना में भक्ति को श्रेष्ठता का पद मिला। मानस के उत्तरा काण्ड और विनयपत्रिका में तुलसी ने इस पर विशेष प्रकाश डाला है। इसी तरह सूर का भ्रमरगीत सार भी भक्ति को महत्त्व देता है। इस काल में आते-आते औरंगज़ेब ने देश में जागी हुई भगवद्-भक्ति की दृष्टि से—जनता की भावनाओं पर कुठाराघात किया तो जनता पर तो इसकी प्रतिक्रिया हुई ही, संत समाज पर भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने भी यह अनुभव किया कि अब "हरि-स्मरण" से कुछ नहीं होगा। महारष्ट्र में समर्थ रामदास ने दासबोध की रचना नए आलोक में युग को परिस्थितियों के अनुरूप की। पंजाब में भी गुरु गोविन्दसिंह ने नानक के दर्शन की व्याख्या इसी दृष्टिकोण से की। इन्होंने राजनीतिक जागृति को महत्व दिया।

इस काल की राष्ट्रीय भावना में सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना भी सम्मिलित है। मुसलमानों के आगमन के बाद भारत की राष्ट्रीय भावना का ह्रास हो गया था। उनके अत्याचारों से ये दबी हुई भावना प्रतिक्रिया के रूप में जागृत हुई। ये जागृति सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक रूप में क्रमशः होती गई और अन्त में इसकी परिणति राजनैतिक जागृति के रूप में हुई। सामाजिक जागृति का नायक इस युग में कबीर हुआ जिसने सारे पाखण्ड और बाह्याचारों का अपनी तीव्र वाणी से निषेध कर समाज को एक स्तर पर एक परमात्मा की छत्रछाया के नीचे लाने का प्रयत्न किया। सामाजिक सुधार के साथ-साथ धार्मिक भेदभाव को भुलाने के प्रयत्न भी इस युग में हुए। इस प्रयत्न में कबीर और अकबर के प्रयत्न अपना विशेष महत्त्व रखते हैं: कबीर वह प्रथम व्यक्ति है जिसने बाहर से आने वाली जाति को भारतीय स्वीकार कर लिया कबीर की घोषणा ने मुसलमानों का विदेशी जामा उतार दिया और उन्हें भारतीयता का पद प्रदान किया। राजनैतिक स्तर पर इसी कोटि का काम सम्राट अकबर ने किया। गोस्वामी जी ने भारत की प्राचीन संस्कृति को—संस्कृत भाषा का सहारा न लेकर लोक-भाषा हिन्दी में—फिर से जीवित करने का प्रयत्न किया। तुलसी का दृष्टिकोण भारत की व्यापक राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने वाला दृष्टिकोण है। बाद में जब शासकों का दृष्टिकोण एकांगी हो गया और भारत की मूलभूत राष्ट्रीय भावना को कुचलने के प्रयास तलवार के बल पर होने लगे (औरंगज़ेब के काल में) तो राजनैतिक जागृति का होना आवश्यक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया। गुरु गोविंदसिंह और समर्थ रामदास ने राष्ट्रीय नवोत्थान में राजनैतिक चेतना को महत्त्व दिया।

समर्थ रामदास के दासबोध की विशेषताओं के सम्बन्ध में प्रो० भी० गो० देशपाण्डे ने लिखा है --"दासबोध में अन्य सन्तों के ग्रंथों की अपेक्षा अध्यात्म के साथ समयानुकूल एवं आवश्यक व्यावहारिक, सामाजिक, राजनैतिक, क्षत्रिय, धर्म उत्तम पुरुष, प्रयत्न, प्रारब्ध स्वधर्म-पालन, सयानपन, मूर्खता या जड़ता, निस्पृहता, चातुर्य उत्तम काव्य के लक्षण लेखन इत्यादि जनजीवन सम्बन्धी विषयों का सरल और सुबोध वर्णन है जो पढ़ते ही बनता है।"१ समर्थ ने राजनीति पर बहुत बल दिया। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि जब तक राजनैतिक जागृति नहीं होगी तब तक धर्म और संस्कृति की रक्षा संभव नहीं है। प्रो० भी० गो० देशपाण्डे ने समर्थ के राजनैतिक दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए लिखा है --"उनकी (समर्थ को) दृष्टि में राजनीति का अर्थ है सामाजिक प्रपंच, लोक व्यवहार और सामाजिक कार्य, जिसमें आज की राजनीति पूरी समा जाती है। इसी अर्थ में आपने दासबोध में सताईस स्थलों पर राजनीति का उल्लेख किया।"२ राजनीति के क्षेत्र में वे उग्र और प्रगतिशील थे। समर्थ के इस स्वप्न को शिवाजी ने चरितार्थ किया। समर्थ रामदास ने जो क्रान्तदर्शिता दक्षिण में दिखाई उत्तर में सिक्खों के दसवें गुरु गोविंदसिंह ने दिखाई। तत्कालीन राष्ट्रीय नवोत्थान में आपने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आपके समान पंजाब में उन दिनों कोई राजनैतिक नेता न था। डाक्टर जयराम मिश्र ने लिखा है--"गुरु गोविंद सिंह जी धार्मिक नेता तो थे ही, साथ ही अपूर्व महान् राष्ट्रीय भी थे.....इन्होंने सिक्खों को बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार का अमृत पिलाया। इन्होंने आध्यात्मिक उपदेशों द्वारा सिक्खों के व्यक्तिगत अहंभाव को नष्ट कर दिया। इन्होंने सिक्खों के सम्मुख सेवा, त्याग और राष्ट्र प्रेम के आदर्श रखे।"३ श्री रामधारी सिंह दिनकर ने भी लिखा है--"औरंगज़ेब की धर्मांधता पर सब से विलक्षण टीका यह हुई कि उसके अन्याय से आहत होकर गुरु नानक का चलाया हुआ सिक्ख-सम्प्रदाय जो शान्त भक्तों का सम्प्रदाय था खुल कर सैनिकों का सम्प्रदाय हो गया।४

मध्यकाल में राजनैतिक दृष्टि से शक्ति प्राप्त कर प्राचीन भारतीय राष्ट्रीय

१. मराठी का भक्ति साहित्य--प्रो० भी० गो० देशपाण्डे--पृ० २०६।
२. वही, पृ० २१७।
३. श्री गुरुग्रंथ दर्शन--डा० जयराम मिश्र, पृष्ठ २६ एवं २७।
४. संस्कृति के चार अध्याय--श्री रामधारी सिंह दिनकर--पृ० ३९४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना की रक्षा में यदि किसी ने प्रमुख रूप से योगदान दिया तो वे थे छत्रपति शिवाजी महाराज । शिवाजी का खुले रूप में वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करना, राजगुरु (समर्थ रामदास) के आदर्शों को पालना, अपने क्षत्रिय होने का दावा करना एवं प्राचीन भारतीय पद्धति से अपना राज्याभिषेक करवाना ये सब बातें उनके राजनैतिक आदर्श को प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावना से सम्बद्ध करने वाली हैं । इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनकी दृष्टि सम्पूर्ण भारतवर्ष पर थी । जिन क्षेत्रों तक उनकी पहुंच नहीं हो सकी वहां पर भी जो इस आदर्श के पालन करने वाले थे, उनसे उन्होंने दोस्ती की। मिर्जा राजा जयसिंह को उन्होंने एक पत्र लिखा था—"ओ महाराज, यद्यपि आप एक बड़े क्षत्रिय हैं तथापि अपनी शक्ति का प्रयोग बाबर के वंश की वृद्धि के लिये करते आये हैं और रक्तवर्ण वाले मुसलमानों को विजयी बनाने के लिये हिन्दुओं का खून बहा रहे हैं । क्या आप इस बात को नहीं समझ पा रहे हैं कि इस तरह से आप पूरे जगत के सामने अपनी कीर्ति को कलंकित कर रहे हैं ? यदि आप मुझे जीतने के लिये आये हैं तो मैं आपकी राह में अपना सिर बिछा देने के लिये तैयार हूं, पर चूंकि आप सम्राट के प्रतिनिधि होकर आये हैं, इसलिये मैं इस बात का निश्चय नहीं कर पा रहा हूं कि आपके साथ कैसा व्यवहार करूं । यदि आप हिन्दू धर्म की ओर से लड़ें तो मैं आपके साथ सहयोग करने और आपकी सहायता करने के लिये तैयार हूं । आप वीर एवं पराक्रमी हैं । एक शक्तिशाली हिन्दू राजा की हैसीयत से आपके लिये सम्राट के विरुद्ध नेतृत्व ग्रहण करना ही शोभा देता है । आइये हम लोग चलें और दिल्ली के ऊपर विजय प्राप्त कर लें । हमारा मूल्यवान रक्त अपने प्राचीन धर्म की रक्षा और अपने प्यासे पूर्वजों के लिये बहे । यदि दो दिल मिल सकें तो वे कठोर से कठोर अवरोध को तोड़ कर फेंक देंगे। मुझे आपसे किसी प्रकार की शत्रुता नहीं है और मैं आपके साथ लड़ने का इच्छुक नहीं हूं । मैं आपके पास अकेले आने और भेंट करने के लिये तैयार हूं। तब मैं आपको वह पत्र दिखाऊंगा जो मैंने शाइस्तखां की जेब से जबरदस्ती छीन लिया था । यदि आप मेरी शर्तें स्वीकार नहीं करते तो तलवार उद्यत है।1" कहते हैं छत्रसाल बुन्देला भी छत्रपति शिवाजी से प्रभावित हुए थे और वे दक्षिण में शिवाजी के पास कार्य करने के लिये आये थे । डाक्टर भगवानदास गुप्त ने अपने शोधप्रबन्ध में लिखा है —"छत्रसाल की प्रबल आकांक्षा शिवाजी के पास रह कर मराठों के स्वतंत्रता संग्राम में योग देने की थी ।

1. मराठों का इतिहास—सर देसाई—पृ० ६९ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु शिवाजी इससे सहमत नहीं हुए। वे सारे भारत में हिन्दू पद पादशाही स्थापित करने के स्वप्न देख रहे थे अतः महत्वाकांक्षी छत्रसाल को अपने यहां रहने देकर स्वराज्य के प्रयत्नों को दक्षिण तक ही सीमित रखना उन्हें अभीष्ट नहीं था। इसलिये उन्होंने छत्रसाल को बुन्देलखण्ड लौट कर मुगलों के विरुद्ध वहां भी स्वतंत्रता संग्राम कर स्वयं उसका संचालन करने की मंत्रणा दी।"१ सरदेसाई ने भी लिखा है—"बुन्देला राजा छत्रसाल उनके (शिवाजी के) मित्र थे और उनसे सलाह लेने के लिये दक्षिण आये थे। शिवाजी के आगरे से निकल भागने के बाद उत्तरी भारत के चारण और कवि उनके दरबार में आये और उनका संरक्षण प्राप्त किया। ये सारी बातें शिवाजी के कार्य की अखिल भारतीय प्रवृत्ति की ओर संकेत करती हैं।"२ आगे उन्होंने और भी स्पष्ट रूप से लिखा है—"परन्तु यह आदर्श राजनैतिक नहीं, धार्मिक था। शिवाजी तथा उनके अनुयायियों की प्रणाली का मुख्य उद्देश्य था—मुसलमानों के धार्मिक अत्याचारों अथवा हस्तक्षेप के बिना हिन्दुओं के धार्मिक रीति-रिवाजों के लिये पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना। दिल्ली के सिंहासन पर हिन्दू सम्राट बैठाने का वहां कोई इरादा नहीं था।"३

उस युग के कवि भूषण ने शिवाजी के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है:—

"वेद राखे बिदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम-नाम राख्यो अति रसना सूघर में।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे में जनेउ राख्यो माला राखी गर में।
मीड़ि राखी मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेगबल सिवराज
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो कर में।"४

उस युग के राष्ट्रीय आदर्शों के अनुकूल भूषण ने कविता लिखी है। मध्यकाल तक धर्म और राजनीति में धर्म का स्थान राजनीति से ऊंचा रहा। धार्मिक नेताओं के अधिकार राजनैतिक नेताओं से अधिक रहे हैं। ऐसी स्थिति में उस युग की राष्ट्रीयता धर्म से ही अनुप्राणित होती थी।

आधुनिक काल में राष्ट्रीयता ने नया मोड़ लिया है। आज राष्ट्र शब्द से जो बोध होता है उसके मूल में किसी देश की राजनैतिक एकता का भाव है। श्री नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है—"राष्ट्र के लिये एक निश्चित भूखण्ड का होना अनिवार्य है जिसके आधार पर वह अपने

१. महाराजा छत्रसाल बुन्देला—डा० भगवान दास गुप्त—पृ० ३६ और ३७।
२. मराठों का इतिहास—सर देसाई—पृ० ७१।
३. वही—पृ० ७१।
४. भूषण—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—छ. स. ४२०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक अस्तित्व का बोध करता है। उससे अपना आंतरिक लगाव का अनुभव करता है। इसी को केन्द्र मान कर भाषा, धर्म, संस्कृति तथा आर्थिक, सामाजिक और शासकीय व्यवस्था का राष्ट्रीय स्तर पर निर्माण होता है। इन सब के मूल में एकीकरण की भावना प्रधान होती है। इस प्रकार प्राकृतिक भौगोलिकता, एक इतिहास, एक भाषा, समान साहित्य और संस्कृति एवं समान मैत्री अथवा शत्रुता इन पांच सिद्धान्तों पर एकमत रहने की इच्छा से संगठित जनसमूह को राष्ट्र कह सकते है।[१] विश्व के इतिहास में इस प्रकार की भावना का उदय सर्वप्रथम फ्रांस की राज्य क्रान्ति के समय हुआ। इसी क्रान्ति ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का पाठ विश्व को सिखाया तब से यूरोप का राजनैतिक मानचित्र बदलता ही गया। भारत में इस प्रकार की विचार धारा का विकास विशेष रूप से १८५७ की क्रान्ति के बाद ही हुआ। आधुनिक राष्ट्रीयता की भावना प्रमुख रूप से विदेशी साम्राज्यवाद के प्रति विरोध-प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। आधुनिक राष्ट्रवाद के जन्म के सम्बन्ध में बर्टेंड रसेल ने लिखा है—"इसका (राष्ट्रवाद का) प्रारम्भ जोन आफ आर्क के समय से माना जा सकता है। जब फ्रांसीसियों में अंग्रेज़ों की विजय के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोधात्मक भावना जाग उठी थी। अग्रेजी राष्ट्रवाद स्पेनी बेड़े के प्रतिरोध के फलस्वरुप पैदा हुआ और कुछ ही वर्षों बाद इसकी ऐतिहासिक अभिव्यक्ति शेक्सपियर में हुई। जर्मन और रूसी राष्ट्रवाद का जन्म नैपोलियन के प्रति विरोध से हुआ। अमेरिकी राष्ट्रवाद ब्रिटिश फौजियों के प्रतिरोध स्वरूप जन्मा। दुर्भाग्यवश, एक यह ऐसी मनोवैज्ञानिक प्राकृतिक गत्यात्मकता है जिसने प्रत्येक दशा में राष्ट्रवाद के विकास को अनुशासित किया है।"[२] इस दृष्टि से भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म भी नये दृष्टिकोण से १८५७ से ही माना जा सकता है। यह विदेशी साम्राज्यवाद के प्रति विरोध प्रतिक्रिया के रूप में ही हुआ। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास भारतीय राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति है। २६ जनवरी, १९३० को पूर्ण स्वाधीनता का प्रतिज्ञापत्र घोषित किया गया। उसकी पंक्तियां भारतीय राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय आदर्श को व्यक्त करने वाली हैं। उस प्रतिज्ञा-पत्र की कुछ पंक्तियां

१. राष्ट्र की उत्पत्ति और भारतीय राष्ट्रीयता—नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी—(ना० प्र० पत्रिका) वर्ष ६६, अंक २–३–४ मालवीय शती विशेषांक पृ ४०७।

२. विवेक या विनाश—बर्टेंड रसेल—अनु : वीरेन्द्र त्रिपाठी—पृ० ६३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हैं —"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भांति अपना यह जन्म सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें, अपनी मेहनत का फल खुद भोगें और हमें जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक सुविधाएं मिलें, जिससे हमें भी विकास का पूरा-पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि अगर कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार को बदल देने या मिटा देने का भी हक है। हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार ने हिन्दुस्तानियों की स्वतंत्रता का ही अपहरण नहीं किया है, बल्कि उसका आधार ही गरीबों के रक्त-शोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से हिन्दुस्तान का नाश कर दिया है। इसलिये हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान को अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मल आजादी प्राप्त कर लेना चाहिए।"[1] प्रतिज्ञा-पत्र में आगे और भी लिखा गया है किन्तु ये पंक्तियां भी स्वतंत्रता की घोषणा को व्यक्त कर रही हैं। यह ठीक है कि इस समय पाकिस्तान के बनने का पूर्ण विश्वास नहीं था और न ही इस प्रकार की धारणा का जन्म ही इस समय हुआ था। यह बाद की बात है। मध्यकाल में भारतीय राष्ट्रीयता का रूप धार्मिक रहा। यद्यपि राष्ट्रवाद के आधार पर इस प्रकार की धारणा का अब कोई महत्त्व नहीं था किन्तु धार्मिक कट्टरता ने ही भारत के दो टुकड़े कर दिये। राष्ट्रीयता का धार्मिक आधार इस युग में भी आकर क्षीण नहीं हो सका। गांधी जी के सभी प्रयत्न इस दिशा में विफल हुए। १५ अगस्त, १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ। नया संविधान बनाया गया जिसके अनुसार २६ जनवरी, १९५० से भारतीय राष्ट्र को नया रूप प्रदान किया गया। आज हमारी राष्ट्रीयता का आधार हमारा संविधान है। संसद, मंत्रीमंडल और न्यायालय ये तीनों ही संविधान के अनुसार भारतीय राष्ट्रीयता के आदर्श के अनुसार देश का शासन कर रहे हैं और देश का सभी प्रकार से विकास करने के लिये प्रयत्नशील हैं. स्वतंत्रता के बाद चीन के आक्रमण ने हमको चेताया और हमें अपनी राष्ट्रीता का बोध कराया। संसार में प्रथम बार हम भारतीय राष्ट्र की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए। इस समय के जागरण ने हमें राष्ट्रीय दृष्टि से संगठित होने की प्रेरणा दी इसी का परिणाम यह हुआ कि दूसरी बार जब हमारी राष्ट्रीयता को ललकारा गया भारत-पाक युद्ध के समय तो भारत ने अपनी पूरी शक्ति का परिचय देकर अपने राष्ट्र की रक्षा की। इस समय देश भर में जिस एकता का अनुभव किया गया वह भारतीय राष्ट्रीय भावना का ही रूप थी। इतिहास में प्रथम बार इस प्रकार देश ने संगठित रूप से मोर्चा लिया और इस में सफलता प्राप्त की। ० ० ०

१. मेरी कहानी—जवाहरलाल नेहरू (दसवां संस्करण)—पृ० ८५८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई कविता की अमरता का प्रश्न

प्रो० मदन लाल वर्मा

भारतीय हिन्दी परिषद् का २१वां वार्षिक अधिवेशन कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्राङ्गण में हुआ । ३१ मई, १६६५ की विचार-गोष्ठी में सभानेत्री डॉ० सावित्री सिन्हा ने आधुनिक कविता के सन्दर्भ में रस-सम्बन्धी विवाद की परिचर्चा करते हुए कहा था—"हिन्दी की हर नवोदित काव्यप्रवृति के मार्ग में 'ब्रह्मानन्द सहोदर' भूत की तरह खड़ा हो जाता है और अपने भारी भरकमपन तथा प्राचीन वेशभूषा के कारण उसे अपनी उपादेयता के प्रति आश्वस्त नहीं कर पाता । परन्तु इतिहास साक्षी है कि नई कविता की पूर्ववर्ती आधुनिक प्रवृत्तियों में से वही अंश अमरत्व का भागी बना है, जो रस की भूमि पर खरा उतरा है। नई कविता में रसतत्त्व का पूर्ण निराकरण देखने वाले विद्वानों का ध्यान मैं इसी तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहती हूं कि नई चेतना अब जिस ओर मुड़ रही है वह मार्ग रस के विरोध का नहीं है ।"

उपरिलिखित कथन द्वारा कविता की अमरता का मूलभूत रूप 'रस' की दृष्टि से आंका गया है । जिस कविता में 'रस' और रागात्मकता का अभाव है, वह कविता चिरस्थायिनी शक्ति से रहित हो जाती है, कालान्तर में उसका सर्वथा लोप हो जाता है । यह बात केवल कविता के विषय में ही नहीं कही जा सकती, अपितु समग्र साहित्यिक विधाओं की भी यही कसौटी है ।

साहित्य के मूल तत्त्वों में भाव तत्त्व का वैशिष्टय निर्विवाद रूप से ग्राह्य है। कल्पना, बुद्धि और शैली तत्त्व के योग से उसे पुष्टि मिलती है, परन्तु भावतत्त्व के अभाव में साहित्य साहित्य नहीं रहता, कविता कविता नहीं कहलाती । भावतत्त्व के निरूपण में रस की अनिवार्यता है। अतः 'रस' के बिना काव्य की अमरता का प्रश्न उत्पन्न नहीं हो सकता ।

आज भी तुलसी, सूर, कबीर और जायसी का काव्य उसी आनन्द की उपलब्धि करता है, जैसा कि वह अपने समकाल में करता था । उसकी आनन्ददायिनी और प्रभविष्णुता उत्पन्न करने वाली शक्ति का आज के बुद्धिप्रधान युग में भी अभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। साहित्य की सफलता की कुञ्जी 'रस' है। रस को काव्य की आत्मा माना गया है। आत्मा अमर है।

आज की कविता में रस का प्रवेश एक विशिष्ट एवं नवीन रूप में हुआ है। गीता के अनुसार जिस प्रकार 'आत्मा' पुराने और जीर्ण शरीरों को छोड़ कर और दूसरे नये शरीरों को धारण कर लेती है; उसी प्रकार 'काव्यात्मा रस' ने पुराने काव्य शरीरों को छोड़ कर आज नये काव्य शरीर को धारण किया है। अतः आज की कविता में रस का अभाव नहीं है।

डॉ० धर्मवीर भारती की "डोले का गीत" नामक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में नवीन रस का प्रवाह मन को किस प्रकार आप्लावित करता है, यह अनुभूतिगम्य है :—

"शाम बीते, दूर जब भटकी हुई गायें रंभायें
नींद में खो जाय जब
खामोश डाली आम की
तड़पती पगडण्डियों से पूछना मेरा पता—
तुमको बतायेंगी कथा मेरी
व्यथा हर शाम की;
पर न मन अपना दुखाना, मोह क्या उससे.
कि जिसका नेह टूटा , गेह छूटा
हर नगर परदेश है जिसके लिये अब
हर डगरिया राम की ॥"

भारती का नाम दूसरे सप्तक में विशिष्ट रूप से लिया जाता है। इनकी कविताओं में गहरा विश्वास व्यक्त होता है। 'कनुप्रिया में कृष्ण और राधा के शृंगार रस के चित्रण का एक नवीन रूप लक्षित होता है। हम इसमें रसाभाव बिल्कुल नहीं देखते। राधाकृष्ण की प्रणयकेलि के प्रसंग में शृंगार रस का सागर ठाठें मारता है।

इसी प्रकार डॉ० रामसिंह की कविता "सभी मिट्टी के खिलौने" के अन्त में 'बालुका के शुष्क तट पर हर लहर के चित्र खींचने' की कल्पना में रसानुभूति अवश्य होती है। इनकी कविताओं में हम जो नारी की सहजता, मन की व्यथा और हृदय की रिक्तता को निरूपित करते हैं, उसमें रागात्मक तत्व की गौणता कदापि नहीं।

गिरिजा कुमार माथुर की कविता का आन्तरिक संगीत, नागार्जुन की कविता का नया जीवनादर्श एवं जनमंगल का उत्साह, अज्ञेय की कविता का रोमाण्टिक तत्व, बच्चन के काव्य की रोमानी स्वच्छन्दता, दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' की विचार प्रक्रिया का चित्रण, डॉ० जगदीश गुप्त की कविता का रोमांस और फिर उससे मुक्ति, दुष्यन्त कुमार के 'एक कण्ठ विषपायी' का व्यापक खण्ड, भारतभूषण अग्रवाल की कविता की मानसिक छटपटाहट, शकुन्त माथुर की कविता की जीवनानुभूति—आदि विशेषताओं को देखने से हमें यह भली भांति विदित हो जाता है कि इन नवीन कवियों की कविताओं में 'रस' की सत्ता है अवश्य। यद्यपि इन कविताओं में रस का आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रीय नहीं, तथापि नई वेशभूषा को धारण करने से अभी एकदम पहचाना नहीं जा रहा ।

जिस प्रकार नाटक का एक अभिनेता एक बार राजा की वेशभूषा में रंगमंच पर आकर अपने अभिनय को प्रस्तुत करता है; यदि वही दूसरी बार कालान्तर में भिखारी का अभिनय करता है; तो वह दर्शक जिसने उसे पहले 'राजा' के रूप में अभिनय करत देखा है—कभी भी एकदम नहीं जान सकेगा, कि अमुक व्यक्ति वही है; जिसने पहले कभी राजा का अभिनय किया था। उसी प्रकार 'रस' की वेशभूषा के परिवर्तन में अभी तक उसका वास्तविक रूप पहचाना नहीं जा रहा ।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि नई कविता में बौद्धिकता वैज्ञानिक युग की देन है, परन्तु कविता के स्वरूप विश्लेषण में 'आनन्द' की क्षीण रेखा भी उसके अमरत्व की परिचायिका होती है । अत: यदि हम कविता को पढ़ कर 'सिर चालन' करते हैं, तो समझ लीजिये कि उस कविता की अमरता को आंच नहीं आ सकती ।

प्रबन्ध और मुक्तक के आधार पर रसयोजना में पर्याप्त अन्तर आ जाता है । 'रामचरित मानस' और 'बिहारी सतसई' की रसाभिव्यंजना में इसीलिये एक विलगता दृष्टिगोचर होती है। यही बात नई कविता के विषय में भी कही जा सकती है। आज की कविता अधिकांश मुक्तक में है । इसमें प्रबन्धात्मकता का आधार ग्रहण करके रस का अन्वेषण करना उचित नहीं ।

कविता का आनन्द वर्णनातीत होता है । उसे केवल मन के द्वारा ही अनुभूत किया जा सकता है । 'गूंगे के गुड़' की भांति उसे अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य नहीं होता । अतः यदि कोई कविता "दिमाग को खुरच कर निकाल लेने पर भी पाठक के मन का प्रसादन नहीं करती",[1] तो वह कविता अमरता का मार्ग ग्रहण नहीं कर सकती । ऐसी कविता ही अकविता है।

आज नई कविता रसमुक्त काव्य और अकविता का पर्याय बन चुकी है। इसका सब से बड़ा कारण यही है कि उसमें निहित रस की नवीन और भड़कीली सौन्दर्य सज्जा को देख कर हमारी आंखें चुंधिया जाती हैं । उसमें अलंकरण की बाह्य झांकी ग्रीष्म की दोपहरी के सूर्य की भांति है । उस ओर दृष्टिपात करते ही एक अन्धकार का छोटा सा गोला आ जाता है, जिससे उसके वास्तविक स्वरूप का पता नहीं लगता और हम समझते हैं कि इसमें रस नहीं है ।

सब से बड़ी बात तो यह है, कि नई कविता सदा नई नहीं रहेगी, एक न एक दिन पुरानी होगी ही । फिर भी यदि उसमें 'रस' सृष्टि का कोई भी चिन्ह परिलक्षित नहीं होगा, तो वह नष्ट

१. डा० नगेन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर ही रहेगी । ऐसी कविता की अमरता का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । आज भी हमने अतीत को विस्मृत नहीं करना । हमारी बौद्धिकता से दब कर रागात्मकता से कन्नी नहीं काटनी ।

हमें प्राचीन संस्कृति के ज्ञातव्य तत्त्वों को अवश्य ग्रहण करना पड़ेगा । प्रेरणा-दायिनी शक्ति की किसी एक कड़ी को तो अवश्य ही धरोहर रूप में रखना होगा; अन्यथा कविता अकविता और अकविता हो रह जाएगी आत्मा (रस) की अजरता और अमरता का ज्ञान ही सच्ची कविता को परिपुष्ट कर सकता है, इसके बिना क्षण भंगुर काया की भांति किसी भी समय नई कविता का शव सड़ गल जाएगा ।

रस को अमरता का ज्ञान होने पर नई कविता की अमरता का प्रश्न सुलझाया जा सकता है । 'वासांसि जीर्णानि विहाय' की भांति यदि आज पुराने कपड़ों को उतार कर नए कपड़े धारण कर लिये गए हैं और आत्मा ने पुराने शरीरों को छोड़ कर नये शरीरों को धारण कर लिया है तो सुविज्ञ मनीषी आलोचकों को धैर्य और सन्तोष से काम लेना पड़ेगा । जहां तक हो सके, समन्वय बुद्धि का आश्रय ग्रहण करके गौतम बुद्ध की भांति मध्यम मार्ग को अपनाना ही श्रेयस्कर है।

मेरे विचार में यदि आज की नई 'कविता' में रस की पुरानी शास्त्रीय, संकीर्ण एवं संकुचित रूपरेखा न देख कर उदार दृष्टि द्वारा व्यापक स्वरूप अवलोकित किया जायगा, तो नई कविता की अमरता सुरक्षित हो सकेगी; परन्तु इसमें नए कवियों की अवधानता पहली शर्त है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। इस दृष्टिकोण के आधार पर आज की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल ही कविता रची जाये, तो अच्छा है । अपने परवेश से दूर हट कर कविता की सुरक्षा नहीं हो सकेगी । हमें आज इसी बात को देखना है। आज के समस्या-संकुल वातावरण में पलने वाला व्यक्ति विचारवीथियों में ही भ्रमण करता रहता है । अतः आज कविता में 'भाव' तत्त्व का संकुचित अर्थ उसकी हत्या करता है । विचार तत्त्व के मिश्रण से भाव की रूपात्मक रेखा की ओर सूक्ष्मतया दृष्टिपात करना आवश्यक है । यथार्थ की ओर बढ़ना, 'भाव' या 'रस' से छुट्टी पाना नहीं, अपितु 'सत्यं' और 'सुन्दरं' के साथ 'शिवम्' के महत्त्व को प्रदर्शित करना है। व्यष्टिगत समस्याओं को चित्रित करने वाली कविता में भी परोक्षतः समष्टि का कल्याण है ।'बूंदों का वारिधि' बूंद की सत्ता किस प्रकार नहीं मानेगा ? 'अद्वन्द्व' की निजी स्थिति स्वयंमेव 'द्वन्द्व' की स्थिति को उकसा कर सामंजस्य-पूर्ण वातावरण की सृष्टि करने में समर्थ

(शेष पृष्ठ ७७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरियाणा नामकरण

०

सोमदत्त बंसल

भाषा के आधार पर होने वाले पंजाब के पुनर्गठन के परिणाम स्वरूप भारत के राजनैतिक मानचित्र में कुछ परिवर्तन होने वाला है। भारत के मानचित्र में 'हरियाणा' नामक एक नए राज्य का उदय होगा ।

इस राज्य का नाम हरियाणा किन कारणों से रखा जाएगा, इस प्रश्न का उत्तर पाने की इच्छा जन मानस में उद्वेलित होनी स्वाभाविक है । वैसे तो इसका सरल सा उत्तर दिया जा सकता है कि इस नए बनने वाले राज्य में जिस प्रदेश को प्रमुख रूप से शामिल किया जाने का प्रस्ताव है, उस प्रदेश का नाम हरियाणा है और इसी कारण भावी राज्य का नाम हरियाणा होगा। परन्तु इतने से ही जनता की जिज्ञासा शांत नहीं होती। मूल प्रश्न बना ही रहता है कि किन कारणों से इस प्रदेश का नाम हरियाणा पड़ा ।

इस सम्बन्ध में दो बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । एक तो यह कि भारत के मानचित्र पर "हरियाणा" नामक कोई राज्य कभी नहीं रहा । इतिहास हरियाणा नाम के कारण बताने के सम्बन्ध में मौन है । दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार 'पंजाब' नाम का निश्चित तथा सर्वसम्मत कारण है वैसे 'हरियाणा' नाम का कोई निश्चित तथा सर्वसम्मत कारण नहीं है। इस सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा कुछ अनुमान लगाए गए हैं तथा कल्पनाएं की गई हैं ।

हरियाणा प्रदेश की आज की पिछड़ी दशा, अज्ञानता, निर्धनता आदि के कारण तो आज 'हरियाणा' शब्द पिछड़ेपन, अज्ञानता, निधनता आदि का पर्यायवाची सा ही प्रतीत होता है । हरियाणा की इस दशा के लिये बहुत सीमा तक अंग्रेज जिम्मेवार हैं। इस प्रदेश के रणबांकुरों ने १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बढ़ चढ़ कर भाग लिया । उनकी देशभक्ति के 'पुरस्कार' स्वरूप ही अंग्रेजो ने इस प्रदेश की प्रगति के मार्गों को अवरुद्ध करके अपनी वैर शोधन की लिप्सा को शांत किया । इस प्रदेश के प्रति उनकी द्वेष भावना के कारण उन्हें इस प्रदेश के नाम 'हरियाणा' से ही चिढ़ हो गई थी । इस सम्बन्ध में महान् हिन्दी सेवी तथा हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत के धुरन्धर विद्वान* डा० परमानंद जी के निम्नलिखित कथन की ओर बरबस ध्यान आकर्षित हो जाता है, ऐसी उदात्त संस्कृति के पात्र हरियाणा प्रान्त को विदेशी शासकों—विशेषतः अंग्रेजों—ने वर्षों तक दृष्टि विगत रखा। अंग्रेजों को तो वैर शोधन की लिप्सा थी। जिन्होंने देश-भक्ति को प्रकट किया उन्हें कुचलना उनकी नीति थी। देशभक्त हरियाणा उनकी आंखों में सदा अखरता रहा। उनका द्वेष इतना गहरा था कि उन्होंने 'हरियाणा' शब्द का ही अर्थ 'लुटेरों का देश' कर दिया। इस विषय में देखिए 'तवारीख ज़िला रोहतक' जो आज से अस्सी वर्ष पूर्व उर्दू में अंग्रेज़ी सरकार की दुष्प्रेरणा से लिखी गई थी।"

प्राचीन काल में हरियाणा प्रदेश की ऐसी दशा न थी। बल्कि प्राचीन काल में तो यह प्रदेश सभ्यता और संस्कृति के उच्च शिखर पर पहुंचा हुआ था। इस प्रदेश को मनुस्मृति तथा महाभाष्य आदि प्राचीन ग्रन्थों में 'ब्रह्मावर्त', 'ब्रह्मर्षि', 'मध्यदेश', 'आर्यावर्त' आदि नामों से पुकारा गया है। यही प्रदेश आर्य संस्कृति का केन्द्र रहा है। इसी प्रदेश में पांडवों ने अपनी इतिहास प्रसिद्ध राजधानी 'इन्द्रप्रस्थ' बसाई थी। इसी प्रदेश के कुरुक्षेत्र नामक पवित्र स्थान पर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता-ज्ञान का अमृतपान कराया था। यही वह प्रदेश है जिसे 'बहुधान्यक,' तथा 'स्वर्ग सन्निभ' नाम से पुकारा गया है।

प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रदेश की प्रचुर प्रशंसा की गई है। परन्तु उन ग्रन्थों में इस प्रदेश के लिये हरियाणा नाम नहीं मिलता। हरियाणा नाम का सर्वप्रथम प्रयोग किस द्वारा, कब और किन कारणों से हुआ ये सब बातें विस्मृति के घोर अन्धकार-पूर्ण गर्त में छिपी पड़ी हैं। इतिहास रूपी प्रकाश इन बातों पर प्रकाश डालने में अपने आप को असमर्थ पाता है।† डा० शंकर लाल यादव के मतानुसार, "इस नाम का सर्वप्रथम उल्लेख विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग के (१३८४) एक शिलालेख में मिला है। इसमें हरियाणा देश को पृथ्वी पर 'स्वर्ग सन्निभ' कहा गया है और यहां की "ढिल्लिका" (दिल्ली) नाम्नी पुरी तोमरवंश द्वारा निर्मित बताई गई है।" डा० यादव ने उक्त शिलालेख से ४७ वर्ष पुराने (विक्रम सम्वत् १३३७) एक शिला लेख का उल्लेख भी किया है जिसमें 'हरियानक' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

*हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला, की 'जन साहित्य' पत्रिका के हरियाणा लोक मानस विशेषांक के सम्पादकीय लेख से उद्धृत।

†डा० शंकर लाल यादव द्वारा लिखित 'हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य' (प्रथम संस्करण —पृष्ठ-५३) से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हरियानक' शब्द के विषय में वे लिखते हैं, "परन्तु यह शब्द कोई नूतन नहीं प्रतीत होता वरंच स्वार्थ में 'क' प्रत्यय करके 'हरियान' से हरियानक शब्द बना लिया जान पड़ता है।" इस प्रकार विक्रम सम्वत् १३३७ में हरियाणा नाम का सर्वप्रथम उल्लेख उपलब्ध होने का पता चलता है । पंजाब विश्वविद्यालय के प्राध्यापक* श्री जगन्नाथ अग्रवाल की धारणा के अनुसार भी हरियाणा नाम का प्राचीनतम उल्लेख विक्रम सम्वत् १३३७ में मिलता है। वे लिखते हैं, "हरियाणा का प्राचीनतम उल्लेख रोहतक नगर के समीप बोहड़ नामके स्थान से उपलब्ध विक्रम सम्वत् १३३७ के शिलालेख में मिलता है । इस लेख में इस शब्द का रूप हरियानक है। इसके पश्चात् दिल्ली के लाल दुर्ग संग्रहालय में सुरक्षित विक्रम सम्वत् १३८५ के शिलालेख में लिखा है कि हरियान नाम का एक देश है जो मानो कि भू-लोक पर स्वर्ग उतर आया है। इस देश में तोमरों की बनाई हुई ढिल्लिका नाम की नगरी है ।"

विद्वान् लोग हरियाणा नाम के प्राचीनतम उपलब्ध उल्लेख की तो खोज कर सके हैं परन्तु अभी तक हरियाणा नाम के प्रमाणिक कारणों की खोज नहीं कर सके हैं । इस सम्बन्ध में यत्र तत्र कुछ उल्लेख मिलता है जो कि अधिकतर किंवदन्तियों पर आधारित है। हरियाणा शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों ने कुछ अनुमान लगाए हैं तथा कुछ कल्पनायें की हैं। उन्हें सार रूप में यहां दिया जाता है ।

हरियाणा नाम के कारणों के सम्बन्ध में हिसार जिले की बन्दोबस्त रिपोर्ट को उद्धृत करना उपयुक्त होगा । १८७५ में प्रकाशित होने वाली उक्त रिपोर्ट के पृष्ठ १५, पैरा ६७ में हरियाणा का ब्यौरा देते हुए कहा गया है कि इस बात का निश्चित ज्ञान नहीं है कि इसे हरियाणा क्यों कहा जाता है। फिर भी रिपोर्ट में इसके नामके तीन कारण दिये गए हैं। पहले कारण के अनुसार हरियाणा शब्द का सम्बन्ध हरि के अवतार परशुराम से बताया गया है। हरियाणा प्रदेश के जीन्द नगर के पश्चिम की ओर चार कोस के फासले पर रामहृदय (राम राय) नामक एक पवित्र स्थान है। एक किंवदन्ति के अनुसार हरि के अवतार परशुराम जी ने यहां पर इक्कीस बार क्षत्रियों की बलि दी थी । इस धारणा के अनुसार परशुराम जी द्वारा क्षत्रियों की बलिदान भूमि होने के कारण यह प्रदेश हरियाणा कहलाया ।

*'जन-साहित्य' के हरियाणा लोक मानस विशेषांक में प्रकाशित तथा श्री जगन्नाथ अग्रवाल द्वारा लिखित 'हरियाणा के कुछ शिलालेख' नामक लेख से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिपोर्ट में दिये गए दूसरे कारण के अनुसार हरियाणा नाम का सम्बन्ध सत्यवादी महाराजा हरिश्चन्द्र के नाम के साथ है। कहते हैं कि एक बार महाराजा हरिश्चन्द्र भ्रमण करते हुए अयोध्या से इस प्रदेश की ओर आए। उस समय यह प्रदेश जंगल ही जंगल था। उन्होंने इसे आबाद किया। हरि (हरिश्चन्द्र) के आने के कारण इस प्रदेश का नाम हरियाणा पड़ा।

रिपोर्ट में दिए अन्तिम कारण के अनुसार इस प्रदेश में बस्तियां बसने से पहले यह प्रदेश घने जंगल के रूप में था। इस जंगल में हरियाबन नाम की जंगली लकड़ी होती थी। इसी हरियाबन नामक लकड़ी के नाम पर इस प्रदेश का नाम हरियाणा पड़ा। रिपोर्ट के अनुसार आम तौर पर यह अन्तिम कारण ही अधिक माना जाता है।

अन्य किंवदन्तियों के अनुसार हरियाणा नाम का सम्बन्ध हरि के अवतार भगवान् कृष्ण से भी है। एक किम्वदन्ति के अनुसार ब्रज से द्वारिका जाने के लिए हरि (भगवान कृष्ण) का यान (रथ) इसी प्रदेश से होकर जाता था। इसी कारण यह प्रदेश हरियाणा कहलाया।

एक अन्य किम्वदन्ति के अनुसार भगवान् कृष्ण जब महाभारत के युद्ध में सम्मिलित होने के लिये आए थे तब वे पहले इसी प्रदेश में ठहरे थे। उनकी सेना भी इधर ही ठहरी थी। हरि (भगवान् कृष्ण) के आने के कारण यह प्रदेश हरियाणा कहलाया।

उक्त किम्वदन्तियों के इलावा बहुत से गण्य मान्य विद्वानों ने हरियाणा नाम के कारणों अथवा हरियाणा नाम की व्युत्पत्ति के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। उन विद्वानों के विचारों का सार यहां दिया जा रहा है :—

गुरुकुल झज्जर (रोहतक) के संचालक आचार्य भगवान देव जी हरियाणा नाम का सम्बन्ध हर (शिव) के साथ जोड़ते हुए **अपने** *एक लेख में लिखते हैं, "वैसे तो इस प्रान्त के हरियाणा नाम के कारणों में मतभेद है, किन्तु यह ठोस सत्य है कि इस प्रान्त के निवासियों का शिवजी महाराज के साथ अतिशय प्रेम पाया जाता है जो अनेक रूपों में देखने में आता है और पुरातत्त्वीय उत्खननों (खुदाइयों) से भी यह सिद्ध होता है कि शिवजी महाराज के प्रसिद्ध नाम हर के कारण ही इस प्रदेश का नाम हरियाणा पड़ा।"

*'जन साहित्य' पत्रिका के हरियाणा लोक मानस विशेषांक में प्रकाशित 'हरियाणा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' लेख से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरियाणा प्रदेश आर्य सभ्यता का प्रमुख केन्द्र रहा है। शायद इसी आधार पर डा० नानक चन्द शर्मा हरियाणा नाम के मूल शब्द के रूप में 'आर्याणक' शब्द की कल्पना करते हैं। अपने* एक लेख में वे लिखते हैं, "......यहां इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि हमारे विचार में हरियाणा शब्द का उद्गम तथा विकास 'आर्याणक' शब्द से हुआ है।" आर्याणक नाम के सम्बन्ध में डा० शर्मा आगे अपने उसी लेख में कहते हैं, "हरियाणा प्रदेश का प्राचीन इतिहास नितान्त धूमिल है। इसका नाम 'हरयाणक' मिलता है जिसके आधार पर हम इसके आर्याणक नाम की उद्भावना कर सकते हैं। आर्य लोग जिस समय इस प्रदेश में पहुंचे और विजेता होने के नाते उन्होंने अपनी बस्तियों को नए नाम देने आरम्भ किये लगभग उसी समय समग्र देश के आर्यावर्त नाम के साथ साथ इस छोटे भू-भाग को आर्याणक की संज्ञा दे दी गई।" 'आर्याणक' नाम का प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख न मिलने के सम्बन्ध में डा० शर्मा लिखते हैं, "फिर भी स्वाभाविक रूप से प्रश्न पैदा होता है कि आर्याणक नाम किसी भी धर्म ग्रन्थ में अथवा किसी अन्य ग्रन्थ में उपलब्ध क्यों नहीं होता? इस सम्बन्ध में हमारा विचार यह है कि आर्यों के इस छोटे भू-भाग के कदाचित् दो नाम रहे हों— ब्रह्मावर्त और आर्याणक। आर्यों के ब्रह्म और आर्य शब्द अत्यन्त प्रिय थे, अतः उन्होंने अपने प्रिय देश को दोनों नामों से पुकारना आरम्भ कर दिया, जिनमें से ब्रह्मावर्त का उल्लेख ग्रन्थों तक सीमित रहा और दूसरा नाम अर्थात् आर्याणक जनता जनार्दन में प्रचलित हो गया।"

डा. शंकरलाल यादव ने 'हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य' नामक अपने शोध प्रबन्ध में कुछ अन्य विद्वानों के विचार भी दिये हैं। उन विद्वानों के विचार भी सार रूप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने हरियाणा नाम का सम्बन्ध अहीरों के साथ माना है। वे प्राचीन अभीरायण (अहीरों का घर या स्थान) शब्द से हरियाणा शब्द की व्युत्पत्ति अधिक सम्भाव्य मानते हैं। अभीरायण>अहिरायन>हीराअन>हरिआन>हरियान>हरियाना।

अखंड प्रकाश के लेखक पं. धरणीधर हांसीवाले के अनुसार हरियाणा प्रदेश का प्राचीन नाम 'हरिबाणक' था जो कि उच्चारण भेद के कारण हरियाणा हो गया। 'हरिबाणक' शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है जिस देश में हरि (इन्द्र) की अधिक आकांक्षा हो। 'योगरूढ़ि से यह प्रदेशवाची बन गया बताया जाता है। हां यह बात पूर्ण रूप से सच है कि आज भी इस प्रदेश में जल का काफी अभाव है

*अत्रैव प्रकाशित 'देशोऽस्ति हरयाणाख्यः पृथिव्यां स्वर्ग सन्निभः' लेख से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यहां के निवासी इन्द्र भगवान की ओर आशा भरी दृष्टि से देखते रहते हैं।

महापंडित राहुल जी ने डा. यादव को लिखे अपने एक पत्र में हरियाणा शब्द के विषय में सुझाव दिया था कि यह शब्द 'हरिधान्यक' शब्द से अपभ्रंश की चक्की में पड़ कर बना है। हरिधान्यक>हरिधानक>हरिआनक>हरिआनअ>हरिआन>हर्यान>हरियाना। हरिधान्यक शब्द के सम्बन्ध में यह बात लिखनी अप्रासंगिक नहीं होगी कि इस हरियाणा प्रदेश के लिये हमारे प्राचीन ग्रन्थों में 'बहुधान्यक' शब्द मिलता है और 'बहुधान्यक' शब्द का नामान्तर 'हरिधान्यक' भी मिलता है। बहुधान्यक का अर्थ है 'बहुत धनवाला' इसी प्रकार 'हरिधान्यक का अर्थ है—'हरा भरा एवं धनधान्यपूर्ण।'

अन्त में संक्षिप्त रूप से यह कहा जा सकता है कि विभिन्न किम्बदन्तियों तथा विभिन्न विद्वानों के मतों पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि हरियाणा नाम का सम्बन्ध कहीं हरि के अवतार परशुराम, हरि के रूप भगवान् कृष्ण, हरि (इन्द्र), हर (शिव), महाराजा हरिश्चन्द्र आदि देवताओं, अवतारों तथा महापुरुषों से जोड़ा जाता है तो कहीं आर्य, अहीर आदि जातियों के नाम से जोड़ा जाता है। हरिधान्यक आदि प्राचीन नाम के साथ भी हरियाणा नाम का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। वास्तव में इस सम्बन्ध में मतैक्य न होकर मतवैभिन्य ही है। निश्चित कारण के अभाव में यह मत वैभिन्य शायद मतैक्य का रूप धारण करने भी न पावे। इस सम्बन्ध में विभिन्न किम्वदन्तियों तथा विद्वानों की धारणाओं को एक स्थान पर एकत्रित करना कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जोड़ कर भानमति का कुनबा तैयार करने वाली बात ही है। फिर भी यदि हरियाणा नाम के सम्बन्ध में जन-साधारण की जिज्ञासा कुछ अंश तक भी तृप्त होती है तो इन पंक्तियों का लेखक अपना परिश्रम सफल समझता है।

पृष्ठ ७१ का शेष

होती है। अतः व्यष्टि समष्टि, द्वन्द्व-अद्वन्द्व, रसयुक्त-रसमुक्त, विचार-भाव आदि तर्क की खबरें खैंच से परे हट कर कविता की प्राणवत्ता को पहचान कर आनन्दानुभूति में निमग्न रहने से 'नई कविता' की अमरता के प्रश्न का समाधान मिल सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू काव्य में प्रेम

स. र. अबोहरी 'साबिर'

प्रस्तुत लेख में हिन्दी पाठकों को उर्दू के समृद्ध प्रेम काव्य का रसास्वादन करवाने का प्रयत्न किया गया है। उर्दू के विभिन्न कवियों के पदों को लेकर प्रेम की अनेक अवस्थाओं का चित्रण यहां दिखाया गया है । इन पदों की व्याख्या विस्तारपूर्वक की गई है ताकि उनके वास्तविक अर्थों को सुगमतापूर्वक समझ लिया जाये । एक ही भाव को प्रकट करने वाले अन्य पद (शेयर)* भी देने का यत्न किया गया है ।

इश्क, प्रेम अथवा मुहब्बत एक स्वाभाविक भावना है जो हर व्यक्ति के दिल में सदा मौजूद रहती है। कोई ऐसा मनुष्य नहीं जिसके दिल में प्रेम की चिंगारी न हो, यथा :—

इश्क से किसके दिल को लाग नहीं,
कौन सा घर है, जिसमें आग नहीं।

(नासिख)

बचपन में मनुष्य खिलौनों से प्रेम करता है और जवानी में सुन्दरता से आकर्षित होता है । जब यौवन की मस्ती कुछ उतरने लगती है तो प्रकृति, देश और मानव-प्रेम की तरफ रुचि बढ़ती है। जब उम्र के साथ अन्तःकरण कुछ शुद्ध होने लगता है तो अधिकांश लोगों में भगवद् प्रेम की ज्योति जल उठती है।

इश्क का एक दूसरा रूप भी है, वह है—आग । इश्क वह आग है जो मनुष्य के विकारों को जला कर खाक कर देती है। इश्क की भट्टी में तप कर मनुष्य मिट्टी से सोना बन जाता है । उसकी आंखों में अद्भुत चमक और दिल में अथाह रोशनी पैदा हो जाती है ।

मुहब्बत करने वाले दिल ही कर सकते हैं अन्दाजा,
मुहब्बत की बदौलत है दिलों में रौशनी कितनी।

(ऋषि पटियालवी)

परन्तु यह इश्क बाज़ारी इश्क नहीं और न ही यह सिनेमा की तरह का होता है, यह प्लाटोनिक (Platonic) अथवा सात्विक तरह का होता है। इसके कुछ आदाब होते हैं; कुछ कायदे-कानून होते हैं, जिनका पालन करना प्रेमियों के लिये अत्यावश्यक है। हां शर्त यही है कि

* (Half अ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये वास्तव में उच्च कोटि के मनुष्य बनना चाहते हों । मीरने जैसे फरमाया है —

दूर बैठा गुबार-ए-मीर उससे
इश्क बिन यह अदब नहीं आता
(मीर)

एक अन्य पद देखिए :—

तुम हुए, हम हुए कि मीर हुए,
उसकी जुल्फों के सब असीर हुए ।१

इश्क एक सर्वव्यापी भावना है । मनुष्य चाहे कैसा भी हो और कोई भी हो, इश्क की लपेट में आये बगैर नहीं रह सकता । सुन्दरता से आकर्षित होना स्वाभाविक है । यह छोटे-बड़े, सुन्दर-असुन्दर, शायर-अशायर सब को मोहित कर लेती है और अपना बन्दी बना लेती है। गालिब का एक पद देखिए :--

२ इश्क से तबीयत ने जीस्त का मजा पाया
दर्द की दवा पाई, दर्द-ए-लादवा पाया ।
गालिब

इश्क में एक विशेष सरूर होता है, जो मनुष्य के जीवन को आनन्दमय बना देता है। जिन्दगी बाग़-ओ- बहार बन जाती है। इश्क जीवन के हर दुख का दारू है। प्रेमी को दुनिया की बड़ी से बड़ी मुसींबत भी भयभीत नहीं कर सकती, परन्तु प्रेम स्वयं एक रोग है, ऐसा रोग जिसका कोई इलाज नहीं ।

एक अन्य कवि कहता है :—

इलाज-ए-दर्द-ए-दिल तुमसे मसीहा हो नहीं सकता,
तुम अच्छा कर नहीं सकते, मैं अच्छा हो नहीं सकता ।

यह दिल की बीमारी—प्रेम, ऐसा रोग है कि जिसमें सब उपाय उल्टे पड़ते हैं । कोई दवा कारगर नहीं होती और प्रेमी का काम तमाम हो जाता है ।

उल्टी हो गईं सब तदबीरें, कुछ ना दवा ने काम किया,
देखा इस बीमारी-ए-दिल ने आखिर काम तमाम किया ।
(मीर)

ये इश्क नहीं आसां, इतना ही समझ लीजे,
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है ।
(जिगर)

इश्क को दुनिया खेल समझती है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है । इश्क जान-जोखों का काम है । इसमें मुसीबतें ही मुसीबतें हैं । यह एक आग के दरिया की भांति है। इसे हर प्रेमी को पार करना पड़ता है ; परन्तु इसके साथ एक बड़ी शर्त यह भी होती है कि इसको तैर कर नहीं अपितु डुबकी लगा कर पार करना है ताकि शरीर का कोई भी अंग इसकी तपिश से बच न सके । कितनी कठिन

१. जुल्फ—अलक । असीर—कैदी ।
२. जीस्त—जीवन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा है । इश्क भी कैसी-कैसी कठोर परीक्षा लेता है ।

इश्क पर ज़ोर नहीं है ये वह आतिश[1] ग़ालिब,
कि लगाये न लगे और बुझाए न बने ।
(गालिब)

प्रेम स्वतंत्र है, इस पर किसी का अधिकार नहीं । यह ऐसी आग है कि अगर हम लगाना चाहें तो नहीं लगती और अगर एक बार भड़क उठे तो फिर बुझाई नहीं जा सकती ।

प्रेम की विवशता का सुन्दर चित्र देखिए :--

समझता हूँ सब कुछ मगर दोस्तो,
ये दिल है जिधर आ गया-आ गया ।
कभू रोना, कभू हंसना, कभू हैरान हो रहना,
मुहब्बत क्या भले चंगे को दीवाना बनाती है ।
(दर्द)

प्रेम मनुष्य को दीवाना बना देता है। उसकी आदतें और काम-काज असाधारण हो जाते हैं । उसकी अक्ल ठीक ढंग से काम नहीं कर पाती। उसके विचार दुनियां से भिन्न हो जाते हैं; उसके सोचने का ढंग बदल जाता है; रोने बैठता है तो रोता चला जाता है और हँसने लगता है तो बंद ही नहीं होता :--

क्या चीज़ ग़म-ए-इश्क की बेगानावशी है,
रोना है तो रोना है, हंसी है तो हंसी है।
(जिगर)

प्रेम में इन्सान को अपने आप पर काबू नहीं रहता । वह दीवाना अथवा पागल बन जाता है ।

तुम को हज़ार शर्म सही मुझको लाख ज़ब्त,
उलफत वो राज़ है कि छिपाया न जायेगा[2]
(हाली)

प्रेम का लक्ष्य यह है कि इसे दुनिया पर ज़ाहिर न होने दिया जाये :--

छिपाले राज़-ए-उलफत गोशा-ए-दिल में तो हम जानें,
बहुत आसान है इन्सान का मनसूर हो जाना।
(साबिर अबोहरी)

परन्तु इश्क़ और मुश्क़ छिपाये नहीं छिपते । किसी न किसी ढंग से यह ज़ाहिर हो ही जाता है; कोई लाख शर्म करे या मन को काबू में रखे ।

यह भेद कई ढंग से खुलता है। कभी प्रियतम का नाम सुन कर इन्सान बेअख्तियार

---

१. आतिश=आग ।
२. ज़ब्त=अख्तियार
उल्फत=प्यार
राज़=भेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो उठता है :—

समझे थे हम तो मीर को आशिक उसी घड़ी,
जब तेरा नाम सुनके वो बेताब सा हुआ।
(मीर)

कभी इन्सान पर ऐसा जनून छा जाता है कि अपने महबूब का नाम ले-ले कर रोने लगता है।

फानी को या जुनूं है या तेरी आरज़ू है,
कल नाम लेके तेरा दीवाना वार रोया।
(फानी)

इसके अतिरिक्त कभी ऐसा भी होता है कि यद्यपि मनुष्य साधारणतया बहुत सावधान रहता है, फिर भी कभी-कभार प्रेमवश मुँह से प्यार का एक-आध शब्द निकल ही जाता है।

कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य की चुप्पी उसका भांडा फाड़ देती है :—

पूछा असर से मैंने जो दिल का मुआमला,
इक ठंडी आह खींच कर खामोश हो गया
(असर लखनवी)

बहुधा यूं भी होता है कि प्रेमी न मुंह से कुछ कहता है, न ठंडी आहें भरता है और न ही बेताब होता है, परन्तु उसकी आदतें असाधारण-सी हो जाती हैं। वह लोगों से दूर रहने लगता है। इससे दुनियां भांप लेती है कि दाल में कुछ काला है।

फिरते हो मीर साहिब, सबसे जुदे-जुदे तुम
शायद कहीं तुम्हारा दिल इन दिनों लगा है।
(मीर)

और देखिए :—

कुछ तो होते हैं मुहब्बत में जुनूं[1] के आसार
और कुछ लोग भी दीवाना बना देते हैं।

प्रेम मनुष्य को किसी सीमा तक पागल बना देता है परन्तु उसे पूर्णतया पागल बनाने में अकेले प्रेम ही कसूरवार नहीं होता, अपितु इसमें दुनिया के लोगों का भी हाथ होता है। यह दूनिया ईर्ष्या और द्वेष से भरी पड़ी है। अतः जहां भी दो दिल मिलने की चेष्टा करते हैं, यह उनके मार्ग में तरह तरह की रुकावटें डालती है; उनको तंग करती है, खिजाती है और उनके प्रेम को असफल बनाने का भरसक प्रयत्न करती है, जिससे प्रेमी निराश होकर दीवाने हो जाते हैं। दुनिया इसी पर बस नहीं करती। प्रेमी को दीवाना बना कर उसको पत्थर भी मारती है :—

जोशे-जुनूं हमारा आखिर को रंग लाया,
जो देखने को आया हाथों में संग[2] लाया
(मीर)

तेरे कूचे इस बहाने मुझे दिन से रात करना
कभी इससे बात करना कभी उससे बात करना। (मुसहफ़ी)

प्रेम के बन्धन में जकड़ा प्रेमी जब अपने प्रियतम के कूचे में जाता है तो वहां चिरकाल तक रहने का प्रयत्न करता है, बहाने ढूंढता है। अतएव वह कभी किसी

१. जुनूं = दीवानगी, पागलपन
२. संग = पत्थर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बात करता है तो कभी किसी से बात करने लगता है और इसी तरह पूरा दिन व्यतीत कर देता है । यद्यपि उसे अपने प्रियतम के दर्शन नहीं हो पाते परन्तु उसे उसके कूचे में रहने से ही अनन्त प्रसन्नता प्राप्त होती है। प्रियतम के कूचे की बड़ी महिमा है । इसकी ज़मीन को आसमान का रुतबा दिया जाता है:---

तेरे कूचे की बात है कुछ और
हर जमीं आस्मां नहीं होती ।

प्रियतम के कूचे की धूल को भी अत्यन्त पवित्र समझा जाता है । इसको झाड़ना तो एक तरफ, इसे अमृत से धोना भी गवारा नहीं करते :--

आलूदा१ उस गली की जो हों खाक से तो मीर
आबे-हयात२ से भी न वो पांव धोइए ।

इतना ही नहीं प्रियतम के निवास स्थान पर दूर ही से नज़र पड़ जाए तो प्रेमी आनन्द विभोर हो उठता है:--

मैं अब सजदा३ करूँ दिल को संभालूं या
या बढ़ूं आगे ।
नजर आता है कोसों से किसी का आस्तां४
मुझ को ।।

इश्क बहादुर भी बनाता है, जैसे--

बेखतर५ कूद पड़ा आतिश-ए- नमरूद६
में इश्क
अक्ल है महव-ए-तमाशाए लबे-बाम७ अभी

इश्क इन्सान को असीम निडरता व बहादुरी प्रदान करता है। इश्क लाभ या हानि नहीं देखता । वह आंखें मूंद कर कूद पड़ता है चाहे नीचे अथाह समुद्र हो या आग का दरिया । इसके विपरीत अक्ल डरपोक होती है वह आदमी को कायर बना देती है और उसके वश होकर मनुष्य पड़ा सोचता रहता है। दुनिया में जितने महान कार्य हुए हैं वे इश्क की निडरता और बेबाकी के सदके हुए हैं, मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने वाले जनूनी लोग ही थे जिन्होंने अपनी जान पर खेल कर अनेक खोजें व आविष्कार किये और जीवन के मूल्यों की रक्षा के लिये अपना खून बहाने से भी संकोच नहीं किया । अक्ल के गुलामों ने मनुष्य को डरपोक और गौरवहीन बनाया है। इसीलिये तो इक़बाल एक और जगह कहता है :--

सुबहे--अजल८ये मुझ से कहा जिबरईल९ने

१. आलूदा=सने हुए, अटे हुए ।
२. आबे हयात=अमृत
३. सजदा=सिर झुकाना
४. आस्तां=मकान, घर
५. बेख़तर=निडर, बेधड़क
६. नमरूद=एक ज़ालिम बादशाह का नाम, जो नास्तिक था
७. लबे-बाम=छत का किनारा
८. सुबहे अजल=जिस दिन दुनिया बनी
९. जिबरईल=एक फरिश्ते का नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अक्ल का गुलाम हो वो दिल न कर
क़बूल ।

फिदा करता रहा दिल को
हसीनों की अदाओं पर,
मगर देखी न इस आईने में
अपनी अदा तूने ।
(इकबाल)

इक़बाल ने इश्क को एक नया मोड़ दिया है, जो इससे पहले नहीं था । उर्दू शायरी में प्रेमी अपना सर्वस्व निछावर कर देने में ही महानता समझता था और अपने प्रियतम के आगे अपनी हस्ती को तुच्छ समझता था । वह अपने दिल में भी अपने लौकिक प्रियतम की मूर्ति छिपाए रखता था :—

दिल के आईने में है तस्वीरे-यार,
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली ।

परन्तु इकबाल ने प्रेमी को चेतन किया । उसे सौंदर्य के पीछे अपनी हस्ती को मिटा देने पर फटकार बताई और अपने दिल के दर्पण में खुद अपनी हस्ती को देखने और अपने असीम सौन्दर्य को परखने की प्रेरणा दी, क्योंकि मनुष्य प्रकृति का सबसे शक्तिशाली जीव है, और मनुष्य-जीवन एक दुर्लभ वस्तु है, जिसे व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए । अगर मनुष्य अपने आपको जान जाए तो फिर उसको किसी के आगे झुकने या सज्दा करने की ज़रूरत नहीं रहती :—

सजदे को सर झुका दिया अपने ही पांव पर,
हमको जब अपनी जात१ से कुछ आगही२
हुई ।। (साबिर अबोहरी)

१. जात से=स्वय से
२. आगही=जानकारी ।

जिनको इश्क-ए-सादिक है
वो कब फरियाद करते हैं।
लबों पे मोहर-ए-खामोशी
दिलों में याद करते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू ने कहा था

किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय में किसी पर निर्भर रहना सम्भव नहीं है। मनुष्य को अपनी जीवन–यात्रा एकाकी करनी है ; दूसरों पर निर्भर रहना निराशा को आमंत्रित करना है।

आदमी का व्यक्तित्व उसकी अपनी कमाई है।

विलम्ब के लिए बहानों में मेरी दिलचस्पी नहीं। मेरी सिर्फ इसमें दिलचस्पी है कि काम पूरा हो जाए।

कर्म प्रभावकारी हो, उसके लिए आवश्यक है कि उसे स्पष्टता-पूर्वक कल्पनाबद्ध लक्ष्यों की ओर केन्द्रित किया जा सके।

कर्म के बिना विचार और विचार के बिना कर्म निपट मूर्खता है।

कठिनाई मुझे ताकत देती है, असम्भव मुझे ज़िन्दगी देता है। मगर क्षुद्रता, छोटापन मेरे लिए ज़हर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों एवं पाठकों से
विशेष निवेदन

*रचना सफेद कागज़ पर एक ओर टाइप किये सुवाच्य अक्षरों में लिखी होनी चाहिए तथा सामग्री यथा सम्भव सरल और सुबोध होनी चाहिए।

*अनुवाद या लिप्यन्तर भेजते समय मूल लेखक की अनुमति भेजना न भूलें ।

*रचना की प्राप्ति सूचना प्रायः १५ दिन में भेज दी जाती है। अस्वीकृत रचनाएं लौटाने एवं उनकी सूचना भेजने का नियम नहीं है। लेखक के आग्रह पर विशेष परिस्थितियों में उसकी रचना उसे लौटाई जा सकती है ।

*सामग्री के संशोधन एवं प्रकाशन के विषय में सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा, परन्तु लेखक के सभी विचारों में सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं ।

*रचना के आरम्भ और अन्त में अपना पूरा पता और नाम लिखना न भूलें ।

रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए ।

*'जन–साहित्य' एवं 'सप्तसिन्धु' की एक प्रति का मूल्य क्रमशः ५० पैसे और वार्षिक चन्दा ६ रुपये है ।

*ये पत्रिकाएं डी. पी. आई. पंजाब एवं मध्यप्रदेश द्वारा पंजाब एवं मध्यप्रदेश के सभी स्कूलों, कालेजों तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत हैं।

*'सप्तसिन्धु' पत्रिका में शोधविषयक लेख छपते हैं और दूसरी पत्रिका 'जनसाहित्य' में सृजनात्मक साहित्य छपता है ।

*ये पत्रिकाएँ आपकी अपनी हैं, इनके सुधार के लिये अपने अमूल्य सुझाव भेजते रहें ।

*पत्रिकाओं से सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार का पत्र-व्यवहार निदेशक, हिन्दी विभाग, पंजाब, पटियाला से करें न कि किसी व्यक्तिगत नाम से।

* वार्षिक चन्दा मनीआर्डर द्वारा भेज कर आज ही ग्राहक बनें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SAPT SINDHU
October, 1966
R. No. P. 318

श्री लाल सिंह, डायरैक्टर जनरल, भाषा विभाग, पंजाब पटियाला द्वारा प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी डिपार्टमैंट, पंजाब, पटियाला से छपवा कर प्रकाशित किया गया।

सम्पादक—डा० परमानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76226

18-11-66

सप्तसिन्धु

गुरुकुल कांगड़ी

नवम्बर, १९५

५० पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग

त्याग आपको हिमालय के घने जंगल में जाने का आदेश नहीं देता, त्याग आपसे कपड़े उतार डालने का आग्रह नहीं करता, त्याग आपको नंगे पाँव और नंगे सिर घूमने के लिए नहीं कहता।

त्याग न तो अकर्मण्य, लाचारी और नैराश्यपूर्ण निर्बलता है। और न दर्पपूर्ण तपश्चर्या ही। ईश्वर के पवित्र मन्दिर अर्थात् शरीर को बिना प्रतिरोध मांसाहारी निर्दय भेड़ियों को खाने देना कोई त्याग नहीं है।

ईश्वरत्व और त्याग पर्यायवाची शब्द हैं। संस्कृति और सदाचार उसकी बाह्य अभिव्यक्तियां हैं। अहंकारपूर्ण जीवन का छोड़ देना ही त्याग है और वही सौन्दर्य है।

हृदय की शुद्धता है अपने आपको सांसारिक पदार्थों की आसक्ति से पृथक् रखना। त्याग का अर्थ इससे रंचमात्र कम नहीं।

कामना से रहित कर्म ही सर्वोत्तम त्याग अथवा पूजन है।

—स्वामी रामतीर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख सूची

[मासिक प्रकाशन—नवम्बर, १९६६]

वर्ष १३ अंक ११

१.	सम्पादकीय		
२.	वर्ण रत्नाकर में कथित राज चिह्नों का परिचय	डॉ० भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता, हिन्दी विभाग, पंजाब विश्व विद्यालय, चण्डीगढ़–१४	१
३.	तीन विक्रमादित्य	म० म० छज्जू राम शास्त्री	१०
४.	हिन्दी और बंगला प्रदेशों की सांस्कृतिक एक सूत्रता	डा० सत्येन्द्र कुमार	१६
५.	हिन्दी साहित्य में छायावाद का स्वरूप	प्रो० टेक चन्द शर्मा	३०
६.	सेनापति कृत 'गुरु शोभा' एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ० मनमोहन सहगल, कुरूक्षेत्र विश्व विद्यालय, कुरूक्षेत्र	४३
७.	पंजाब का मध्य युगीन हिन्दी काव्य	प्रो० योगेन्द्र बख्शी, महेन्द्रा कॉलेज, पटियाला	५९
८.	चीनी भाषा और लिपि	श्री मोलूराम ठाकुर, भाषा विभाग, हरियाणा, पटियाला	७४
९.	हिन्दी कविता को पंजाब की देन	श्री सत्यपाल गुप्त, अनुसंधान सहायक, भाषा विभाग, हरियाणा, पटियाला	८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०.	संस्कृत काव्य में श्री कृष्णचन्द्र और भीमसेन का हास्य विनोद	श्री शाम्भवीदत्त शास्त्री, मुहल्ला उपाध्यायों वाला, सनौर (पटियाला)	९७
११.	प्रसाद काव्य में प्राकृतिक रहस्यवाद	श्रीमती कृष्णा देवी, द्वारा के० बी० सिंगला महेन्द्रा कॉलेज, पटियाला	१०७

सम्पादक—डॉ० परमानन्द

साहित्य के अनमोल मोती प्राचीन ग्रंथों के रूप में अनेक प्रान्तों में छिपे पड़े हैं । उन ग्रंथों के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले खोजियों द्वारा लिखित अनुसन्धान एवं अन्वेषणात्मक लेख सप्तसिन्धु में प्रकाशित किये जाते हैं ।

सप्तसिन्धु डी० पी० आई० पंजाब, परिपत्र संख्या ४६६७-एस० ५५-५८ बी-४३५३ दिनांक ६ अक्तूबर १९५८ द्वारा पंजाब के सभी स्कूलों, कालेजों एवं लायब्रेरियों के लिए स्वीकृत है ।

—आज ही—

६ रुपए भेजकर वार्षिक ग्राहक बनिये ।

अपनी उत्कृष्ट रचना भेजकर सहयोग दीजिए ।

एक प्रति का मूल्य ५० पैसे — वार्षिक चन्दा ६ रुपये

पत्र व्यवहार के लिए पता :—
डायरैक्टर, भाषा विभाग, हरियाणा, पटियाला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरियाणा–एक नया प्रदेश ।
स्वागत ।

अभिनन्दन

भारतीय लोक सभा के निर्णयानुसार विभक्त पञ्जाब का पुनर्विभाजन हुआ । नया पञ्जाब और हरियाणा प्रदेश प्रथम नवम्बर, १९६६ के दिन अस्तित्व में आए हैं । यह हरयाणा तथा नवीन पञ्जाब का सौभाग्य है कि उन्हें स्वतन्त्र रूप से परस्पर स्पर्धा पूर्वक समुन्नति करने का अवसर प्राप्त हुआ । इसमें सन्देह नहीं कि पञ्जाब प्रदेश का भूभाग पहले से विशेष समृद्ध तथा उन्नत है । हरियाणा यद्यपि देशभक्तों की भूमि है--तथापि विदेशी राज्य ने इसे दृष्टि-विगत रखने में अपना कल्याण समझा । प्राचीन काल से ही हरियाणा प्रदेश वैभव शाली रहा था---परन्तु अंग्रेजों को इस प्रदेश की देश-भक्ति अखरती रही । वे कैसे इसे समृद्ध बनाये रख सकते थे ।

प्रदेश गौरव

सदाचार और आदर्श मानव की भूमि--

पञ्चनद-प्रक्षालित, वीर-प्रसू पञ्जाब प्रदेश में ही नहीं प्रत्युत काश्मीर से लेकर रामेश्वरम् तक और पेशावर से असम तक की भारत भूमि के पुनीत धराधाम पर हरयाणा प्रान्त अपनी अन्यन्य-सुषमा, अप्रतिम पराक्रम एवं मनोमोहक संस्कृति के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखता है । यह वही पुनीत भूमि है जहां भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीता-ज्ञान की मन्दाकिनी में स्नान कराया था । मनुस्मृति के रचयिता ने इसी प्रदेश को "ब्रह्मर्षि" देश घोषित किया था । यहीं के निवासिओं को आदर्श मानव माना गया और इसी देश के आचार-व्यवहार को सीखने के लिये अन्य भूभाग-निवासिओं के लिये यहां आना अनिवार्य माना गया था । भगवान् मनु ने स्पष्ट घोषणा की है :--

एतद् देश-प्रसूतस्य
सकाशादग्र जन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्
पृथिव्यां सर्वमानवाः ।

(मनुः २।१८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् "समस्त भू-मण्डल निवासियों को आवश्यक है कि वे अपने चरित्र-निर्माण के लिये इस देश में उत्पन्न ब्राह्मणों की सेवा में उपस्थित हों और सदाचार की शिक्षा प्राप्त करें।"

यहां के निवासी वर्णाश्रम-धर्मों में सर्वथा निष्ठ थे। विकट विपत्ति में भी कभी विचलित नहीं होते थे। आज भी हमें इसी प्रदेश में शम-दम-तप-तितिक्षा-आर्जव और ज्ञान-विज्ञान के निधि तपस्वी ब्राह्मण मिलते हैं। गत दिनों में निमन्त्रित होकर जब गुरुकुल झज्जर में हरयाणवी संग्रहालय को देखने के लिये गया तो परम तपस्वी आचार्य भगवान् देव की तितिक्षा और तपस्या को देख कर मुझे प्राक्कालीन ऋषि मुनियों का स्मरण हो आया। हरयाणा के आयुध-जीवी आयुधेय वीर जाटों के पराक्रम से पराभूत होकर पाकिस्तान आज भी पश्चाताप कर रहा है कि क्यों बैठे-बैठे उसने शेर के मुंह में हाथ दे दिया। १८५७ के प्रथम भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में जो वीरता इस भूमि के नरवांकुरों ने दिखाई वह थोड़े ही पुरुषों के भाग्य में होती है। यहां की भूमि का कण-कण भारत की वीर गाथाओं के मधुर संगीत से मुखरित है तभी यह कहा गया है :—

तस्मिन् देशे य आचारः
पारम्पर्य—क्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां
स सदाचार उच्यते ॥

(मनु २।१८)

इस प्रदेश की उपेक्षा

ऐसी उदात्त संस्कृति के पात्र हरयाणा प्रदेश को विदेशी शासकों—विशेषतः अंग्रेजों ने वर्षों तक उपेक्षित रखा। अंग्रेजों को तो वैर-शोधन की लिप्सा थी ही। जिन्होंने देश भक्ति को प्रकट किया उन्हें कुचलना उनकी नीति थी। देश भक्त हरयाणा उनकी आंखों में सदा अखरता रहा। उनका द्वेष इतना गहरा था कि उन्होंने "हरयाणा" शब्द का ही अर्थ "लुटेरों का देश" कर दिया। इस विषय में देखिए "तवारीख जिला रोहतक" जो आज से अस्सी वर्ष पूर्व उर्दू में अंग्रेजी सरकार की दुष्प्रेरणा से लिखी गई थी। इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेज स्वयं लुटेरे थे। उन्होंने दम्भ, प्रतारणा और विविध दुरभिसन्धियों से ही भारत को हथिया लिया था और यहां का वैभव लूट कर इंगलिस्तान को मालामाल किया था। हरयाणा वीर-भूमि थी। भारतीय संस्कृति की प्राचीनतम प्रतिष्ठा थी। हरयाणा शब्द महान् है। इसी एक शब्द में इस प्रदेश का इतिहास निहित है। अभी तो यहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना ही लिखना पर्याप्त है कि हरयाणा का महत्त्व ऐतिहासिक है और किसी से न्यून नहीं ।

सम्बन्ध

मेरा हरयाणा प्रान्त से लगाव सदा से रहा है । आर्यसमाज का यह लीला-स्थल है । आर्यसमाज से मेरा सम्बन्ध होने से देश-भक्ति की भावना स्वाभाविक है । ऋषि दयानन्द इस युग के सर्वप्रथम तेजस्वी देश-भक्त हो गुजरे हैं । अतः मैं हरयाणा का अनुरागी रहा हूँ । निरामिष भोजन—यहां की वीरता का प्रतीक है । मेरे मन में प्रबल इच्छा है कि जिस गणेय-गौरव भू-भाग को अंग्रेज़ों ने सदा दृष्टि-विगत रखा उसकी महत्ता जनता के सामने लाई जाय । क्योंकि देश में यह नव-जागरण का युग है और इस समय नवीन प्रदेश को प्रतिष्ठा देने के लिए ही हमें सदा प्रस्तुत रहना है ।

इसी भावना से मेरे मन में यह प्रेरणा हुई थी कि हरयाणा प्रान्त की भाषाओं तथा लोक-मानस की मनोरम झांकी जनता के सामने रखी जाय । देश की संस्कृति, देश का अतीत और देश का उज्ज्वल गौरव उनके लोक गीतों में निहित होता है । इसी मृदुल भावना से प्रेरित होकर "जन साहित्य" का विशेषांक "हरयाणवी लोक मानस की झलक" के रूप में जनता के कर-कमलों में कुछ मास पहले हमने उपहृत किया था । मेरे इस कठिन मार्ग में साहाय्य देना प्रत्येक हरयाणा निवासी का कर्त्तव्य है ।

शुभाशंसन

अन्त में मैं भाषा विभाग की ओर से—तथा हरियाणवी जनता की ओर से इस नवीन हरियाणा प्रदेश के नव निर्माण के दिन इसका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ । भगवान् से प्रार्थना है कि वह इस प्रदेश को शस्य-श्यामल और धन धान्य पूर्ण बनायें । भारत माता के उन्नत शिखर पर यह प्रदेश तेजस्वी रत्न-जटित सुवर्णिम मुकुट पर भास्वर रत्न के समान चमके ।

हमें हर्ष है कि इस महान् प्रदेश के नेतृत्व का विकट बोझ माननीय श्री भगवद्दयाल जी ने अपने बलवान् एवं समर्थ कन्धों पर उठाया है । उनके कुशल नेतृत्व में जनता को समृद्धि एवं देश को गौरव मिलेगा । करुणा वरुणालय जगत्-पिता उन्हें दीर्घ आयु दें । जिससे वे चिर काल तक इसका गौरव बढ़ाते रहें ।

—डा० परमानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरियाणा के प्रथम मुख्य मन्त्री :—

श्री भगवत् दयाल जी शर्मा

श्री भगवत् दयाल शर्मा हरियाणा के सर्वतोमुखी प्रतिभा शाली लोकप्रिय नेता हैं। आपने अपना बहुमूल्य जीवन राष्ट्र एवं हरियाणा निवासियों की सेवा में व्यतीत किया है तथा जनता की भलाई का शायद ही कोई कार्य क्षेत्र ऐसा हो जो आपकी दृष्टि से ओझल हुआ हो। आपने देश को स्वतंत्र करवाने के लिये देश के अन्य बड़े नेताओं के साथ मिल कर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी तथा देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आप इसके नव निर्माण के लिये रचनात्मक कार्यों में अपना महत्त्वपूर्ण योग देने लगे।

जहां आप एक सुलझे हुए विचारों के सफल नेता हैं वहां भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक भी हैं। आप राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं देववाणी संस्कृत के विकास में विशेष रुचि रखते हैं। आपके मन में यह प्रबल इच्छा है कि हरियाणा भारत के अन्य प्रगतिशील प्रदेशों में अपना प्रमुख स्थान शीघ्र बनाये। नीचे हमने आपके क्रियाशील जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया है।

आपका पवित्र जन्म हरियाणा के जिला रोहतक के छोटे से कस्बे बेरी में १९१८ में हुआ आपने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पिलानी में ग्रहण की तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। यहां रह कर आपने भारतीय संस्कृति, संस्कृत एवं हिन्दी की महानता को समझा तथा इनका बहुत गम्भीर अध्ययन किया। इस विश्वविद्यालय के वातावरण से आप बहुत प्रभावित हुए तथा यहीं आपने देश सेवा का पवित्र व्रत लिया।

१९४२ में देश में अंग्रेजों के विरुद्ध जो महान आंदोलन महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में हुआ उसमें आपने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया तथा देश के अन्य नेताओं के साथ आप भी गिरफ्तार कर लिये गये। आपने चार वर्ष तक देश की स्वतंत्रता के लिये जेल की कड़ी यातनाएं सहन कीं।

आपको कुछ समय तक महात्मा गांधी जी द्वारा संचालित सेवाग्राम में भी रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर में आपका देश के चोटी के उन नेताओं के विचारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सुनने तथा अध्ययन करने का अवसर भी मिला जो समय समय पर यहां पधारते रहे ।

जहां आप एक सफल राजनैतिक नेता हैं वहां मजदूर किसानों के सच्चे प्रतिनिधि भी कहे जा सकते हैं । आपके कार्य का प्रमुख क्षेत्र मजदूरों एवं किसानों की भलाई एवं उन्नति के लिये कार्य करना है । आप वर्षों तक पंजाब हिमाचल तथा जम्मू काश्मीर इण्टक के महामन्त्री रहे तथा आजकल आप इस संस्था के प्रधान के रूप में इनका मार्ग - दर्शन कर रहे हैं । आप संयुक्त पंजाब प्रदेश कांग्रेस के प्रधान अब तक रहे तथा जब नए हिन्दी प्रदेश हरियाणा की स्थापना का निर्णय हुआ तो आप हरियाणा प्रदेश कांग्रेस के पहले प्रधान चुने गये ।

इतना व्यस्त राजनैतिक जीवन व्यतीत करते हुए भी आप साहित्य एवं कला के विकास में बहुत रुचि रखते हैं तथा प्रत्येक संभव प्रयत्न करते रहते हैं । आपका ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान बहुत गम्भीर है ।

हम आपकी दीर्घ आयु एवं आपको अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्ति की कामना करते हैं ।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू ने कहा था

किसी भी महत्वपूर्ण विषय में किसी पर निर्भर रहना सम्भव नहीं है। मनुष्य को अपनी जीवन-यात्रा एकाकी करनी है; दूसरों पर निर्भर रहना निराशा को आमंत्रित करना है।

आदमी का व्यक्तित्व उसकी अपनी कमाई है।

विलम्ब के लिए बहानों में मेरी दिलचस्पी नहीं। मेरी सिर्फ इसमें दिलचस्पी है कि काम पूरा हो जाए।

कर्म प्रभावकारी हो, उसके लिए आवश्यक है कि उसे स्पष्टता-पूर्वक कल्पनाबद्ध लक्ष्यों की ओर केन्द्रित किया जा सके।

कर्म के बिना विचार और विचार के बिना कर्म निपट मूर्खता है।

कठिनाई मुझे ताकत देती है, असम्भव मुझे जिन्दगी देता है। मगर क्षुद्रता, छोटापन मेरे लिए ज़हर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वर्णरत्नाकर में कथित राजचिह्नों का परिचय

डा० भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता

मध्यकालीन वर्णक ग्रन्थों में वर्णरत्नाकर१ का विशिष्ट स्थान है। यह अपने समकालीन समस्त वर्णक ग्रंथों—वर्णक समुच्चय,२ सभाशृंगार,३ पृथ्वीचंद्रचरित्र४ आदि से अधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक सामग्रियों का यह रत्नाकर ही है। इसका प्रत्येक रत्न उस युग की जानकारी के लिये बहुत ही मूल्यवान है।

इस ग्रंथ में ग्रंथकार ज्योतिरीश्वर ठकुर ने सेना के प्रयाण के प्रसंग पर चीन्ह, चामर, ध्वज, पताका, छता, छाती, छगली, सतमौला, घओरट प्रभृति छत्र-प्रकारादि सैन्यालंकारों से आकाशाच्छन्न होने का वर्णन किया है। प्रस्तुत शब्दावली बहुत ही पारिभाषिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की है। नीचे विस्तार से उसका मूल्यांकन किया जा रहा है।

चीन्ह— इसका राजचिह्न से भी अभिप्राय है। राजकीय चिह्नों में सिंहासन छत्र, चँवर, मुकुट, राजदण्ड, पैर रखने की चौकी, शंख आदि मुख्य थे। लेकिन यहां इसका तात्पर्य शस्त्रचिन्ह (Heraldic Sign) और कुल चिन्ह (Code of arms) अधिक समीचीन लगता है।

चामर—इसका अभिप्राय चँवर से है। राजकीय चिह्नों में इसका विशेष महत्त्व था। बाण ने भी हर्ष के स्कन्धावार की

१—वर्णरत्नाकर, सं० डां० सु० कु० चटर्जी, प्र० रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, १९४०

२—वर्णकसमुच्चय, सं० डा० सांडेसरा, प्र० बड़ोदरा विश्वविद्यालय, १९५६ ई०।

३—सभाशृंगार, सं० अगरचन्द नाहटा, प्र० ना० प्र० सभा, काशी, सं० २०१९।

४—पृथ्वीचंद्रचरित्र, सं० मुनिजिनविजय, प्र० गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, सं० १९८६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोभा का वर्णन करते हुए चँवर का उल्लेख किया है१। वराहमिहिर साक्ष्य से हिमालय की कन्दराओं में चमरी की पूंछ के बाल से यह बनता था। उसने इसके शुभ लक्षण स्निग्ध, कोमल, अधिक निर्मल, परस्पर बिना मिले, मध्य की छोटी हड्डी वाले और सफेद बताए हैं। उस चामर का दण्ड डेढ़ हाथ, एक हाथ या निमुठ हाथ होना चाहिए। सोना, चांदी और सब रत्नों से युक्त श्रेष्ठ काष्ठ का इसका दण्ड राजा के लिये हितकर कहा गया है। दण्ड में तीन पर्व हों तो वह राजा को यात्रा में विजय, पांच पर्व हों तो शत्रुओं का नाश, सात पर्व हों तो बहुत लाभ, नौ पर्व हों तो भूमि लाभ, ग्यारह पर्व हों तो पशुओं की वृद्धि और तेरह हों तो स्वामियों को अभीष्ट वस्तुओं का लाभ होता है।२

ध्वज-पताका

ध्वजा और पताका प्रायः पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु ज्योतिरीश्वर के अनुसार इनमें अवश्य ही अन्तर था। ध्वज का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है—जो फहराता है।३ यह चतुष्कोण होता था। जिस चिन्ह के द्वारा योद्धादि भेद भक्त हो, पताका कहलाता था।४ यह त्रिकोण होती थी।

अग्निपुराण के अनुसार ध्वज का निर्माण रेशम, कपास और पटुए से होता था।५ यह विविध वर्णों का होता था।६ हेमचन्द्र के मत से इस पर बाज, वज्र, मृग, छाग, प्रासाद, कलश, कूर्म, नीलोत्पल, शंख सर्प और सिंह की छवियां अपेक्षित थीं।७ कई पुराणों में ध्वज का विपुल भाव से वर्णन किया गया है।८ युक्तिकल्पतरु में भी इसके निर्माण का विचार किया गया है। उसके अनुसार ध्वज

१--हर्षचरित्र, २।५६।
२--बृहत्संहिता, अध्याय ७२, चामरलक्षण।
३--ध्वजति (गच्छति) इति ध्वजः।
४--पत्यते (बोध्यते) योद्धादिभेदः अनया सा पताका।
५--पट्टकार्पास क्षोमाद्यैर्ध्वज कुर्यात् सुशोभनम्।
एकवर्णं विचित्रं वा घंटाचामरभूषितम्।।अग्नि०, अ० ५९।
६--नानावर्णं ध्वजं कुर्याद्विचित्रं चैकवर्णकम्।
घंटाचामर किंकिण्या भूषितं पापनाशनम्।।वही।
७--श्येनः वज्रं मृगश्छागो नन्द्यावर्चा घटोपि च।
कूर्मो नीलोत्पल शंखः फणी सिंहोर्हतां ध्वजः। सिद्ध हेमशब्दानुशासन, दानखंड।
८--वामन०, ४।४८, विष्णु० ५।३३।३, विष्णुधर्मो०, ४६।१२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाओं का चिन्ह था। इसके दो भेद प्रधान थे—सपताक और निष्पताक ।[1]

१—सपताक ध्वज अलँकृत और सज्जित रहता था । वह सोने, चांदी और ताम्बे आदि धातुओं के बने कलश से अंकित और रत्नों से खचित होता था।

२—निष्पताक ध्वज में चित्रकारी नहीं होती थी लेकिन ध्वज-दँड पर कलश, कमल, पक्षी और रत्न आदि खचित अवश्य रहते थे ।

जिस पर त्रिकोण या चतुष्कोण पताका वा ध्वज फहराता था वह पताका दंड, ध्वजदँड वा ध्वजयष्टि कहलाता था। वराहमिहिर ने इन्द्र ध्वज सम्पदध्याय में ध्वज का माहात्म्य बताते हुए इसके लिये शुभलक्षण से युत वृक्षों से शुभ मुहूर्त में विशेष महोत्सव के साथ यष्टि लाकर विधिपूर्वक निर्माण करने का विधान बड़े विस्तारपूर्वक बतलाया है।[2]इसी के अनुरूप महाभारत [3] एवं कालिकापुराण [4] में इन्द्रध्वजोत्सव का मनोरम चित्रण मिलता है ।

भाद्र कृष्ण द्वादशी को राजपुरोहित दस बढ़ई के साथ वीर सैनिकों के संरक्षण में राज्य के समीपवर्ती जंगल में गाजे-बाजे के साथ जाते थे । वहां ताल, अश्वकर्ण (अजकर्ण) पियंगु, धवक, गूलर, देवदारू तथा लाशालवृक्ष [5] में छोटे, काटेंदार, खोखले और दोषपूर्ण का परिहार कर सर्वांग सुन्दर वृक्ष ध्वजदंड के लिये चुनते थे ।

शुभलक्षण युक्त उस वृक्ष के समक्ष निर्जन-रहित रात्रि के समय पुष्पादि से विधिवत पूजन कर राजपुरोहित प्रार्थना करते थे । 'हे प्रधान वृक्ष ! आपके लिये शुभ हो, राजा इन्द्रध्वज के लिये आपको पाने की इच्छा कर रहा है। अत: मेरी पूजा ग्रहण करे दँड प्रदान करें ।[6]'

दूसरे दिन सूर्योदय के समय उत्तर या पूर्व मुख होकर वृक्ष को काटा जाता

१—"सपताको निष्पताक: स ज्ञेयो द्विविधो बुधै: "
 —वाचस्पत्यकोष में युक्तिकल्पतरु का उद्धरण ।

२—बृहत्संहिता, अ० ४३ ।

३—आदि, अ० ६४ ।

४—कालिकापुराण , अ० ९० ।

५—वृहत्संहिता (अ० ४३) में यहां अर्जुन, अजकर्ण, प्रियक धव और गूलर इन पांच वृक्षों को ही शुभ बताये गये हैं जबकि महाभारत में ताल, देवदारू और शाल भी शुभ माने गए हैं ।

६—बृहत्संहिता, ४३–१७–१८ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। काटते समय कुल्हार का मधुर और सघन शब्द शुभ माना जाता था और जर्जर शब्द निकलना अशुभ। अखण्डित या अवक्र होकर पूर्व अथवा उत्तर दिशा में वृक्ष का गिरना राजा की विजय करने वाला होता था। इसके आगे से चार अंगुल और मूल से आठ अंगुल काट कर मध्य भाग वाली यष्टि को समीपवर्ती सरिता का पुष्कारिणी में दस दिनों तक डुबा कर रखा जाता था। भाद्र शुक्ल अष्टमी के दिन नगरवासी, मंत्री, ज्योतिषी एवं ब्राह्मणों के साथ नवीन वस्त्र से ढकी हुई, माला, गंध और धूपों से युक्त यष्टि को शंख, तूरी आदि के शब्दों के साथ नगर द्वार पर लाया जाता था। २२ हाथों का ध्वजदंड अधम समझा जाता था, ३२ हाथों का मध्यम और ५२ हाथों का सर्वश्रेष्ठ। ध्वजदंड के निचले भाग में इन्द्रकुमारिका की मूर्त्ति बनाई जाती थी और उसके ऊपर वाले सिरे पर इन्द्र मातृका की। कलात्मकता के साथ घँटा, चामर आदि इस पर काढ़े जाते थे। भाद्र शुक्ल द्वादशी को राजा पद, अश्व, रथ तथा गज के साथ नगर द्वार पर जाता था। रणवाद्य से आकाश गूंजता रहता। अपने हाथों से वह ध्वजदँड को अभिषिक्त, अलँकृत तथा सँपूजित करता था। तदुपरान्त चतुरँगिणी सेना के मध्य ध्वजोत्तोलन पर अभिवादन करता था। राजा के पश्चात, उसके परिवार तथा अन्य सैनिक ध्वज-प्रणाम करते थे। उस समय पदाति, अश्वारोही आदि प्रत्येक सैन्य अपनी रणचातुरी, शस्त्रकौशल तथा नव आविष्कृत आयुधों का प्रदर्शन कर नागरिकों की नसों में उष्ण रक्त का सँचार करते थे।

वराहमिहिर ने मनु का उद्धरण देते हुए बताया है कि ध्वजा के ऊपर पांच या सात शक्र कुमारी बनाना चाहिए। ध्वजा की ऊँचाई से चौथाई कम नन्दा, ध्वजा के आधा तुल्य उपनन्दा, ध्वजा से सोलहवां भाग अधिक जय और विजय, उससे सोलहवां भाग अधिक दो वसुन्धरा तथा सबके बीच में वसुन्धरा से आठवां भाग अधिक शक्रजनित्री बनावे १। इस प्रकार शक्रजनित्री या इंद्रमाता उनमें सबसे बड़ी होती थी।

अंगविज्जा२ के विजय द्वार नामक इक्कीसवें अध्याय में वैजयंती, जयविजय आदि के आधार पर जय-पराजय सम्बन्धी फलकथन है।

उन दिनों समरक्षेत्रों में अवसरों के अनुकूल आठ प्रकार के पताकाओं का प्रयोग होता था —

१—**जय**—यह सबसे हल्का और विजय का सूचक था। रक्तवर्ण का यह

१—बृहत्सहिता, ४३/३९-४० ।
२—अंगविज्जा, पृ० १४६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वज पांच हाथ लम्बे दंड पर फहराता था।

2—**विजय**—यह श्वेतवर्ण का ध्वज छः हाथ लंबे दंड पर विजय के अवसर पर लहराया जाता था।

3—**भीम**—अरुण वर्ण का होता था और इसका दंड सात हाथ लँबा रहता था। लोभ हर्षण युद्ध के समय इसे फहराया जाता था।

4—**चपल**—यह पीले रँग का होता था और ध्वजदंड इसका आठ हाथ लंबा रहता था। विजय और पराजय के बीज जब द्वन्द्व चलता था, उस समय इसी चपल झँडे के सहारे युद्धगति की सूचना सेनाध्यक्ष को मिलती थी।

5—**वैजयन्तिक**—नौ हाथ लम्बे दंड पर यह विविध वर्ण वाला सर्वोत्कृष्ट जयन्ती-पताका (सर्वमँगला) फहराता था। इस पर हाथी अँकित रहता था।

6—**दीर्घ**—दस हाथ लम्बे ध्वज-दंड पर यह नीलवर्ण का ध्वज तभी दीखता था जब युद्ध का फलाफल शीघ्र ज्ञात नहीं हो पाता था।

७—**विशाल**—ग्यारह हाथ के दंड पर यह धारीवाल ध्वज क्रांतिकारी युद्ध का संसूचक था।

८—**लोल**—भयंकर मारकाट को सूचित करने के लिये बारह हाथ लम्बी यष्टि पर कृष्ण वर्ण का लोल ध्वज लहराया जाता था।

ये सभी झंडे संकेत (सिग्नलिंग) देने वाले होते थे।[१]

प्राचीन भारत में ध्वज के बहुविध उपयोग से यह भी प्रमाणित होता है कि संग्राम-संकेत शिक्षा में आधुनिक 'हैराल्डिक साइन' (Heraldic Sign) की तरह ध्वज संकेतात्मक विद्या भी विकसित थी। अपने अज्ञातवास काल में पांडवगण जब गुप्त वेश में विराट नगर में रहते थे तो दुर्योधन, कर्ण, द्रोण, भीष्म आदि कुरुवीर ने धावा बोल दिया। बृहन्नला वेशधारी अर्जुन जब अपने दिव्यायुधों से सुसज्जित होकर चले तो रथ पर कपिध्वज भी फहरा दिया। इससे कुरुसैनिकों को बोध हो गया कि अर्जुन से अतिशीघ्र घमासान, युद्ध करना पड़ेगा।[२] साथ ही अर्जुन को भी उन वीरों के झंडों पर दृष्टिपात करते ही बोध हो गया कि उसे किन-किन योद्धाओं से मुकाबला करना पड़ेगा।

प्राचीन भारत में राजमन्दिर, सैन्यशिविर, रणक्षेत्र और उत्सव आदि

१—पं० रामदीन पांडेय, प्राचीन भारत की संग्रामिकता, बि० रा० परि० पृ० ८।

२—वानरस्य रथे दिव्यो निस्वनः श्रूयते महान्।—विराट०, अ० ४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्वपूर्ण स्थलों को ध्वजविरहित रखना चिन्ताजनक माना जाता था। १ ध्वज राष्ट्र की संस्कृति, शक्ति, वैभव और उत्थान का द्योतक समझा जाता था। रक्तवर्ण का ध्वज बाल-रवि और यज्ञपूत ज्वाला का प्रतीक था। मध्यकालीन इतिहास में प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविन्द ने इसी वर्ण को अपनाया। ध्वज में स्वाभिमान, ऐश्वर्य, धर्म और जीवन सभी निहित थे। तभी इसके उत्थान में देश का उत्थान और पतन में देश का पतन सन्निहित था। राष्ट्र, समाज, सैन्य और धर्म पर इसका इतना अधिक प्रभाव था कि प्रसिद्ध पुरुषों की ख्याति इसके साथ जुटी थी।

रामायणकाल में सीरध्वज से जनक और कुश ध्वज से उसके भाई का बोध होता था। महाभारत काल में अर्जुन कपिध्वज,२ कृष्ण गरुड़ध्वज और बलराम तालध्वज के नाम से प्रसिद्ध थे। देवगण भी ध्वज से सुसज्जित समझे जाते थे। शंकर वृष्ध्वज, गणेश, कुंभध्वज, कार्त्तिक मयूरध्वज, अग्निधूमध्वज और दुर्गा सिंह ध्वजा के नाम से शेष हैं। अपने व्यापक प्रयोग के कारण ध्वजा उपमान के रूप में भी प्रयोक्त होने लगी थी।३ शत्रुपक्ष के प्रमुख नेता का ध्वज छीन लाना शौर्य का परिचायक था।४ ऐसा वीर विशेष सम्मान का भाजन बनता था। अपना झँडा दूसरे के हाथों देना आत्मसमर्पण समझा जाता था।५

रामायणकाल के अनुसार भग्नध्वज योद्धाओं पर आघात नहीं किया जाता था।६ महाभारत कालीन प्रथा के अनुसार राजसूय, अश्वमेध तथा विश्व जित् यज्ञों पर राजा को सार्वभौम घोषित करने पर ध्वज प्रदान किये जाते थे।७ विख्यात योद्धाओं के ध्वज उस समय अलग-अलग आकार और रँगों के थे। शल्य की ध्वजा पर हल८ और दुर्योधन के जयँती ध्वज पर

१--"ध्वजेन रहितं ब्रहन् मंडप तुवृथा भवेत्'—पंचरात्रि।

२—'चिन्त्यत्यसुरश्रेष्ठा ध्वजहीनं सुरालयम्'—शिवरहस्य।

३—आदाय परिघं घोरं पट्टो द्वन्द्वभयस्मयम्।
राजते तस्य हस्तस्थमिन्द्रध्वजमिवोद्धतम्॥ वामन० ६८। २६

४—विष्णुधर्मोत्तर, अ० ४६।

५—राजतरंगिणी, तरंग ३-७७

६ क--राम० लंका काण्ड, अ० ५६।

७—सभा०, ७८।६८।

८—द्रो०, १०५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नों का बना हाथी अँकित१ था। अर्जुन की ध्वजा पर हनुमान के चित्र के साथ सिंह की पूंछ भी चित्रित थी। २ प्रयाग-स्तम्भ पर उत्कीर्ण गुप्तकालीन शिलालेख में गरुड़ ध्वज उल्लिखित है ३ अधीनस्थ राज्य गुप्त सम्राट्' को गरुड़ध्वज अर्पित कर उसकी अधीनता अँगीकृत करते थे।४

ज्योतिरीश्वर के वर्णन के अनुसार सेना के कूच करने पर ध्वज आदि सैन्यालंकारों से आकाश आच्छादित हो जाता था।५ कल्हण ने इसी प्रकार रणयात्रा के अवसर पर पारध्वज के फहराने का उल्लेख किया है।६ वाण ने भी चन्द्रापीड़ की सेना के दिग्विजय प्रस्थान पर धवल ध्वजाओं के समूह से दिशाओं के छिप जाने का वर्णन किया है।७

मध्यकालीन वर्णक साहित्य में भी ध्वज का सुन्दर चित्र निखरा हुआ मिलता है। उदाहरणस्वरूप पृथ्वीचन्द्र चरित्र का ध्वजवर्णन उल्लेखनीय है: कोई एक गरुण प्रासाद, प्रखरि, तेहतपइ शिवरि, अखँड सुवर्णमयदँड, तेजि करि अँकुश, कनकमय कलश, भली, रत्नमय पाटली, तिहां जिसी स्वर्गतउ ऊदाली, इसी फाली, निरुपम स्वरूप, तिहां सीहतणउँ रूप, सिउ घँटागणि गहगहतउ, वाइ लहलहतु, निर्मल नीरज ध्वज। (पृ० १५०)

छता८ :—

छत्र का वर्णन वर्णरत्नाकर ९ के अतिरिक्त वर्णक-समुच्चय१०, सभाशृँगार११ पृथ्वीचन्द्रचरित्र१२ आदि ग्रंथों में भी स्कन्धावार से सेना के कूच करने पर पाते

१—द्रो० १०५ :

२—वही, १०५। ८ :

३—कार्पस इंस्क्रिप्शंस, इंडिकेरम, वाल्यूम् ३, इंस्क्रिप्शंस आफ दि अर्ली गुप्ता किंग्स एंड देयर सक्सेसरज़ बाई जे० एफ० फ्लीट, कलकत्ता, १८८८। पार्ट २, प्लेट नं० लाइन २४।

४—उपरिवत्।

५—वर्ण०, पृ० ३४।

६—राजतरंगिणी, ३।७७

७—कादम्बरी, अनु० ११७।

८—छत्र छत्त छता—इस रूप में इसकी व्युत्पत्ति है। पदमावत (१३।२, ५००।९) में 'छात' पाठ है।

९—वर्ण० पृ० ३४।

१०—वर्णक०, भाग १, पृ० ९३।

११—सभा०पृ० ७७।

१२—प्रा० गु० ग० सं०, पृ० १३९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। किन्तु ज्योतिरीश्वर जैसी लँबी शब्दावली अन्यत्र नहीं मिलती। वाण के वर्णन के अनुसार दिन की धूप छत्रों से ढक जाने के कारण नष्ट हो गई मानो हाथियों के मदजल से बुझ जाने के डर से कहीं भाग गई हो।१ हर्ष की सेना का प्रयाण करते हुए यह बताया गया है कि इन छत्रों में मोतियों की झालरें (मुक्ताफलजालक) लगी थीं। उनमें माणिक्य खँड लगे हुए थे और विद्रुम के बने दँड थे।२ वराहमिहिर ने राजा के छत्र का लक्षण निरूपण करते हुए उसे हंस, मुरगा (कृकवाकु) मयूर, और सारस के पंखों से निर्मित, श्वेत दुकूलों से आच्छादित, मुक्तामालाओं से अलँकृत और स्फटिक से युक्त मूठ वाला कहा है। उसमें छः हाथ लँबा सोने से मढ़ा हुआ नौ या सात पर्वों से युक्त दँड लगाने का विधान बताया है। उसके अनुसार तीन हाथ का व्यास वाला ऐसा रत्नमंडित छत्र राजा को विजय देने वाला होता है। युवराज, रानी, सेनापति और दँडनायक के छत्र का दँड साढ़े चार हाथ और व्यास ढाई हाथ होता था। शेष राजपुत्रों के लिये मयूरपक्षों का बना हुआ, प्रासाद पट्टों से शोभित सिर वाला और लटकती हुई रत्न मालाओं से युक्त छत्र धूप-निवृत्ति के लिये बनाया जाता था। अन्य लोगों के लिये चतुर्भुजाकार छत्र तथा ब्राह्मण के लिये गोर दँडयुक्त छत्र विहित था।३

अग्रवाल जी के कथनानुसार गुप्तकाल में दो प्रकार के छत्रों का उल्लेख आता है४-पद्मातपत्र और मायूरातपत्र। इनमें पद्मात पत्र की भांति अजंता के चित्रों में उपलब्ध है। मायूरातपत्र का उल्लेख हर्षचरित में आया है। इस प्रकार के छत्र का घेरा नाचते हुए मोर के रँग-बिरँगे पंखों की भांति का होता था जिसमें अनेक रँग की मणियों का जड़ाव किया जाता था और बीच में मोर का शरीर और मुड़ी हुई गर्दन बनाई जाती थी। कालिदास ने पद्मातपत्र का ही उल्लेख किया है। इस छत्र को देख कर ऐसा जान पड़ता था मानो लक्ष्मी स्वयँ छिपकर उजले कमल का छत्र लेकर राजा के पीछे खड़ी हो।५

छाती--छोटी छतरियों को कहा गया है।

१--कादम्बरी, अनु० ११७।

२--हर्ष०, २।५६।

३--बृहत्संहिता, अ० ७३, छत्रलक्षण, श्लो० १-६।

४--कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२५।

५--रघु० ४।५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतमौला—अनुमानतः इसका तात्पर्य बाण द्वारा वर्णित शतशलाकाओं से युक्त एवं मुक्ताफलों से अलंकृत बड़े छत्र से है।[1]

ज्योतिरीश्वर ने इसी क्रम में 'छगली'[२] और 'धओरट'[३] प्रभृति छत्र प्रकार का भी उल्लेख किया है और इनसे आकाश के आछन्न होने का वर्णन किया है। लेकिन यह शब्दावली गूढ़ लगती है। इसका अर्थ अस्पष्ट सा है।

हमें अंगविज्जा नामक प्राकृत जैन-ग्रन्थ में भी छत्र आदि के आधार पर सैनिक यात्रा का फलाफल विचार किया गया मिलता है।[४]

अबुलफज़ल के सात प्रकार के रत्न-जटिल छत्रों का उल्लेख किया है: १—सायवान—यह अंडाकार छत्र होता था और इसका दंड एक गज लंबा होता था। २—खीनखाव—सोने चान्दी के तारों से खचित रेशम तथा अमूल्य रत्नों से अलंकृत यह छत्र होता था। इसे अफताबगीर भी कहते थे। ३—कवकवा, ४—कुर—चमकते वस्त्रों की झूलों से सज्जित छत्र जिसे युद्ध और उत्सवों में फहराते थे। ५—छत्रतोक, ६—तुमनतोक, ७—झंडा।[५]

१—कादम्बरी, अनु० ११३।
२—वर्ण०, पृ० ३० के 'झगला' से यह तुलनीय लगता है। तब इसकी व्युत्पत्ति षडंगुलक से की जा सकती है। इसका अर्थ है चित्र-विचित्र छ-छ अंगुल पर नए रंग के जुड़े कपड़े से युक्त।
३—अधोवर्त के अर्थ में विशेष आकार का छत्र हो सकता है।
४—अंगविज्जा, ४७वां यात्राध्याय, पृ० १८७–१९९।
५—ब्लाखमैन, आइन अकबरी, पृ० ५२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीनखोजपूर्ण--

तीन विक्रमादित्य

o

म० म० छज्जूराम शास्त्री

विक्रमसंवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य शूद्रक था

वर्तमान विक्रमसंवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य निःसंदिग्ध शुङ्ग अग्निमित्र नामकशूद्रक विक्रमादित्य था। प्रचलित विक्रम-संवत् इसी के नाम पर चला हुआ है। इस संवत् का विक्रम संवत् नाम बहुत पीछे प्रचलित हुआ पहले पहल गोण्डो फर्स के १०३ सं० के रूप में यह उद्धृत हुआ। ४८१ तक के लेखों में इसका नाम कृत-संवत् लिखा गया। यथा—'श्रीमालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते' इत्यादि। तदनन्तर—'प्रयाते माल वेशनामव्दे सष्टतमे शते' इत्यादि से ८०० तक के लेख मालव-सन्नाम से प्राप्त हुए हैं। क्योंकि यह सं० मालवगण द्वारा प्रचलित किया गया था। यह सं० चला भी अधिक मालवा में ही। पीछे सभवतः चालुक्यों के प्रथम विक्रम ने इसका नाम शूदक विक्रम के नाम पर विक्रम सं० रक्खा। यह ज्ञान उसको सम्राट् समुद्रगुप्त के कृष्णचरित से या परम्परा से हुआ होगा। चन्द्रमहासेन के ८९८ सं० के एक लेख (वसुनव अष्टौ-वर्षागतस्यकालस्य विक्रमाख्यस्य) में विक्रम सँ० जुड़ा मिला। सुमतितन्त्र ग्रन्थ में युधिष्ठिराब्द (कलि सँ०) के बाद यही कृत या मालवा या वित्रम सँ०शूद्रकाष्द नाम से लिखा गया है। 'युधिष्ठिरोविक्रम-शालिवाहनौ' का विक्रम भी निःसँदिग्ध शूद्रक विक्रम है। क्षीर स्वामी ने अपनी अमरकोश टीका में एक प्राचीन पद्य उद्धृत किया है —'विक्रमादित्यः साहसाङ्कः शकान्तकः। शूद्रक स्त्वग्निमित्राख्यः हालः स्यात्सातवाहनः। अर्थात् साहसांक शकान्तक प्रथम विक्रमादित्य तो निःसँदिग्ध अग्निमित्र शूद्रक था। द्वितीय विक्रम-हालसातवाहन (विषमशील) रहा होगा। इसको कुन्तल सातर्काण –सातवाहन-कहा करते थे। शूद्रकविक्रम, कौन जातीय था देखिए सम्राट् समुद्रगुप्त का निर्भ्रान्तकृष्ण चरित लेख —

'पुरन्दरवलोविप्रः शूद्रकः शस्त्रशास्त्रवित्।
वत्सरं स्वंशकान् जित्वाप्रावर्तयत वैक्रमम्।
धर्मायराज्यं कृतवान् तपस्विव्रतमाचरत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मवर्णः कविः तस्य कालिदास इतिश्रुतः।।
दुष्यन्तभूपतिकथानाटके निवबन्ध यः ।।

यह प्रथम कालिदास नाटकत्रयकर्ता कालिदास था । मृच्छकटिक नाटक में शूद्रक की आयु सौ वर्ष की लिखी है कथा सारित्सागर में भी । इसने २० वर्ष विदिशा में और ४० वर्ष उज्जयिनी में राज्य किया होगा । जैन ग्रन्थ पटावलि में अग्निमित्र ने ६० वर्ष राज्य किया लिखा है पुराणों में अग्निमित्र का राज्यकाल ८ वर्ष का लिखा है वह संभवतः पाटलिपुत्र का राज्यकाल होगा । क्योंकि पुराणों में शुंग राजाओं का पाटलिपुत्र काल ही दिया है। अग्मिमित्र ने भी प्रथम ८ वर्ष वहां राज्य किया होगा । स्कन्द पुराण में इसके सम्बन्ध में--शूद्रकोनाम वीराणां मधिपः सिद्धिमापयः । त्रिषुवर्ष सहस्रेषु कलेर्यातेषु पार्थिवः । भविष्यं विक्रमादित्य राज्यं सोऽथ प्रलप्स्यते ।। ऐसा लिखा है। अर्थात्--वीर शूद्रक विक्रम सं० से २७ वर्ष पूर्व भविष्य विक्रमराज्य प्राप्त करेगा ।

सत्यमेव ही वीर शूद्रक ने अपने भुजबल से तत्कालीन उज्जैन के राजा मुरुण्ड स्वाति को मार कर उज्जयिनी राज्य हस्तगत किया। ('विगृह्य स्वाति-नासह'। अवन्ति सुन्दरी कथासार) तीन हजार तेतालीस (३०४३) कलि वर्ष में ६५ शक गणों सहित सिन्धराज शाहानु-शाहि- मोग्रस (मोग) ने उज्जयिनी को घेर लिया । मालवगण नेता बन कर अग्निमित्र शूद्रक ने उसकी सेना को पराजित कर उसको वन्दी बना कर छोड़ दिया । इस उपलक्ष्य में मालव गण ने अपने नेता का उपनाम विक्रमादित्य रक्खा होगा और विक्रम कृत या मालव गण नाम से एक सं० चलाया ।

गार्डन साहब के लेखानुसार पुष्यमित्र के राज्यत्व काल में विक्रम सं० से ५३ वर्ष पूर्व पाटलिपुत्र पर मिनेण्डर का आक्रमण हुआ था । पुष्यमित्र ने उसको हराया । उसके एक दो वर्ष बाद पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया होगा । उस समय अग्निमित्र शूद्रक विदिशा में राज्य कर रहा था । तव अग्निमित्र की आयुः चालीस वर्ष की रही होगी । ६० वर्ष उसने राज्य और किया होगा, विदिशा और उज्जयिनी में । १०० वर्ष दस दिन की आयु भोग कर शूद्रक तुषाग्नि में प्रविष्ट हुआ । (मृच्छकटिक) ब्राह्मण सम्राट्अग्निमित्र शूद्रक-विदिशा, उज्जयिनी मथुरा कन्नौज पर आदि नगरों पर राज्य किया करता था । वह बड़ा धर्मात्मा राजा था तभी उसका सं० कृत कहाया, उसने सारी प्रजा करों से मुक्त कर दी थी ।

कालिदास रामिल सोमिल इसके सभा कवि थे । शूद्रकजय, शूद्रककथा, विक्रान्तशूद्रक, वीरशूद्रक, आदि ग्रन्थ इसी पर आधारित हैं । यह सम्राट् बड़ा ही समर व्यसनी वेदशास्त्रज्ञ अश्वमेध-यज्ञ कर्ता, महाकवि, वीर साहसी तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दु संस्कृति रक्षक था। बाण भट्ट ने कादम्बरी में इसी का अद्भुत वर्णन किया है। जो ऐतिहासिक शूद्रक को ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानते वे नितान्त भ्रान्त हैं और पाश्चात्यों के अनुयायी हैं।

शाक (शालिवाहन) संवत्प्रवर्तक हाल सातवाहन था। कथासरित्सागर के अनुसार महेन्द्रादीय (महेन्द्रसातकर्णि) का पुत्र कुन्तल सातकर्षि हाल सातवाहनविषमशील विक्रम था, इसी का एक नाम हर्ष था। राजतरङ्गिणी के अनुसार इस का सम विक्रम दूसरा शतक है। आन्ध्रो की संशोधित सूची के अनुसार जिस समय प्रतिष्ठाननरेश महेन्द्रसतकर्णि सारे भारत पर राज्य कर रहा था उस समय वह उज्जैन में विद्यमान था। शकक्षत्रप-षोडाश आदि म्लेच्छों ने उज्जयिनी पर आक्रमण किया महेन्द्र सातकर्णि दैववश युद्ध छोड़ कर वन में भाग गया। वहां सिंहादि से मारा गया। उसकी स्त्री सौम्यदर्शना अपने बालक पुत्र हालसातवाहन विषमशील की रक्षार्थ प्रतिष्ठान में चली गई। लगभग १३ वर्ष उज्जयिनी में शकों ने राज्य किया फिर माता की आज्ञा से वीर विक्रम विषमशील ने प्रवल सेना इकट्ठी कर उज्जयिनी को आकर घेर लिया, घमासान युद्ध कर सब सेना को मारषोड़ास को बन्दी बना लिया। और वापिस जाकर प्रतिष्ठान में ही राज्य करने लगा। वेतालपचीसी का विक्रमादित्य यही था। मलयवती इसकी प्रधान राज्ञी थी, 'देखिए कामसूत्र—कुन्तल: सातकर्णि: सातवाहनो महादेवीमलयवतीं जघान, दूसरी हनेन्दु रही होगी। गाथाकोश (गाथा सप्तशती) इसी सातवाह ने बनाया था। उसमें शूद्रक विक्रम की दानवीरता का वर्णन किया गया है।

महाकवि गुणाढ्य ने बृहत्कथा बनाकर इसी सातवाहन को अर्पित की थी।

शर्व वर्मा ने कातन्त्रव्याकरण बनाकर इसी सातवाहन को पढ़ाया था, जिसकी भेंट स्वरूप सातवाहन ने शर्व वर्मा को मरुकच्छ भड़ोच नगर दिया, स० १३४ में सिन्ध से आकर विमकड़फिसिजद्वितीय ने फिर भारत पर आक्रमण किया। हाल सातवाहन (शालिवाहन) विषमशील विक्रम ने प्रतिष्ठान से आकर कड़फिसिजविम को करूर (कराड़) प्रदेश में करारी हार दी। शकों की यह सब से बड़ी पराजय हुई थी। इस उपलक्ष्य में शाकसवत् (शकों की महान् हार) चलाया गया। कुछ भ्रान्त ऐतिहासिक, शाक सं० को कनिष्क का चलाया हुआ, और कुछ विमकड़ फिसिज का चलाया हुआ मानते हैं। वह नितान्त असत्य है इसका नाम ही दूसरा परम्परागत शालिवाहनाव्द प्रसिद्ध है। देखिए—महान् ऐतिहासिक अल्वेरूनी लिखता है—

"शकाव्द विक्रम संवत् से १३५ वर्ष बाद चला, यह संवत् शकों के पराजय से आरम्भ हुआ, प्रतिष्ठान से आकर विक्रमादित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने मुल्तान और लोनी के पास करूर में इस शक को जीता था। यही शक नाश का शक शब्द ज्योतिषियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। यह विकद्धमादित्य विक्रम-संवत् वाले विक्रमादित्य (शूद्रक) से कोई दूसरा था।" विमकड़फिसिजके जीतने बाद यह विक्रमादित्य भी उज्जयिनीमें ही रहने लगा था।

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्षापराभिधः।
एकच्छत्रः चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥
तंकविर्मातृगुप्ताख्यः सभास्थानस्थमासदत्।

यहां तत्रपद से ध्वनित होता है वह पहले प्रतिष्ठान में रहता था।

मातृगुप्त कवि इसी की सभा में आया था। उसने कश्मीर राज्य इसी हर्ष से प्राप्त किया था। सातवाहन से पहले आन्ध्र वंशी सभी राजा सातकर्णि कहलाते थे सातवाहन वंश प्रवतक यही कुन्तल सातकर्णि सतवाहन रहा होगा। राजतरङ्गिणी के अनुसार इस विक्रमादित्य के पुत्र का नाम (प्रतापशील) प्रतापदित्य था। विक्रम की मृत्यु के बाद किसी शत्रु (संभवत: भूमक) ने आक्रमण कर इसको राज्य-च्युत कर दिया था। परन्तु तत्कालिक प्रवरसेन ने उसको हरा कर भगा दिया था। 'वैरोनिर्यासित राज्य विक्रमात्मयजं-न्यघात्। (राजतरङ्गिणी) विषमशील हर्षा-विक्रम की मृत्यु केकुछ पूर्व जब वह उज्जयिनी में ही था। स्वप्न हुआ कि तेरा ही कुलीन नागराजपुत्र-गौतमी से उत्पन्न हुआ है प्रतिष्ठान में तू जाकर उस से मिल विषम शील प्रतिष्ठान में गया। युद्ध करके हार कर उज्जयिनी में आकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। गौतमी पुत्र (द्वितीय शालिवाहन) महान् वीर महान् दानवीर और अनेक युद्ध विजयी था उसका नासिक शिलालेख उसकी अद्वितीय वीरता सिद्ध करता है। इस लेख में गौतमी पुत्र को श्रेष्ठ ब्राह्मण माना है। इसकी स्त्री का नाम वाशिष्ठी और पुत्र का नाम वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावी था। नासिकलेख में लिखा है —"गौतमी पुत्र ने सातवाहन कुल का यश: प्रतिष्ठान किया" (इससे यह भी ध्वनित होता है कि यही प्रथम सातवाहन नहीं था। गोतमी पुत्र ने—उज्जयिनी में पुन: शकराज्य स्थापक चष्टन को हरा कर उसकी पौत्री से अपने पुत्र का वैवाहिक संबन्ध कर लिया था। और तभी से स्वयं भी उज्जयिनी में रहने लगा था। इसके सिक्कों पर उज्जैन का चिह्न रहता है। इसने शकक्षत्रपनहपान को सवंश नष्ट किया। और उसके सिक्कों पर अपनी छाप लगाई। नरुपान का ई० १२७ कासिकोलास हुआ है। गौतमी-पुत्र का राज्यत्वकाल ३१ वर्षों का है। ई० १३९ वि० १९६ में इलेक्जेन्ड्रा में विद्यमान टालेमीने अपने को प्रतिष्ठान राजा वाशिष्ठी पुत्र पुलुमावी का सम-कालिक माना है यह लेख कम महत्त्व का नहीं है: डा० जायसवाल गोतमीपुत्र को विक्रम संवत्प्रवर्तकविक्रम मानता है वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असंगत और प्रमाण शून्य है। क्योंकि किसी भी पुराण से गोतमीपुत्र का यह समय सिद्ध नहीं होता। २४० ई० में सातवाहन वंश इतिहास पृष्ठों से उठ गया। सातवाहनों के राज्य का चरमोत्कर्ष काल कुन्तल सातकर्णि विक्रम के समय और उससे भी अधिक गोतमी पुत्र के राज्यत्व काल में हुआ था। यहां तक कि गोतमी पुत्र को तो द्वितीय शूद्रक कहने लगे थे।

तृतीय विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय।

क्रमश: ई० २४० के पीछे ६० वर्षों तक नागवंश का और उसके बाद वाकाटक वंश का साम्राज्य रहा।

३२८ ई० और ३८५ वि० में सम्राट् समुद्रगुप्त राजा हुआ, यह भारतीय नैपोलियन कहलाता है। इसने ५० वर्ष राज्य किया। यह महान् योद्धा एवं सुकवि था। ३८० ई० में चन्द्रगुप्त द्वितीय भारत सम्राट् बना। इसने सम्पूर्ण भारत विजय की। उज्जयिनी के तात्कालिक राजा रुद्रसेन शक क्षत्रप को हराकर इसने भारत से शक सत्ता समूल नष्ट कर दी। और उज्जयिनी को अपनी राजधानी बना कर विक्रमादित्य पदवी धारण की। इसकी प्रसिद्धि यहां तक हुई कि पाश्चात्य और उनके अनुयायी तो इसी को असली एवं प्रथम विक्रम मानने लगे। वास्तव में यह प्रथम विक्रम नहीं था। इससे पहले उज्जैन में दो विक्रम और हो गये हैं वाक्यपदीय और शतकत्रयकर्ता–हरिगुप्त हरिभर्तृहरि इसी विक्रम का कनिष्ठ भ्राता था। (प्रमाण कलशांकित मुद्रा और सिंहासनबत्तीसी) कालिदासादि नौ कविरत्न इसी के सभा-रत्न थे। नवरत्नों में कालिदास हरिषेण कालिदास था। इसी कालिदास ने काव्यत्रय और ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ लिखा परन्तु उसका निर्माण समय ३०६८ कलिवर्ष प्रक्षिप्त है। हरिषेण कालिदास ने काव्यत्रय चन्द्रगुप्त विक्रम के समय में और ज्योतिर्विदाभरण स्कन्दगुप्त विक्रम के समय में लिखा होगा। 'मत्तोऽधुनाकृतिरियं सति मालवेन्द्रे श्री विक्रमार्कनृपराजवरे समासीत्।" स्कन्द गुप्त विक्रम उज्जयिनी में रहने लगा था। म० म० हरप्रसाद शास्त्री आदि इस मालवेन्द्र विक्रम को यशोधर्म मानते हैं वह नितान्त भ्रान्ति है। कालिदास यशोधर्म का समकालिक किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता न ही यशोधर्म का विक्रमपदवी धारण करना। यशोधर्मन् विक्रम सं० ५४२ के नरसिंह गुप्तवालादित्य का सामन्त और मालव प्रदेश शासक मातृविष्णु का छोटा भाई धर्म विष्णु या विष्णुधर्मन् था। देखिए शिलालेख—'अथजयति जनेन्द्रः श्री यशोधर्मनामा'। आगे दूसरा पद्यांश—'श्री विष्णु वर्धननराधिपतिः सएव।' पाठान्तर—'श्री विष्णुधर्मन् नराधिपतिः सएव'। इसमें सं० ५६० के लगभग अपने अतुल भुजबल से हूणराज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिहिरकुल (तात्कालिक मालवनरेश) को हरा कर मालव साम्राज्य प्राप्त किया था। कुछ समय के लिये यह महान् प्रतापी सम्राट् माना गया । इसके तीन लेख मन्दसोर से मिले हैं । वे इसकी मृत्यु के बाद किसी ने लिखवाये होंगे, एक लेख का समय ५८६ मालव संवत् है । इसकी मृत्यु के बाद वलभी नरेश श्रीधर सेन द्वितीय ने इसके राज्य मालवा को जीत कर अपने ज्येष्ठ पुत्र शीलादित्य प्रथम (धर्मादित्य) को वहां का राजा बना दिया था । शीलादित्य के बाद उसका पुत्र देवभट (देवगुप्त) मालवराज बना । कुछ देवगुप्त को पीछे के गुप्तों में मानते हैं वह भ्रान्ति है । भट्टि कवि द्वितीयभर्तृहरि श्रीधरसेन का कनिष्ठ पुत्र था इत्सिङ्गने इसकी मृत्यु ५५० ई० स० ७०७ मानी है।

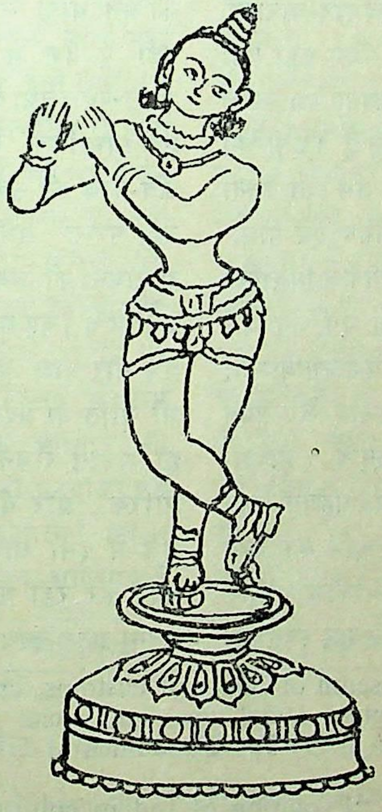

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान विघटनात्मक परिस्थितियों के संदर्भ में :–

हिन्दी और बंगला प्रदेशों की सांस्कृतिक एक सूत्रता

—डा० सत्येन्द्र कुमार

भारत को विभिन्न मत-मतांतरों, धर्मों तथा विचार-धाराओं, जातियों एवं भाषाओं का संगम कहा गया है। १ वास्तव में यहां अपना मत व्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता रही है। इसीलिये यहां पर एक और ब्राह्मण धर्म का इतना प्रभुत्व रहा कि समस्त धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताएं उसके अनुकूल निर्धारित की गईं, दूसरी ओर बौद्ध एवं जैन धर्म में इतनी सहज एवं स्वाभाविक प्रभविष्णुता थी कि उसके सर्वव्यापी प्रभाव के अंतर्गत राजा और रंक दोनों आ गए थे। आध्यात्मिकता की चरम सीमा पर पहुंचने वाली इसी धरती पर चार्वाक ऋषि का जन्म हुआ जिसका एक मात्र विश्वास भौतिक सत्य पर था। इतनी विचार स्वतंत्रता और मत-विभिनता होते हुए भी संस्कृति की अंतः धारा सब को एक सूत्र में पिरोती गई। २ देश में कितने ही राजनैतिक उथल-पुथल तथा दांव पेंच चलते रहे, धार्मिक एवं सामाजिक संकीर्णता तथा जातिगत ऊंच-नीच की सर्वग्रासी प्रवृत्ति पनपती रही परन्तु सभी ने एक ही सत्य की आराधना की, सब एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। वह था काम और अर्थ के ऊपर धर्म और मोक्ष की स्थापना। चाहे किसी भी जाति या प्रदेश के अधिकार में सत्ता हो, समस्त राजनीतिक सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक गतिविधियों के मूल में इसी आदर्श-प्राप्ति की भावना कार्य कर रही थी।३ इसका जीवन से इतना अटूट संबंध रहा कि यह विश्वास

१. India is a museum of cults and customs, creeds and cultures, faiths and tongues, racial types and social systems. "Radha Kumud Mookarji," "The Fundamental Unity of India." P. 11.

२. B. N. Lunia, "Evolution of Indian culture." P. 15—17.

३. Radha Kamal Mukarjee, "A History of Indian Civilization" P. 49.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन गया कि "Land was culture and culture was land. "१ संभवत: इसी लिए प्रादेशिक और भाषा संबंधी मोह तथा सीमाओं के होते हुए भी तमिल और कन्नड़ के दरबारों में रामायण एवं महाभारत का उतना सम्मान एवं अनुसरण किया गया जितना तक्षशिला से विश्वविद्यालय में ।२

वास्तव में भारतीय संस्कृति का आधार ही मानवीयता है ।३ मनुष्यता से अनुप्राणित होने के कारण उसके मूल्य चिरंतन एवं शाश्वत हैं। इसी लिये जहां विश्व की महान् एवं प्राचीन संस्कृतियां समय के प्रवाह में बह गई वहां भारत अब भी संसार का नेतृत्व कर सकता है।"वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना उसे सदा उच्च ध्येय की ओर अनुप्रेरित करती रही है।प्राय: राजनैतिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति का विश्लेषण किया गया है। जिसके परिणाम स्वरूप उसके सामाजिक अस्तित्व की उपेक्षा हो गई है। बाहरी घटनाओं एवं समस्याओं के मूल में भावात्मक एकता एवं विश्वास पर ध्यान रखना आवश्यक है अन्यथा हम सही परिणाम पर नहीं पहुँच सकते ।४

राजनैतिक दृष्टि से देखा जाए तो वैदिक युग में भारत कई गणतत्रों में बंटा था। दक्षिण का अपना अलग अस्तित्व था। सिकंदर के समय यही स्थिति थी, इसी लिये इतना सामर्थ्य एवं शक्ति होते हुए भी पराजय देखनी पड़ी । चन्द्रगुप्त मौर्य ने सब से पहले इन बिखरे मोतियों को एकत्र कर सुदृढ़ एवं सुगठित शृंखला तैयार की । भारत राजनैतिक एकसूत्रता की ओर बढ़ा, यह लक्ष्य अशोक ने प्राप्त किया । अशोक के बाद देश फिर विभिन्न गुटों में बंट गया परन्तु गुप्तवंश में भारत एक छत्रछाया के अधीन आया । देश की सामूहिक उन्नति हुई, इसी लिये इसे स्वर्णयुग कहा जाता है । छटी-सातवीं शताब्दी में हर्ष ने इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास किया, उसे एक सीमा तक सफलता भी मिली, परन्तु वह दीपक के बुझने से पूर्व अंतिम लौ थी। कई छोटे छोटे राज्य उठ खड़े हुए । उधर मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो गए । जिनके फलस्वरुप

१. Radha Kamal Mukerjee, "A History of Indian Civilization" वही पृ० 84.

२. R. C. Majumdar, "An Advanced History of India." P. 7-8.

३. Radha Kamal Mukerjee, "A History of Indian Civilization" P. 33.

४. वही, पृ० 34.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले मुसलमानों को लूटने का मोह हुआ परन्तु उन्हें कोई विशेष विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। देश की विशाल सम्पदा एवं वैभव ऐश्वर्य उनके आकर्षण के केन्द्र बन चुके थे, परिस्थितियां पर्याप्त अनुकूल थीं। ऐसी अवस्था में यहां उनका साम्राज्य स्थापित करना आश्चर्यजनक न था। उनका प्रभुत्व अंग्रेज़ों के आगमन तक छाया रहा।

गुप्त वंश के पतन तक बंगाल की राजनैतिक स्थिति पश्चिम या मध्य-प्रदेश से भिन्न न थी : हर्ष वर्धन के युग में ही कई स्वतंत्र राज्य स्थापित हो रहे थे, उसी समय बंगाल में सर्वप्रथम पालवंश ने नए साम्राज्य की नींव रखी। शशांक उसका एक प्रभुत्वशाली राजा हुआ था जिसके माहात्म्य की धाक सारे भारत पर जम चुकी थी। उसकी सीमा दक्षिण बिहार और उड़ीसा तक फैली हुई थी।१ शशांक के बाद बंगाल की अवस्था "मत्स्य न्याय" के समान हो गई। प्रत्येक शक्तिशाली व्यक्ति अपने को अधिकारी समझता था। राजनैतिक एकसूत्रता छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, यह स्थिति सौ वर्ष तक चलती रही।२ तभी सेन वंश ने एक बार फिर बंगाल में शांति और व्यवस्था स्थापित की। उनका राज्य १२०३ ई० तक चलता रहा। लक्ष्मण सेन अंतिम सम्राट् था जिसे बख्तियार खिलजी ने पराजित किया।३ इस तरह अपने पांव पर खड़े होने से पूर्व ही बंगाल पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा गया। बख्तियार खिलजी की इस विजय से लेकर १७५७ के प्लासी युद्ध तक बंगाल मुसलमानों के अधीन रहा। ग्यासुद्दीन की मृत्यु पर एक बार अवसर मिला था परन्तु हिन्दु अब निष्क्रिय एवं निर्बीज हो चुके थे। संभवतः इसीलिये उन्होंने इस परतंत्रता का एक बार भी विरोध नहीं किया।४

इस प्रकार दोनों प्रदेशों के राजनैतिक इतिहास में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। एक ही प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया होने के कारण वस्तुपरक भिन्नता चाहे मिल जाए परन्तु भावपरक भेद नहीं मिलता। पाल और सेन साम्राज्य के कारण बंगाल कुछ अलग अवश्य हुआ परंतु दोनों

१. R. C. Majumdar, Bhartiya Bhawan, "The History & Culture of Indian People ; Classical Age", P. 81.

२. वही, पृ० 144

३. "The Struggle for Empire", P. 35.

४. John Marshman, "History of Bengal", P. 8.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंशों, विशेषत: पालवंश ने देश की सांस्कृतिक एकता में पूरा सहयोग बंटाया।१ मुसलमानों के आने से पूर्व सारा देश पतनोन्मुख था। इसी लिये मुस्लिम-साम्राज्य का कहीं विशेष विरोध नहीं हुआ बल्कि स्वार्थ एवं प्रलोभन में आकर अपनी जाति का स्वयं नाश किया गया। अंग्रेजों के आने पर केवल सत्ता में परिवर्तन हुआ अन्यथा राजनैतिक परिस्थितियों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं आया। मुसलमानों के आगमन पर पहले मध्य प्रदेश को प्रहार सहने पड़े, अब अंग्रेज़ों के आने पर पहले बंगाल को नवीन साम्राज्य स्वीकार करना पड़ा। अंतत: परिणाम एक से ही निकले।

हिन्दू जाति का सामाजिक ढांचा इतना सुदृढ़ एवं स्थिर है कि पूर्व और पश्चिम प्रदेश में कोई अंतर की संभावना दिखाई नहीं देती। राजनैतिक परिस्थितियों की समानता ने इस दिशा में और भी सहायता दी है। हमारा समाज वर्णाश्रम प्रथा पर आधारित है। वैयक्तिक सीमाओं और सामाजिक सुविधाओं को देखते हुए यह वर्ण-विभाजन वैज्ञानिक एवं आदर्शोन्मुख था। आरंभ में तो सफलता मिलनी आश्चर्यजनक न थी, गुप्त युग में भी सामान्य जनता विशेषत: ब्राह्मण और क्षत्रिय कर्त्तव्यनिष्ठ एवं त्याग पूर्ण थे।२ इसी लिये विभिन्न विदेशी जातियों को अपने में मिलाने तथा भावनात्मक एकसूत्रता उत्पन्न करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। परन्तु यह दशा बहुत देर तक न रही। यही वर्ण-व्यवस्था संकीर्णता और सामाजिक अवरोध का कारण बनी। इसी में सर्वग्रासी कुरीतियां पनपने लगीं परिणामस्वरूप हमारा पतन हुआ। ब्राह्मणों का मिथ्या अभिमान, बाह्याडम्बर, क्षत्रियों का निष्प्रभ एवं निर्बल स्वरूप तथा इनसे अधिक शूद्रों के साथ अमानवीय अत्याचार जैसे दोष किसी प्रदेश विशेष तक सीमित न थे। स्त्रियों की दशा शोचनीय थी। गुप्त युग तक उनकी स्थिति अवश्य अच्छी रही ३ परन्तु उसके बाद क्रमश: चिंताजनक ही होती गई। वैधव्य, बहुविवाह, सती प्रथा, जैसी कुप्रथाएं भारत में फैल चुकी थीं।

भारत-धन-धान्य से सम्पन्न देश है जिसकी धरती सोना उगलती है। इसके वैभव एवं ऐश्वर्य के विस्तार को देख कर मैगस्थनीज़, फाइयान और हयून सांग ने यहां की समृद्धि की इतनी प्रशंसा की। गुप्त युग में तो वह चरम सीमा पर थीं।४

१. B. N. Luniya, "Evolution of Indian Culture", P. 380-81.
२. R. C. Majumdar, Bhartiya Bhawan, "History and Culture of Indian People : Classical Age", P. 570.
३. वही, पृ० 569.
४. वही, पृ० 595-96,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष-वर्धन तक आर्थिक दशा इतनी अच्छी थी कि वह प्रत्येक वर्ष सहस्रों रुपये दान कर देता था। उसी के प्रलोभन में पड़ौसी देशों की ललचाई आंखें इस ओर लगी रहतीं। महमूद गज़नवी से भारत की लक्ष्मी का अपहरण शुरू हुआ। विशेष विरोध न पाने के कारण महमूद ग़ज़नवी ने कई आक्रमण किए। उसी से मुहम्मद ग़ौरी का उत्साह बढ़ा, बाबर तो बचपन से ही सोने की चिड़िया पर कब्ज़ा करने के स्वप्न लिया करता था। फलस्वरूप सारे उत्तर भारत की लगभग एक सी आर्थिक स्थिति रही। इसमें कोई संदेह नहीं कि बंगाल पर सीधे आक्रमण कम हुए परन्तु वहां पर आपसी वैर-विरोध ने जनता को दबोचे रखा। मुसलमान तो भारत में रहे और यहां की पूंजी बाहर नहीं जाती थी परन्तु अंग्रेज़ों की व्यावसायिक एवं शोषण-नीति ने देश को खोखला कर दिया।[1]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि पूर्व और पश्चिम प्रदेश की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में कोई उल्लेखनीय अंतर न था। थोड़ा बहुत वस्तुपरक भेद होते हुए अंततः परिणाम एकसे मिलते थे। इतनी अधिक समानता का कारण यह था कि सारा देश एक ही से धार्मिक एवं दार्शनिक आंदोलनों से प्रभावित था। समस्त भारत में एक ही विचार-धारा जीवन और साहित्य को अनुप्राणित कर रही थी। इस तरह राजनैतिक या सामाजिक दृष्टि से कई इकाईयां मिल जाती थीं परन्तु सभी एक ही लक्ष्य की ओर उन्मुख थीं।

वेद, रामायण, गीता, महाभारत आदि की केवल धार्मिक या साहित्यिक विशेषता ही नहीं है, इन्होंने हमारे नैतिक मूल्यों तथा जीवन दर्शन के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। ध्यान इस बात पर जाता है कि इतना प्रभाव केवल तात्कालिक न था, आज भी इनके प्रवचन देश के प्रत्येक कोने में श्रद्धा एवं विश्वास की दृष्टि से सुने जाते हैं। धीरे-धीरे ब्राह्मण धर्म में, कर्मकांड एवं ऊंच-नीच की भावना घुसने लगी। प्रतिक्रियास्वरूप बौद्ध एवं जैन धर्म का उदय हुआ। इनका प्रभाव गहरा एवं व्यापक था। सारा देश इसकी लपेट में आ गया क्योंकि बुद्ध के मध्यम मार्ग ने जनता की भाषा में जनता के लिये शांति एवं उत्सर्ग का मार्ग सुझाया। सम्भवतः इसी लिये इसके प्रकाश की रेखाएं आज तक अन्य देशों को उद्भासित करती आ रही हैं। बुद्ध की मृत्यु के बाद वह दो शाखाओं में बंट गया, महायान और हीनयान। महायान शाखा विकृत हो कर मंत्रयान

1. Dr. B. G. Gokhale, "Ancient Indian History & Culture", P. 165.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज्रयान तथा सहजयान में फैली जिसकी परिधि में सारा भारत विशेष रूप से पूर्वी प्रदेश आया।[१] इस प्रकार वैदिक-धर्म का खंडन एवं विरोध करते हुए भी इन्होंने देश की सांस्कृतिक एकता बनाए रखने में सहयोग दिया [२]।

समय की करवट के साथ बौद्ध एवं जैन धर्म का एकांगी दृष्टिकोण अधिक देर तक स्थिर न रह सका। उसकी अहिंसा और निराशा की विचार-धारा ने जनता को निर्बल एवं निरुत्साही बना दिया था। इन्हीं उपयुक्त परिस्थितियों में शंकर का उदय हुआ। उन्होंने सारे देश में अद्वैत का मंत्र फूंका। उनकी प्रखर प्रतिभा एवं प्रभविष्णुता ने बौद्ध धर्म को देश भर में समाप्त कर दिया। इस तरह उन्होंने हिन्दू धर्म का पुनर्जागरण किया।[३] उनके मत को लेकर मध्वाचार्य, रामानुज तथा बल्लभाचार्य ने द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा शुद्धाद्वैत का प्रचार किया। इन्हीं से भक्ति सम्प्रदाय का प्रारभ होता है। इन्होंने साकार उपासना को अपनाया। देवताओं की पूजा तो पहले भी होती थी परन्तु अब उन्हें शील, शक्ति और सौन्दर्य से आभूषित कर अवतार रूप में ग्रहण किया गया। शिव, विष्णु, और देवी इसके आधार थे। वैष्णवों ने राम और कृष्ण को अपना प्रतीक बनाया। सारा देश इस दिशा की ओर प्रवृत्त हुआ। उस युग की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां अनुकूल थीं। इस प्रकार मध्य युग में भक्ति-आंदोलन सारे देश में भावनात्मक एकता लाने में बहुत सहयोगी सिद्ध हुआ।[४] ये आचार्य दक्षिण के रहने वाले थे और इन्होंने उत्तर भारत में प्रचार किया। इसलिये इस आंदोलन की परिधि से कोई प्रदेश बाहर न रहा।

सारांश यह कि भारतीय दर्शन का आधार रहा अद्वैतवाद, द्वैतवाद, निराशावाद एवं कर्मवाद। व्यावहारिक क्षेत्र में वेदान्त ने पौराणिक एवं भक्तिधारा में प्रस्फुटन पाया। धार्मिक दृष्टि से मत-मतांतर होते हुए भी सभी ने परमात्मा, आत्मा, कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों पर आस्था प्रकट की। इन्हीं पर भारतीय जनता की अटूट श्रद्धा एवं विश्वास रहा, इसमें कोई संदेह नहीं कि मार्ग में थोड़ा

---

१. R. C. Majumdar, "The History and Culture of India. The Struggle for Empire", P. 425.

२. B. N. Luniya, "Evolution of Indian Culture", P. 165.

३. V. Raghavan, "The Indian Heritage", P. 62—64.

४. Radha Kamal Mukarjee, "A History of Indian Civilization", P. 51.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत भेद हो सकता है ।१ ऐसी अवस्था में हिन्दी और बंगला प्रदेश की आत्मिक एकता का होना स्वाभाविक है ।

भारतीय साहित्य वास्तव में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति मात्र है। उसका मूल कारण यह है कि हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य-व्यापार में धर्म का अविभाज्य संबंध है । इसी लिये रामायण-महाभारत का जहां आचार-विचार की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व है वहां वे प्राचीन साहित्य की उच्चतम कृतियां मानी जाती हैं। संभवतः इसी लिये उनका परवर्ती संस्कृत एवं प्रादेशिक साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा । २ बौद्ध धर्म ने केवल साहित्य को ही नहीं अनुप्राणित किया, उसकी मूर्त्तिकला, चित्रकला आदि पर अमिट छाप है। ३ अश्वघोष बौद्ध थे, कालिदास शैव थे। देश के राजनैतिक एवं सामाजिक पतन के साथ-साथ साहित्य में भी कला-पक्ष की ओर ध्यान बढ़गया । दरबारों में आश्रय पाकर कवि जीवन के स्वाभाविक प्रवाह से दूर हो गया जिसके फलस्वरूप उसकी रुचि कवित्व, आलंकारिकता एवं वाग्जाल में बढ़ीं ।४ इतना परिवर्तन आने पर भी साहित्य के मूल स्वर में अप्रत्याशित विकास नहीं हुआ क्योंकि युग की प्रतिभा का प्रस्फुटन एक ही भाषा में हो रहा था । संस्कृत देश की एकता बनाए रखने में सहायक सिद्ध हुई ही, साहित्यिक गतिविधि को एक ही धारा में प्रवाहित करने में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान है ।५

इसके साथ समस्त भारत में साहित्यिक मान दण्ड एवं काव्य-शास्त्र के नियमों में कोई अंतर न था । नाट्यशास्त्र ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि को सर्वत्र अंतिम प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता था । इस प्रकार दार्शनिक एवं शास्त्रीय आधार समान होने के कारण संस्कृत साहित्य का विकास एक ही दिशा में हुआ ।

इस पृष्ठभूमि में प्रादेशिक भाषाओं का प्रस्फुटन हुआ । स्पष्ट है, इन्हें एक ही परंपरा की विभिन्न कड़ियां कहना चाहिए । इसी लिये समस्त प्रांतीय भाषाओं का जन्म लगभग एक ही समय में हुआ। इन्हें विरासत में पुष्ट सांस्कृतिक एवं साहित्यिक एकसूत्रता प्राप्त हुई थी ।

1. Dr. B. G. Gokhale, "Ancieni Indian History and Culture", P. 187.
2. वही, पृ० 192.
3. वही, पृ० 178.
4. B. N. Luniya, "Evolution of Indian Culture", P. 382-83.
5. V. Raghawan, "The Indian Heritage", P. 21-22..

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न दर्शन सम्प्रदाय, रामायण, महाभारत, पुराण, संस्कृत का समृद्ध साहित्य, काव्य-शास्त्र के नियम इनके लिये प्रेरणा के अथाह भण्डार थे। इनसे अनुप्राणित होकर विभिन्न प्रदेशों का साहित्य समान दिशा की ओर उन्मुख हुआ। इसका प्रथम परिचय सिद्ध साहित्य से मिला है। बौद्ध धर्म के पतन के बाद उसके कई विकृत रूप सामान्य जनता में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे। ये शैव एवं शाक्त के रूप में परिचित हुए। इन्हीं के एक प्रमुख रूप नाथ पंथी सारे देश में छाए हुए थे। इन्हीं के आधार पर संत काव्य का जन्म हुआ जिसका विकास सभी प्रादेशिक साहित्यों में मिल जाता है। इसी से सम्बद्ध प्रेमाख्यान काव्य की परंपरा है क्योंकि दोनों काव्य धाराओं का लक्ष्य समान है। बाद में, इसी प्रवृत्ति से अनुप्राणित होकर विभिन्न प्रदेशों में प्रेमगाथाओं का विकास हुआ। इनमें कुछ पर सूफी मत का प्रभाव है, अन्य ने उससे केवल प्रेरणा ग्रहण की है। इनमें जनता की अवरुद्ध रोमांटिक भावना क सहज प्रस्फुटन हुआ है।

उसी समय देश में भक्ति आंदोलन एक सार्वप्रादेशिक रूप धारण कर रहा था। वह प्राचीन दार्शनिक विचार-धारा का स्वाभाविक विकास था। उसका जन्म दक्षिण में और प्रचार उत्तर में हुआ। युग की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां अनुकूल बैठने के कारण तत्कालीन कवि इस ओर प्रवृत्त हुआ। भक्ति का प्रवाह कई धाराओं में मिलता है परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय सब से अधिक लोकप्रिय रहा। उसका प्रचार भारत के प्रत्येक प्रदेश एवं साहित्य में मिलता है।१

यहां यह उल्लेख करना आवयक है कि सभी प्रदेशों में कृष्ण के बहुमुखी व्यक्तित्व के प्रति विशेष आकर्षण एवं रुचि का परिचय मिलता है। शील और शक्ति के अतिरिक्त ये सौन्दर्य एवं माधुर्य के प्रतीक रहे जिसके सम्मोहन में कई मुसलमान शासक एवं कवि तक आ गये थे। उनके मनोहारी जीवन में मृदुलता एवं सुकुमारता है जिसमें कवि की सहज प्रेम भावना को आश्रय मिल सकता है। इसी लिये अन्य देवताओं की तुलना में जितना कृष्ण के व्यक्तित्व ने देश की सामूहिक चेतना को अनुप्राणित किया उतना किसी अन्य व्यक्ति या ग्रन्थ ने नहीं। उनकी अमिट छाप तो चित्र एवं मूर्तिकला तक में मिल जाती है। सारांश यह कि भारतीय वाङ्मय एक ही विचार-धारा का विकास है। भाषा और अभिव्यक्ति का पार्थक्य होते हुए भी उसका मूल स्वर एक ही है।२

१. V. Raghawan, "The Indian Heritage," पृ० 75-76.
२. डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित, "भारतीय वाङ मय" भूमिका पृ० ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी लिये हिन्दी और बंगला साहित्य कोई अपवाद नहीं हैं। दोनों प्रदेशों के साहित्य का जन्म ११वीं-१२वीं सदी में हुआ। सिद्ध साहित्य हिन्दी के प्रारंभिक काल में लिखा गया। उसके अस्तित्व को स्वीकार करने के लिये ही राहुल सांकृत्यायन ने इस युग को सिद्ध-सामंत काल से अभिहित करना उचित समझा है। बंगाल तो बौद्ध सम्प्रदायों का गढ़ रहा है। वहां नाथ-सम्प्रदाय, सहजिया, तांत्रिक आदि मतों का प्रचार मात्र ही नहीं रहा, इन्होंने परवर्ती वैष्णव साहित्य को भी प्रभावित किया।[१] इसका प्रारंभ चर्या-पदों से होता है जिनका प्रणयन सिद्धों ने किया। उसकी भाषा पुरानी बंगला है जो पश्चिमी हिन्दी के समीप आ जाती है।[२] स्पष्ट है उस समय पूर्व और पश्चिम दोनों स्थानों पर एक ही भावधारा का विकास हो रहा था।

हिन्दी में संत काव्य का जन्म सिद्ध साहित्य के बाद हुआ। बंगला "बाउल गीत" इसकी समानांतर धारा के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं परन्तु उनके उद्‌गम के पीछे कुछ भिन्न परिस्थिति कार्य कर रही हैं। यही स्थिति प्रेमकाव्य की है। हिन्दी में एक ओर सूफी प्रेमाख्यान--काव्य की पुष्ट परम्परा मिलती है दूसरी ओर शुद्ध प्रेम-गाथाओं की। इसमें कोई संदेह नहीं कि दूसरी प्रवृत्ति के विकास में सूफी प्रेम काव्य का उल्लेखनीय स्थान है। बंगाल में इसका प्रारंभ बहुत बाद में हुआ। आराकान दरबार के धालाओल ने १७वीं सदी के मध्य में जायसी कृत पद्मावत का बंगलानुवाद[३] करके इस धारा को जन्म ही नहीं दिया, हिन्दी और बंगला की साहित्यिक एकसूत्रता को सिद्ध किया है। उनसे अनुप्रेरित होकर इस तरह के कई प्रेमाख्यान लिखे गये जिनका पूर्ण विकास भारतचन्द्र के विद्यासुन्दर से होता है। इस कथा की रोमांटिक भावना ने कई कवियों को आकर्षित किया।

भक्ति आंदोलन और वैष्णव-काव्य का प्रचार १४-१५वीं सदी से पूर्व नहीं हुआ परन्तु उससे पहले जयदेव और विद्यापति दोनों प्रदेशों के साहित्य को समान रूप से प्रभावित करते रहे। जयदेव स्वयं बंगाल के रहने वाले थे। उनकी मधुर भावना को लेकर विद्यापति ने मैथिली में राधा कृष्ण सम्बन्धी कई पद लिखे। उनके गीतों के यौवनोल्लास

१. Prof. D. C, Sen, "History of Bengali Language and Literature", P. 49.

२. Dr. Sukumar Sen, "History of Bengali Literature", P. 27.

३. Prof. D. C. Sen, 'History of Bengali Language and Literature', P. 12.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधुर्य एवं गेयता ने हिन्दी और बंगला साहित्य को असाधारण रूप से अनुप्राणित किया । हिन्दी के परवर्ती पद-साहित्य पर उनकी छाप स्पष्ट रूप से मिलती है । विद्यापति की बंगाल में इतनी लोक-प्रियता रही कि उन्हें बंगला साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता । उन्हें बंगला कवि ही समझा जाता है।[१] उनका बंगला साहित्य के भाव और कला सौष्ठव पर गहरा प्रभाव पड़ा है ।[२] विद्यापति के पद-चिन्हों का अनुसरण करते हुए चंडीदास का उदय हुआ । इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने राधा कृष्ण के प्रेम में आध्यात्मिक स्पर्श लाने का प्रयास किया परन्तु उनकी मांसलता एवं उन्माद उन्हें विद्यापति के पास ला खड़ा करते हैं ।[३] वास्तव में दोनों समकालीन थे, ऐसी स्थिति में, चंडीदास पर प्रभाव की संभावना और भी अधिक हो जाती है ।

वैष्णव-धर्म का आरंभ हिन्दी और बंगला साहित्य में समान रूप से हुआ । हिन्दी में सगुण धारा राम और कृष्ण को आधार बनाकर चली । राम के व्यक्तित्व में शील और शक्ति का बाहुल्य रहा जिसकी प्रतिष्ठा तुलसी जैसे प्रतिभाशाली कवि ने की । संभवतः इसी लिये उसकी ओर विशेष रुचि नहीं रही । बंगला साहित्य में कृतिवास की रामायण का उल्लेखनीय स्थान[४] है परन्तु वहां भी राम-काव्य पर्याप्त समृद्ध नहीं मिलता ।

कृष्ण भक्ति की ओर दोनों प्रदेशों में अधिकांश कवि प्रवृत्त हुए।[५] इसमें एक ओर कृष्ण का माधुर्य एवं सौन्दर्यमय व्यक्तित्व कार्य कर रहा है दूसरी ओर विरासत में प्राप्त विद्यापति के मनोरम एवं गेय पद । हिन्दी के अष्टछाप कवियों ने इस धारा को समृद्ध किया । सूरदास, नंददास अग्रणी हैं । इनका हिन्दी साहित्य में स्वतंत्र एवं महत्त्वपूर्ण स्थान भी है । सूरदास बाल लीला के सरल एवं स्वाभाविक चित्रण में भारतीय साहित्य में अद्वितीय सम्मान के अधिकारी ह । वास्तव म उन दिनों वृन्दावन इस सम्प्रदाय का केन्द्र स्थल बन चुका था। कृष्ण के प्रति इतना आकर्षण एवं सम्मोहन ब चुका था कि कृष्णमय जीवन बनाने के लिये कृष्ण जन्मभूमि में विभिन्न प्रान्तों के मन्दिर-मठ बनने शुरु हो गए थे । इसकी प्रतिक्रिया हम बंगाल में भी मिलती हैं । यहां के वैष्णव कवि प्रायः वृन्दावन आया करते

1—Prof. D.C. Sen, 'History of Bengali Language and Literature' पृ० 135

2—Dr. Sukumar Sen, 'History of Bengali Literature', P. 25

3–वही, ' पृ. 77–78

४–वही, पृ. 67

५–डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित "भारतीय वाङ्मय" पृ० १५ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे१। इस धार्मिक एवं साहित्यिक संपर्क के कारण ब्रज के कई शब्द बंगला में आए। 'ब्रज-बुली' का विकास इसी का परिणाम है। इतना ही नहीं, सामाजिक रहन-सहन पर भी प्रभाव के संकेत मिल जाते हैं।२ ऐसा लगता है कि कृष्ण को आराध्य बना कर उस स्थान के आचार व्यवहार में कृष्ण का स्पर्श पाना और अपनाने में गौरव समझना पर्याप्त स्वाभाविक लगता है।

चैतन्य इस धारा के सर्वोत्कृष्ट कवि हुए हैं। वे प्रारंभ से ही साधु प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया था। इसी लिये उनके दृष्टिकोण में व्यापकता एवं उदारता मिलती है। संत स्वभाव लेकर उन्होंने वैष्णव-धर्म में प्रवेश किया और कृष्ण की मधुर भाव से उपासना की। इसी लिये उनके पदों में सजीवता है। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव बहुत देर तक परवर्ती साहित्य पर रहा। यह दो रूपों में प्रकट हुआ, गीति-काव्य और चरित-काव्य। दूसरे में चैतन्य के जीवन को आधार बना कर सामान्य रूप से पद लिखे गए३। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सहजिया धर्म का बंगाल के वैष्णव धर्म पर गहरा प्रभाव पड़ा था।४ इसी लिये यहां कृष्ण-राधा की मधुर उपासना का विशेष प्रचार रहा।

समय की गति के साथ-साथ भक्ति की भित्ति पर शृंगार के चित्र उभरने लगे भक्ति नाम मात्र की रह गई और राधा तथा कृष्ण सामान्य नायक-नायिका के प्रतीक बन गये। देश की राजनैतिक परिस्थितियां इस तरह बदलीं कि छोटे-छोटे राज्य या रजवाड़े स्थापित हो गए जिनमें कवियों एवं कलाकारों को आश्रय मिलने लगा। काव्य जीवन से दूर होकर दरबारी विलास का साधन मात्र रह गया। यह प्रवृत्ति संस्कृत साहित्य में भी हुई थी, उसका पुनरावर्तन हुआ। रीतिकाल में कवियों की दृष्टि कोमल कल्पना एवं अलंकरण की ओर बढ़ी। भाव की गंभीरता की अपेक्षा अभिव्यक्ति की विदग्धता का आग्रह मिला है। बिहारी के दोहों में इसी तरह के चित्र उभरे हैं। शृंगारी भावना का परिचय

१--डा० दीनदयाल गुप्त, "अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय", पृ० ५५

2—Prof. D. C. Sen, 'History of Bengali Language and Literature', P. 337-38.

3—Dr. Sukumar Sen. 'History of Bengali Literature', P. 84-88.

4—Prof. D. C. Sen, 'History of Bengali Language and Literature', P. 353.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो देव, पद्माकर आदि सभी कवियों में मिलता है ।

बंगला साहित्य ने भी इसी तरह का मोड़ लिया । वहां भी दरबारी साहित्य का उदय हुआ जहां कवि की रुचि बाह्यावरण एवं बाह्य-सौन्दर्य की ओर होती है । मधुर-भावना का प्रचार पहले ही बहुत था जहां स्थान-स्थान पर मांसल स्पर्श उभरा । अब दरबारी वातावरण के अनुकूल नायक-नायिका के रूप-वर्णन, कुट्टनियों के प्रेम जाल आदि की ओर झुकाव हुआ ।[1] यहां भी संस्कृत साहित्य का अनुकरण किया गया । इस धारा का आरंभ धालाओल ने किया और चरम विकास भारतचन्द्र के 'विद्यासुन्दर' में मिलता है । यह बंगाल की सब से लोकप्रिय प्रेमगाथा रही । भारतचंद्र तथा अन्य कवियों का ध्यान वस्तुपरक स्थूल सौन्दर्य की ओर ही गया जिसके मूल में शृंगारिकता एवं अस्वस्थ मनोरंजन की भावना कार्य कर रही थी ।[2]

दोनों साहित्यों में यह स्थिति १९वीं सदी के आरंभ तक चलती रही । धीरे-धीरे पश्चिमी सभ्यता एंव संस्कृति का प्रभाव बढ़ने लगा और प्राचीन परंपरा एवं रूढ़ियों के तनाव ढीले हो गए । इसकी प्रथम प्रतिक्रिया बंगाल में हुई । वहीं से पश्चिम की ओर यह धारा प्रवाहित हुई । इस प्रकार आधुनिक काल का उदय सब से पहले बंगाल में हुआ । वास्तव में उन दिनों कलकत्ता समस्त राजनैतिक एवं सामाजिक आंदोलनों का केन्द्र था । स्पष्ट है, दिल्ली के राजधानी बनने तक वह सारे उत्तरी भारत को अनुप्राणित करता रहा । इसकी पुष्टि साहित्य में भी होती है । १९वीं शताब्दी में पुनर्जागरण का साहित्य लिखा गया जिसमें माहकेस मधुसूदन दत्त और बंकिम चन्द्र ने अपनी रचनाओं द्वारा समाज को सजग एवं सचेत किया । हिन्दी में यह कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया । उनके बहुमुखी सशक्त व्यक्तित्व ने समकालीन साहित्यकारों को निष्प्रभ कर दिया । दूसरा चरण राष्ट्रीय चेतना एवं सुधार का है जिसमें द्विजेन्द्र लाल राय और रवीन्द्र की प्रारम्भिक रचनाएँ आती हैं । तीसरा चरण रोमानी सौन्दर्य दृष्टि का उन्मेष है जिसमें रवीन्द्र का पूर्ण व्यक्तित्व प्रस्फुटित हुआ है । हिन्दी में द्वितीय और तृतीय चरणों का विकास मिला जुला है ।

द्विवेदी युग के मैथिलीशरण गुप्त व अयोध्यासिंह उपाध्याय का योगदान तो है पर छायावाद का उद्गम रवीन्द्र के प्रभावस्वरूप ही हुआ । प्रसाद, पँत, निराला, महादेवी वर्मा आदि उच्च कोटि के कलाकार इसी चरण में उत्पन्न

1—Prof. D. C. Sen, 'History of Bengali Language and Literature' पृ० ५२४–२६

2—वही, पृ० ५३८ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए। चौथे चरण में साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय होता है। इसका प्रारंभ शरत् ने किया परन्तु उसकी पृष्ठभूमि भिन्न थी। माणिक बँद्योपाध्याय तथा सुभाष मुखोपाध्याय आदि में यह स्वर प्रत्यक्ष एवँ उग्र हो गया।[1] हिन्दी में इसका प्रवर्तन प्रेमचन्द के आगमन से होता है। कविता के क्षेत्र में पंत, निराला, दिनकर, नवीन आदि आते हैं तथा कथा-साहित्य में यशपाल, अंचल, रांगेयराघव आदि। सारांश यह कि दोनों प्रदेशों के साहित्य और उसकी धाराओं का विकास समान दिशा में हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समानता के मूल में विरासत से प्राप्त एक ही प्रेरणा-स्रोत तथा एक ही परंपरा कार्य कर रही है।

वैयक्तिक स्तर पर भी दोनों प्रदेशों में पारस्परिक मिलन के सराहनीय प्रयास हुए, इस प्रवृत्ति का आरंभ १७वीं सदी में आलाओल के जायसी कृत पद्मावत के बंगला अनुवाद से मिलता है।। १८वीं सदी में प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र ने हिन्दी में कविता लिखने का प्रयास किया। आधुनिक युग में यह धारा और पुष्ट रूप से प्रवाहित हुई। फोर्ट-विलियम कालेज में हैड मुंशी के नाते तारिणी चरण मिश्र ने हिन्दी के प्रसार के लिये बहुत सेवा की। इस दिशा में राजा राम मोहन राय का नाम स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा। एक गंभीर एवं दूर-दर्शी नेता की तरह उन्होंने कुछ पुस्तकें हिन्दी में भी लिखीं ईश्वर चन्द्र विद्यासागर उस युग के प्रबुद्ध समाज सुधारक थे। उन्होंने हिन्दी बैताल पचीसी का बंगला अनुवाद किया। उनका भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से घनिष्ठ परिचय था। केशव चन्द्र सेन ने अपने गुरु का अनुसरण करते हुए हिन्दी को एक सूत्रता का माध्यम माना।

नवीन चन्द्रराय ने पंजाब जैसे अहिन्दी प्रदेश में हिन्दी के प्रचार के लिये प्रशंसनीय परिश्रम किया। उन्होंने पाठ्य क्रम के लिये कई पुस्तकें लिखीं और कई पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं संपादन किया। इनमें "ज्ञान दायिनी" प्रमुख है। उनकी लड़की हेमंत कुमारी ने महिलाओं के लिये प्रथम पत्रिका "सुगृहिणी" निकाली। बिहार प्रदेश में भू-देव मुखोपाध्याय की सेवाएं चिरस्मरणीय रहेंगी।

२०वीं सदी में 'एक लिपि विस्तार' योजना को शारदाचरण मित्र तथा रमेश चन्द्र दत्त ने चलाया। इस युग की सब से महत्त्वपूर्ण घटना "सरस्वती" का प्रकाशन है जिसका संस्थापन चिंतामणि घोष ने किया। हिन्दी के प्रचार में कलकत्ता विश्वविद्यालय, हिन्दी भवन, शांति निकेतन आदि संस्थाओं ने सराहनीय कार्य किया। इस सदी में कई कलाकारों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। इनमें बँग महिला, गिरिजा कुमार घोष

१—डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित, 'भारतीय वाङमय', पृ० १७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्तिकेय चरण मुखोपाध्याय, उषादेवी मित्रा तथा सन्मथनाथ गुप्त का नाम उल्लेखनीय है।

दोनों प्रदेशों के कलाकारों में भी मेल मिलाप रहता था। रवीन्द्र विशेष आकर्षक के केन्द्र थे। जैनेन्द्र, सुदर्शन, माखन लाल चतुर्वेदी, चन्द्रगुप्त विद्यालँकार उनसे शांति निकेतन में मिले थे। प्रसाद रवीन्द्र के काशी जाने पर उन्हें वहां मिले। वहीं उन्हें गिरीश से भी मिलने का अवसर मिला। शरत् से इलाचन्द्र जोशी का कई वर्ष सँपर्क रहा। इस घनिष्ठता का परिचय उनकी शरत् पर लिखी पुस्तक से मिल जाता है। शरत् के प्रेम चन्द से अवश्य सम्बन्ध थे परन्तु दोनों के मिलने की कोई सूचना नहीं मिलती। शरत् ने उनके 'सप्त सरोज' की भूमिका लिखी थी। १

बंग प्रदेश से तो लगभग सभी हिन्दी साहित्यकार अनुप्राणित होते रहे। सामान्य प्रेरणा के अतिरिक्त भारतेन्दु युग का लगभग प्रत्येक कलाकार किसी न किसी अवसर पर कलकत्ता आता जाता रहता था। भारतेन्दु के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, कार्त्तिक प्रसाद खत्री, केशव राम भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, गोपाल राम गहमरी आदि अपने जीवन काल में अवश्य कलकत्ते हो आए। वास्तव में कलकत्ता सदा राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गति-विधियों का केन्द्र रहा है। हिन्दी के लिये भी वह महत्त्वपूर्ण स्थान रहा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, बनारसीदास चतुर्वेदी, प० श्रीराम शर्मा, धन्यकुमार जैन आदि ने वहीं रह कर हिन्दी साहित्य की सेवा की।

उपर्युक्त विश्लेषण का सारांश यह है कि देश की सांस्कृतिक परंपराएं समान रही हैं। राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलन चाहे प्रादेशिक रूप में उत्पन्न होकर समाप्त हो गए, परन्तु उनकी सामूहिक छाप के चिन्ह सर्वत्र मिल जाते हैं। परिणामस्वरूप साहित्य के प्रेरणा-स्रोत और उनसे उत्पन्न साहित्य एक ही चित्र की विभिन्न रेखाएं हैं। हिन्दी और बंगला साहित्य सामान्य रूप में समान धाराओं में प्रवाहित हुआ। चाहे यह विकास स्वाभाविक रूप से है फिर भी दोनों ओर से साहित्यकार एक दूसरे की गतिविधि से अपरिचित नहीं थे।

१--छविनाथ त्रिपाठी, 'कहानीकला और उसका विकास', पृ० १२२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य में छायावाद का स्वरूप

प्रो० टेक चन्द शर्मा

रोम से प्रतीक पद्धति ले, जर्मन से अभिव्यंजनावादिता ले, बर्तानिया से कटा छंटा शब्द-शोधन तथा शब्द संयोजन का वैलक्षण्य ले, दूसरी ओर उपनिषदों से विश्व विराटमय पुरुष की कल्पना ले, वेदों से उषा आदि प्राकृतिक उपकरणों पर मानवीकरण करने की प्रवृत्ति ने, तथा भारतीय साहित्यिकों से सृष्टि कण-कण में अन्तर्व्याप्त प्रेम, सौन्दर्य और करुणा की पुकार से छायावाद का ढांचा खड़ा कर दिखाया है छायावाद की नीवों में पूर्व को भरा गया है, और छायावाद की दीवारों तथा छतों में पश्चिम को डाला गया है। वास्तव में छायावाद पूर्व और पश्चिम के मेल से जड़ और चेतन के सामञ्जस्य से तथा दार्शनिक और साहित्यिक दो दुधारे मस्तिष्कों के परस्पर समझौते से ही निष्पन्न हुआ है, उसमें पूर्व की दार्शनिकता है, पश्चिम की तरलता या ऐसे कहिए कि चेतन सत्ता का अपूर्व विश्वास और उसकी व्यापकता तो दार्शनिक मस्तिष्क से मिली है और विलक्षणता, मधुरता, प्राञ्जलता और साथ में अस्पष्टता भरी तरलता साहित्यिक मस्तिष्क ने नहीं, अपितु सहृदय ने देकर उसकी दोनों भित्तिएं खड़ी कर दी हैं। यह एक साहित्यिक वाद ही नहीं, अभिराम मूर्च्छनाएं छोड़ने वाला रंगीला प्रासाद भी है। मानव इसके प्रांगण में अकेला ही नहीं खेल रहा, साथमें विश्वविमोहिनी प्रकृति भी आंख मिचौली का नृत्य कर रही है। वास्तव में खेल दोनों से ही खेला जा सकता है जब दोनों साथी खेल खेलना आरम्भ करते हैं, उस समय उनमें कितनी ही समानताओं का होना अपेक्षित है। विषमता, विरोधिता और असमानता खेल के धरातल को नीचे से खिसका लेती है वहां प्रमोद नहीं, अपितु विद्वेष फूटता है, उन्नति नहीं अवनति का अंधेर मचना आरम्भ हो जाता है, इसी लिये छायावाद की दूसरी भित्ति प्रकृति जड़, मूक और अनुभव शून्य न होकर चेतन वावदूक और अनुभावों के विचित्र सुनहले, रूपहले रंगों से सजधजी मानिनी प्रिया के नखरे करने में अति कुशलतम होकर पनपी है। यह ठीक है कि कहीं-कहीं प्रकृति लालन-पालन करने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शं बन गई हो, किन्तु रजनी और उषा, सन्ध्या और किरणें चटकीले इशारे करती हुई, प्रियतम की अरुणिम ललाई लिये, विकल मानवी हृदय को प्रेम परिणय के प्रथम चुम्बन के लिये लालायित सी, एक टक निहारती सी दीखने लगती है, तो मानव कैसे उससे भेद-भाव का सम्बन्ध रख सकता है। आखिर मानव के पास तरल हृदय तो है ही ! इसी लिये उसने अज्ञात प्रौढ़ विहङ्गिनी सुषमित कुसुमित, प्रकृति के उभरे हुए लाल-लाल गर्म-गर्म कपोलों पर प्रियतमा की तरह रंगीन कल्पनाओं के दन्त-क्षत करके ही अपनी अभिव्यक्ति अभीप्सा की विकलता को शान्त किया है। छायावाद का मूल भावावेश पूर्ण अभिव्यक्ति करने की लालसा है। इसमें कल्पना की इतनी ऊंची, गहन और अन्तः व्यापी प्रेरणा है कि जिसका एक भाग भूतल के गर्भ में निहित है तो दूसरा भाग अन्तरिक्ष के अन्तराल में प्रतिष्ठित है ! इसी लिये छायावाद की परिभाषा में बड़े मतभेद दिखाई देते हैं। छायावाद का लक्षण प्रयास-साध्य है। वैसे अन्तस् की अनुभूतियों को अभिव्यंजना वाद के सांचे में ढाल कर अभिव्यक्त करना छायावाद कहा जा सकता है, किन्तु यह लक्षण दोषों से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता। अन्ततोगत्वा छायावाद का स्पष्ट, सरल और सामान्य शब्दों में यही लक्षण कहना पड़ेगा कि --विश्व की किसी भी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण, छाया की झांकी पाना अथवा उसका (चेतन सत्ता का) आरोप करना ही छायावाद है ! दूसरे शब्दों में छायावादी कवि प्रकृति के पुजारी की भांति विश्व के कण-कण में अपने सर्वव्यापक प्राणों की छाया देखता है। इसी लिये छायावादी धारा ने मानव को बाह्य सौन्दर्य से हटा कर प्रकृति के साथ अन्तर्तम, घनिष्ठतम और अविच्छिन्न सम्बन्ध का श्रेष्ठतम अन्तर्नाद सुना कर व्यष्टि से समष्टि में लाकर, समीप से असीम और बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी बना डाला है हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठतम तथा प्रशस्ततम कवित्री के शब्दों में :--

छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुखं में पुलकित जान पड़ती थी, छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एक सत्ता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण, और पृथ्वी के ओसबिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। छायावाद में रोमान्टिसिज्म की भांति कलाकार का कला से अधिक मूल्यवान महत्त्व माना गया है, क्योंकि कलाकार की भावात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्तित्व की छाप कला में अवश्य अंकित रहती है। आधुनिक काल की कविताओं की विशेषता हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :— जिसमें भावों की विविधता, प्रकृति की आत्मानुप्राणित पुनरावृत्ति, व्यक्तित्व की प्रधानता, विचारों का परिवर्धन, विश्वजनीन दृष्टिकोण, जीवन-व्यापी असंतोष, शरीर की अपेक्षा आत्मा की मान्यता, प्रकृति के उपकरणों पर मानवीय रंग का आरोपित वैचित्र्य, और व्यष्टि का समष्टि-गत भावानुमोदित उद्धरण हो वही आधुनिक कविता कही जा सकती है। वास्तव में यही कुछ ही छायावाद में नहीं, यह तो उसका भाव-पक्ष ठहरा, इसके आगे उसका कलापक्ष इससे भी अधिक विलक्षण, रोचक, अभिव्यंजक और परि-ष्कृत है। हम कह सकते हैं कि छायावाद का जितना जटिल भाव पक्ष है उतना जटिल उसका कलापक्ष है। लेकिन अभी हमें भावपक्ष के विषय में ही कहना है इसीलिये किंचित् भावनात्मक पर्दों को उठा कर हम देखना प्रारम्भ करते हैं। छायवाद की क्रमशः तीन परिणति मानी गई हैं उसमें सबसे पहली अवस्था विस्मय की है, सृष्टि के प्रति कवि विस्मय भरी आंखों से देखता है, उसके आश्चर्य-कारी और परिवर्तनों तथा मधुरता-जनक वर्त्तनों को देख कर तरल हृदय रसिक कवि अद्भुत मानवीय समानता पाकर उसमें चेतन सत्ता की छाया का ही नहीं अपितु चेतनत्व का अस्तित्व मान कर जिज्ञासा के पथ पर चल पड़ता है। यह दशा छायावाद की प्रक्रिया में प्रथम है। इसमें एक बात समझने वाली है, साम्य या सादृश्य योजना करना छाया वाद नहीं कहा जा सकता, जैसे प्रकृति को मानव की तरह समान होने की कल्पना करना : जैसे—

'मंजरित आम्रवन छाया में,
हम प्रिय मिले थे प्रथम बार
ऊपर हरीतिमा नभ गुंजित
नीचे चन्द्रातप छना स्फार
तुम मुग्धा थी अति भाव प्रवण
× × ×
'चंचल प्रगल्भ हंसमुख उदार'
मैं सजल तुम्हें था रहा खोज!

इस कविता में स्थूल चित्रण है। प्रकृति से उत्तेजक और उद्दीपक सामग्री तो ग्रहण की गई है। किन्तु उसे मानवी नहीं समझा गया।

निम्नलिखित कविता भी वस्तुवाद ही कही जा सकती है। जिस कविता में प्रकृति को मानव की तरह सचेतन सप्राण माना जाए, वह कविता छायावाद की मानी जाएगी और दूसरी ओर जो केवल प्रकृति को मानव के समान हँसती, खेलती मानें तो वहीं किन्तु उनकी प्रकृति मानव के समान सक्रिय स्नेहमयी होने पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़ ही होगी । वह कविता वस्तुवाद के अन्तर्गत रखी जायेगी । जैसे--

री सजनि बनराजि की शृंगार !
मुग्ध मस्तों के हृदय के सुन्दे तत्व अगाध
चपल अलि की परम संचित गुंजनें की साध
बाग की बागी हवा की मानिनी खिलवाड़
पहन कर तेरा मुकुट इठला रहा है झाड़
पहन कर तेरा खोल मत निज पंखुड़ियों का द्वारा
री सजनि बनराजि की शृंगार ।।

इन पंक्तियों में एक कलिका को सजनि का व्यक्तित्व दिया गया है और उसमें मानवीयचंचलता आदि धर्मों की कल्पना की गई है । किन्तु यह कलिका पर सादृश्य का मुलम्मा चढ़ाया गया है जोकि स्थूल और सीमित रह गया है । व्यापक और सूक्ष्म तथा असीमता के बिना कविता छायावाद की बनती ही नहीं है। इसलिये इस कविता को हम छायावाद न कह कर वस्तुवादी कहेंगे । वस्तुवाद स्थूल वस्तु के चहुं ओर चक्कर काट कर रह जाया करता है । इसमें अन्तर में बैठने की शक्ति नहीं होती । बहुत सारे लेखकों ने इस वस्तुवाद की कविताओं को छायावाद के अन्तर्गत ही माना है। यह उनकी घातक भ्रांति है । इस भ्रांत धारणा के आधार पर सूर का बालवर्णन, तुलसी का ऋतु-वर्णन और विद्यापति का मालती और भंवर को लेकर उनमें प्रिय व प्रेयसी के व्यक्तित्व का आरोपण छायावाद के अन्तर्गत ही मान लिया है; क्योंकि प्रकृति पर मानवीय आरोप तो प्राचीन काल से चला आ रहा है ! किन्तु प्रकृति मानवीय भावना का अपना ही व्यापक आरोप वेद काल के अनन्तर आज के युग की ही देन है ! इसका यह अर्थ नहीं, कि छायावाद आधुनिकतम प्रवृत्ति है वेदों में ऊषा और सन्ध्या व्यापक का आरोपित-सूक्त छायावाद की श्रेष्ठ कृतियां हैं :-

'वातत्विषो मरुतो वर्षे निर्णिजो'
यमा इव सुदृशः सुपेशसः
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः
आदि

अर्थात--विद्युत्प्राण (तीक्ष्ण कान्ति) से उद्भासित जलधारा के परिधान से वेष्टित यह मारुत् एक से सुन्दर तथा शोभित है । अरुण पति, अश्वों वाले वीरों ने विस्तृत--अन्तरिक्ष छा लिया है ।

सुजातप्तों जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का
अमृतं नाम भेजिरे
ऋग्वेद ५-५७-५

अर्थात् :-- कल्याणार्थ उत्पन्न ज्योतिमय वक्षवाले इन आकाश के गायकों की ख्याति अमर है !

महादेवी वर्मा ने वेदकालीन छायावादी रचनाओं और आधुनिक कविताओं का सामञ्जस्य करके दिखलाया है जिससे उन्होंने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि छायावाद की परम्परा पुरातन काल से चली आ रही है ! किन्तु हम कहना चाहेंगे कि प्राचीन वैदिक सूक्तों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायावादी ढंग तो मिलता है, कला का ढांचा, वैलक्षण्य शब्दों को खराद पर चढ़ा कर नवीन अर्थप्रद तथा ध्वन्यात्मक पदावली जोड़ने की प्रवृत्ति ने ही नहीं — यह तो आज के युग की ही देन है यह ठीक है कि उषा और सूर्य का छायावादी वर्णन प्राचीन और अर्वाचीन समानताएं लिये है, फिर भी आज का और पुरातन का छायावाद एक नहीं कहा जा सकता क्योंकि आजका छायावाद प्रतीक पद्धति का अधिक आलम्बन लेने लग पड़ा है । आज के युग में उस परम सत्ता का अन्वेषण नहीं मिलता, किन्तु वेद में तो इन सब देवताओं को परमात्मा का ही प्रतीक माना गया है । और इन वस्तुओं को जड़ मान कर इनके अधिष्ठाता देवों का आह्वान या स्तुति गान किया है। इस भौतिक और प्रत्यक्षवादी युग में उस महाप्राण की खोज का प्रश्न ही नहीं रहा । यदि उसके विषय में कहीं अन्वेषण पाया भी जाता है तो उस कविता को रहस्यवाद की कोटि में रख दिया जाता है ! जो पहले रहस्यवाद तक पहुंचने वाले मार्ग का नाम छायावाद कहा जाता था वह आज महादेवी को छोड़ कहीं नहीं मानता है । आज के कवि ने अपने आपको केवल चेतनमया मान कर सृष्टि को भी चेतनमय मानने की उदारता की है। यदि आप कहें कि उस अनन्त और अज्ञान प्रियतम को आलम्बन मान कर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करनी 'छायावाद' है। ऐसी बात नहीं, इस लक्षण को मान कर या तो हमारे प्राचीन साधक सन्तजन या मन्त्र द्रष्टा कवि लोग चले थे या आजकी सर्वश्रेष्ठ कवियित्री महादेवी वर्मा चली है! आज के कवि तो प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यञ्जना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन करना ही छायावाद का लक्षण मान कर प्रवृत्त हुए हैं। उन्होंने तो वासनात्मक प्रणयोद्गार वेदना विवृत्ति सौन्दर्य संघटन, अतृप्ति व्यंजना और जीवन के अवसाद विषाद और नैराश्य की झलक दिखा कर मधुमय गानों की सृष्टि करना ही छायावाद माना है। छायावाद की कविताओं में चित्रमयी भाषा, शैली अन्योक्ति पद्धति का आलम्बन और लाक्षणिक पदावली का आश्रय लिया गया है, सामान्य धरातल से छायावादी कविताओं को विशिष्ट स्थान पर रखने वाली प्रणाली साम्य ग्रहण की प्रवृत्ति है । वास्तव में साम्यग्रहण में प्रभाव साम्य छिपा होता है। जो शब्द प्रस्तुतों के समान ही सौन्दर्य,दीप्ति, कान्ति, कोमलता, प्रचण्डता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद , और खिन्नता का चमत्कारी प्रभाव रखते हों उन्हीं का ही ग्रहण आज के सिद्धकवि करते हैं। प्रतीक पदावली का एक उदाहरण देखिए, जैसे—

झंझा झकोंर गर्जन है,
बिजली है नीरद माला !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पा कर इस शून्य हृदय को,
सबने आ घेरा डाला ।।

अर्थात्--आज मेरे हृदय रूपी गगन में क्षोभ रूपी आंधी विचार रूपी मेघों की गड़गड़ाहट और आशा निराशा रूपी टीस भरी बिजली के समान चमत्कृति अन्धकार और चमक को पनपा रही है।

यहां झंझा क्षोभ के अर्थ में ग्रहण किया गया है । इसी तरह और भी शब्द प्रतीकवत् उपलक्षण रूप में ग्रहण किये गए हैं । दूसरी बात यह भी है कि कुछ वाक्य सीधे इंगलिश साहित्य से चुने चुनाए अनुवाद के रूप में ग्रहण कर लिये गये हैं जैसे --विचारों में बच्चों की सांस वहां नयनों में केवल प्रात आदि औरकुछ भारतीय संस्कृति के अनुसार भी बनाए गए हैं। जैसे गंगाजल की धारा को पवित्रता के लिये और मदिरा के जल को कल्यता के लिये ग्रहण किया गया है।

"हुई मुझ को ही मदिरा आज हाय का गंगाजल की धारा" यह तो रही प्रतीक पद्धति । हमें इससे आगे भी कहना है कि छायावाद की कविता को समझने के लिये प्रतीकों का समझना आवश्यक है। इसी प्रकार अन्योक्ति पद्धति को भी छायावाद के पाठक को ध्यान में ले आना चाहिए। तभी हम इन भावुक कवियों की गहन और भावपूर्ण कविताओं का आनन्द ले सकेंगे । जिस समय छायावादी कवि सर्वप्रथम सृष्टि को निहारता है उस समय उसे इस संसृति के प्रत्येक उपकरण में मानवीय होने का विश्वास सा मिल जाता है । वह सीधा उससे पूछता है कि बताओ तुम कौन हो, तुम्हारा परिचय क्या है उस समय एक अपरिचित आत्मा दूसरी अज्ञात आत्मा में सन्निवेश चाहती है परिचय मांगती है । यह छायावाद की पहली स्थिति होती है । जैसे पन्त जी छाया को पूछ रहे हैं :--

'कहो, कौन हो दमयन्ती सी तुम तरु के
नीचे सोई
पीले पत्तों की शय्या पर तुम विरक्ति सी
मूर्च्छा सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो विरह
मलिन दुःख विधुरा सी,
पछतावे की परछाई सी तुम भू पर छाई
हो कौन,
दुर्बलता सी अंगड़ाई सी अपराधी सी भय से
मौन' (पंत, छाया)

इन पंक्तियों में हमारा सुकुमार और स्निग्ध कवि पन्त छाया से पूछ रहा है, परिचय मांग रहा है, किन्तु उस छाया पर मानवीय आरोप ही नहीं, बल्कि एक नारी से जिस प्रकार बातें कर रहा हो इस तरह दीख रहा है । यह स्थिति 'छायावाद' में पहली स्थिति मानी गई है । इसमें प्रकृति मानवीय तो बन जाती है किन्तु उसका परिचय नहीं मिलता ।

दूसरी स्थिति में छायावादी कवि मानवीय प्रकृत्ति के लिये आकुल रहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग जाता है। उसे उसका परिचय मिल जाता है ! प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति का समय नहीं मिलता, इस मध्यम स्थिति में कवि विरह व्यथित रहता हुआ कभी उसे बुलाता है, कभी उसे उलहना देता है और 'कभी अपना संदेश देता है। इस समय कलाकार की खोई खोई सी अवस्था हो जाती है। जैसे--

'तारक मय नव वेणी बन्धन
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि कलप सित घन अवगुण्ठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी !
पुलकित आ बसन्त रजनी !'

इन पंक्तियों में मधुमास की मादक रजनी को सजनी के समान तृषित शब्दों में मिलने के लिये विकल निमन्त्रण दिया जा रहा है !

'प्रसाद' जी जीवन प्रभात को जागने के लिये मधुरत्त्व भरी गुंजार कर रहे हैं।

'अब जागो जीवन के प्रभात'
बसुधा पर ओस बने बिखरें
हिमकण आंसु जो क्षोभ भरें
ऊषा बटोरती अरुण गात
अब जागो जीवन के प्रभात !
रजनी की लाज समेटो तो,
कलरव से उठ कर भेंटो तो !
अरुणांचल में चल रही बात,
अब जागो जीवन के प्रभात !

इस कविता में 'प्रभात' उषा, रजनी को चेतन व्यक्तित्व लिए हुए कह कर जागरण का सन्देश दिया गया है।

वास्तव में दूसरी अवस्था में मिलन और बिछुड़न की आहें, टीस, और जलन भरे उद्‌गार ही हुआ करते हैं, वहीं कुछ आकुलता, विरह, पीड़ा, और मिलन विकलता हमें छायावाद की दूसरी कोटि की कविताओं में मिलती है।

तीसरी अवस्था में छायावादी कवि प्रकृति में अकपने आपको समाहित कर लेता है। स्वयं प्रकृतिमय बन कर वह प्रियतम में अन्तर्धान हो जाना चाहता है। वास्तव में यही स्थिति छायावादी कवि की सफलता की सोपान है। इस दशा में आकर छायावादी कवि का मानस इतनी तल्लीनता प्राप्त कर लेता है कि मैं अपने आप की सुध ही नहीं रहा, उसे तो परम सन्तुष्टि, पूर्ण प्रेमाभिव्यक्ति और आत्यन्तिक विलीनता प्राप्त हो जाती है! तभी तो हमारा छायावादी कवि सुमित्रा नन्दन पन्त छाया से बांह खोल कर आबद्ध हो जाना चाहता है। और सदा के लिये प्रियतम में अन्तर्धान होने की याचना कर रहा है !

आवो छाया बाहें खोल लगकर
गले जुड़ा ले प्राण
फिर तुम तम में मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अन्तर्धान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवी वर्मा अपने जीवन को गगन में एकाकार करके अभिन्नता का परिचय दे रही है । जैसे --

'प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन '

यह क्षितिज बना धुंधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग !
छाया सी काया वीतराग
सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन ।

अर्थात्--कवयित्री कह रही है:-- कि मेरा जीवन सध्या के गगन की भांति है। वह गोधूली बेला के कारण धुंधला क्षितिज मेरे हृदय का विराग है । सान्ध्य नभ की लालिमा सा ही मेरा सुहाग है। सान्ध्य की शून्य छाया के समान ही मेरी रागहीन काया है। और रंगीले घन ही मेरे सुधि भरे स्वप्न हैं ।

इस तरह आधुनिक छायावादी कलाकारों ने प्रकृति और अपने जीवन के बड़े सुनहले सामञ्जस्य ही नहीं, एकाकार होने के व्यापक चित्र भी खींचे हैं। वास्तव में छायावाद मानस-मानस की विकल अभिव्यक्ति है। जिसमें मिलन का नाद है और असीम बनने की लालसा है। जिस समय मानव ने कल कल करती निर्झरिणी को सततगति से प्रवाहित और झलमल करती तरङ्गों में उल्लासित, तथा किसी अज्ञात प्रियतम से मिलने की लालसा लिये, पुलकित देखा, उस समय मानव ने सहसा उसमें भी मानवीय प्राणों की झांकी का दर्शन किया, और उससे चिर संचालित संसृति रहस्य की कहानी सुनी, अतीत के गान सुने, विरह, व्यथित वियोगियों की लम्बी लम्बी निश्वासें आईं, दो बिछड़े हृदय के सुखद संगीत बजे, बस इसी विषाद और अवसाद की सृष्टि ने छायावादी ढांचा खड़ा कर दिखाया है, कहीं इसमें सौन्दर्य की पुकार है, कहीं करुणा का चीत्कार है, कहीं उ नती हुई रजनी के आंसू हैं और कहीं सुनहले रंग बरसाती हुई ऊषा की वाण वर्षा है। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं, कि छायावादी कविता से प्राग् सौन्दर्य करुणा और उषा आदि का इतना सुन्दर वर्णन हिन्दी-साहित्य में मिलता ही नहीं । नहीं; मिलता तो अवश्य है। किन्तु छायावादी युग के पहले कवियों का प्रकृति-वर्णन वस्तुवाद का ही विषय बना है। छायावाद का नहीं बन सका है । उन्होंने वाह्य सौन्दर्य-साधना की है । फूल के सर्वांग का वर्णन किया है । उसकी स्थूल प्रक्रिया को समस्त चित्रण किया है । किन्तु उस पुष्प में रहने वाले उस प्राणमय तत्त्व का सूक्ष्म सौन्दर्य-दर्शन का निरूपण नहीं मिलेगा । छायावाद युग की यही विशेषता है कि इसने पुष्प के अन्तराल में प्रतिष्ठित प्राण मय तत्त्व का सूक्षम दर्शन किया है । यदि इस तरह कह दिया जाय तो भी कोई अत्युक्ति न होगी कि छायावाद ने आज तक के हिन्दी-साहित्य में वर्णित उषा-रजनी, प्रातः कालीन-तारक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमा और पुष्प और कलियों में प्राण फूंक दिये हैं आज तक तो ये जड़ और मूक ही थे। इन जड़ और मूक प्रकृति के उपकरणों को सचेतन सप्राण और मानवीय बनाने का काम छायावाद ने ही किया है। जितना थिरकता और कोमल सौन्दर्य आजके युग में पनपा है इतना किसी भी युग में निष्पन्न नहीं हो सका है। और यह देन है छाय वाद की। छाया कवि विज्ञान या वस्तुवाद की सौन्दर्य-साधना से युक्त मानव-समाज को आन्तरिक जीवन के सौन्दर्य साधना पर आरुढ़ करना चाहता है। और इसे प्रकृति के सुरम्य, प्रगाढ़, सुषमा-भण्डार तथा अनन्त काल के अपरिचित प्राकृतिक उपकरणों का मानवीय परिचय दिखाना चाहता है। नैसर्गिक सौन्दर्य की परिछित्ति विवृति और मार्मिक व्यंजना करके आज का छायावादी अन्तः सत्ता में तदाकार होकर सदा के लिये परिणति तथा एक लयता चाहता है, उसे उसकी बाहों में लिपट कर अनन्त काल के लिये एकाकार होने की लालसा है, कवि कहता है—

'जिसकी सुन्दर छबि उषा है'
नव बसन्त जिसका शृंगार
तारे हार किरीट सूर्य शशि
मेघ केश स्नेहाश्रु तुषार,
मलयानिल मुख वास जलधि मन
लीला लहरों का संसार!'

उस स्वरूप को तू भी अपनी मृदु बाहों में लिपटा ले!!

कवि ने काल्पनिक रंगीनता से सूक्ष्म सौन्दर्य का कितना मादक और मधुर साक्षात्कार किया है। वास्तव में ऐसे चित्रों के चित्रण में कवि की कलम तूलिका बन गई है! और कोमलतम कल्पना वस्तुसत्ता जिसने प्रकृति के अन्तस्तल के आवरणों को हटा कर सीधा अन्तर्दर्शन करा दिया है। छायावादी युग ने इस अन्तः व्यापी सौन्दर्य-साधना का तिमिराच्छन्न द्वार खोल कर हिन्दी की बड़ी अमूल्य सेवा की है। इसी तरह छायावादी की सौन्दर्यवासना की तरह प्रेम भावना भी अमूल्य देन है! सौन्दर्य के अनन्तर प्रेम का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। सौन्दर्य की ऊंची नीची तराइयों में ही प्रेम पुष्ट हुआ है आज का कवि और कवयित्री प्रेम का खुला गान करती है। उसमें स्पष्ट अभिव्यक्ति है। पूर्ण विकास परम्परा है। पर संकोच की सर्वांगीण दुर्गम घाटी नहीं। आज के प्रेम में ऐन्द्रिय वासना नहीं, प्रेम का परिणय है। जीवन का मधुमास है। और प्रेम को जीवन की मूल शक्तियों में से एक प्रधान शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। आज को प्रेम-साधना पवित्र रूप में की गई है।

जो कुछ कालिमा भरी है इस रक्त मांस में मेरे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जलन जला देगी, तब मैं योग्य बनूंगा
तेरे !

छायावादी प्रेमी साधक की यह पहली पुकार है । वह प्रेम के लिये विश्वास और व्यापकता, को अपनाना आवश्यक समझता है ! यह ठीक है कि छायावाद में प्रेम की खण्डात्मक प्रवृत्तियों को अपना कर एक जीवन का दूसरे जीवन में सन्निवेश की आकांक्षा अवश्य की है ! जैसे–

"गावो गावों कुसुम बालिके"
तरुवर से मृदु मंगल गान !
'मैं छाया में बैठ तुम्हारे'
कोमल स्वर में कर लूं स्नान !

इन पक्तियों में कवि कुसुम बालिका को अपने ही समान सप्राण, मान कर उससे अपनी प्रेम वृत्ति, की परितृप्ति के लिये स्नान करने की इच्छा कर रहा है ।

छायावाद में वेदना की भावना

छायावाद में वेदना भी स्वर प्रधानता से गूंजा है । आखिर कोई भी वाद हो ! उससे वह देश की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । जब हमारे देश के चारों ओर पराधीनता पिशाचनी की तरह मुंह बाए खड़ी रही हो, अबलाओं की लाज लूटी जा रही हो, जबकि असंख्य मानव मेहनत करने पर भी अकाल में ही काल कवलित हो रहे हों, मुर्दिनी खिन्नता और व्यथा चारों ओर छाई हुई हो; और निराशा, विपाद, तथा क्लिन्नता का साम्राज्य हो, जब वर्तमान वेदना पूर्ण, अतीत कष्टपूर्ण तथा भविष्य अन्धकार-पूर्ण हो। तो उस समय वेदना बादल ना घिरे बिजलियों और क्षोभ, आकुलता, तथा दु:खद विचारों की झंझा का वेग न चले । ऐसा होना असम्भव है। हमारा छायावाद युग भी इस प्रवृत्ति से रुक नहीं सका है । यदि छायावाद को भी वेदना प्रधान युग कह दिया तो भी कोई असमीचीनता नहीं होगी । हाँ छायावाद की वेदना का प्रवाह स्वाभाविक मनोभावों को लेकर ही बहा है । अभिव्यक्ति की अपूर्णता, प्रेम की असामञ्जस्यता, कामनाओं की विकलता, सौन्दर्य की अस्पष्टता, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति सम्वेदन-शीलता, प्राकृतिक रहस्य-मयता तथा भौतिक विकलता ही छायावाद की वेदना के आधार हैं। कवि ने इन अभिप्रायों को इन शब्दों में व्यक्त किया है :--

"नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ, आज अनश्वर
गीत ।"
मेरे हंसते अधर नहीं, जग की आंसू लड़ियां
देखो !

मेरे गीले पलक दुवो मत,
मुर्झाई कलियो देखो ।"
मुझ को मिला न कोई,
ऐसा जो कर लेता प्यार !!

विशेष कर महादेवी वर्मा को तो पीड़ा का साम्राज्य ही मिल गया है । वे तो इस पीड़ा में ही उस अज्ञात, प्रियतम को ढूं सकी है, अब उस प्रियतम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीड़ा ढूंढ रहीं है, पीड़ा उन्हें प्यारी है वे पीड़ा को सदा साथ रखना चाहती है

तुमको पीड़ा में ढूंढा,
तुम में ढूँढुगो पीड़ा ॥

यद्यपि इस कविता का प्रतिपाद्य विषय रहस्यवाद का है तब भी पीड़ा वर्णन तो छायावाद की शैली का प्रभाव प्रकट कर रहा है !

पन्त जी तो पीड़ा, दुःख को मानव का भोजन मान रहे हैं :—

दुःख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन"
दुःख के तम को खा खा कर भरती प्रकाश से वह मन ।
अपनी डाली के कांटे हैं नहीं बेंधते अपना तन,
सोने से उज्ज्वल बनने तपता नित प्राणों का धन !!

× × ×

आँसू की आंखों से मिल भर ही आते हैं लोचन !!

इसी प्रकार ही 'निराला, पन्त, प्रसाद और महादेवी के वेदना भरे गीत और भी निसृत हुए हैं, जिनमें स्निग्धता, सुकुमारता, हृदय स्पन्दता, कूट कूट कर भरी हुई है । इस भीषण वेदना के भार ने ही छायावाद में पलायन-वाद को जन्म दिया है, जिसमें कवि इस दुनिया के पचड़े से तंग आकर उस पार जाने की प्रार्थना करने लग पड़ा है । मानव की असफलता से दब कर भागने की प्रवृत्ति ही जागा करती है ! इसमें कोई असम्भाविता नहीं, किन्तु फिर भी अकेले पलायन वाद के आधार पर छाया-वाद को बदनाम करना अनुचित है। छायावाद में ही क्या ऐसी प्रवृत्ति प्रत्येक युग में किसी न किसी रूप में उभरा करती है । आज के प्रगतिवादी युग में कवि संसार की विषमता से तंग आकर सृष्टि का समूलतः विध्वंस चाहने लगा है ।

"गगन पर घिरों मण्डलाकार '!
अवनि पर गिरों वज्रसम आज"
गरज कर भरों रुद्र हुंकार, यहां पर करों नाश का साज!

× × ×

नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक टूक हो जायें!
विश्वभर की पोषक वीणा के सब तार तार मूक हो जायें !!
नाश नाश हां महानाश की प्रलयंकरी आंख खुल जाये ।
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे अंग अंग झुलसाएँ॥

यदि छायावादी युग में इस प्रकार की शान्ति पलायन प्रवृत्ति जागी तो इस में क्या आपत्ति आ पड़ी ।

छायावाद ने यहाँ हमें सौन्दर्योपासना प्रेम-भावना और करुणा-व्यापकता का विवरण दिया, वहां हमें जगत और जीवन की गूढ़ समस्याओं पर भी नये-नये सुझाव दिए । विशेष कर छायावाद की प्रकृति भावना तो सर्वश्रेष्ठ और प्रशस्ततम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमूल्य देन है ! जब हमारा निराला सान्ध्यसुन्दरी का परी सा चित्र खींचते हैं। उस समय तो कलाकार की प्रशंसा किए बिना रहा ही नहीं! जाता ! पन्त जी प्रकृति की मधुप कुमारी को कह रहे हैं —

"सिखा दो ना अभी मधुप कुमारी"
तुम्हारे मीठे मीठे गान
कुसुम के चुने कठोरों से
करा दो ना कुछ कुछ मधुपान !!

और जहां 'निराला' जूही की कली का चित्र खींचता है :—

सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्नमग्न !
अमल कोमल तनु तरुणी जूही की कली,
दृग् बन्द किए शिथिल पत्रांङ्क में ।'

भाव और विचार की इस नवीनता तथा अलौकिकता आधुनिक हिन्दी-साहित्य में छायावाद के द्वारा प्राचीन परम्परा के प्रति क्रांति और विद्रोह की अग्नि भी प्रज्वलित हुई है । छायावाद ने भी नैतिक मांगों का जबरदस्त समर्थन किया है । उसमें कोरे स्वप्न ही नहीं हैं, उसमें विद्रोह की आग है क्रान्ति का बोल बाला है परिवर्तन की पुकार है। उसने छन्दों के बंधनों को तोड़ा है । अलंकारों की शृंखला का रूप संवारा है । एक परम्परा को समाप्त किया है। जीवन और संसार को जड़, चेतन को, सूक्ष्म और स्थूल को एक करके दिखाया है। छायावाद ने खड़ी बोली के रूखेपन को मीठी पदावली में परिणत कर दिया, करुणा का अजस्र प्रवाह बहा दिया, सूक्ष्म की अभिव्यक्ति कर दी । छायावाद ने द्विवेदी युग का अन्त किया, इतिवृत्तात्मकता को विदा दी, नङ्गे यथार्थ को निराहत किया, और गीतिकाव्य को जीवन दिया, इतना ही नहीं छायावाद ने हमारी दार्शनिक मान्यताओं को प्रधानता दी है, राष्ट्रीयता को उभारा है और जीवन की गूढ़तम पहेलियों को बड़े सुन्दर ढंग से सुलझाया है। साहित्य में भावों और कल्पनाओं की इतनी ऊंची उड़ान की है, कि जहां हम सामान्य धरातल से ऊपर उठ कर एक विशिष्ट, मधुर और नवल ताजगी का अनुभव करने लग पड़ते हैं । आज के बुद्धिवादी कवि छायावाद को बेशक दूसरे लोक की चोज बतावें, या स्वप्नों की रंगीनी बाडी, किन्तु हम तो नैतिक और साहित्यिक इस अमूल्य देन को हिन्दी का उन्नत युग ही कहेंगे । बुद्धिवादी प्रत्यक्ष की और यथार्थ की कसौटी पर ही सब पदार्थों को नापते हैं वे विवेक और विचार को ही तथा हेयोपादेयक से किए गए निर्णय को ही निर्णय मानते हैं । किन्तु साहित्य में विवेक और विचार के स्थान पर हृदय तरङ्गन को अधिक महत्व दिया जाता है यह बात उन्हें नहीं भूलनी चाहिए । अतः हम छायावाद को इस युग की श्रेष्ठतम निधि ही कहेंगे, इसने जयशंकर प्रसाद के "झरना" काव्य और मैथिली शरण गुप्त की "झंकार"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य से उद्गम पा कर तथा महादेवी वर्मा, सुमित्रा नन्दन पन्त, और सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" और वचन आदि कवियों से महान् उत्थान पा कर राष्ट्र का मस्तक उन्नत किया है, साहित्य सर्वाङ्गीणता में सहयोग दिया है और सीमित संगीन और रू-ग्रस्त बन्धनों में बन्धे जीवन को असीम व्यापक और स्वतन्त्र करके क्षितिज के उस पार की मन्द वायु में सहलाया भी है। अतः हम साहित्य के विद्रोही, छन्दों के विमोचक, और अलंकारों के पथ-दर्शक तथा भाषा के संयोजक, विस्तारक और माधुर्य-प्रदायक छायावाद को गंगा प्रसाद के शब्दों में कहेंगे।

"अस्तु हम कह सकते हैं कि भारतीय साहित्य के अन्तःपट पर छायावाद ने जो भावों की कसक की मीठी मनुहारें दी हैं जो मादक रागिनी छेड़ी है, जो बासन्ती तान गुञ्जित की है, उल्लास की वीणा पर भव्य-भावनाओं की जो कोमल उंगलियां फेरी हैं। कल्पना के कमनीय पंखों पर उड़ कर संसार की जो सुनहली झांकी ली है वह सब अपनी सरसता, स्निग्धता, तथा संगीतमयता के कारण अमिट और अमर हैं। इस छायावाद का चाहे पन्त जी युगान्त कर दें जोशी जी विना करदें, किन्तु मेरे ही नहीं एक साहित्यिक और रस पिपासु के लिये वह सदा प्रिय, मधुर, और रुचिर ही रहेगा। इसमें सन्देह नहीं है।

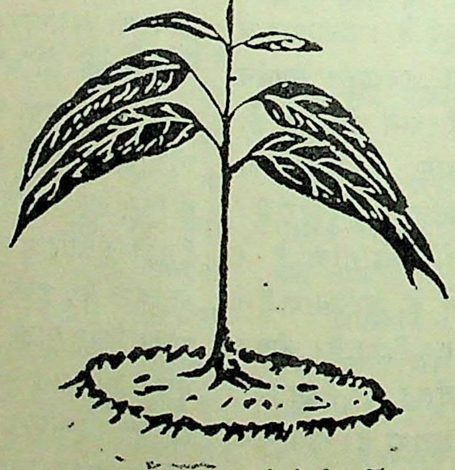

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनापति कृत गुरु शोभा; एक समीक्षात्मक अध्ययन

डा० मन मोहन सहगल

अठारहवीं शताब्दी में पंजाब की गुरु-परम्परा के द्वारा हिन्दी-साहित्य की पर्याप्त समृद्धि हुई है । यों लगभग १६वीं शती के अन्त में गुरु अंगद देव के प्रयत्नों से गुरुमुखी लिपि को निश्चित रूप दिया जा चुकने पर परम्परा-सम्बन्धी समूचा साहित्य उस गुरु-लिपि में ही लिखा गया, तथापि तद्युगीन साहित्यिक-भाषा ब्रज का हिन्दी और अहिन्दी भाषी प्रदेशों पर इतना प्रभाव था कि शुद्ध प्रादेशिक भाषा में रचना करने वाले कविगण भी काव्य की झोंक में ब्रज के पद कहे बिना न रहते थे । पंजाब की स्थिति इससे भिन्न थी, क्योंकि यहां पंजाबी-भाषा को तब तक पारस्परिक समालाप की भाषा भले ही माना जाता हो, परन्तु साहित्य क्षेत्र में इसके प्रवे ा पर सम्भवतः तब अनेक प्रतिबंध रहे होंगे । यही कारण है कि उस काल की गुरुमुखी लिपि में की गई अनेकानेक रचनाएं, जो आज तक मात्र लिपि भेद के कारण हिन्दी-साहित्य की परिधि के बाहर रह गई थीं, अब ध्यान पूर्वक खोज के परिणाम स्वरूप प्रकाश में आ रही हैं । "गुरु शोभा" एक ऐसी ही रचना है ।

पंजाब की सन्त-परम्परा में अन्तिम ज्योति गुरु गोविन्द सिंह जहां आध्यात्मिक नेता थे, वहां वे सन्त सिपाही, धर्म-रक्षक और विद्वानों के आश्रयदाता भी थे । स्वयं वे उच्च-कोटि के कवि थे, भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं के समर्थक और संरक्षक थे । अतः उस युग के किसी भी पंजाबी या भारतीय विद्वान् का उनके द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक ही था । उनकी संगति में जहां धर्म-चर्चा होती थी, वहां साहित्य चर्चा का भी महत्वपूर्ण स्थान था और साहित्य-प्रेमी ऐसी गोष्ठियों में रस लेते रहते थे। अनेक कविगण दरबार में आते जाते थे, कुछेक बहुत निकट स्थान पा कर गुरु दरबार में समादृत थे । वे भी गुरु जी की तरह लिखते तो परम्परित गुरु-लिपि में थे, परन्तु उनकी भाषा पर यत्र-तत्र प्रादेशिक प्रभाव के अतिरिक्त ब्रजभाषा से और कुछ निरालापन न था। सेनापति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु दरबार के ऐसे ही कवि-भक्तों में से प्रमुख कवि कहे जा सकते हैं। नाम से सम्भवतः रीतिकाल के प्रसिद्ध प्रकृति चित्रकार कवि सेनापति का धोखा हो, परन्तु ये उससे सर्वथा भिन्न व्यक्ति थे, और गुरु गोविंदसिंह के आनन्दपुरी दरबार का आकर्षण थे। इनका काल-निर्णय तो अभी सम्भव नहीं हो सका, तो भी यह निश्चित है कि ये कई वर्षों तक गुरु गोविंद के दरबार में रहे और उनकी मृत्यु के पश्चात् भी उनका यशोगान करते रहे।

गुरु परम्परा के प्रसिद्ध इतिहासकार भाई संतोखसिंह ने गुरु दरबार के कवियों की चर्चा करते हुए सेनपति का उल्लेख ससम्मान किया है। इसका सम्भव कारण यह हो सकता है कि सेनापति ही गुरु जी के जीवन-चरित का सर्वप्रथम लेखक था और वही अपने परवर्ती इतिहासकारों (गुरु विलास और गुरु प्रतापसूर्य के लेखकों) का पथ-निर्देशक बना होगा।

भाई संतोखसिंह ने गुरुदरबार में ५२ कवियों के होने की बात कही है। उनके द्वारा रची साहित्यिक निधि, जिस का नाम "विद्या धर" रखा गया था और जिसका वज़न नौ मन बताया गया है, के आनन्दपुर के युद्ध में नष्ट हो जाने का संकेत भी दिया है।

बावन कवी हजूर गुर रहति सदा ही पास।
आवैं जाहि अनेक ही, कहि जस, लें धन रास।
तिन कवियन बानी रची, लिखि कागद तुलवाय।
नौ मण होय तोल महि सूखम लिखत लिखाय।
विद्याधर तिस ग्रंथ को नाम धरयो करि प्रीत।
नाना बिधि कविता रची, रखि रखि नौ रस रीति।
मच्यो जंग गुर संग बड रह्यो ग्रंथ सो बीच।
निकसे आनन्दपुर तज्यों लुट्यो पुन मिलि नीच।
प्रथम प्रथक पत्रे हुते लुट्यो सु ग्रंथ बखेर
इक थल रह्यो न, इम गया जिसते मिल्यो न फेर।
बाहठ पत्रे कहूँ तै रह्यो आनन्दपुरि माहि।
तिन ते लिखे कवित्त इहु गुर जस वरन्यो जाहि। (गुर प्रतापसूर्य ग्रंथ, पृ०५७२३)

परन्तु कवि सेनापति, जो कि आनन्दपुर के युद्ध के समय गुरु जी के साथ थे कहीं ऐसी बात नहीं लिखते। इसके दो मुख्य कारण अनुमान किये जा सकते हैं--एक, सेनापति केवल कवि ही नहीं, गुरु भक्त भी थे (जैसा कि उनकी रचना से स्पष्ट है), और उन्होंने पूर्ण रचना में गुरु जी की पराजय का कहीं वर्णन नहीं किया। दूसरे, 'विद्याधर' नामक साहित्य-कोष भाई संतोखसिंह की अतिशयोक्ति का ही सृजन हो। इन दोनों ही अनुमानों में कुछ तथ्य विद्यमान है। गुरु जी की पराजय की उपेक्षा भी हुई ही है और भाई संतोखसिंह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने वर्णनों में चित्रण को हवा देते हुए कई स्थानों पर अतिशयोक्ति से काम लेते रहे हैं। यदि सेनापति ने ऐसी किसी बात का निर्देश किया होता, तो वह अधिक प्रामाणिक मानी जा सकती थी।

सेनापति की रचनाएँ :—सेनापति के नाम पर अभी तक केवल दो ही रचनाएँ उपलब्ध हैं। 'गुरु शोभा' उनका मौलिक प्रबन्ध है और 'चाणक्य नीति का भाषानुवाद' एक अनूदित रचना। यहां 'गुरु-शोभा' के सम्बन्ध में ही हमें चर्चा करनी है। इसकी उपलब्ध प्रतियों में दो हस्त-लिखित पाण्डुलिपियां सिक्ख रैफ्रेंस लायब्रेरी, अमृतसर में, एक (जिसके कई पृष्ठ कीड़े खा गए हैं) भाषाविभाग, पटियाला में तथा एक सन् १९२५ में अकाली कौरसिंह द्वारा सम्पादित तथा नानकसिंह कृपालसिंह हजूरिया, अमृतसर द्वारा गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित हैं।

गुरु शोभा का रचनाकाल:—उपर्युक्त सभी प्रतियों में सेनापति का ही एक दोहा उपलब्ध है, जिससे "गुरु शोभा" का रचनाकाल संवत् सत्रह सौ अट्ठावन (१७५८) अथवा सन् १७०१ ठहरता है।

संमत सत्रह सौ भये बरख अठावन बीत।
भादव सुद पंद्रस भई, रची कथा करि प्रीति।

अकाली कौरसिंह ने शँका की है कि 'अठावन' के स्थान अठानव पाठ सम्भव है। तब इसका रचनाकाल १७९८ सँवत् समझना चाहिए। परन्तु यह संदेह निर्मूल ही दिखता है, क्योंकि कवि ने गुरु गोविंद सिंह के ज्योति-जोति समाने के समय (सँवत् १७६५) का वर्णन ग्रँथ में वर्तमान काल में किया है, जिससे प्रतीत होता है कि 'गुरुशोभा' की रचना घटनाओं के घटित होने के साथ-साथ उसी प्रकार हुई है, जिस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' की मानी जाती है। अतः संवत् १७५८ ही उचित प्रतीत होता है।

दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि उपलब्ध रचना-काल ग्रंथ का आरम्भ है, पूर्ति किस वर्ष हुई, ग्रंथ से इसका कोई पता नहीं चलता। ग्रंथ का अन्त निश्चय ही गुरु जी की मृत्यु के उपरान्त हुआ होगा, अन्यथा अन्तिम घटना का चित्रण ही कवि के लिये सम्भव न होता।

नाम करण—प्रस्तुत ग्रंथ में मुख्यतः गुरु गोविंद सिंह जी के युद्धों का चित्रण है उनके शौर्य, विजयों एवं रण-कौशल में ही उनकी शोभा निहित है, ऐसी कवि की मान्यता है। इसीलिये ग्रंथ का नाम 'गुरु शोभा' रखा गया है। लेखक ने स्वयं काव्य में कम से कम इक्कीस बार इसी नाम का संकेत दिया है। आरम्भ करते हुए "सतिगुरु शोभा इहते कहो" लिखा है। तदोपरान्त प्रत्येक अध्याय के अंत में, अध्याय में चर्चित विषय के संदर्भ में 'इत श्री गुरु शोभा......... सम्पूर्ण शुभसत् लिख दिया है। इन वर्णनों एवं सदर्भों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ के नाम के सम्बन्ध में शंका नहीं रह जाती ।

घटना-क्रम--- गुरु शोभा बीस अध्यायों में बटा ९३८ छन्दों का एक लघु प्रबंध है। ग्रंथ में प्रबंध सम्बन्धी सभी परम्पराओं का पालन किया गया है । क्योंकि इसे रासो-कोटि का काव्य ही कहा जा सकता है, इसलिये आश्रय-दाता (गुरु गोविन्दसिंह) की प्रशंसा, उसके युद्धों का विस्तृत चित्रण, विजयों का ससम्मान वर्णन और उसके पूर्वजों से उसकी महत्ता-स्थापना आदि विवरण ग्रंथ में आद्योपांत उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम 'मँगलाचरण' की परिपाटी का निबाह किया गया है --

मति थोरि, उपमा घनी, किह बिध बरनी जाइ ।
बिनउ करै कर जोरि कबि सतिगुरु होहु सहाइ ।
नमसकार करि जोरि कै करित जीव अरदासि ।
रचो ग्रंथ तुमरी कथा करहु बुध परगासि ।

तदोपरांत रचना-काल की ओर संकेत करके लेखक ने गुरु नानक से लेकर गुरु तेगबहादुर तक सबके एक ही रूप होने की चर्चा की है । गुरु गोबिंदसिंह का अवतरण धर्म-रक्षा एवँ पृथ्वी संकट-मोचन-हित हुआ तथा उन्होंने चण्डी की सिद्धि प्राप्त की ।

तिलक जनेऊ अरि धरमसाला ।
अटल करी गुर भए दिआला ।
धरम हेति प्रभु पुरहि सिधाए ।
गुरु गोबिंद सिंह कहलाए ।
दुष्ट बिडारन, संत उबारन,
सब जग तारन, भव (भौ) हरण ।
जै जै जै देव करै सभ ही,
तिह आन परे गुर की सरणं ।

चण्डी सिद्ध--

नहीं एक जाने बड़े गरबकारी,
तियं मारिबै काज चंडी सुधारी ।
कीए छार संसार में सोभ होई,
कहै ताहि एहि सु दूजा न कोई ।

लेखक ने इसी अध्याय में गुरु गोबिंद को ब्रह्मा, विष्णु और शिव से महान् बताया है, उनके पँथ की स्तुति की है और उन के नाम का महत्त्व दर्शाया है ।

दूसरे अध्याय से युद्धों के वर्णन आरम्भ होते हैं । माखोवाल एवँ पाऊँटा में गुरु लीलाएँ चित्रित की हैं । फतेहशाह के आक्रमण, नादवन में पहाड़ी राजाओं के हित में किये गए युद्ध तथा दिलावर खां से युद्ध का वर्णन मिलता है । बाद में सतलुज के किनारे वैशाखी पर्व पर आनन्दपुर खालसा का निर्माण वर्णित है । वहीं ब्राह्मणों और क्षत्रियों द्वारा खालसा पंथ का विरोध एवँ धीरे-धीरे समँजन दिखाया गया है । राव कहलूर के द्वारा आनन्दपुर का घेरा, अन्य पहाड़ी राजाओं से युद्ध, सरहिंद के सूबेदार की सहायता से निरमोह का घेरा, आनँदगढ़ में छीना-झपटी, मुगल सहायता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से राजाओं द्वारा आनन्दगढ़ का घेरा, आनन्द गढ़ त्याग, चमकौर-वास, गुरु पुत्रों की अपूर्व वीरता, औरंगज़ेब को पत्र पठाना, अहमदनगर में आजमखां से लड़ाई, आगरा को प्रस्थान, दिल्ली मथुरा, वृन्दावन दर्शन और कौतुक, शाह आगरा से मुलाकात, खिलअत–प्राप्ति और तदोपरान्त पठानों द्वारा छल से गुरु जी की हत्या का ब्योरेवार वर्णन किया गया है। अन्तिम अध्याय में खालसा-महिमा, नाम–महिमा, आत्मा-परमात्मा का आध्यात्मिक मिलन एवं सिक्ख-दर्शन के भेदाभेदी रूप का चित्रण किया गया है।

ऐतिहासिक महत्त्व—गुरु गोबिंदसिंह के जीवन में युद्ध अतीव महत्त्वपूर्ण घटनाएं हैं। खालसा पंथ का निर्माण, पंथिक व्यवस्था में आर्थिक सुधार आदि के चित्रण भी सिक्ख इतिहास की अपूर्व घटनाएँ हैं। 'गुरुशोभा' का कवि समकालीन है, अतः उसके द्वारा किए गए घटना-चित्रण विशेष ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। 'गुरुशोभा' ही सर्वप्रथम जीवन चरित माना जाता है, इसलिये परवर्ती इतिहासकारों के लिये बहुत बड़ी सहायता सिद्ध हुआ है। कवि सेनापति ने युद्धों के बड़े सच्चे और अनूठे वर्णन किये हैं, परन्तु वह गुरु जी की पराजयों, तथा पंथिक यातनाओं का चित्रण स्वस्थ मन से नहीं कर सका। उसकी गुरु जी के प्रति श्रद्धा और भक्ति-भावना ऐसा करने में कवि-मार्ग की बाधक बनी है। तथापि कवि ने बाद के कुछ सिक्ख इतिहासकारों की तरह अतिशयोक्ति का आश्रय नहीं लिया। जहां घटना उसके मिजाज़ के विरुद्ध हुई, जहां उसके विश्वास को ठेस लगी, वहां का वर्णन बीच में ही छोड़ वह गुरु जी का जयकारा करता हुआ आगे बढ़ गया। यों इतिहास मानता है कि आनन्दपुर के युद्ध में, आनन्दगढ़ के घेरे तथा चमकौर के युद्धों में गुरु जी को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी परन्तु सेनापति ने ऐसे स्थलों पर खालसा-वीरों के अपूर्व शौर्य की चर्चा मात्र करते हुए अगली घटना का स्पर्श करना अधिक अनुकूल समझा है। इस अपूर्णता के कारण 'गुरु-शोभा' का ऐतिहासिक महत्त्व कुछ घट गया है।

गुरु शोभा का वर्ण्य विषय—(यशोगान) जैसा कि संकेत किया जा चुका है, "गुरु-शोभा" रासो परम्परा का एक मध्यकालीन काव्य है। अतः वर्ण्य-विषय में प्राथमिकता गुरुजी के यशोगान को ही दी गई है। सेनापति कोरी प्रशंसा में विश्वास नहीं रखता, न ही उस ने अपने चरित्र-नायक की यशकथा में किसी प्रकार की अत्युक्ति का सहारा लिया है। वह गुरु जी का भक्त है, इसीलिये श्रद्धापात्र के यशोगान में उसकी वाणी में दैन्य, प्रेम और सद्भावना व्यक्त होती है, अतः "गुरु शोभा" को अन्य रासो काव्यों की भान्ति चाटुकारिता नहीं कहा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने तो अपने शत्रुओं की वीरता के चित्रण भी सहृदयता से किये हैं-- यथा --

सानी आजमशाह कोअवर नहीं सुलतान।
लोह लाज जिन रण बिखै ऐसी करी निदान। १३:६८७

कवि ने सर्वाश्रय त्याग गुरु की शरण ली है, इसमें श्रद्धा और दैण्य का स्वर द्रष्टव्य है --

काहू की माता-पिता सुत है अर काहू के भ्रात महाबलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन काहू के गेह विराजत नारी।
काहू के धाम महा-निध राजत आपस में करि हैं हित भारी।
होहु दयाल दया करिकै प्रभगोविंदसिंह मुहि टेक तिहारी।४५:८१४

गुरु जी परम-वीर हैं, युद्ध में उतरते हैं तो विजय उनका वरण करती है। कवि इस तथ्य को बड़ी सामान्य शब्दावली में प्रस्तुत करता है, जिसमें प्रशंसा न होकर सत्य वस्तु-स्थिति का स्वर गुंजरित होता प्रतीत होता है।

जीत संग्राम आनंद मंगल भयो आन गोविंद गुण सबन गाये।
धंनि हो धंनि प्रभ नाम तुमरो लोउ दुसट को जीतु डंका बजाये।
जीत अजीत अभीत जोधा बड़े तोहि इक दिसट सबै धाये।
जैकार त्रह लोक चौदह भवन जीत कै सिंध गोविंद आये। ४८-८८

युद्ध भूमि पर गुरु के शौर्य की कीर्ति पताका पहराता हुआ कवि गा उठता है--

दूतन (द्वैतन) के दल अति विकट निकटि पहुंचे आन।
तब तुफंग करते तजी गहि लीने गुर बान।
धनक संभार ललकार ताहि समे काल के रूप बाण परहारे।
अनक जोधा हने, अनक, होइ अनमने, अनक तज खेत खेतं सिधारे।
अनक लौटे परैं, अनक भाजे धरैं, अनक डर बसत्र अर ससत्र डारे।
हुती इक बार उजार कद की परी, भाजिकै खान तामैं पधारे।

लेखक ने गुरु गोविंद सिंह की यशकथा को पराकाष्ठा तक ले जाने हेतु धर्म की ग्लानि होने पर प्रभु द्वारा भेजी ऐसी महानात्मा के रूप में चित्रित किया है जो ब्रह्म की विशिष्ट शक्तियों से मंडित होकर भू-भार हल्का करने आया करती है। गुरु गोविन्द सिंह के रूप में वह महानात्मा कलियुग में एक-मात्र सहारा बन कर आई है।

कल में करनहार निरंकार कलाधार जगत के उधारबे गोबिंद सिंघ आयो है।
असुर सिंघारने को, दरजन के मारबे को,
संकत निवारब को खालसा बनायो है।
निंदक की निंद दई, सिख दई सिखन की,
ताके महातम ते रैन दिवस धिआयो है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खालसे के सिखन की निंदक जो निंद करै,
जानि बूझि नरक परै, ऐसा बतायो है ।
१४:१३०

तू सच्चा करतार है, तेरा अंत न पारा।
प्रितपालक संसार को सचु सिरजनहारा ।
जिन तू सिमरिउ अंत बार तिस पार
उतारा ।
रच रचना कलि धारिया बहु बिधि
बिस्तारा ।
जी । लीला लखी न जाइ किछु तू करने
हारा ।६८:१८४

गुरु जीवन की घटनाएं—गुरु शोभा मुख्यतः ऐतिसाहक महत्त्व की रचना है इसी लिये गुरु जीवन की अनेक अनूठी और कौतुक-पूर्ण घटनाओं को इसमें स्थान दिया गया है । युद्धों के वर्णनों के अतिरिक्त कवि सेनापति ने गुरु जीवन में लड़ने भिड़ने की प्रवृत्ति को मात्र क्रीड़ा रूप में प्रस्तुत किया है । गुरु जी को युद्ध करने में आनन्द मिलता है, वह युद्ध में ऐसे प्रवेश करते हैं, जैसे शलभ ज्योति में प्रवेश करते हुए शरीर की सुध-बुध खो देता है ।

रण धसि कै इम लोह की कीउ न कीउ
तिह मोह महा मन को
जिम सारंग माहि पतंग परै न डरै करि
लोभ क छ तनको । १७:५८

गुरु जी के अनेक कौतुक भी सेनापति ने 'गुरु शोभा' में वर्णित किए हैं । खालसा सेना की आवश्यकताओं की पूर्ति उन पहाड़ी राजाओं को लूटने से होती थी, जो गुरु-दरबार में भेंट नहीं लाते थे । इस कौतुक को सेनापति वर्णन करता है—

तबै खालसा ऐसी करै, हुइ असवार
गावन पै चरै ।
जो आगे तै मिलने आवै, बसत रहै कछु
भेंट चढ़ावै ।
करै विलंभ भेंट नहीं देई, ताको लूट
खालसा लेई ।६:४११

वृन्दावन में कुत्तों, बंदरों आदि को मिठाई डाल कर परस्पर लड़ने का कौतुक—

आप आन बैठे तह अरु मिस्टान मंगाई ।
राख दिओ मैदान में बंचर भूचर खाई ।
आपस में लर लर मरत किलकत अति
खुनसाई । कौतक तिनके अनिक बिधि
देखि प्रभु बिगसाई । १३।७०५

हस्तियुद्ध—

थानन ते छटकै दोऊ कुंचर तौर जंजीरन
सामुहे आए ।
सूड से सूड् मिलाई दई पग सो पग जोर
करै खुनसाए ।
रीझ परी बिगसिउ करता तिनके सिरदारन
दाम दिवाए ।
साहन साह प्रभु हमरो तिह बैठ झरोखे
गहदं लराए ।

गुरु गोविन्द सिह की शाह आगरा से मुलाकात उन के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना है । सेनापति ने गुरु जी के मुलाकात समय के रूप का मन-मोहक चित्रण किया है । शाह ने प्रभावित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो उन्हें खिलग्रत ग्रता की; उस समय के वातावरण एवं गुरु-मर्यादा का वर्णन किया है --

चढ़ी कमान ससत्र सब सारे ।
कलगी छब है अपर अपारे ।
लटकेत चलत तरा चलि आइ ।
साह पास बैठ इस जाइ ।३२:७२४
साह आप तिह ओर निहारा ।
दरसन देख भया मतवारा ।
तन मन धन ते अधिक बिकाना ।
कंवल देख जो भंवर लुभाना ।३३:७२५
कलगी और धुगधुगी आनी ।
खिलअत एक साह मनमानी ।
साह प्रभु कों भेंट चढ़ाई ।
सुखी करो तुमसो बन आई ।३५:७२७

इतिहास-प्रसिद्ध तथ्य है कि किसी पठान ने विश्वासघात कर गुरु जी की हत्या की थी । लेकिन मृत्यु के पश्चात गुरु-सिक्खों में एक विचित्र प्रतिक्रिया का संकेत गुरु शोभा में मिलता है ।

मिलिकै सब सिंधुन ताहि समै इह भांति बिचार कीउ तबही
संसकार करौं निस ही के समै निकसे नहीं भान कहिउ सबही

गुरु जी के निकट रहने वालों ने सूर्योदय से पूर्व उनका दाह-सँस्कार करना चाहा । अन्य सिक्ख सँगतों को अंतिम दर्शन तक नहीं करने दिये । इस निर्णय से निश्चय ही उस समय गुरु दरबार में चल रहे किसी अवांछित षड़यन्त्र का भान होता है । अतः सम्भव है कि गुरु जी की बढ़ती हुई कीर्ति से ईर्ष्या कर, मूल में उन्हीं लोगों ने विश्वासघात किया हो ।

"गुरु-शोभा" में दी गई गुरु जी की मृत्यु तिथि इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है--

संमत् सत्रह से भए पैंसठ बरख प्रमाण,
कातक सुदी भई पंचमी निसकारन करि जान ।३७:८०६।

खालसा-निर्माण और खालसा - स्तुति--पाउँटा साहिब से आनन्दपुर आने पर वैशाखी-पर्व के दिन गुरु जी ने अपनी सेना को एक निश्चित रूप देने के लिये सब साथियों को, जो निश्चय ही सद्-भावना एवं श्रद्धा के कारण गुरु जी के साथी थे, भाड़े के टट्टू नहीं, विशेष प्रसाद छकवा कर समता के एकसूत्र में बांधने का अपूर्व प्रयास किया । जिन लोगों को उस समय की गुरु जी की शर्तें स्वीकार नहीं थीं वे खालसा-पंथ के सदस्य नहीं बन सके । उन्होंने बाल कटवाना एवं हुक्का पीना छोड़ना मंजूर नहीं किया, इसलिये उन्हें सिक्ख संगतों से अलग कर दिया गया ।

गोबिंद सिंघ करी खुशी,
संगति करी निहाल ।
कीउ प्रगट तब खालसा,
चुकिउ सकल जंजाल ४:१२०

ऐसा करने से दो बातें हुईं--एक तो सिक्खों को नशे के विरुद्ध प्रेरित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, दूसरे सैनिक [illegible] का आदेश दिया । यहां तक कि हिन्दुओं में माता पिता आदि की मृत्यु पर सिर मुंडवाने का जो रिवाज था, उसे भी त्याग दिया गया ।

हुक्का त्यागे हरि गुण गावै, इछा भोजन हरि रसु पावै ।
भदर (बालकाटना) त्याग करो रे भाई,
तब सिखन यह बात सुनाई ।
मात-पिता मरे जे कोई, तऊ भी कहत न भदर होई ।
माता-पिता गोबिंद हमारा, ए संसारी झूठ पसारा ।२२।१३८

खालसा-निर्माण के समय मसँद-पद्धति का भी अंत कर दिया गया । गुरु गोविंदसिंह द्वारा किया गया यह बहुत बड़ा समाज-सुधार था । वास्तव में खालसा निर्माण से पूर्व गुरु के लिये भेंट आदि इकट्ठी करने के लिये स्थान-स्थान पर प्रतिनिधि नियुक्त किए रहते थे । यही मसंद पद्धति कहलाती थी । परन्तु गुरु के वे प्रतिनिधि प्रायः बेईमान सिद्ध होते थे और संगृहीत भेंट का बड़ा भाग स्वयं हड़प जाते थे । अतः गुरु जी ने खालसा-जन्म के समय इस पद्धति का अंत कर दिया और सिक्ख की कमाई का दसवां भाग भेंट रूप लेने का तरीका आरम्भ किया । जो सिक्ख हर मास गुरु जी को नहीं मिल पाते थे, उन्हें वह रकम स्वयं अपने पास जमा रखने को कहा गया—ताकि जब [illegible] से भेंट चढ़ा सके ।

मनंत, गोलक और दसबंध, धरि में राखो तजे मसंद ।
भेंट कार सतिगुरु की होई, जाइ हजूरि चड़ावै सोई ।

सेनापति ने खालसा-स्तुति को भी पर्याप्त स्थान दिया है । उसका कथन है कि गुरु जी का वास्तविक रूप ही खालसा था । सम्भवतः दरबार में कभी कोई ऐसा प्रश्न उठा हो कि गुरु गोविंद का सत्यरूप क्या है, तब उन्होंने यथार्थता इन शब्दों में प्रकट की —

ताह समै गुरु बैन सुनायो ।
खालस अपनो रूप बतायो ।
खालस ही सों है मम कामा ।
बखस किउ खालस को जाया ।
खालस मेरो रूप हो है खालस के पास ।
आदि अंत ही होत है खालस में प्रगास ।

गुरु जी के इस खालस रूप को जिन्होंने स्वीकार किया, वे खालसा-पंथ के अनुयायी हुए । उनका कीर्तिगान करते हुए कवि ने उन्हें 'भरम-भेख' से इतर माना है ।

खालस खास कहावै सोई ।
जाके हिरदे भरम न होइ ।४२।८११
भरम भेख ते रहे निआरा ।
सो खालस सतिगुरु हमारा ।
सतिगुरु हमारा, अपरअपारा ।
सबद बिचारा, अजर जरा ।४३:८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक दृष्टिकोण—— गुरु जी के ज्योति-जोत समा जाने के बाद सिक्ख-संगतें योग्य सामाजिक और आध्यात्मिक नेतृत्व से अकस्मात वंचित हो गईं। उन्हें ऐसे पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता अनुभव होने लगी, जो उन्हें सुमार्ग सुझा सके और तत्कालीन अफरा-तफरी में उनकी डगमगाती नौका की पतवार बन सके। परन्तु गुरु जी की अनुपस्थिति में ऐसा होना सम्भव न था, इसलिये, कवि के श्रद्धालु मन में जन सामान्य के अन्धकार को हरने की उत्सुकता जगी। उसने गुरु जी के देह छोड़ने पर उन्हें शब्द रूप में व्यापक हो जाना स्वीकार किया था, अतः सब के लिये इस सूक्ष्म व्यापकता की शाब्दिक अभिव्यक्ति कवि ने इस प्रकार की है——

फूलन में जिम बास बसे,
बसि है हरिजी इम ही घटि माही।
दीपक में बत्तीया जिम है,
तिमही जगमैं जगदीसरू आही।
भान प्रगास अकास करै,
निरखो जलमें तिहकी परछाही।
गोरस में घृत जान इमें प्रतिमा,
प्रभु को सबही घटि माहि ।६:८४६

ऐसे सूक्ष्म और निराकार तत्त्व की खोज केवल विश्वास, श्रद्धा, उद्भावना और उसके नाम-जाप से ही सम्भव है। 'ब्रह्म राम ते नाम बड़' वाले आधार पर सेनापति ने सिक्ख संगतों को गुरु के नाम में ध्यान लगाने की प्रेरणा दी। सेनापति की मान्यता है कि नाम-जाप के बिना सुखोपलब्धि सम्भव नहीं और यही एक ऐसा विषय है जो मन ही हउमै (अहंकार) का नाश कर जीवात्मा को उक्त सूक्ष्म तत्व का ज्ञान करवाता है।

ताहि बिना सुख नाहि,
कहु समझो चित्त में मन मूढ़ सबेरे
एक ही नाम बिना तन छार,
बिकार सबै कछु काजि न तेरे ।२३:८६३

इसलिये——

करि निहचै इक नाम सो,
अवर न मन मै आन।
लाग रहै धुनि प्रेम की चरण,
कंवल सो धिआन ।११:८५१

अतः संसार के कर्मकाण्ड, तीर्थ-व्रत का त्याग कर जीवात्मा को मात्र गोबिंद नाम का सहारा लेना चाहिए। झूठे साधु संतों, पाखण्डियों के चक्र में पड़ने का भी कोई लाभ नहीं, रिद्धि सिद्धियों की खोज भी अवांछित है। सेनापति कहता है——

कोटि उपाव बीचार केहु करो,
पार जिहते परो बात अहुरे
अनिक तीरथ करो जाइ कासी मरउ,
चढ़ो केदार नहि पाप पहुरे।
अनिक तप साध असाध जानिउ नहीं,
होत है और की और अहुरे
टेर है संत बिअंत महिमा महा,
नाम गोबिंद गोबिंद कहुरे ।५६:८२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में सिक्ख-दर्शन नाम की कोई वस्तु उपलब्ध नहीं । पंजाबी सँतों ने एक व्यावहारिक जीवन-दृष्टि प्रदान की थी, जिसका स्पष्ट रूप आदि-ग्रंथ में देखने को मिलता है । तथापि पूर्ववर्ती विचारकों के विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रभाव गुरु सिद्धान्तों पर पड़ना स्वाभाविक ही था । यह इसी का परिणाम था कि गुरु वाणी में प्रायः दार्शनिक-तत्व दृष्टिगत होते हैं, परन्तु कोई वैज्ञानिक और विश्लेषण-युक्त सिद्धान्त उपलब्ध नहीं है ।

गुरुओं की विचार-धारा पर भेदाभेदी सिद्धान्तों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है । गुरु नानक की वाणी हो या गुरु गोबिन्द की अकाल-उस्तत, सब में यही तथ्य द्रष्टव्य है । गुरुशोभा के कवि ने गुरु जी की शरण में रह कर उनकी विचार-धारा का न केवल परिचय ही प्राप्त किया है, बल्कि उक्त विचार-धारा के प्रति श्रद्धा भी संचित की है । वह लिखता है–

एकै रूप, सुन्दर अनूप, दिसंटत एक, लीला अनेक ।

सिक्ख गुरुओं का दूसरा मुख्य दृष्टि-बिंदु है––गुरु और हम में अभेद । गुरु वाणी में गुरु का रूप पुरातन भारतीय अवतारवादी चश्मे से देखा गया है । भाई गुरुदास की वारों में गुरु नानक अवतार का विवरण श्रीमद्भगवद्गीता के "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं" से बिल्कुल मिलता जुलता है । इस तथ्य को कवियों प्रकट करता है––

गुरु गोबिंद, गोबिंद गुरुकरनहार करतार
जगत उधारन आइउ, जानहु सब संसार ।

युद्ध-वर्णन––प्रस्तुत ग्रथ में अधिकतर गुरु-युद्धों का ही वर्णन है । अतः वर्ण्य विषय का एक बहुत बड़ा भाग युद्ध चित्रण में ही व्यय किया गया है । रासो-काव्यों में आवश्यकता पड़ने पर हमारे प्राचीन कवि कभी-कभी कल्पित-युद्धों पर भी लेखनी चलाते रहे हैं, परन्तु गुरु जी ने तो अपने जीवन में पर्याप्त संख्या में युद्ध लड़े थे, अतः उनके जीवन-चरित में युद्ध चित्रण यथार्थता का ही वेष धारण किये हुए हैं । इन युद्धों को चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है ।(१)पहाड़ी राजाओं से युद्ध, (२) मुगल सेना से युद्ध, (३) सुलतानी विरोधियों से युद्ध और (४) लूटमार ।

इन युद्धों में जहां-जहां गुरु जी के घिरने और वीरतापूर्वक घेरा तोड़ने की चर्चा की गई है, वे स्थल विशेष अनूठे बन गये हैं । आनन्दपुर में विभिन्न सहायकों के सहयोग से गुरु को घेरा गया था । कवि वर्णन करता है ––

लीए संग समानन और पठानन कोप
चड़िउ सिरहंद को सूबा ।
तिउ उत ते कैहलूर को राव चड़िउ लीए
संग महादल दूजा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ही गूजर ग्रसवार ग्राए, तुर्कन बिह
वारने पारे ।
यों उमड़े चहू ग्रोर ग्रटा माने घेरत भान को
ग्रान घटा है ।

ग्रौर ऐसे घेरों को तोड़ने के लिये वीर-रस पूर्ण बड़े ग्रनूठे संदर्भ 'गुरु शोभा' में उपलब्ध हैं ।

भिरै बीर बीरं, परो भार भीरं,
बगे बाण तीरम, ग्रधीरं बिदारे ।३२।७३
बजै सार सारं, झड़े चनिगिग्रारं,
कड़के कमाणम् ना बाणम् समारे ।३३।७४
छुटैं कोप तोपं, कई सूर सोखं,
मिले ताहि मोखं, सु कोखं उजारे ।३४।७५
सोई काम ग्रायो, तिनै, सूर धायो,
सुरगे सिधायं, किए लोह भारे ।३५।७६

चमकौर के ग्रन्तिम घेरे में गुरु पुत्रों ने सर्वाधिक वीरता-प्रदर्शन किया । ग्रजीतसिंह तथा जुझार ने शत्रु पर भयंकर चोटें पहुंचाई : उस समय का वीर रस चित्रण 'गुरु' शोभा की ग्रद्वितीय देन है । सवैयों में कवि भूषण के द्वारा प्रस्तुत शिवाजी का विवरण एवं उनके युद्धों का दिग्दर्शन ग्रति स्फूर्तिदायक काव्यांश माना जाता है । यहां सेनापति के सवैये भूषण की स्मृति दिलाते हैं । जोरावरसिंह युद्ध में उतरे हैं —

खैचत खड़ग जद मारत सड़क गिर परत,
तड़क ग्रसवार ग्रागे ताही के
गिरत बिहाल बिकराल सुधि नहीं
कछु लोटत परत जो कपोत-सुत ताही के
ऐसे मारे ग्रसवार एक एक झार झार!
मानो कि बग बियार पति बिरखाहो के
कौन है कहै बीचारू नाही कछु पारावार,
जुरावरसिंघ दल मारे राई राई के।६४।५३६

वीर-रस के ग्रनुभावों का चित्रण भी सुन्दर हुग्रा । तलवार पकड़ना, बरछी उठा कर चलाना, शत्रु पर वार करना ग्रादि चेष्टाग्रों का साहसपूर्ण वर्णन सेनापति के काव्य में उपलब्ध है ।

जैमल कोप चड़िउ रण मै कर में बरछी
तिरछी गहिलीनी ।
फौज में धाइ परिउ खुनसाइकै केतन के
उर ग्रन्तर दीनी ।

इसके साथ ही युद्ध भूमि पर कटे पड़े शवों के दृश्य, जिसमें परस्परित भूत, बैताल, जोगिनी, डाकिनी ग्रादि के ग्रागमन की बातें भी कही गई हैं, गिद्धों, सियारों के मंडराने से भयानक ग्रौर वीभत्स के ग्राकर्षक उदाहरण बन पड़े हैं ।

नचत है भूत बैताल भैरो तहा गिध मंडलात
रण में सुहाहे ।
ग्रानिकै जोगनी पत्र पूरण भरिउ ग्रचवके
उदर तिनके ग्रघाहे ।

एक ग्रौर स्थान पर स्वयं जोगिनियां ग्रजीतसिंह से ग्रपने पात्र रक्त से भर देने की प्रार्थना करती हैं । यद्यपि ऐसे पद परम्परा के सूत्र में बंधे कहे जा सकते हैं, तथापि युद्ध -चित्रण में ग्रातंक ग्रौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयावह वातावरण बनाने में इनका विशेष महत्त्व है ।

"गुरु शोभा" में युद्ध-चित्रण के तीन अन्य रूप उपलब्ध हैं । युद्धों में प्रायः तीरों की बौछार को वर्षा की बौछार से उपमाएं दी जाती रही हैं । प्रस्तुत ग्रंथकर्ता ने भी इसी आधार पर वर्षा रूप में युद्ध वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त सेनापति के काव्य में होली एवं रासलीला के रूप में भी युद्ध वर्णन उपलब्ध है ।

वर्षा रूप में---

स्याम घटा उमडै चहुं ओर ते यो उमडै
दलदूत के आही ।
दामन जो दमकै तरवार लिये करवार
फिरावत ताही ।
सूर की सुआबी तेधार परै धन मै मानो
तास कमान की निआई ।
छूटत तीर मनो रण मधि जु सावन की
बरखा बरखाही ।२६।३६३

पद में उत्प्रेक्षाओं, उपमाओं और उदाहरण की छटा भी दर्शनीय है ।

होली रूप में---

खेलत सूर महा रण में बन मै मानो सियाम
जी फाग मचाइउ ।
दउरत सूर लिये कर मै पिचकारन जो सु
बंदूक चलाइउ ।
श्रोणत धारि चली तिनके तनते मानहु
लाल गुलाल लगाइउ ।
बागे बने तिनके तन लाल मनो रंगरेज रंग
रंग लिआइउ ।३०।३६६

रास रूप में---

जोधन जुध रचिउ रण में बन में मानो
सिआमजी रास मचाए ।
बाजे बजे रण मै जु वेई अर नाचत गिध
सरोज सुनाए ।
झूमत सूर महा रण में मानो देखतें रास
उनींदे-से आए ।
लाल निहाली की सेज कीए घर सोबत
सूर पलंग बिछाए ।३२।३६८

वीरों के झूमने से सम्बन्धित रास-पद में उनींदी आंखों के कारण धरती के पलंग पर शीघ्र सो जाने की कल्पना बड़ी अनूठी है ।

युद्ध का एक और रूपक काव्यात्मक-दृष्टि से बड़ा मोहक है । युद्ध देवता की पूजा हेतु नर-मुंड रूपी पुष्प मालाओं की आवश्यकता है । इसलिये युद्ध की सफों को चीरता हुआ योद्धा पवन-वेग की तरह नर-मुंड गिरा रहा है । बरछी फूलों को पिरोने के लिये माली की शूचिका का कार्य करती है ।

२---गूंदबे को हार झार झार डारी घनसार
पौन परवाह बह्यो ऐसो जाइयति है ।
ऐसो ही चल्यो जब बरछी फिरावे हाथ
लेत है परोइ मानो फूल पोईअत है
।५१।५३१

ध्यान रहे कि 'गुरु-शोभा' में दिए गए युद्ध-विवरण अधिकतर अपूर्ण हैं । युद्ध-वर्णन में जहां कवि को उसकी गहराइयों तक जाकर उसके महत्त्व प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं परिणाम को देखना वांछित होता है, वहां सेनापति केवल सामान्य बात कह कर ही अध्याय समाप्त कर देता है। इसका सबसे बड़ा कारण तो सम्भवतः कवि की वातावरण से अत्यन्त घनिष्ठता है। वह युग के इतिहास का निरपेक्ष मूल्यांकन नहीं कर पाया। उसके लिये गुरु गोविंद सिंह के रणभूमि में दिखाए जौहर ही सब कुछ हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से युग की सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों तथा युद्ध के कारणों के बिना युद्ध-चित्रण प्राण विहीन शरीर मात्र रह जाता है। 'गुरु-शोभा' का यह अभाव उसके ऐतिहासिक महत्त्व को पर्याप्त मात्रा में घटा देता है।

भक्ति भावना

कहा जा चुका है कि कवि सेनापति गुरु-भक्त विद्वान् थे। उन्होंने जहां उपर्युक्त बातों का सहृदयतापूर्ण वर्णन किया है, वहां अपने चित्त की श्रद्धा तथा गुरुमहिमा, दोनों का सुयोग्य प्रकटीकरण भी उन्होंने किया है। हिन्दू संस्कारों द्वारा प्रभावित होने के कारण कवि ने गुरु महिमा की अभिव्यक्ति में पौराणिक उदाहरण भी उठाए हैं। गणिका और गज-ग्राह की कथाओं का आश्रय लेकर प्रभु की कृपा का निरूपण किया है। ऐसे ही कुछ तथ्य कवि के अन्तर में विश्वास के जनक हैं और वह शुद्ध भक्ति-भाव से आदेश पालन की महत्ता स्वीकार कर लेता है —

वचन सुनै करतार का, जो रिदै बसावै।
मन इछे फल पावए जो कार कमावै।
मूरख कबै न चेतई मन मैं गरबावै।
काग कपूर तिआग के दुरगंध लुभावै।

भाषा, छन्द, अलंकार आदि

'गुरु-शोभा' की भाषा सामान्यतः ब्रज-भाषा है, परन्तु गुरु सेवा में रहने से वातावरण के प्रभाव के कारण कवि की अभिव्यक्तियों में प्रादेशिक शब्दों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध है। ह्रस्व 'इ' और ह्रस्व 'उ' की अनावश्यक मात्राएँ गुरु वाणी परम्परा के अनुसार दी गई हैं। अर्धाक्षरों का पूर्णाक्षर हो जाना तो मामूली बात समझी जाना चाहिए। मज़े की बात यह है कि जहां ब्रज भाषानुसार देवनागरी या गुरुमुखी लिपियों में पूर्णाक्षर की अपेक्षा रहती है, वहां कवि ने अर्धाक्षर या विशेष कर 'र' वर्ण का प्रयोग अन्याक्षरों के पांव में किया है। यथा-सरब के स्थान स्रब, सरणी के स्थान स्रणी, गरबकारी की जगह ग्रबकारी आदि।

पंजाबी बोली के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, परन्तु ये शब्द ऐसे हैं जो बरबस ब्रज-काव्य में घुस आए कहे जा सकते हैं। पंजाबी बोली के वातावरण में रहने वाला कोई भी कवि अनचाहे उनका आकस्मिक प्रयोग कर सकता है, यथा—'हती इक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार उजार कद की परी' या 'ऐडे ऐडे वीर धाय' वाक्यों में 'कद' और 'ऐडे-ऐडे' शब्दों का आ जाना वातावरणीय प्रभाव ही कहा जायगा, भाषा का विशिष्ट प्रयोग नहीं । युद्ध वर्णनों में ध्वनि और टंकार का जादू जगाने के लिये कवि ने कतिपय प्रयोगों में शब्द के अन्तिम अक्षर के सँग अनुनासिक भी लगाया है। 'उपाय', 'बपाय' आदि प्रकार के शब्दों की लम्बी लड़ियां इसी बात का प्रमाण हैं ।

'गुरु-शोभा' में कुल १३८ छंद हैं । इनमें प्रमुखता कवित्तों, सवैयों, छप्पयों और दोहों को दी गई है । युद्ध चित्रण में ध्वनि-प्रयोगार्थ भुजंग-प्रयात का आश्रय भी लिया है । इनके अतिरिक्त सोरठा, चौपाई, अड़िल्ल, त्रिभंगी आदि छन्दों में लिखे पद भी प्राप्त हैं। प्रत्येक अध्याय का आरम्भ 'दोहा' से किया गया है और बीच में कवित्त -सवैयों की ही प्रधानता है।

काव्य में कवि ने कहीं प्रयत्नपूर्ण ढंग से अलंकार बनाने की अपेक्षा नहीं समझी । सामान्य लेखन-प्रवाह में यदि कहीं तुलना, सादृश्यता आदि की आवश्यकता पड़ी है, वहां अपने आप सुन्दर अलंकारों ने जन्म ले लिया है । अधिकतर उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अनन्वय की छटा ही दिखाई पड़ती है। अन्य अलंकारों में रूपक, उदाहरण, मालोपमा, अनुप्रास आदि के नाम लिये जा सकते हैं । बानगी रूप में कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं --

१--भजे खान ताही समै मन मैअति डर पाई ।
म्रिग छउना जिउ सिंध ते भाजे पंखलगाई । (दृष्टांत)

२--जैसा नगीना अंगूठी में होत सु,
होत है चंद जु तारिअन माही ।
जो घन में बिजरी चमकै,
दमकै तहा खालसा फौजन माही ।
सिंध इकै अरु लछ पसूसब,
भाजत देखत ही बन माही ।
ऐसे मनो तहा खालसा सिंध है,
और नहीं समता जग माही ।
(मालोपमा, उत्प्रेक्षा)

३--भाजी फौज कैहलूर की
हुई करि, सकल अधीर,
मानो गुणते छटक के,
भजिउ जाति है तीर । (उत्प्रेक्षा)

४--चहु ओर सभै दल खरे,
बीच सिंध गोबिंद ।
ताहि सभै छवि यौ कहौ,
जिउ तारन में चंदा (उदाहरण)

५--करत अनंदुकेल प्रभ घनी ।
प्रभ की उपमा प्रभु को बनी ।
(अनन्वय)

६--गूंदबे को हार झार झार डारी घनसार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौन परवाह बह्यो एसो जाइयत है।

(रूपक)

७--कई भरम भूल, भरम मै भुलाने

(अनुप्रास)

इसी प्रकार अनेकानेक अलंकारों से स्वसुसज्जित, वीर, भयानक, रौद्र तथा शान्त रसों से मंडित, विभिन्न छन्दों में रचित गुरु गोविन्द सिंह इतिहास का पूर्वज और गुरु मुखी लिपि में लिखा व्रजभाषा का यह 'गुरु-शोभा' नामक प्रबंध अपने गुणों और दोषों सहित एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इतिहास और काव्य, दोनों क्षेत्रों में मूल्यवान् है।

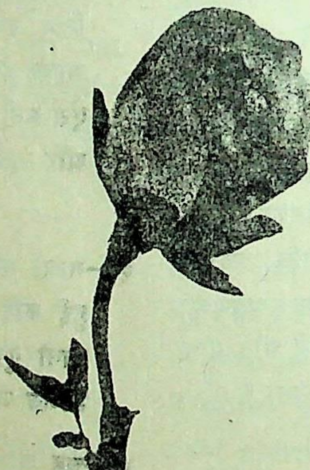

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब का मध्ययुगीन हिन्दी काव्य

प्रो० योगेन्द्र बख्शी

पंजाब प्रान्त की हिन्दी काव्य-परम्परा का मध्यकाल (सम्वत् १५००–१६२५) जिसे मिश्रित काल का अभिधान दिया जा सकता है वृहद हिन्दी साहित्य के तीन युगों की विषयवस्तु को समेटने का महत्त्व रखता है। इसमें आदि कालीन वीरगाथा की प्रवृत्ति है तो भक्ति काव्य विषयक एवं दैनिक प्रवृत्ति का भी समावेश है। इस काव्य का वैविध्य विषयगत भी है तथा रूपगत एवं शैलीगत भी। चार सौ पच्चीस वर्ष की इकाई का यह युग राजनैतिक दृष्टि से मुगलों के सुव्यवस्थित शासन की सुखशांति तथा उत्तरवर्ती मुग़ल शासकों के प्रान्त पतियों तथा बाह्य आक्रमणकारियों द्वारा पंजाब के हिन्दु सिखों पर अत्याचार के पश्चात् सिख मिसलों के उदय तथा उसके उपरान्त सिख राज्यों की स्थापना का समय है। धार्मिक दृष्टि से अखिल भारतीय भक्ति-आंदोलन, विशेष रूप से सन्त परम्परा से प्रभावित सिख पन्थ धीरे-धीरे भक्तों की टोली मात्र न रह कर सैनिक धर्म खालसा बना तथा गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के पश्चात् वही 'खालसा' मिसलों की स्थापना कर सिख राज्यों के निर्माण का कारण बना। धार्मिक क्षेत्र में मूलतः हिन्दु धर्म से ही यह शाखा उद्भूत हुई। इसी लिये निर्गुण मत के सिख धर्म में सनातन धर्म का अवतारवाद किसी न किसी प्रकार पोषण पाता रहा। इस्लाम धर्म का प्रभाव तत्कालीन सूफी काव्य में दृष्टिगत होता है। साहित्यिक दृष्टि से उस समय का हिन्दी साहित्य पंजाबी के साथ-साथ पनपने के कारण क़िस्सा काव्य तथा वार साहित्य आदि के प्रभाव ग्रहण करने के अतिरिक्त भाषा की दृष्टि से भी पंजाबी शब्दों को अपनाता दिखाई देता है। इस काव्य की विशिष्टता यह भी है कि इसका लेखन बहुधा गुरुमुखी लिपि में हुआ है, इसी कारण से यह काव्य वृहद हिन्दी साहित्य के विद्वानों की दृष्टि को आकर्षित करने में असफल रहा है। अतः इसका अधिकतर भाग अन्धकार के गर्त में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार पंजाब के 'मिश्रित काल' का हिन्दी साहित्य प्रमुखतः सिख-साहित्य है। 'पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक शोधात्मक ग्रंथ के लेखक श्री चन्द्र कान्त बाली इस समूचे युग को सिख संस्कृति का काल मानते हैं। इस युग की अधिक रचनाएं या तो सिख गुरुओं द्वारा रचित हैं या गुरु के भक्तों द्वारा अथवा गुरु-भक्तों के आश्रित कवियों द्वारा। अतः इस युग के साहित्य का प्रमुख स्वर भक्ति (विशेषतः निर्गुण परन्तु सगुण भी) वीरता तथा शृंगार है। श्री बाली ने इस युग के साहित्य को बारह वर्गों में विभक्त किया है परन्तु उनका आधार कोई एक न होकर कई हैं —यथा एक वर्ग का आधार साहित्यकारों की श्रेणी है। (दरबारी कवि) तो दूसरे का विषय (रीतिकाव्य, वीरकाव्य) तथा तीसरे का काव्य रूप (गीति काव्य) हमारे विचार से विषय के अनुसार इस युग के काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है:—

१. **भक्तिकाव्य** :—(क) **निर्गुण वाणी**—इसके अन्तर्गत गुरुवाणी (गुरु नानक, गुरु अर्जुन, गुरु तेग बहादुर, गुरु गोविन्द सिंह तथा गुरु ग्रंथ साहिब के अन्य कवियों की वाणी) उदासी सन्तों (साईंदास तथा सन्तरेण) सहजराम (सेवापंथी) गुलाबसिंह (निर्मल पंथी) तथा निश्चल दास एवं गरीबदास की वाणी के अतिरिक्त हरिया जी हरि जी आदि की कच्ची वाणी भी सम्मिलित है।

(ख) **सगुण**—इसके अन्तर्गत राम-काव्य में हृदयराम, गुरु गोविंद सिंह, गुलाब सिंह, सन्तोष सिंह, सोडी मेहरबान, कीरतसिंह, हरिया जी, रतनहरि, निहाल सिंह आदि आते हैं।

कृष्ण काव्य के अन्तर्गत गुरु गोविन्द सिंह, सन्त ईश्वर दास, फतै सिंह, साहिब सिंह मृगेन्द्र, केशवराम, जातिदास आदि का नाम प्रमुख हैं।

(ग) **प्रेम प्रबन्ध**—गुरदास गुणी, राजाराम दुग्गल, सभाचन्द सौंधी अलख दास, करग अलीशाह, गुपाल आदि।

२. **ऐतिहासिक पौराणिक, वीर काव्य**:——**वीरगाथा**—इसमें गुरु गोविंदसिंह (अपनी कथा) अणीराय (जंगनामा) केशवदास (जंगनामा) गणेशकवि (फतहनामा गुरु खालसा का) इत्यादि आते हैं;

वीर स्त्रोत—गुरुगोविन्द सिंह के बावन कवियों की मुक्तक रचनाएं जन्मसाखी एवं

सिख इतिहास—इनमें सन्तदास छिब्बर, सन्तोष सिंह, मनीसिंह, ज्ञानी ज्ञानसिंह, सरूप दास भल्ला इत्यादि के नाम प्रमुख हैं।

३. **रीति** :— **भक्ति मिश्रित शृंगार**—गुरुदास के कवित सवैये (नायिका भेद पर) रासमण्डल आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारहमासा--गुरु गोविंदसिंह, उमा दास, देवीदास, साहबसिंह मृगेन्द्र, केशवदास ।

लक्षण ग्रंथ--अमीरदास, हरिराम, अमृतराय, फतेराम, मुकुन्द, मैनकवि हरनाम, बसन्त सिंह ऋतुराज इत्यादि ।

लौकिक प्रेमाख्यान---चरितोपाख्यान (गुरु गोविन्द सिंह)

४. **अनुवाद** --महाभारत तथा अनेक संस्कृत फारसी ग्रथों के ।

पंजाब के हिन्दी काव्य विषयक इस मध्ययुगीन मानचित्र से विषय शैली वैविध्य के हमारे उपरोक्त कथन का समर्थन होता है । अब पंजाब के हिन्दी काव्य की इन प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में कुछ संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करना समीचीन होगा ।

पंजाब के साहित्य में सिख गुरुओं के रहते योगदान का संकेत हम ऊपर कर चुके हैं। इनकी वाणी का प्रमुख स्वर 'आदि ग्रथ' नामक विशाल काव्य संग्रह में प्राप्त होता है। इसका अभ्यास पंचम-नानक गुरु अर्जुनदेव ने किया था तथा उसको अन्तिम रूप दशम नानक गुरु गोविंदसिंह ने दिया था। इनको परब्रह्म (अकाल पुरुष) एवं आत्मा सम्बन्धी मान्यताओं का मूल स्त्रोत स्पष्टत: वैदिक साहित्य ही है। इनका प्रतिपादित मत मूलत: अद्वैतवाद ही है। इसमें सत्संगति और गुरु पर बल है तो कर्म सिद्धान्त पर आधृत जातिभेद इत्यादि का खण्डन भी पाया जाता है। देववाद पर उनका विश्वास नहीं परन्तु वाणी को लोक ग्राह्य बनाने के लिये उन्होंने पौराणिक देवताओं की कथाओं का पर्याप्त प्रयोग किया है। गुरु वाणी की अन्य विशिष्टता है आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में भी ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रख कर सामयिक एवं शाश्वत सत्य का समन्वय करना--

खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुसतानु डराइया
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगल चढ़ाइआ (आदिग्रंथ ३६०)

अधिकतर सिख गुरुबाणी से अभिप्राय केवल दश गुरुओं की वाणी से ही लेते हैं। इनमें गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन तथा गुरु तेगबहादुर की वाणी विशेष महत्त्वपूर्ण है । परन्तु आदिग्रंथ में गुरुओं के अतिरिक्त कबीर, रैदास, नामदेव, शेख फरीद आदि भक्तों तथा कुछ भाटों की वाणी संकलित है। सिख धर्म के प्रतिनिधि इस ग्रंथ में निर्गुण उपासना, भक्ति (नाम महिमा) तथा कर्मकाण्ड (अरदास, गुरु भक्ति, गुरु तीर्थ, गुरु वन्दना आदि) का समन्वय कर लिया गया । संगीत के विभिन्न रागों पर आधारित इस काव्य संग्रह का आध्यात्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के अतिरिक्त संगीतात्मक तथा काव्यात्मक महत्त्व भी अक्षुण्ण है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिख-धर्म के [illegible] आलोच्य काल में सिख धर्म से ही जन्म प्राप्त उदासी सम्प्रदाय, सेवापंथी सम्प्रदाय, निर्मला सम्प्रदाय आदि के संतों ने भी प्रचुर मात्रा में काव्य रचना की है। इनमें उदासी सम्प्रदाय के सन्तरेण (रचयिता मन-प्रबोध, नानक विजय, नानक प्रबोध, वचन संग्रह, उदासी बोध) की रचनाओं में वेदान्त और भक्ति का समन्वय मिलता है। धर्म के व्यावहारिक पक्ष का प्रतिपादन करने की प्रेरणा उन्हें आदि ग्रंथ से मिली है। इनके काव्य की एक विशेषता है खड़ी बोली मिश्रित ब्रज भाषा का प्रयोग जो सर्वसाधारण के लिये बहुत सुबोध रहा है—

तव खातर मैं सभिलाज तजो
तव खातर मानपमान सहारे
इम संतहिरेण कहै मन को पर तू कपटी
मन न समझा रे।

इसी प्रकार सेवापंथियों में सहजराम की असावरियां प्रमुखतः निर्गुण उपासना तथा धर्मोपदेश सम्बन्धी रचना है इसमें सहजराम तथा इस पंथ के अनेक कवियों तथा कबीर, नानक, तुलसी आदि प्रसिद्ध कवियों की रचनाएं हैं। नानक पंथ के 'खालसा' रूप में परिवर्तित होने से पहले का एक रूप निर्मला पन्थ के रूप में विकसित हुआ था। इस पन्थ के हिन्दी कवियों में गुलाबसिंह तथा ज्ञानी ज्ञानसिंह का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है। गुलाबसिंह के चार ग्रंथ प्रामाणिक माने गये हैं। [illegible] हैं, तथा एक मौलिक। इनकी भक्ति भावना में अवतारवाद प्रमुख हो उठा है।

सिख धर्म की इन शाखाओं के अतिरिक्त सन्तमत की परम्परा के भी कुछ चिन्ह उस समय के प्राप्त साहित्य में मिलते हैं। श्री बाली ने गुरु नानक के ही समकालीन साईंदास का विशेष उल्लेख किया है। साईंदास रामानन्द की शिष्य परम्परा में आते हैं। सगुण निर्गुण की उभय उपासना उनकी वाणी की विशेषता है। उनका 'ज्ञानरत्न' बाली जी के अनुसार 'अनोखा' ग्रंथ है क्योंकि उसकी ब्रजभाषा में मुलतानी का स्पर्श भी है। उनकी वाणी के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

१. दर्सन तै उपजै मन बुद्धि।
दर्सन तै तनि होवे सुद्धि
दर्सन तै मैल सनै ते जाई।
दर्सन चोटा बहुड़ न पाई।
दर्सन सिद्ध साध बैरागी।
दर्सन तें दुरमत उठ भागी।

२. जो कछु कीयौ सुहरि ही कीयौ।
जो सुषु दीयौ सुहरि ही दीयौ।
बिनु भगवान और को नाहीं।
गुरु मिलि समझि देष मनि माहीं।
बिनु रघुनाथ सूझत को नाहीं।
समृति वेद सभ भाषि सुनाहीं।

सन्त परम्परा में ही गरीबदास तथा निश्चलदास (दादू पंथी) की रचनाएं भी पंजाब के भक्ति काव्य को समृद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हैं। इनमें गरीबदास जी की रचनाओं का संग्रह 'हिसरबोध' है जिसमें आज सात हज़ार पद उपलब्ध हैं। प्रसिद्ध है "इन्होंने चौबीस हज़ार पदों की रचना की थी। निश्चलदास पंजाब में दादूपंथ के महान् भक्त हुए हैं। इनकी रचनाओं के नाम विचार सागर, वृत्ति प्रभाकर तथा मुक्ति प्रकाश हैं।"

सिखों की गुरुवाणी को सच्ची वाणी कहा गया है। गुरु गद्दी के प्रतिद्वन्द्वी अप्रमाणिक गुरुओं तथा उनके शिष्यों की वाणी को कच्ची वाणी का नाम दिया जाता है --

सति गुर बिना होर कच्ची है बाणी।
बाणी ते कच्ची सतिगुरु बाझहु होर
कच्ची वाणी।
कहंदे कच्चे सुणदे कच्चे कच्चीं आंख
बखाणी।

(आदिग्रंथ : रामकली महला ३)

साधारण विश्वास के अनुसार गुरुओं की प्रामाणिक वाणी आदिग्रंथ में संकलित है। सभी गुरुओं ने नानक नाम से रचना की है। 'गुरु मुखी लिपि में हिन्दी काव्य' नामक शोध प्रबन्ध के विद्वान् लेखक डा० हरिभजन सिंह का कहना है कि 'नानक नाम से सम्बन्धित कुछ वाणी स्पष्ट रूप से अप्रामाणिक गुरुओं अथवा उनके सेवकों की रचना है।' परन्तु उनका कहना है कि नानक नाम की कुछ वाणी के रचयिता का कोई विश्वसनीय संकेत नहीं। अतः केवल आदि ग्रथ में उसका न होना उसको नानकेतर व्यक्ति की रचना सिद्ध नहीं करता। इसके अतिरिक्त कुछ कवियों ने गुरुओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिये भी अपनी वाणी उन्हें समर्पित कर दी। यह सब कच्ची बाणी में सम्मिलित है। इस विषय में हरि जी तथा हरिया जी नामक दो कवियों का विशेष स्थान है।

हरि जी ने मीना गुरु मिहरबान जी से प्रोत्साहन पाकर सुखमनी सहस्र नाम तथा गोष्ठ मिहरबान (अधिकतर गद्य) ग्रंथों की रचना की है। इनमें भाव तथा कला पक्ष की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य है। इनमें रामभक्ति का सगुण रूप प्राप्त होता है तो निर्गुण भक्ति के पद भी देखे जा सकते हैं। इनकी भाषा पर पंजाबी का अधिक प्रभाव है यथा--

प्रभा के सिमरनि चित्र गुपतु में हाही।
हरि दरगाह सेवक हो जाही।
हरि प्रभा सिमरति संभु विष भावै।
प्रभ सिमरतु सचि समावै।

दूसरे लेखक हरिया जी का ग्रंथ मुख्यतः आदिग्रंथ का अनुकरणात्मक काव्य है। इस कच्ची वाणी का प्रमुख योगदान हिन्दू धर्म की सुदृढ़ एवं सर्वग्राही परम्परा --पौराणिकता, अवतारवाद को स्वर देने का है। इन्होंने पौराणिक अवतारों के अतिरिक्त गुरु नानक के जीवन के विषय में भी लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्गुण काव्य के अतिरिक्त सगुण काव्य की रचना में भी इस युग के कवियों की विशेष रुचि रही । डा० हरिभजन सिंह के शब्दों में "सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में सिक्ख धर्म निस्संकोच भाव से पौराणिकता को अपना रहा था । हरिया जी की रामायण और हरि जी का सुखमनी सहस्र नामा भी (जिसमें चौबीस अवतारों की कथायें हैं) सत्रहवीं शताब्दी की रचनाएं हैं ।" गुरु गोविन्द सिंह के बचित्र नाटक को उन्होंने 'नव-पुरा' की संज्ञा दी है ।

रामकाव्य को तुलसी ने मर्यादा के बन्धनों में कस दिया था । इसका कारण उनका दृष्टिकोण ही था जिसके द्वारा राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप का निर्माण हुआ था । पंजाब के रामकाव्य लेखकों ने भी राम के उस सर्व-स्वीकृत सिद्ध रूप को अपनाया । इनमें सर्वोच्च स्थान हृदय राम भल्ला का है जिन्होंने 'हनुमान नाटक' अथवा 'रामगीत' की रचना सम्वत् १६८० में की : हनुमान नाटक न तो सर्वथा मौलिक रचना है और न इसी नाम की संस्कृत रचना का अक्षरशः अनुवाद । कवि ने कथा योजना व अध्यायों का विभाजन चाहे संस्कृत रचना के अनुसार रखा है परन्तु निजी भक्ति-भावना अथवा रुचि के अनुसार कतिपय घटनाओं का त्याग भी कर दिया है । उधर विशेष रूप से मार्मिक स्थलों के वर्णन में समुचित विस्तार भी किया है । रामवन गमन के समय उन्होंने दशरथ कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण, सीता आदि सभी के मन की झांकी प्रस्तुत की है——

(दशरथ)

लीजिए समाज सब देशन को राज आज
हौं भिखारी भयौ अवराम भीख हौं लहौं
जो कहो तिहारे गांब भीख मांग मांग खाऊं
जो पै राम संग तो अनेक दुख मैं सहौं

हृदयराम का यह ग्रंथ अपना निजी ऐतिहासिक महत्त्व रखता है । इसे दशम ग्रंथ का अग्रणी कहा गया है क्योंकि विषयवस्तु, (रामकथा) दृष्टिकोण (सगुण भक्ति) काव्यरूप (प्रबन्ध) भाषा (परिनिष्ठित ब्रज) आदि की दृष्टि से दशम ग्रंथ लगभग इसी का अनुसरण करता लगता है । अन्त में कवि की भाव-व्यंजना का एक मनोवैज्ञानिक उदाहरण देना समीचीन होगा——

जानकी हाथ न लागति राम को हाथसों
हाथ मरोरत कैसे

गुरु गोविन्द सिंह के बचित्र नाटक में ८६४ छन्दों में रामावतार नामक महाकाव्य का भी समावेश है । गुरु जी के शब्दों में यह बीन कथा (संक्षिप्त) है अतः अत्यन्त लाघव तथा सघनता से कही गई है । परन्तु मार्मिक स्थलों (विशेषतः वनगमन तथा सीताहरण में रामविरह) का वर्णन तन्मयता से किया गया है । श्रवण कुमार की मृत्यु पर राजा दशरथ के मौन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्रु जो प्रभाव उत्पन्न करते हैं, वह प्रभाव कदाचित आत्मग्लानि पूर्ण प्रलाप कदापि न कर सकता ।

नृप दियो पान तिह पान जाय, ।
चकि रहे अंध तिह कर छुहाय ।।
कर कोप कह्यो तू आहि कोय ।
इम सुनत वचन नृप दियो रोय ।।

रामकाव्य की कृतियों के लेखकों में सोढी मिहरबान (आदि रामायण) साधु गुलाबसिंह (अध्यात्म रामायण) सन्तोष सिंह तथा कवि निहाल के ग्रंथ प्रामाणिक रूप में प्राप्त हैं। पंजाब के इस समस्त राम काव्य की भाषा ब्रज भी इसकी एक विशेषता है।

पंजाब के रामकाव्य की एक विशिष्ट कृति है कोरतसिंह की 'सतसैया रामायण' जहां समूचे हिन्दी साहित्य में तीन-चार सतसई ग्रंथ हैं वहां अकेले पंजाब में चार सतसैया ग्रंथ मिलते हैं और उनमें भी रामकाव्य पर जो कि समस्त हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है ।

कृष्ण भक्ति धारा ने ही वास्तव में ब्रज भाषा की माधुरी को समूचे देश में प्रसारित किया था। पंजाब के हिन्दी कवियों ने भी मन लगा कर कृष्ण काव्य की रचना की। कृष्ण काव्य के भी लीला-पक्ष, भक्ति पक्ष तथा पौराणिक तीनों पक्षों पर इन कवियों की दृष्टि गई। कहीं पर कृष्ण राधा की केलियां, कहीं राधा का अभिसार हेतु गमन, कहीं कृष्ण वियोग में वियोगिनी राधा को 'जारिबे' हेतु 'मेघ आत' हैं अथवा --

'गया गोपाल जबते बिदेश अली
तब ते बसन्त लैं मनोज फौज आयो है,

पटियाला राज्य के दरबारी कवि गंगाराम के ऊधव संवाद का एक अंश पंजाब के कृष्णकाव्य का एक अन्यतम उदाहरण है --

माखन के मिस प्रात जगैं उठ मात जसो दधि को मथरी ।
लकुटी मुरली अरु गुंजन माल गये तजि कै कमरी कथरी ।
इत पायन हेरत धेनु फिरैं उत डोलत कंचन को रथरी ।
सुन उधव ! हाथ लगी उनके कुबजा अब पारस की पथरी ।।

कृष्ण के पौराणिक रूप में उनके वीर योद्धा रूप का वर्णन भी पंजाब के कृष्ण काव्य में हुआ है । इस प्रकार के काव्यों में गुरु गोविन्द सिंह का कृष्णावतार महाकाव्य प्रगीत शैली की रचना है । इसमें कृष्ण के चरित्रगत वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाली पौराणिक तथा कल्पित घटनाओं का विस्तारपूर्ण वर्णन हुआ है ।

कृष्ण के गीता-उपदेशक, ज्ञानी तथा कर्मयोगी रूप की झांकियां भी हमारे कवियों में मिल जाती हैं । कृष्ण-काव्य के प्रमुख कवि हैं--सन्तईश्वरदास (ब्रजविलास सतसई) साहिब सिंह मृगेन्द्र (कृष्ण कौतुहल) फतेराम (गीतगोविन्द)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशवदास (बारामाहा श्री कृष्ण की) हृदय राम (सुदामा चरित्र) अमीरदास (श्री कृष्ण साहित्य सिन्धु)। एक उद्धरण 'ब्रज विलास सतसई' से —

बसहिं सदा मेरे हिये श्री राधा ब्रजचन्द।
नैक निसा निरखैं नसैं रसैं रास आनन्द।

भक्ति परम्परा में ही सूफियों के प्रेम कथानकों का स्थान भी बहुधा आ जाता है क्योंकि उनके प्रेम में जहां लौकिक तीव्रता तन्मयता होती है वहां अलौकिक निष्ठा और शुद्धता पर भी बल रहता है (यों भी साहित्य में वैज्ञानिक सीमा रेखाएं खींचनी कोई सरल कार्य नहीं होता) पंजाब में सूफियों का भी प्रभाव रहा है। उनका गुरु को महत्ता देना सिखों की गुरु भक्ति एवं सन्तों की गुरु भावना से मेल खा जाता है। पंजाब में हिन्दी क्षेत्र के विपरीत मुसलमान परिवार की कथा को भी पौराणिक परम्परा के अनुसार ढालने का प्रयास हुआ है। गुरुदास गुणी की 'कथा हीर रांझे की' एक सुन्दर प्रेम प्रबन्ध है। डा० हरिभजन सिंह के अनुसार इसका महत्त्व आध्यात्मिक न होकर विशुद्ध लौकिक है। परन्तु इसमें से अलौकिक तत्व तथा प्रेम की पवित्रता के कारण यह सूफ़ी काव्य के निकट चला गया है। इस किस्से की एक स्तुत्य विशिष्टता है कथा और पात्रों का सम्यक सन्तुलन। कथा पात्रों के स्वभाव और तज्जनित परिस्थितियों के सहारे ही आगे बढ़ती है। इस शृंगार प्रधान रचना के पात्रों की स्थिति स्थान-स्थान पर कभी हमारी रति कभी करुणा और कभी विस्मय को जगाती हुई मर्म को स्पर्श करती है। परन्तु इसकी अभिव्यंजना तथा भाषा में कुछ विशेषता नहीं दिखाई देती।

राजा राम दुग्गल का 'सूर रम्भावत' वाली जी के अनुसार लौकिक शुद्ध प्रेमाख्यान है परन्तु डा० हरिभजन सिंह के अनुसार प्रतीक शैली की रचना है। इस पर उषा-अनिरुद्ध की पौराणिक कथा की छाप भी देखी जा सकती है। कवि का अभीष्ट कथा के माध्यम से प्रेम की पीर का गायन करना है। भाषा यहां भी अधिकतर अभिधामूलक है, चित्रात्मक—

फुरकि फुरकि पुनि मीचै नैना।
तरफि तरफि तरफाए बैना।
गिरि गिरि परे जरे तन राधे।
मुखिपरि झाग बुदबुदे बाधे।
टूक टूक कर बदन उखेरी।
खीस खीस सिर कियो हथेरी।

'कथा कामरूप' के लेखक सूफ़ी कवि सभाचन्द सोंधी को वाली जी प्रथम पद के योग्य मानते हैं। यह पुर्णरूपेण प्रतीकात्मक हिन्दु प्रेम कथा है। यह कदाचित किसी पारसी ग्रंथ का प्रथम हिन्दी रूपान्तर है। इसमें जहां भारतीय प्रेम साधना है वहां ईरानी संस्कृति का शैतान तथा स्त्रियों में पुरुषों की प्रेमासक्ति का पक्ष विद्यमान है। प्रेम तथा विरह की पीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहा चौपाई शैली में बहुत सुन्दर बन पड़ी है --

'बिरह न माने राम दुहाई ।
प्रेम बिरह है अति दुखदाई ।
मैं सों सांची कोउ न जानै ।
प्रेम कसु की कही न माने,
मैं जो बात बुध की कहूँ ।
प्रेम आष सुध बुध तज रहूँ'

प्रेमाख्यानों की इस परम्परा में अलखदास (शेख अब्दुल कद्दस) गुपाल (मुहम्मद अफ़ज़ल) करग अलीशाह आदि का नाम भी लिया जाता है ।

पंजाब के ऐतिहासिक पौराणिक काव्य में पंजाब की वीर प्रसू भूमि का योगदान अधिकतर वीर रस प्रधान काव्य के रूप में ही है । सिख गुरुओं ने इस वीर भावना को प्रज्वलित रखा । पंजाब के अतिरिक्त भारत का समूचा हिन्दी साहित्य जहां एक ओर रीति की रंगीन काम परक् सकुल गलियों में ही चक्कर काटता रहा वहां पंजाब का हिन्दी कवि हिन्दी साहित्य की वीर परिपाटी को बनाये रख कर असि एवं मसि ले कर युद्ध-स्थल में उपस्थित रह कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहे । यहां के वीर काव्य लेखकों ने चारण भाटों की तरह 'व्यर्थ की प्रशंसायें' नहीं लिखीं अपितु तात्कालिक नायकों का सच्चा रूप प्रदर्शित किया है । इसके अतिरिक्त यह युद्ध किसी राजकन्या के लिये न होकर शुद्ध रूप से राष्ट्रीय युद्ध है जो कभी धर्म के वेष में आता है तो कभी जातीयता के रूप में ।

इनमें वीर गाथा के रूप में गुरु गोविन्द सिंह के 'दशम ग्रंथ का बचित्र नाटक' विशेष महत्त्वपूर्ण विशाल काव्य है जिसमें अपनी कथा, चण्डी चरित्र, चौबीस अवतार, ब्रह्मा के सात अवतार, चौबीस रुद्र अवतार आदि सम्मिलित हैं । इनमें अधिकांश युद्ध कथाएं हैं और इनमें वीर रस का परिपाक हुआ है । कवि का उद्देश्य दैवी शक्तियों की आसुरी शक्तियों पर विजय दिखाना है । गुरु गोविन्द सिंह ने युद्ध का वर्णन प्रत्यक्ष (प्रकृत) तथा परोक्ष (अलँकारों के माध्यम से) दोनों प्रकार से किया है ।

फेरि के थेरि लयौ रन मांहि सुमुंड को मुण्ड जुदा करि भार्यौ
ऐसे पर्यो धरि ऊपर जाय ज्यौं बेलहि ते कदुवा करि डार्यौ ।

(परोक्ष शैली—चण्डी चरित्र)

इसके अतिरिक्त वीरों के आन्तरिक और बाह्य पक्ष का वर्णन भी कवि ने विशेष रुचि से तथा सफलतापूर्वक किया है ।

गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि अणीराय का 'जंगनामा गुरु गोविन्द सिंह' ऐतिहासिक आधार पर लिखा हुआ काव्य है । इस में कवि ने आश्रयदाता की प्रशंसा स्पष्ट सीधी और कथा निरपेक्ष तथा परोक्ष और कथा सापेक्ष ढँग से की है । परन्तु यह युद्ध चित्रण है वीर स्तोत्र नहीं । इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा कहने की रुचि नहीं है। केवल युद्ध वर्णन का अत्यधिक चाव है। भिड़न्त का वर्णन विशेष तन्मयता से किया गया है। सेना का सेना पर धावा और शूरवीरों के व्यक्तिगत पराक्रम दोनों की ओर ही उनकी दृष्टि रही है। एक युद्ध वर्णन —

मची मार भारी दुहुँ ओर ऐसी।
भई भीर कुरुखेत के खेत जैसी।
छुटे तोप बन्दूक घुरनाल गोला।
परे ऊख के पूख में बज्र ओला।

वीर रस प्रधान प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से गुरु गोविंद सिंह के अन्य दरबारी कवि सेनापति का 'गुरु शोभा' नामक ग्रंथ भी अपना महत्त्व रखता है। कवि गुरु जी को भी चण्डी विष्णु आदि की कोटि का अवतार समझता है तथा उनसे इहलौकिक सुख सुभीते की याचना न करता हुआ पारलौकिक शांति की अभ्यर्थना करता है। अपने वीर तथा कवि शिरोमणि नायक के उपयुक्त ही कवि की काव्य रचना भी बन पड़ी है—

स्याम घटा उमड़ै चहूँ ओर ते यो उमड़ै
दलद्रूत के आही।
दामन जो दमकै तरवार लिये करवार
फिरावत ताही॥

महाराजा पटियाला के दरबारी कवि केशवदास का लिखा 'अमरसिंह की वार' महाराजा के प्रसिद्ध भटियानी युद्ध का वर्णन है। हिन्दु प्रजा पर मुसलमानों का अत्याचार इस युद्ध का कारण था। वार पंजाबी साहित्य की विशिष्ट शैली है। कुछ विद्वानों के अनुसार कवि को वार साहित्य का विशेष ज्ञान नहीं। फिर भी काव्य-कौशल की दृष्टि से वीर रस की व्यंजना अच्छी है —

'चमू चली चतुरंगिनी किनि अन्त न पाया
घोरन की खुरताल सों सूरज रज छाया
मनो कुसंभज कोधि के निधि सोखन आया

'फतहनामा गुरु खालसा जी का' महाराजा रणजीत सिंह के दरबारी कवि गणेशदास का कवित्त-सवैया-दोहा पद्धति में लिखा आश्रयदाता के तीन युद्धों का वर्णन है। वर्णन कौशल साधारण है। इनके अतिरिक्त ग्वाल कवि का विजय विनोद तथा हमीर हठ तथा चन्द्र शेखर वाजपेयी का हमीर हठ वीर काव्य के अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्ध ग्रंथ हैं।

इन वीर काव्यों के अतिरिक्त वीर स्तोत्रों के रूप में गुरु गोविन्द सिंह के बावन दरबारी कवियों की मुक्तक रचनाएं भी जहां तहां प्राप्त होती हैं। इन कवियों की रचनाएं 'विद्याधर' नामक विशाल ग्रंथ में संग्रहीत हुई थी। परन्तु आनन्दपुर युद्ध के समय यह ग्रंथ नष्ट हो गया। इसके कुछ बचे पृष्ठों के उद्धरण भाई सन्तोषसिंह ने अपने 'गुरु प्रताप सूर्य' ग्रंथ में दिये हैं। इन हज़ूरी कवियों ने प्रमुखता गुरु जी के योद्धा रूप का चित्रण किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास-पुराण की इस श्रेणी में सिख गुरुओं के इतिहास लिखने वाले कवियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये सभी रचनाएं सिक्ख गुरुओं व भक्तों से संबंधित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के लेखक समूचे सिक्ख आंदोलन को गाथा कहने के लिये उत्सुक हैं। इस प्रकार के नायक ही सिख गुरु नहीं इनके रचयिता भी गुरु तथा उनके शिष्य ही हैं। यहां गुरुओं की कथा पौराणिकता की स्पष्ट छाप लिये है। यदि कहें कि ये समसामयिक पौराणिक प्रबन्धों के पूरक से प्रतीत होते हैं तो अनुचित नहीं।

इस प्रकार के कवियों में सन्तदास छिब्बर तथा सरूप चन्द भल्ला तथा सन्तरेण का महत्त्व, गुरु नानक विषयक ऐतिहासिक प्रबन्ध लिखने में है। भल्ला जी का 'महिमा प्रकाश' दस सिख गुरुओं एवं बन्दा के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है जिसमें गुरु नानक और उनकी वाणियों की सरल व्याख्या अधिक है। भाई छिब्बर जी द्वारा लिखित 'जन्मसाखी' सतिगुरु नामक शाह प्रथम में अधिक उत्कृष्ट काव्य कौशल तथा अपने उद्देश्य के प्रति अधिक सजग है। कवि का उद्देश्य 'जनजागरण' के नेता को श्रद्धांजलि देना तथा इस्लाम प्रभाव का निराकरण है। तीसरे कवि सन्तरेण ने विशाल काय काव्य 'नानक विजय' में गुरु नानक को सर्वप्रथम पौराणिक व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। यह विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ न होकर अनेक मानवीय दैवी पात्रों की कथा है। परन्तु वातावरण नितान्त ऐतिहासिक है।

एक अन्य ग्रंथ 'गुरु विलास' के लेखक के विषय में काफी विवाद प्रचलित है। डा० हरीभजन सिंह इसकी दो प्रतियों को सुखासिंह तथा कोइर सिंह की भिन्न-भिन्न रचनाएं मान कर एक को दूसरे की साहित्य चोरी करने का अपराध देते हैं। किन्तु हमारे विचार में बाली जी का कथन अधिक तर्कसंगत है कि यह मनीसिंह की रचना है जिसके लिपिकार उपरोक्त लेखक द्वय है। इसमें गुरु गोविन्दसिंह का पद्यबद्ध सर्वांग जीवन चरित है जिसमें ऐतिहासिकता के प्रति कवि विशेष सजग है। कवित्त और चरित्र-चित्रण में सुन्दर सन्तुलन इसकी विशेषता है। कवित्व का उदाहरण --

जिह विध नाव नदी की धारा।
बही जात नहिं को रखवारा ॥
अनिक ठबा इह भांति लुटानि।
राज विराजी सभजग जानी ॥

सेवापन्थी सम्प्रदाय के सहज राम की 'परचियां' भी उस सम्प्रदाय के तीन सन्तों भाई कन्हैया, भाई सेवाराम तथा भाई अड्डणशाह के जीवन की कथाएं हैं। इस पुस्तक की महत्ता इसके प्रभु रूप से गद्य में होने के कारण है। यहां कवि पाठकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ध्यान गुरुओं से हटा कर गुरु सिखों की ओर लाता है ।

सिख इतिहास के ग्रंथ लेखकों में भाई सन्तोखसिंह के गुरुप्रताप सूर्य का नाम भी उल्लेखनीय है । यह सामान्यतया दोहा चौपाई की रचना है जिसमें दश गुरुओं का जीवन मनमोहक ढंग से लिखा गया है । भाई सन्तोखसिंह के छः ग्रन्थ प्राप्य हैं जिनमें उनका काव्य कौशल स्तुत्य है ।

हिन्दी साहित्य में रीति काल के स्वर मद्धम पड़ जाने पर पंजाब में रीतिकाल की परम्परा में रचनाओं का प्रणयन हुआ । पंजाब में बहुधा कवियों को राज्याश्रय प्राप्त था । अतः एक तो अपने आश्रयदाताओं की विलास तृप्ति के लिये एवं हिन्दी साहित्य की परिपाटी के प्रभाव से इन कवियों ने कृष्ण को साधारण नायिका तथा नायक बना कर नाना प्रकार की रंगीन एवं रस भीगी पिचकारियां छोड़ीं । इनमें भक्ति मिश्रित श्रृंगार रीति, बद्ध तथा रीति युक्त तीनों प्रकार की रचना सम्मिलित है ।

पंजाब में भक्ति मिश्रित श्रृंगार का उदाहरण गुरुदास के नायिका भेद पर लिखे कवित्त सवैये हैं । उनकी विशेषता है जीवात्मा को नायिका का स्वरूप देना । गुरुदास रैतिक प्रभाव को पंजाब में लाने वाले प्रथम कवि हैं । भाषा तथा कवित्व की दृष्टि से भाई गुरुदास का पंजाब के कवियों में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

दर्शन ध्यान बिरहा व्यापत दृगन होय ।
स्त्रवन बिरह व्यापै मधुर बचन कै ।
संगम समागम बिरहों व्यापै जिह्वा कै ।
पारस परस अंक माल की रचन कै ॥
सहजा गवन बिरहां व्यापत चरन होय ।
प्रेम रस बिरहां सरवंग ह्वै सचन कै ॥
रोम रोम बिरहां बिथा कै बिहबल भई ।
ससा ज्यों वहीर पीर प्रबल त चन कै ॥

श्रृंगार रस के विप्रलम्भ पक्ष में बारामांह की परम्परा पंजाब की ही देन मानी जाती है । समस्त हिन्दी साहित्य में पद्मावत के अतिरिक्त बारहमासा की परम्परा का लगभग अभाव ही है । काव्य में प्र ति वर्णन में षट् ऋतु वर्णन बहुत रोचक विषय रहता है । पंजाब में यह बारांमाह का रूप धारण कर स्वतंत्र काव्य रूप का महत्त्व पा गया है । इस प्रकार के साहित्य में गुरु गोविन्द सिंह, उमादास, देवीदास, साहब सिंह मृगेन्द्र, केशवदास, टहल सिंह आदि के बारांमाहे विशेष प्रसिद्ध हैं । इनकी विशेषता यह भी है कि यह केवल विप्रलम्भ पक्ष ही नहीं अपितु संयोग पक्ष को भी चित्रित करते हैं ।

रीतिबद्ध रचना के अन्तर्गत लक्षण उदाहरण परम्परा में किसी काव्यांग का शास्त्रीय प्रतिपादन किया जाता है । पंजाब के रीति विवेचन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात यह है कि यहां के आचार्यों ने पिंगल शब्दशक्ति पर भी पर्याप्त लिखा है । इनमें पिंगल का विषय यहां के आचार्यों का प्रिय रहा है । पंजाब के आचार्यों ने लक्षण तो अपने दिये हैं पर उदाहरण देने में उन्होंने उदारता दिखाई है । अनेक प्रसिद्ध अप्रसिद्ध कवियों के सुन्दर उदाहरण उन्होंने अपने लक्षण ग्रथों में संकलित किये हैं । इस प्रकार के कवि-आचार्यों में अग्रणी हैं अमीरदास जो कदाचित् महाराजा रणजीतसिंह के दरबारी कवि थे । उनके 'कृष्ण साहित्य सिंधु' तथा सभामण्डन नामक विशाल कार्य रीति ग्रंथ हैं जिसमें पुराने पिष्ट पेषन के अतिरिक्त कहीं कहीं उन्होंने मौलिक उद्भावनाएं भी की हैं । इसी प्रकार पटियाला राज्य के दरबारी कवि का 'साहित्य शिरोमणि' भी सुन्दर रस ग्रंथ है । अन्य कवियों में भी हृदयराम भल्ला (रसतरंगिणी) टहलसिंह (अलंकार सुधा सागर) हरि राम दास (छन्द रत्नावली) मुकुन्द कवि (रस शिरोमणि) फतैराम (कविरंजन ग्रंथ) आदि के ग्रंथ उल्लेखनीय हैं ।

इनके अतिरिक्त लक्षण परिपाटी का परित्याग करके परोक्ष रूप से उदाहरण परिपाटी का पालन करने वाले कवियों को रीति सिद्ध कवि कहा जाता है । पंजाब के इस प्रकार के कवियों की परम्परायें गुरु गोविंदसिंह कृत कृष्ण काव्य, उनके दरबारी कवि अमृतराय कृत 'चित्र विलास' पटियाला राज्य के दरबारी कवि वसन्त सिंह ऋतुराज कृत बसन्त सतसई तथा पंडरीक पत्र कृत आनन्द सतसई तथा ईश्वरदास कृत ब्रज विलास सतसई प्रमुख हैं ।

पंजाब के मध्यकालीन हिन्दी काव्य में गुरु गोविन्दसिंह के दशम ग्रंथ के चरित्रोपाख्यान का भी अपना ही महत्व है । ये चार सौ के लगभग शुद्ध लौकिक प्रेमाख्यान हैं जिनकी रचना अपने सैनिकों को 'तिरिया चरित्र' से बचाने के लिये की गई है । इनमें नारी की स्वेच्छा चारिता कामुकता और धूर्त्तता का प्रभाव उत्पन्न करने वाली कथाओं का संग्रह है । यहां भी कवि का युद्ध वर्णन-प्रियरूप कहीं कहीं झलक ही जाता है । काव्य कौशल की दृष्टि से यह काव्य दशम नानक की मंजी शैली का ही एक रूप है । एक उदाहरण ––

आजु सखी मैं यौं सुन्यो
यह फाटत पिय गौन ।
परु हियरे झगरा परयो
पहले फटि है कौन ।

पंजाब हिन्दी साहित्य में अनुवादों का भी विशेष महत्त्व है । संस्कृत फारसी के अनेक ग्रंथों के अनुवाद इस प्रान्त के कवियों ने किये हैं । इनमें महाभारत के अनुवादों का तो बहुत ही प्रचलन रहा है । गुरु गोविन्द सिंह ने इस परिपाटी को प्रारम्भ किया था । उन्होंने अपने हजूरी कवियों में से मंगल, कुवरेश, टहकन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंसराम, आदि के द्वारा महाभारत के विभिन्न पर्वों के अनुवाद करवाये। उनके पश्चात् पटियाला दरबार के कवियों उमादास, दित्तराम, बसन्तसिंह, कवि निहाल आदि ने इस परम्परा को बनाये रखा। इनके अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से बिना किसी प्रेरणा के अमृतसर निवासी कृष्ण लाल ने महाभारत के कई पर्वों के अनुवाद किये।

इन अनुवादों के अतिरिक्त बसन्तसिंह ऋतुराज द्वारा बसन्त बहार तथा बसन्त विनोद फारसी के प्रसिद्ध ग्रंथ गुलिस्तां तथा बोस्तां के अनुवाद मिलते हैं।

इस प्रकार पंजाब के मध्य युगीन हिन्दी काव्य पर विहंगम दृष्टि डालने से हमें अनेक नये तथ्य ज्ञात होते हैं। प्रथम तो यह कि पंजाब प्रान्त के इस उपेक्षित साहित्य में विविधता ही नहीं उच्च साहित्यिक स्तर भी विद्यमान है। इस साहित्य की खोज का कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है तो भी हिन्दी साहित्य की सभी शाखाओं में महत्त्वपूर्ण रूप से सिर उठाने वाले कवि प्राप्त हो जाते हैं। इस क्षेत्र में अधिक शोध होने पर समूचे हिन्दी साहित्य के इतिहास में कुछ संशोधन परिवर्द्धन आवश्यक हो जायेंगे।

इस युग के काव्य के विषय में कुछ प्रमुख तथ्य यही हैं कि यह सिख संस्कृति की कविता है जो येन केन प्रकारेण हिन्दु संस्कृति का ही एक अंग है। इसी लिये इसमें किसी प्रकार की संकुचित साम्प्रदायिकता [illegible] सर्वथा अभाव है। स्वयं गुरुओं ने पौराणिकता तथा अवतारवाद का परोक्ष पोषण किया है तथा गुरु गोविन्द सिंह ने भारतीय संस्कृति की प्राचीन भाषा संस्कृत का महत्त्व स्वीकार किया है। इसीलिये उन्होंने महाभारत के अनुवादों में विशेष रुचि दिखाई। गुरुओं के पश्चात् हिन्दी काव्य के आश्रयदाता सिख राज्यों के अधिपति रहे। इनमें भी पटियाला के महाराजा नरेन्द्र सिंह का विद्यानुराग, शौर्य, धर्म प्रेम तथा विद्वत्ता कवियों को विशेष आकर्षित करती रही है। श्री बालो जी के शब्दों में 'इन ५०-६० वर्षों में इन कवियों ने पँजाब के भाषा-साहित्य की इतनी अभिवृद्धि कर दी कि अब प्रभाव की शिकायत नहीं रही।'

इस युग के काव्य की एक अन्य विशेषता है हिन्दी साहित्य पर पँजाब की कुछ निजी छाप। इस दृष्टि से बारामाह, वार काव्य तथा किस्सा काव्य को प्रादेशिक छाप का संकेत हम यथास्थान कर आये हैं। इनके अतिरिक्त गुरु विलास परम्परा, मँगल काव्य आदि हिन्दी की विशिष्ट परम्पराओं पर भी लेखनी चलाने वाले कवियों का महत्त्व अपना ही है।

अन्त में इस काव्य की भाषा की अवस्था भी विचारणीय है। पँजाब प्रदेश ने मध्य देश की साहित्यिक भाषा ब्रज को अपनाया परन्तु प्रादेशिक प्रभावाधीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पँजाबी का न्यूनाधिक स्पर्श कवियों में आ जाना स्वाभाविक ही है। फिर भी परिनिष्ठित ब्रज के कुछ कवि अद्वितीय हैं यथा गुरुदास, अमीदास इत्यादि।

इस प्रकार पँजाब की धरती का यह काव्य गुरु नानक, गुरु अर्जुन की वाणी की आध्यात्मिकता, गुरुदास की वाणी के चातुर्य, सन्तरेण श्री गुलाबसिंह की साधुता गोविन्दसिंह तथा अणीराय के ओज तथा अमीरदास व निहाल कवि की रैतिकता का विशाल भण्डार वृहत हिन्दी जगत के लिये आज चाहे सन्देह तथा विस्मय का विषय है परन्तु शोध विद्वानों का परिश्रम अवश्य ही इनका समुचित स्थान दिलायेगा, ऐसी हमें आशा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चीनी भाषा और लिपि"

भोलू राम ठाकुर

चीनी भाषा एकाक्षरी भाषा परिवार में सब से मुख्य भाषा है, तथा समस्त चीन में बोली जाती है। बोलने वालों की संख्या के आधार पर यह अंग्रेज़ी के बाद संसार की दूसरी भाषा मानी जाती है, तथा इस का भौगोलिक क्षेत्र अँग्रेज़ी से भी अधिक विस्तृत है। अफ़्रीका और एशिया की विभिन्न भाषाओं में से केवल यही एक भाषा है जिसे विश्व-सँघ में कार्य-पद्धति के लिये मान्यता प्राप्त हैं। साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह संसार की सर्वप्राचीन भाषाओं में से एक है। परन्तु ठीक ऐसे ही यह भाषा सँसार की सबसे अवैज्ञानिक और जटिल भाषा है और यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर दूसरे देशों के साथ घोर सम्पर्क रहने पर भी इसके क्षेत्र में कोई विस्तार नहीं हुआ है, और इसके लेखक अपने सीमित क्षेत्र से बाहर निकल कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नहीं कर सके। हाल ही तक संसार के किसी अन्य देश में इसका अध्ययन नहीं होता था। और आज जब संसार के कुछेक देशों में इसका अध्ययन हो रहा है, तो इसके पीछे इस भाषा की साहित्यिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि चीन की राजनैतिक धृष्टता है।

चीनी भाषा के एक लम्बे साहित्यिक इतिहास में आज तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। शब्दों के उच्चारण में परिवर्तन के अतिरिक्त न स्वयं भाषा में कोई सुधार हुआ है और न ही इसकी लिपि ही अपने प्राचीन रूप को बदल सकी है। सारे चीन देश में एक ही लिपि प्रचलित है, तथा अपने आरम्भिक काल से यही चली आ रही है, इसी में सब लोग पत्र-व्यवहार करते हैं तथा एक दूसरे को समझते हैं। लिपि में परिवर्तन न होने के कारण प्राचीन से प्राचीन साहित्य भी उसके वर्तमान पाठकों के लिये अक्षरशः सुबोध और सुगम है। उन्हें अन्य देश के भाषा-भाषियों की तरह अपने प्राचीन लेखों को पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। हाँ, उनके उच्चारण में अवश्य विभिन्नता आई है, और अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं, यदि केवल अठारहवीं शताब्दी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों ली-पो अथवा तू-फू की कविताएँ ही पीकिंग, शँघाई, अमोई या कातोन के पाठक एक साथ पढ़ें तो कदापि यह अनुभव न होगा कि वह एक ही कविता पढ़ रहे हैं । लिपि चित्रांकित होने के कारण उन सब के सामने लेख एक ही है और सब को उसे पढ़ने और समझने में कोई कठिनाई न होगी, भले ही चित्रांकित शब्द विशेष विभिन्न स्थानों के लिये विभिन्न उच्चरण दे, परन्तु सब के लिये वह एक ही अर्थ का द्योतक है । यही कारण है कि सारे देश में एक भाषा और एक ही लिप के होते हुए भी इसके दो रूप हैं—साधारण बोलचाल की भाषा "चुंग कुआ खुआ" और इसका लिखित रूप अथवा साहित्यक भाषा "चुंग बेन ।" इस विभिन्नता का मुख्य कारण लिपि की असामान्यता है । चीनी भाष की लिपि वर्णानुक्रमिक नहीं है, और न ही ध्वन्यात्मक है। वर्णानुक्रमी भाषाओं की अवस्था में यह स्पष्ट है कि शब्दों में हर प्रकार का ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तन उसके लिखित रूप में भी परिवर्तन लाएगा । यदि सामान्य बोलचाल में "मुख" के स्थान पर "मुंह" का प्रयोग प्रचलित हुआ तो स्वाभाविक रूप में ही "ख" "ह" द्वारा प्रतिस्थापित होगा । विपरीत इसके चीनी लिपि सँकेतात्मक है । प्रत्येक शब्द के लिये प्राचीन काल में सँकेत बना है तथा तत्पश्चात चाहे ध्वनि में कोई भी परिवर्तन आया हो, उस सँकेत विशेष (अक्षर) में कोई अन्तर नहीं आया । चीनी भाषा और लिपि चाक्षुष है श्रवण-परक नहीं । "घोड़ा" शब्द के लिये एक सकेत बना है जो मूल रूप में घोड़े का चित्र है । अब चाहे उसे प्राचीन काल के "मोओ" के स्थान पर "मा" कहा जाता है परन्तु उसके लिखित रूप में कोई अन्तर नहीं, और इसे इस लिये हर स्थान पर तथा हर काल में देख कर समझना कठिन नहीं; चाहे किसी स्थान पर घोड़े को "मा" भी न कहते हों । अतएव, चीनी भाषा का लिखित रूप सारे देश भर में हमेशा के लिये एक-सा है, हालांकि उसके उच्चारित रूप में बहुत अन्तर आ गया है । स्थानीय बोलियां प्राचीन काल में भी भिन्न थीं जिन्हें, लिपि एक होने के कारण, सरकारी भाषा "कुआन खुआ" के अधीन लाने के प्रयत्न होते रहे हैं, और आज भी पीकिंग की बोली को सरकारी मान्यता प्राप्त है तथा वही राष्ट्रीय भाषा 'कुआ यूऊ' का आधार है ।

साधारणतया चीनी भाषा का शब्द क्रम अँग्रेजी भाषा से कुछ मिलता-जुलता है—अर्थात् पहले कर्ता, फिर क्रिया और अन्त में कर्म —

वो शे शे नी ।
वो पू ताआ था ।
मैं धन्यवाद करता तुम्हारा ।
मैं नहीं मारता उसे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वो-तै च्याओ-युआन च्याओ इँग मेन वो काओ-सू ला था, वो याओ माई चू-चर्र ।	मेरा अध्यापक पढ़ाता अंग्रेजी भाषा । मैं (ने) कहा था उसे, मैं चाहता खरीदना संतरा ।

इसी प्रकार विशेषण सँज्ञा से पहले और क्रिया-विशेषण सम्वन्धित क्रिया से पहले आता है :—

न-क खूआन अऊ श्र-पू-श्र नी मेई-मेई-तैं ?	वह काला कुत्ता है नहीं है तुम्हारी बहिन का ? (क्या वह काला कुत्ता तुम्हारी बहिन का है ?)
च श्र शीन न्यन शी श्रा	यह है नये वर्ष (का) खुशी (का) विषय।
चो ठेइन वो छिन-छिन छू-छू काओ-सू ला था ।	कल दिन मैं (ने) ठीक-ठीक कहा था उसे ।
वो याओ ख-अ ल्यांग खाई श्रई ।	मैं चाहता पिना ठँडा उबाला (हुआ) पानी ।
था श्र इ-का हेन हाओ-तै च्याओ-युआन	वह है एक बहुत अच्छा अध्यापक ।

परन्तु यह बात याद रखनी चाहिए कि चीनी भाषा व्यास-प्रधान भाषा है तथा इसकी वाक्य रचना इतनी सहज नहीं है। यह एक एकाक्षरी भाषा है, तथा जिस प्रकार का व्याकरण हम अन्य भाषाओं के सम्बन्ध में पढ़ते हैं, उसका यहाँ नितान्त अभाव है। इसमें पुलिग शब्द और स्त्रीलिंग शब्दों में प्रतिपादक सांज्ञा नहीं होता, और न ही हिन्दी भाषा की तरह वचन अथवा काल के भेद की बिना पर वाक्यों या शब्दों का रूप वदलता है । केवल "मेन" शब्द मूल शब्दों में जोड़ने से बहुवचन की व्युत्पत्ति होती है । कहीं-कहीं बहुवचन बनाने के लिये "शे" शब्द का प्रयोग भी होता है जिसका स्वतन्त्र अर्थ "कुछ, थोड़ा, धीरे से" है । "मेन" का स्वतन्त्र रूप में कोई अर्थ नहीं है । वचन के आधार पर वाक्य या अन्य शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं आता —वो (मैं) वो-मेन (हम), नी (तू), नी-मेन (तुम बहुवचन), था (वह) था मेन (वे), हाई-चर्र (पुत्र), हाई चर्र-मेन, फञ्यू (मित्र), फञ्यू-मेन; परन्तु च (यह) च-शे (ये), न (वह-प्राय: बेजान चीजों के लिये) न-शे (वे), इ-क (एक) इ शे (बहुत)।

काल के आधार पर भी वाक्य में कोई अन्तर नहीं आता । है, हैं, हूं, था, थे, थी सब के लिये एक ही शब्द "श्र"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयुक्त होता ... प्रसँग और विषय के अनुसार होता है। बिना प्रसँग और विषय के ज्ञान के यह स्पष्ट नहीं हो सकता कि "च श्र वो तै तें-फांग" का अर्थ "यह मेरी भूमि है" है अथवा "यह मेरी भूमि थी"। इसी प्रकार

... हाओ फङ्यू" का अर्थ "हम सब अच्छे मित्र हैं" भी हो सकता है और "हम सब अच्छे मित्र थे" भी। साधारणतया "श्र" का प्रयोग भी बहुत कम होता है —

नी हेन हाओ	आप अच्छे क्या ? (आपका क्या हाल है)
वो हेन हाओ	मैं बहुत अच्छा
नी कूई शिन	आप शुभ नाम ।
वो शिन ली	मै (मेरा) नाम ली ।
नी हेन युंग-कुंग	आप बहुत परिश्रमी ।
शर्मा श्यन-शन-तै चुं-कुओ	शर्मा मिस्टर (श्री शर्मा) की चीनी भाषा
खुआ हेन-हाओ।	बहुत अच्छी ।
वो छू मेई येन	मैं जाना खरीदने सिगरेट ।
नी हाओ मा ?	

इन वाक्यों से भूत और वर्तमान (है, था) दोनों काल का अभिप्राय पूरा हो जाता है। किस प्रसँग में बात हो रही है तथा समय सम्बन्धी अन्य शब्द (अब, बाद, आज, कल आदि) द्वारा ही काल भेद होता है। एकाक्षरी भाषा होने के कारण काल के आधार पर शब्द भेद नहीं होता, जैसा कि हिन्दी या अँग्रेज़ी आदि भाषाओं में होता है—जाना से गया, जाएगा; उड़ने से उड़ा, उड़ेगा आदि। चीनी भाषा में क्रियाओं का रूप भी सँज्ञा की तरह एक समान रहता है। आवश्यकता पड़ने स्वतन्त्र नये शब्दों के जोड़ने से भूत या भविष्य का संकेत किया जा सकता है। भूतकाल के लिये अधिकतर "ला" शब्द का प्रयोग होता है जिसका अर्थ खतम करना या खतम होना है। कहीं-कहीं तै, मा, ना, नै, मो का प्रयोग होता है जो निपात के द्योतक शब्द हैं; परन्तु हर एक स्थिति में स्पष्टता के लिये इनका प्रयोग नहीं होता। उदाहरणार्थ उपर्युक्त वाक्यों म इनका प्रयोग नहीं हो सकता। निपात के द्योतक होने का कारण इनका प्रयोग भी उसी तरह है :—

वो ना-ठेइन छू चुंग कुआ तै	मैं उस दिन चीन गया था,
छ-न्यन खोई ल्हाई-ला ।	(जाकर) पिछले वर्ष वापिस आया ।
नी-तै चुंग-वेन शू श्र	आपकी चीनी भाषा की पुस्तक किस
श्रोई ची-तै ।	(द्वारा) ने लिखी है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वो–मेन कुश्रा [illegible]	हमारे देश आया ([illegible]) ।
इंग–वई श्या–ला शुश्रा	क्योंकि हुई थी वर्षा इसलिये
सा–इ–ई हेन लन ।	बहुत सर्दी (है) ।

भविष्य काल का परिचय प्रायः "याश्रो" शब्द से करवाया जाता है, जिनका स्वतन्त्र रूप में अर्थ "चाह, चाहना" है:—

ना–ठेइन'वो याश्रो छू फा–कोश्रा।	उस दिन मैं जाऊँगा (चाहता हूँ जाना) फ्रांस
वो च्यंग याश्रो केइन नी शां खोश्रा।	मैं अब चाहता तुम्हारे साथ बात करना (मैं अब तुम्हारे साथ बात करूंगा)
लो–ल्हाई लेऊ वो मेन याश्रो ल्हाई खन नो	सप्ताह छः (शनिवार) को हम चाहते आना देखने तुम्हें (हम आपको देखने आएंगे) ।

प्रश्न वाचक वाक्यों में शब्दों का क्रम नहीं बदलता जैसा कि अंग्रेज़ी में बदलता है। चीनी भाषा में प्रश्न प्रायः निम्नलिखित ढंग से पूछे जाते हैं:—

(१) अन्त में प्रश्न-सूचक प्रत्यय लगाने से

नी–तै थाई-थाई हाश्रो मां ?	आपकी पत्नी ठीक है क्या ?
श्रुई शन मां ?	पानी गहरा (है) क्या ?
नो खोई शो चुंग-कोश्रा खोश्रा मा ?	आप सकते बोल चीनी भाषा क्या ?

(२) नकारात्मक अव्यय लगा कर उसी शब्द को पुनः कहने से :—

वो शो–तै तूई पू तूई ?	मैं ने कहा (जो वह) ठीक नहीं ठीक ?
था तुंग पू तुंग इंग–वेन ।	वह समझता नहीं समझता अंग्रेज़ी भाषा ?
चिन ठेइन ज़हा पू ज़हा'	आज गर्मी नहीं गर्मी ? (क्या आज गर्मी है)

(३) साधारणतया प्रश्नवाचक शब्दों के प्रयोग से :—

था श्र श्रोई ?	वह है कौन ?
च श्र श्रन–मो ?	यह है क्या ?
च श्र श्रोई–तै शू ?	यह है किस की पुस्तक ?
नी श्रा ना–श्रा कोश्रा रन ?	आप हैं किस देश (के) आदमी ?
श्रोई श्र नी–तै श्यन-श्रन ?	कौन है तुम्हारा अध्यापक ?

एकाक्षरी भाषा होने के कारण चीनी भाषा में ऐसे शब्दों की बहुलता है जो सुनने में प्राया सदृश रूप लगते हैं परन्तु जो वास्तव में भिन्नार्थ होते हैं । यही मुख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण है कि चीनी भाषा लिखने के लिये उसकी प्राचीन लिपि को बावजूद असंख्य प्रयत्नों के तिलांजली नहीं दी जा सकी है। ऐसे अनेक शब्द रोजमर्रा की बोल चाल में मिलते हैं जिनमें साधारणतया स्वर और व्यंजनों की समानता सी लगती है, परन्तु उनके अर्थ एक-दूसरे से नितान्त भिन्न होते हैं। भाषा-शास्त्रियों ने "श्र" शब्द के लगभग 52 अर्थ गिने हैं, परन्तु "श्र" शब्द ही केवल उदाहरण नहीं। सम्भवतः कोई इने-गिने ही शब्द होंगे जिनके दर्जन से कम अर्थ हों। एक "ई" शब्द को ही लें, भिन्न-भिन्न संकेतों में लिखे इसके "कपड़े, एक, बैहस (संज्ञा और क्रिया) अनुवाद (संज्ञा और क्रिया), औषधि, उपर्युक्त, शंका करना, कुर्सी, पहले ही, विचार, सोचना, के अनुसार, प्रयोग करना," आदि अर्थ हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न संकेतों में लिखे शब्द "ची" के इस प्रकार अर्थ हैं --मशीन, अवसर, चूज़े, अत्यन्त, कदम, (दर्जा, औहदा), इकट्ठा करना, जमा होना, कितना, स्वयं, मौसम, याद रखना, दर्ज करना, याद करना, निशान, भेजना, वर्ष, क्रम अभिलेख। चूंकि चीनी लिपि, वर्णानुक्रमिक या शुद्ध ध्वन्यात्मक नहीं, ऐसे प्रत्येक शब्द के लिये एक दूसरे से भिन्न-भिन्न संकेत हैं, अन्यथा किसी भी वर्णात्मक लिपि में इस कदर अर्थों की भिन्नता दिखाना सम्भव नहीं। अक्षरों में कितनी ही तरोड़-मरोड़ की जाए "श्र" को 52 बार लिखा नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में अर्थ समझने में संदेह और द्विविधा पैदा होती है। समय और सन्दर्भ से भाव समझने में सहायता मिलती है। तथापि इस सन्देह औरद्विविधा का निवारण ध्वनि (Tone) अथवा स्वर के उतार-चढ़ाव से किया जाता है। चीनी भाषा का साहित्यिक इतिहास बताता है कि प्राचीन काल से लेकर इसमें प्रयुक्त ध्वनियों अथवा स्वरों की संख्या विभिन्न रही है। परन्तु इस समय चीनी भाषा में चार प्रकार के स्वर प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें हिन्दी स्वरों के रूप में मोटे तौर पर इस प्रकार रखा जा सकता है --

अ	आ	आ–अ	अः
इ	ई	ई–इ	इः
उ	ऊ	ऊ–उ	उः

इत्यादि

चीनी भाषा के प्रत्येक शब्द को इन चार प्रकार के स्वरों में रखा जाता है, जैसे--फ (विकसित होना), फा (ढंग, रीति), फा–अ (बाल), फः (लिप्यन्तरण करना); फु (आदमी, पति, मजदूर), फू (पाशाक), फू–उ (भवन, महल), फुः (आदेश देना); इ (एक), ई (ठीक, उचित, उपयुक्त,) ई–इ (पहले, खतम करना या होना), इः (विचार, राय, अर्थ); श्यंग (बक्स, छाती), श्यांग (गांव, देहात), श्या-अंग (सोचना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा करना) इयांग (सामना करना, सामने)। शब्दों के ये रूप हमारी अपनी भाषा के शब्दों समान, सम्मान, सामान, सम्मन आदि की भान्ति हैं। स्वरों अथवा ध्वनियों के विकार से शब्दों के अर्थ में विभिन्नता आना सभी भाषाओं का गुण है, परन्तु चीनी भाषा में यह अन्तर अत्यधिक है। यही नहीं एक ही ध्वनि के शब्दों के भी भिन्न-भिन्न लिखित रूप तथा अर्थ मिलते हैं।

अतएव, ध्वनियों की यह रीति यद्यपि स्पष्टता लाने का बहुत प्रयत्न करती है, तो भी इससे सन्दिग्धता का पूर्णतया निवारण नहीं होता, विशेषतया जब लिङ्ग वचन, काल के भेद पर शब्दों में कोई परिवर्तन सम्भव ही न हो, और सभी शब्दों ने हर अवस्था में एक जैसा रहना हो, ध्वनि की चेष्टा नितान्त असफल सिद्ध होती है। यही नहीं ध्वनियों का उपर्युक्त रूप केवल स्वतन्त्र शब्दों तक सीमित रहता है, आम बोल चाल में यह भेद इतना स्पष्ट नहीं रहता, और सभी शब्द एक जैसे ही रूप में बोले जाते हैं। "नी" (तुम) शब्द का वास्तविक रूप "नी-इ" (तृतीय) है, इसी तरह "हाओ" (कुशल, अच्छा) शब्द "हा-अओ" (तृतीय) है, परन्तु बोल-चाल में इन रूपों में ये प्रयुक्त नहीं होते—"नी हेन हाओ!" (तुम बहुत अच्छे हैं)।

ऐसी स्थिति में चीनी भाषा में स्वराघात (stress) बहुत महत्व रखते हैं। केवल परस्पर से ही नहीं, अपितु वाक्य स्वरों से भी अर्थ भेद होता है। वाक्य विशेष के किसी शब्द पर या किसी एक भाग पर जोर देने से अभिप्राय स्पष्ट होता है। किसी शब्द को बलपूर्वक कहने से, या वाक्य के किसी स्थान पर अकस्मात रुक जाने से अर्थ बोध, होता है, जैसे—"था पू चर्र-ताओ चन-मो पान. छाई. हाओ" (वह नहीं जानता कैसा करे तब अच्छा)। इस वाक्य में छाई (तब) शब्द से पहले और बाद में स्वराघात है जिससे अर्थ स्पष्ट होता है कि "वह यह नहीं जानता कि (काम) कैसे किया जाए कि तब (परिणाम) अच्छा हो। वास्तव में इस प्रकार वाक्य दो-तीन भागों में बट जाता है। प्रथम उद्देश्य को कह कर फिर किसी निपात को लेकर अगला उद्देश्य आरम्भ होता है—"वो पाओ कोआन. केइन था च्याओ-कुआन तै-फांग. खोई लाई तै" (मैं वायदा करता. सा ... बदलने जमीन. वापिस आने का) यहां "तै" (का) प्रत्यय है तथा पहला स्वराघात कुआन के बाद तथा दूसरा फांग के बाद है—मैं वायदा करता हूँ उसके साथ जमीन का हस्तान्तरण करने का तथा वापिस आने का (मैं वायदा करता हूँ कि उसके साथ जमीन हस्तान्तरित करूँगा और फिर वापिस आऊंगा)

वास्तव में चीनी भाषा की वाक्य रचना के दो भाग हैं—उद्देश्य तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधेय । उद्देश्य भाग में कर्ता तथा उससे सम्बन्धित विषय है तथा जो कुछ कर्ता के बारे में कहा जाय वह विधेय है,—"श्रर-च्याई शांग मा यू इ-का पु-श्रर शी-खुश्रान खा-पिन तै," 'संसार ऊपर नही है एक नहीं है इच्छा शान्ति की" अर्थात् संसार में कोई भी ऐसा नहीं जिसे शान्ति की इच्छा नही है।" श्रर-च्याई शांग मा-यू इ-का (संसार में नहीं है एक भी) कर्ता भाग है, तथा पु-श्रर शी-खुश्रान खा-पिन तै (नहीं है जिसे इच्छा शांति की) उसका विधेय है। सामान्यतः किसी वाक्य में शब्द विशेष की स्थिति सन्दर्भ विशेष की द्योतक होती है। यदि कोई शब्द ग्रारम्भ में ग्रा जाय या ग्रन्य शब्द से पहले ग्रा जाए तो किसी निश्चित स्थिति या वस्तु का ज्ञान होता है ग्रौर बाद में ग्राने से ग्रनिश्चित स्थिति प्रकट होती है— "श्रोई श्र नी-तै श्यन-श्रन?" कौन है तुम्हारा ग्रध्यापक? यहां ग्रध्यापक का होना निश्चित है, पूछने वाला केवल उसे ठीक-ठीक जानना चाहता है। परन्तु इसके विपरीत "नी-तै श्यन-श्रन श्र श्रोई ?" "ग्रापका ग्रध्यापक है कौन ?" इसमें जोर श्यन-श्रन शब्द पर दिया गया है। पूछने वाला यह जानना चाहता है कि बहुत से सम्भव व्यक्तियों में से ग्रध्यापक कौन है।

इसमें सन्देह नही कि चीनी भाषा संसार में सब से कठिन भाषाग्रों में से एक है, साथ ही यह एक ऐसी भाषा है जिसमें संदिग्धता ग्रौर ग्रस्पष्टता के बहुत कारण हैं। विभिन्न प्रान्तों की बोलियां एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं, दूर प्रान्तों के लोग एक दूसरे की बात समझ भी नहीं सकते। परन्तु, चूंकि समस्त चीन में एक ही लिपि प्रचलित है, तथा वह संकेतात्मक है, इसलिये ग्रध्ययन तथा प्रचार के माध्यम के रूप में यह बहुत सफल सिद्ध हुई है। विषयों के संकेतों के ग्राधार पर बनी यह लिपि सारे देश में एक रूप में समझी जाती है, चाहे विभिन्न इलाके के लोग विभिन्न संकेतों को विभिन्न उच्चारण देते हों, ग्रौर इस प्रकार राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता में महान कार्य करती ग्राई है। परन्तु लिपि की भी ग्रपनी ही समस्या है। उच्च-विद्वानों को भी ऐसे शब्द पढ़ना या समझना ग्रासान नहीं जो उसकी शब्दावली से बाहर हों, ग्रौर न ही ऐसे शब्द प या लिखे जा सकते हैं, जिनकी ध्वनि चीनी भाषा की ध्वनियों के ग्रनुकूल न हों। वास्तव में चीनी भाषा से भिन्न उच्चारण चीनी लिपि में व्यक्त करना ग्रसम्भव है। कोई भी शब्द पाठक तब तक नहीं पढ़ सकता जब तक कि वह इसके रूप ग्रौर उच्चारण से परिचित न हो। चीनी भाषा ग्रौर लिपि के बारे में यह कहना बिल्कुल उचित है कि इस के दस लाख शब्द दस लाख व्यक्ति हैं जिन्हें ग्रापको शकल ग्रौर नाम दोनों तरह भली प्रकार जानना ग्रौर समझना होगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यथा आप साहित्य [illegible] नहीं सकते। इस तेज़ी से विकास कर रहे युग में चीनी लिपि देश के लिये बिलकुल अपर्याप्त है। अब जबकि विज्ञान सम्बन्धी नये नये आविष्कार हो रहे हैं, चीन को भी नये-नये संकेत बनाने पड़ते हैं, जिन्हें पढ़ना या लिखना इतना ही कठिन है जितना इनका संकेत बनाना। चीन के लोग और चीन की सरकार इस ओर ध्यान दे रही है सन् 1911 में ही जब चीन में वर्तमान सरकार ने क्रान्ति के बाद प्रशासन सम्भाला [illegible] के अधीन 39 वर्णों की एक लिपि का आविष्कार किया गया था। परन्तु बाद में लिपि के सुधार की अपेक्षा सारे देश के लिये समान भाषा की ज़रूरत की ओर अधिक ध्यान गया, जिसका विशेष कारण यही था कि जब तक भाषा एक न हो लिपि को ध्वनि के आधार पर व्यवस्थित करने से कोई लाभ न होगा फिर भी लिपि में परिवर्तन लाने के लिये प्रयत्न जारी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कविता को पंजाब की देन

सत्यपाल गुप्त

पंजाब की यह पवित्र भूमि आदिकाल से हिन्दी साहित्य के लिये उर्वरा रही है। देश के अन्य भागों की तरह इस प्रदेश में भी प्रारम्भ से हिन्दी एवं ब्रज भाषा का सुन्दर साहित्य रचा जाता रहा है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि पंजाब प्रारम्भ से ही कवियों, लेखकों एवं साहित्य साधकों की भूमि रहा है। यह तो सभी जानते हैं कि ईश्वरीय ज्ञान की वैदिक कविता की झंकार पंजाब की नदियों के कूलों पर ही गूंजी थी। कई बार यह गलत धारणा भी बन गई कि यह प्रदेश हिन्दी साहित्य निर्माण एवं प्रचार की दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ प्रदेश है। किन्तु जब हम पंजाब की महान साहित्य सेवा पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें यह धारणा निमूल ही प्रतीत होती है। जहां पंजाब ने हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्यकारों को जन्म दिया वहां इस भाषा की अभिवृद्धि में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

पंजाब में रचित हिन्दी गद्य साहित्य, कहानी उपन्यास, नाटक आदि का परिचय पृथक लेखों द्वारा दिया जा चुका है इस लेख में पंजाब में आदि काल से कविता की जो निरन्तर धारा बही है उसका संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। इस कविता रूपी सरिता का विषय चाहे समय एवं परिस्थितियों के कारण बदलता रहा हो किन्तु यह प्रवाह कभी रुका नहीं। यह तो हो सकता है कि कभी विकट परिस्थितियों के कारण यह मन्द पड़ गया हो किन्तु इसकी कड़ी कभी टूटी हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। यह तो सभी को विदित है कि हिन्दी के सर्वप्रथम महाकवि और पृथ्वीराज रासो के लेखक चन्दबरदाई पंजाब के गौरव थे। इस लेख में मैंने कालक्रम अनुसार इन लेखकों का परिचय प्रस्तुत न करके विषय क्रमानुसार इसे दिया है ताकि हमें यह पता लग सके कि नाथ और सिद्ध वीर, संत एवं भक्ति, सूफी आदि बिभन्न विषयों पर कितनी भारी संख्या में काव्य ग्रन्थ लिखे गये।

नाथ एवं सिद्ध काव्य :—नाथ पंथ का प्रभाव एवं प्रचार देश के अन्य भागों के साथ साथ पंजाब और इसके आसपास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याप्त रूप में हुआ । इस नाथ पंथी योगियों का निश्चित समय क्या था इसे पूरी तरह नहीं कहा जा सका किन्तु इतना मानना ही पड़ता है कि १०वीं सदी के बाद ही इनका नामोल्लेख मिलता है । इन नाथ और योगियों का क्षेत्र भारत के पश्चिमी भाग में विशेषतः पंजाब और राजपूताने में था । योगियों के बारह पंथों में से छः के प्रवर्तक एवं संत भाषा के आदि कवि गोरखनाथ का नाम पंजाब में आज तक बड़े आदर से लिया जाता है। डा० बड़थ्वाल ने आप द्वारा रचित ४० के लगभग हिन्दी ग्रन्थ बताये है तथा १७वीं १८वीं शताब्दी की पुरानी हस्तलिखित प्रतियों से "गोरखबानी" में उनका संग्रह किया है ।

जालंधर नाथ :—आपको आदि नाथ भी कहा जाता है क्योंकि सर्वप्रथम सिद्धों से अपनी परम्परा आपने अलग की और पंजाब की ओर इनका आगमन हुआ । डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के अनुसार जालन्धर पीठ नामक तांत्रिक स्थान में उत्पन्न होने के कारण ही इन्हें यह नाम दिया गया परन्तु आचार्य शुक्ल जी के अनुसार पंजाब का जालंधर शहर उनकी स्मृति के रूप में प्रसिद्ध है। जायसी ने अपने पद्मावत में जिस बालनाथ के टीले का नाम दिया है वह इन्हीं जालंधर नाथ का टीला था । इनका समय भी दसवीं सदी से बारहवीं सदी तक माना जाता है । आप द्वारा रचित सात ग्रन्थों में "विमुक्त मंजरी गीत" "हुंकार चित्र विन्दु भावना क्रम" और "शुद्धि वज्र प्रदीक" बहुत प्रसिद्ध हैं ।

चर्पट नाथ :—पंजाब के पहाड़ी प्रदेश चम्बा में बहुत देर तक रहे । चम्बा से आपका सम्बन्ध इस बात से भी प्रकट होता है कि चम्बा के राजमहल के सामने वाले मन्दिरों में चर्पट नाथ का एक मन्दिर है। आप स्वतंत्र प्रवृति के व्यक्ति थे ।

चौरंगी नाथ :—आपने अपने को 'राजा सालबाहन' का पुत्र मछन्दर नाथ का शिष्य और गोरख नाथ का गुरु भाई बताया है । आपने "प्राण संकली" की रचना की । कुछ विद्वानों का विचार है कि यही पूरन भक्त थे जिनका किस्सा पँजाब में प्रसिद्ध है ।

रतननाथ :—आप भटिंडा के राजा विनयपाल के मन्त्री थे तथा बाद में योगी हो गये थे । भटिण्डा में इनका मजार बना हुआ है । इनके "अवलि सलूक" और "काफिर बोध" दो ग्रन्थ माने जाते हैं ।

इन प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त गज़नवी हाकिमों के लाहौर दरबार में एक और कवि मसऊद बिन साऊद हुए । आपने अरबी, फारसी तथा हिंदवी के तीन दिवान लिखे किन्तु फारसी के सिवा और कोई दिवान उपलब्ध नहीं है। आपके अतिरिक्त नाटेसरी सम्प्रदाय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथ अम्बाला और करनाल के हड़वाल, जाफर पीर आदि मुसलमान सिद्ध संत हुए इन सब का सम्बंध यद्यपि पंजाब से था किन्तु इनके विषय में कोई ठोस जानकारी नहीं मिलती ।

वीर काव्य :—जिस समय में मुसलमानों के आक्रमण उत्तर पश्चिम की ओर से भारत पर हो रहे थे उस समय छोटे छोटे राजाओं के आश्रित चारण कवियों ने उनकी प्रशंसा में वीर काव्य की रचना की। इस काव्य में राजाओं की प्रशंसा का मुख्य उद्देश्य केवल शत्रु के विरुद्ध उसको उकसाना समझा जाता था। रासो लिखने की परम्परा भी इस काल में ही पड़ी जिनमें प्रमुख पृथ्वी राज रासो माना जाता है। इस काल में वीर गाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं प्रबंध काव्य के रूप में और वीर गीतों के रूप में । जहां पंजाब के पड़ौसी प्रदेशों में खुमान रासो, बीसलदेव रासो, जय चन्द प्रकाश, आल्हा एवं रणमल छन्द आदि वीर काव्य लिखे गये वहां पंजाब में रचित प्रमुख महाकाव्य चन्द द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो ही है । शायद कुछ और भी काव्य रचनाएँ इस प्रदेश में हुई हों किन्तु उनका कोई विशेष उल्लेख एवं महत्व नहीं समझा जाता ।

चन्द वरदाई :—आपको हिन्दी का सब से पहला महाकवि होने का गौरव प्राप्त है। आपके पूर्वज लाहौर के निवासी थे। इसी नगर में चन्द का भी जन्म हुआ। यह ब्राह्मण और भट्ट वंश से संबंध रखते थे। आप व्याकरण, ज्योतिष, न्याय, दर्शन, शास्त्र आदि विद्याओं के विद्वान् थे। पृथ्वीराज के राज्य मन्त्री, राजकवि, सामन्त एवं सखा थे। एक किंवदन्ति के अनुसार तो आप दोनों की मृत्यु भी एक ही समय में हुई थी। आप का रासो अढ़ाई हजार पृष्ठों का एक महाकाव्य है जो ६९ सर्गों में विभक्त है। पद्य संख्या लगभग एक लाख है। इसमें रोला, छप्पय, कवित्त, गाहा, आर्या, और चौपाई आदि प्रसिद्ध छन्दों का प्रयोग किया गया है। शैली की दृष्टि से यह एक वीर रस पूर्ण प्रबन्ध काव्य है। कुछ समय से इस ग्रंथ की प्रमाणिकता के विषय में एक विवाद चल रहा है जिसका अभी कोई निर्णय नहीं हुआ। न ही यह कहा जा सकता है कि कितनी मात्रा में प्रक्षिप्त अंश इसमें है। यह हिंदी का आदि महाकाव्य है और चन्द पंजाब का गौरव है इसमें कोई संदेह नहीं ।

संत एवं भक्तिकाव्य :—भारत पर लगातार होने वाले विदेशी आक्रमणों के कारण तथा आपसी फूट और मिल कर सामूहिक रूप में एक दूसरे की सहायता न करने के कारण आम जनता का स्वधर्म और स्वदेश-रक्षा का विश्वास उठ चुका था। किसी भी बाहरी आक्रमणकारी के साथ लोहा लेने की भावना नष्ट प्राय हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुकी थी। ऐसी स्थिति में ग्राम जनता के पास केवल एक ही चारा था कि वह भगवान की शरण ले और दुःख तथा कष्टों को भगवान के सहारे छोड़ दे। देश के अन्य भागों में भी इसी भावना को लेकर बहुत प्रचुर मात्रा में काव्य रचना हो रही थी इस प्रदेश में भी इस विषय पर काव्य धारा बहने लगी और यूं कहिए कि बहुत वेग से बहने लगी। यहां बहुत सुन्दर कविता की सृष्टि हुई। इस धारा के अग्रनीय संत कवियों में हम गुरु नानक देव जी, गुरु अंगद देव जी, गुरु अमरदास जी, गुरु रामदास जो, गुरु अर्जुन देव जो, गुरु गोविंद सिंह जो आदि महापुरुषों को ले सकते हैं। इन गुरुओं द्वारा रचा गया भक्ति काव्य बहुत ही उच्च कोटि का माना जाता है जिस से प्रभावित होकर बहुत से व्यक्तियों ने अपना जीवन सुधार लिया। इसी धारा के कवि भाई गुरदास जी भी हुए आपने बहुत सुन्दर काव्य रचना की। गुरु ग्रन्थ साहिब के सम्पादन में भी इनका पर्याप्त सहयोग मिलता है। आपकी रचनाओं में जहां निर्गुण धारा का चित्र देखने को मिलता है वहां सगुण काव्य धारा के भी दर्शन होते हैं। आपके काव्य में गुरु नानक देव जी के सिद्धान्तों की व्याख्या मिलती है। आपने संस्कृत का भी प्रयोग प्रधान रूप से अपनी कविता में किया है किन्तु इसे भी ब्रज के अनुरूप ढाल लिया है।

श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने न केवल स्वयं महान रचनाएं जैसे "विचित्र नाटक" "जफ़रनामा", "सौ साखी" "जाप" और चण्डी चरित्र" आदि हमें दी जो आपके महान कवि एवं अनेक भाषाओं के विद्वान् होने का परिचय देती हैं बल्कि इस महापुरुष की सभा में विभिन्न भाषाओं और भिन्न भिन्न विषयों से सम्बन्धित रचना करने वाले ५२ कवि रहा करते थे। इन कवियों में हंसराम, उदयराम अणीराय, अमृतराय, अल्लू, आशासिंह, आलम, ईश्वरदास, सुखदेव, सुखासिंह, सुदामा, सेनापति, आदि हैं। इन सभी कवियों की कविता का संग्रह "विद्याधर" नाम से किया गया था किन्तु यह संग्रह कुछ मुसलमानों की धर्मान्धता के कारण पूर्ण न रह सका। इसके केवल बासठ पन्ने आनन्दपुर में मिल सके। उन्हीं के आधार पर उन सब कवियों में से कुछ के छन्द मिल सके हैं।

श्री गुरु दशमेश के इन कवियों के अतिरिक्त निम्न लिखित प्रमुख कवि भी हुए जिन्होंने भक्तिपरम्परा को जारी रखा :—

गरीबदास :—इस कवि का जन्म घुड़ानी (रोहतक) में हुआ। यह जाति के जाट और जन्म के भक्ति कवि थे। सन्तों के प्रभाव से आपने नवीन पंथ की स्थापना की। गृहस्थ में रह कर अपने सिद्धान्तों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश दिया । आपके ग्रंथ का नाम 'गरीब.दास' है ।

वीर भान :—ये रैदास की परंपरा में ऊधा दास के शिष्य थे । ईश्वर को 'सत्यनाम' कहने के कारण इनके ग्रन्थ का नाम 'सतनामी' पड़ा । इनका ग्रन्थ 'पोथी' है । ये सतनामी भक्त की वेशभूषा में रहते हुए भी खेती व्यापार करते थे ।

संत रेण :—आप भूदन गांव के जो मालेरकोटला रियासत में था निवासी थे । आप उदासी साधु थे । आपका जन्म १७६२ बिक्रमी में हुआ । उदासी साधु बाबा साहब दास की संगति होने के कारण आपका झुकाव अधिकतः वेदान्त दर्शन की ओर हुआ । आपने पांच काव्य ग्रन्थों की रचना की जिनके नाम हैं "मन प्रबोध" "गुरु नानक विजय" "गुरु नानक बोध" "बचन संग्रह" (अन भय अमृतग्रन्थ) और "उदासी बोध" । आप संस्कृत, हिन्दी और पंजाबी के बहुत बड़े विद्वान थे । आपने अधिक काव्य रचना हिन्दी में की है । इस काव्य पर पंजाबी का भी अधिक प्रभाव दिखाई देता है । आपके दो शिष्यों भगत रेण और गोविन्द राम का होना भी कुछ लोग मानते हैं ।

सूफी काव्य :—पंजाब सूफी मत का बहुत अच्छा केन्द्र रहा है । मैंने इस लेख में उन ही सूफ़ी कवियों का उल्लेख किया है जिन्होंने पंजाब में रहकर या पंजाबी होते हुए अपनी रचनाएं की हैं ।

बाबा फरीद :—आपका पूरा नाम फ़रीदुद्दीन भी है । आपका जन्म १२३० वि० (११७३ ई०) में हुआ है था । इनके प्रचार से सूफी मत दक्षिणी, पंजाब में फैला । आपने फारसी, मुलतानी और उस समय की हिन्दवी (हिन्दी) में अपनी कविता रची । इनकी वाणी में बिल्कुल प्राचीन हिन्दी का रूप मिलता है । इनका देहावसान 1320 वि० अर्थात् 1265 ई० में हुआ ।

अमीर खुसरो :—इनका जन्म 1310 विक्रमी में हुआ । यह निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य थे । मुलतान के सूफियों से आपका सम्बन्ध वर्षों रहा तथा आप पंजाब में देर तक निवास करते रहे इसी कारण इनकी हिन्दी रचनाओं में कहीं कहीं पंजाबीपन आ गया है । आपने जहां फारसी काव्य की सुन्दर रचना की वहां अन्य भाषाओं की भी कविता लिखी । अनेक प्रकार की रचनाओं में "खालिक बारी, 'पहेलियां, "मुकरनीयां, दो सखुने,, और फारसी तथा हिन्दी से मिश्रित रचना के साथ साथ कुछ अनुभूत नुस्खे भी लिखे । आपके लिखे 99 ग्रंथ कहे जाते हैं जिनमें लगभग 5 लाख शेर हैं किन्तु इनमें से 22 ग्रन्थों का ही पता चलता है । इनकी भाषा में व्रज और संस्कृत के तद्भव शब्दों के साथ साथ खड़ी बोली का शुद्ध रूप भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है । इनकी मृत्यु 1682 वि० (1325 ई०) में हुई ।

शेख अबुअली कलंदर :—आपका जन्म पानीपत, जिसका पुराना नाम 'पाणिपथि' था, में 1263 वि० में हुआ। आपकी रचना में खड़ी बोली और बांगरु भाषा का प्रयोग मिलता है । आपकी मृत्यु 1382 वि० में हुई ।

शेख जमाली :—आप वर्षों पंजाब में रहे इसका पता इस बात से चलता है कि आपकी भाषा में पंजाबी के क्रिया शब्दों की समानता है । आपकी भाषा फारसी मिश्रित हिन्दी है ।

शेख अब्दुल कइस (अलखदास) आप फारसी के साथ साथ हिन्दी के भी विद्वान् थे तथा हिन्दी कविता लिखते समय अलखदास नाम लिखा है । इनका सम्बन्ध पंजाब के सूफीकवियों से रहा था । कई ग्रन्थ आपके लिखे माने जाते हैं जिनका सम्पादन मौलाना खिज्र जौनपुरी ने किया । आपकी मृत्यु 1594 वि० में हुई ।

शाह हुसैन :—आपका जन्म लाहौर में 1596 वि० में हुआ । आपको विरह का कवि माना जाता है । जहां आपके काव्य में पंजाबीपन की झलक देखने को मिलती है वहां हिन्दी में भी आपकी रचनाएँ रागों और श्लोकों में मिलती हैं । भाषा में ब्रज और साधारण उर्दू शब्दों का प्रयोग मिलता है । मृत्यु 1593 ई० में हुई ।

मुहम्मद अफजल :—आपको पानीपत के सूफी कवि के नाम से याद किया जाता है । इन्होंने अपनी रचनाएँ हिन्दी साहित्य को 'बारह मासा' की शैली में दी हैं । भाषा में फारसी और पंजाबी के शब्द मिलते हैं । आपकी रचना का नाम 'विकट कहानी' है । इस रचना की शैली हिंदी के प्रबंध काव्य के समान है । आपका देहावसान 1683 वि० में हुआ ।

बाबा लाल :—आपका जन्म कसूर जिला लाहौर में 1647 वि० में हुआ इन्होंने कबीर की भांति दोहे साखियां लिखीं और चौपाइयां तथा कुछ गीत भी लिखे । रचना में संस्कृत, फारसी और खड़ी बोली के शब्द अधिक हैं । मृत्यु 1767—87 वि० के बीच मानी जाती है।

शेख शरफ :—आपका जन्म बटाला में हुआ तथा लाहौर में शेख मुहम्मद फ़ाजिल के शिष्य बने । इनकी रचना पंजाबी और हिन्दी दोनों भाषाओं में मिलती है। इनकी मृत्यु 1781 वि० में हुई ।

बुल्ले शाह :—आपका जन्म लाहौर जिला के पंडोकी गांव में 1773 वि० में हुआ । इनकी रचनाओं में बारहमासा, काफियां और सीहरफियां आदि कई रूप मिलते हैं । आपके प्रेम गीत बहुत प्रसिद्ध हैं । आपकी मृत्यु 1815 वि० में हुई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेख बहाउद्दीन :—आप लाहौर, सरहिन्द, पाकपटन, हांसी, हिसार, रोहतक और पानीपत में वर्षों तक निवास करते रहे । इनके दो गुरुओं के नाम मिलते हैं । एक रोहतक के मुल्लां अनवर दूसरे पानीपत के शेख अल्लाहदाद । इनकी रचना में व्रज भाषा शब्द और क्रिया के रूपों में पर्याप्त मिलती है ।

शेख नसीरूल हक :— आपने हिन्दी और पंजाबी में कई कविताएं लिखीं ।

करग अली शाह :—बटाला के आसपास आपका निवास माना जाता है। आपकी हिन्दी रचना रागों में मिलती है। आपकी भाषा व्रज है ।

मूसा :—आप पंजाब के प्रसिद्ध सूफी कवि थे । इनकी कविता में हिन्दी और उर्दू का संयोग मिलता है । आपने शब्दों को व्रज भाषा के रूप में ढालने का उपक्रम भी किया ।

शाह मुराद :—आप पर हिन्दी प्रेम काव्य का प्रभाव पुरी तरह दिखाई देता है। यह भी 18वीं सदी के ही सूफी कवि माने जाते हैं ।

गुलाम नीलानी:—आपकी रचनाओं में चौपाइयां बहुत प्रसिद्ध हैं । छन्द की दृष्टि से उन्हें चौपाई कहना ठीक न हो परन्तु उनकी अन्तिम तुक छोटी छोटी पंक्तियों में एक जैसी मिलने के कारण ही शायद चौपाई कह दिया जाता है । इनका देहान्त 18वीं सदी के अन्त में हुआ ।

मीरां शाह :—यह जालंधर के आसपास के रहने वाले कहे जाते हैं । आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गुलिस्तान मीरांशाह है जिसमें उर्दू और हिन्दी की अनेक कविताएँ हैं । आपने बिशनपदे भी रचे हैं जो गाये जाते हैं । भाषा में रंगीनी है व्रज भाषा और तद्भव शब्दों का रूप पर्याप्त मिलता है ।

सभाचन्द सौंधी :—आप जालन्धर के रहने वाले थे । आपकी प्रसिद्ध रचना "कथा काम रूप" है। यह रचना फारसी की मसनवी शैली पर रची गई दोहा चौपाइयों में है । इसमें भारतीय और इरानी रूढ़ियों का मिश्रण है। आपकी मृत्यु 18वीं सदी विक्रम के उत्तरार्द्ध में हुई ।

सूरजदास :—यह पंजाब के निवासी थे तथा शहनशाह शाहजहां के समकालीन माने जाते हैं । आपकी रचना "नल दमयन्ती" की कहानी है। इस कथा को सूफ़ी सिद्धान्तों के अनुसार ढाल लिया गया है ।

बंसी :—यह कवि नाभा के राजा भगवान सिंह के आश्रय में रहता था । इन द्वारा लिखी प्रसिद्ध पुस्तक "सुमन विलास" है । इसको फारसी की प्रेम कथा गुलवकावली का रूपान्तर अथवा अनुकरण कहा जा सकता है । काव्य में व्रज की छाप सर्वत्र दिखाई देती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी मृत्यु १६३० से ४० वि० के आसपास कही जा सकती है ।

जहां पँजाब में निर्गुन भक्ति साहित्य रचा गया वहां सगुण भक्ति काव्य की भी धारा बही तथा भगवान राम और भगवान कृष्ण के महान् व्यक्तित्वों से प्रभावित होकर कवियों ने इनका यशोगान किया । ऐसे कवियों में पहले हम राम भक्ति धारा के प्रमुख कवियों का वर्णन करेंगे ।

सोढ़ी मिहरबान :—यह कवि जहांगीर का समकालीन था तथा इसने लगभग सात ग्रन्थों की रचना की । जिनमें महाभारत, वार पीरां दी आदि हैं । आपकी सब से प्रसिद्ध रचना "आदि रामायण" है यह अठारह कथाओं में समाप्त हुई है । कथा का आरम्भ अन्य रामायणों की अपेक्षा नवीन ढँग से किया गया है । भाषा में हिन्दी और पँजाबी दोनों का मिश्रण है इनका देहावसान शाह जहां के समय में हुआ ।

हृदयराम :—यह कवि भी राम का परम भक्त था इसीलिये इसने अपने अनुपम ग्रँथ "हनुमन्नाष्टक" की रचना की । आपकी भाषा में ब्रज और सँस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ साथ पँजाबी के शब्दों का भी प्रयोग पंजाब निवासी होने के कारण हुआ है ।

साधु गुलाबदास :—आपका जन्म १७८६ वि० में लाहौर जिला की तहसील चूनियां के अन्तर्गत सखव (सेखा) गांव में हुआ । इस कवि ने "भावरसामृत", "मोक्ष पँथ", "अध्यात्म रामायण" तथा "प्रबोध चन्द्रोदय" नाटक लिखे ।

कवि की एक और रचना "राम नाम प्रताप प्रकाश" भी कही जाती है। यह कवि संस्कृत और ब्रज के बहुत प्रसिद्ध विद्वान् थे ।

भाई संतोष सिंह :—आपका जन्म १८४५ वि० में तरनतारन के निकट हुआ। आपने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ "रामायण" कैथल में लिखा । "रामायण" के अतिरिक्त आपने दसों गुरुओं की जीवनी के सम्बन्ध में "गुरु प्रताप सूर्य" नामक बहुत बृहद एवं सुन्दर ग्रन्थ लिखा ।

बुद्ध सिंह लाहौरी :—यह महाराजा रणजीत सिंह के समकालीन कवि थे । आपने लगभग छः ग्रन्थों की रचना की जिनमें "उद्भुत नाटक रामायण" बहुत लोकप्रिय हुआ । इस काव्य ग्रन्थ के अतिरिक्त कवि ने "बुद्धि वारिधि", "नीति ग्रन्थ", "माधवानल कामकंदला" प्रेम कथा सम्बन्धी पुस्तक, शीघ्र बोध, ज्योतिष की पुस्तक भी लिखी ।

कवि निहाल :—यह पटियाला दरबार के प्रसिद्ध कवि थे । महाराज कर्मसिंह के समय में आपने निम्नलिखित पुस्तकें लिखीं । "रामायण रामचन्द्रोदय", "दशम स्कन्ध भागवत", "साहित्य शिरोमणि", "दान पर्व महाभारत", "माधव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदान", "लघुजातक भाषा चन्द्रिका", "कथा राजे हरिश्चन्द्र की", "गौरां मंगल", "रुक्मिणी मंगल", आदि । महाराजा नरेन्द्र सिंह के समय इस कवि ने "हरिवंश पुराण" को छंदबद्ध किया । इस प्रसिद्ध रामकाव्य के अतिरिक्त कवि लाल सिंह 'दास' द्वारा लिखित "फूल माला रामायण, जो १८६४ वि०में लिखी गई, कवि वीरसिंह वल द्वारा लिखित "सुधा सिंधु रामायण" जो १६०२ वि० में रची गई, कवि कृष्ण लाल कृत "राम चरित रामायण" कवि कीर्ति सिंह द्वारा लिखित "सतसय्या रामायण" और "अनूप रामायण", कवि सन्त सिंह कृत "राम चरित मानस", जो १६४४ वि० में लिखी गई , साधु गोविन्ददास कृत "राम गीता", "राम हृदय स्तोत्र ", कवि गुरदास सिंह द्वारा रचित "बारह माहा श्री रामचन्द्र जी का", बसावा सिंह भल्ला द्वारा लिखित "राम-चरित रामायण" तथा रतन हरि (रत्नसिंह) द्वारा रचित "राम रहस्य रसाल" उल्लेख-नीय हैं । इन कवियों तथा रचनाओं के अतिरिक्त और भी बहुत सा राम काव्य, यहां रचा गया होगा किन्तु उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ।

जहां पँजाब में राम काव्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया वहां कृष्ण काव्य भी कोई कम नहीं रचा गया । कृष्ण काव्य पर भी यहां के कवियों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थ दिये हैं । कुछ विद्वान तो कृष्ण काव्य के महाकवि सूरदास जी को भी इस प्रदेश का ही जन्मजात मानते हैं । तथा सीही गांव जो ज़िला गुड़गांव तहसील वल्लभगढ़, में स्थित है को उन की जन्म-भूमि होने का गौरव देते हैं ।

खुशहाल राय :—इस कवि का जन्म १७०० ई० के आसपास हुआ माना जाता है। इस काव्यकार के संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि इनका जन्म पंजाब में हुआ तथा आपने कृष्ण सम्बन्धी सुन्दर पद लिखे । भाषा में पंजाबी लहंदा, संत भाषा के साथ साथ ब्रज और खड़ी बोली का भी प्रयोग मिलता है ।

मस्तराम :– आपका जन्म १८०० से १८१० वि० तक माना जाता है। आप द्वारा रचित "सम्वाद उधो तथा गपियां का" सुन्दर ग्रन्थ है ।

केशवदास :—आप द्वारा रचित ग्रन्थों में "बारह मासा कृष्ण जी का", "अष्ट नायिका", "प्रेम पचीसी", में कुछ पद कृष्ण से सम्बन्धित हैं । कवि ने नीति और ज्योतिष सम्बन्धी भी पुस्तकें लिखी हैं ।

चन्द्र शेखर वाजपेयी :—यह महाराजा कर्मसिंह पटियाला नरेश के राजकवि थे । कृष्ण साहित्य सम्बन्धी आपकी रचना "हरि भक्ति विलास" और "वृन्दावन शतक" बहुत सुन्दर हैं । इनके अतिरिक्त आपने ज्योतिष, राजनीति, अलंकार, पुराण आदि विषयों पर भी रचनाएं कीं । आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा लिखित "हमीर हठ" और "माधवी बसंत" भी बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

जातिराम :—आपने पटियाला दरबार में रह कर तीन ग्रन्थ रचे जिनके नाम है :—"सुदामा मंगल", "रुक्मिणी मंगल" और "गौरां मंगल"। पहली दो रचनाएं कृष्ण साहित्य सम्बन्धी हैं।

अमीरदास :—यह कवि १८८० वि० के आसपास का माना जाता है। आप द्वारा लिखित "श्री कृष्ण साहित्य सिन्धु" और "ब्रजराज विलास सतसई" कृष्ण सम्बन्धी सुन्दर रचनाएं हैं तथा "सभा मण्डन" वैद्य कल्पतरु अन्य विषयक। आप की रचनाओं में ब्रज, संस्कृत, फारसी और पंजाबी के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

बसंत सिंह ऋतुराज :—आपका जन्म पटियाला के गांव खेड़ी में १८८० वि० में हुआ। इन द्वारा रचित पुस्तकों में "श्री कृष्ण लीला" तथा "महाभारत" कृष्ण साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। कवि ने शेख सादी की "गुलिस्तां बोस्तां" का छंदबद्ध अनुवाद भी किया। इस कवि ने "बसंत सतसई" की भी रचना की।

उद्धादास :—पटियाला में आपका जन्म हुआ। आप द्वारा लिखित १६ ग्रन्थ कहे जाते हैं जिनमें कृष्ण सम्बन्धी "सुदामा चरित" और "संयोगी बारहमाह" बहुत प्रसिद्ध हैं। कवि ने ज्योतिष और नीति सम्बन्धी भी रचनायें की हैं।।

ग्वाल :—यह कवि महाराज रणजीत सिंह से लेकर महाराज दलीप सिंह तक लाहौर में रहा तथा १८६१ वि० के आसपास नाभा में आ गया। आपकी कृष्ण साहित्य सम्बन्धी पुस्तकों में "कृष्ण जू को नख शिख", "गोपी पचीसी", "राधा माधव मिलन", और "राधा अष्टक" महत्त्वपूर्ण हैं। कृष्ण साहित्य सम्बन्धी इन पुस्तकों के अतिरिक्त आपने साहित्य और अलंकार, वीर काव्य इतिहास पर आधारित शृंगार रसपूर्ण काव्य भी लिखा। कवि की मृत्यु नाभा में १९१८ से २५ वि० में हुई मानी जाती है।

ऊपर लिखित प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त हृदयराम द्वारा रचित 'सुदामा चरित" और "रस तरंगिणी (अलंकार सम्बन्धी), फतेराम कृत "गीत गोविन्द" जो १९११ वि० में लिखी गई, साधु गोविन्ददास कृत "रले मिले" और "जेकर" (इनमें श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कवित्त आदि हैं), कवि खेमराज लिखित "रास-विलास", चतुर दास रचित "श्रीमद-भागवत भाषा", गुलाब कवि की कृति "रुक्मिणी मंगल" हरिदास फते चन्द लिखित "श्री कृष्ण चरित", बसाऊमल कृत "रुक्मिणी मँगल और "गौरीमँगल", राम लाल कृत "रुक्मिणी मंगल", संतदास लिखित "गोपी कृष्ण की बाराखड़ी" (इसमें 'क' से लेकर 'ज्ञ' तक अक्षरों में दोहों की रचना की गई है।), नथमल कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत 'बारह मासा" और "स्तुति श्री कृष्ण जी" तथा साहब दास कृत "सुदामा चरित" का भी विशेष महत्व है। चाहे साहित्य की दृष्टि से ये रचनायें बहुत उच्च कोटि की न हों किन्तु ये रचनाएं पंजाब के कवियों की कृष्ण के प्रति भक्ति भावनाओं का तो प्रतीक हैं ही ।

नाथ, सिद्ध वीर, संत, भक्ति सूफी, राम कृष्ण आदि प्रमुख विषयों पर कविता रचना के अतिरिक्त इस पवित्र भूमि पर अन्य विषयों जैसे वैद्यक, छन्द, न्याय, वेदान्त, योग, इतिहास, भूगोल, शिल्प, कथा, तथा अन्य रचनाओं की भी प्रचुर मात्रा में रचना हुई है । प्रत्येक विषय पर अनेकों कवियों ने अपनी कविताएं लिखी हैं । इसलिये प्रत्येक कवि की मिलती जुलती रचनाओं का नाम यहां न देकर केवल ऐसे कवियों का नाम ही दिया गया जिनकी काव्य रचनाओं को प्रमुख स्थान प्राप्त है ताकि प्रत्येक विषय में रुचि रखने वाले भिन्न-भिन्न व्यक्ति इन कवियों की रचनाओं का मूल्यांकन कर सकें । इन कवियों में से अनेकों कवियों का जन्म मरण अज्ञात है किन्तु उनकी रचनाओं में दिये सम्वत् से यह पता चलता है कि वह रचना किस सम्वत् में रची गई । विभिन्न विषयक काव्य की रचना करने वालों में हम सर्वश्री मनोहरदास निरजनी, रामचन्द्र दयाल अनेमी, अनाथ पुरी, कवि भान, टहकन कवि, सेनापति, बुधसिंह, ब्रह्मानन्द मेघ मुनि, छज्जू भक्त, राम सुखराय, लाला हरजस राय, परमानन्द, बलीराम, काशीराम, साधु ज्ञानदास, रामसिंह, आनन्द राम, किशोर दास, हरि बल्लभ, दल सिंह, जयसिंह, दास कवि, ढोटा भक्त, बाबा सरूपदास भल्ला, महाराज फते सिंह आहलूवालिया, हरीसिंह, सदानन्द, धर्मसिंह, यति गंगाराम, बनवारी बन्ना, ज्ञान सिंह, राजा निहाल सिंह, महाराज नरेन्द्र सिंह, हरिदयाल, इलायची राम, टहल सिंह, कुँवर बिक्रम सिंह, बाबा सुमेर सिंह, ज्ञानी सन्त सिंह, मुनि आत्मा राम, उत्तम सिंह, संत ठाकुर दास, प्रेम सिंह, हजूरा सिंह, दित्तेराय, नारायण सिंह 'प्रेम निधि', साधु निश्चल दास, कवि गोपाल, उज्वल सिंह, ब्रह्म, भगवान सिंह बनूड़ी, सन्त मंगल सिंह ज्योतिषी, राम कवि जय सिंह सैणी, रूप चन्द, ऋषि राम, चण्डी सहाय, बाबा रामदास, निहाल सिंह निर्मल, मैंन कवि, खेमदास कवि, मोहरसिंह, पाखर मल्ल तुल्ली, वीर कवि, साहिब सिंह मृगेन्द्र, कान्ह सिंह (नाभा), मूल सिंह लहरी, कर्म सिंह, नील कण्ठ, सोहन कवि, पँ० तारा सिंह 'नरोत्तम' महाराज राजेन्द्र सिंह, महाराजा रिपुदमन सिंह, धनराज, गुरुमुख सिंह 'जान', अन्नीराय, सीताराम, जयकिशन, हरि रामदास, हरि चरणदास, अबदुल रहमान प्रेमी, रामनाथ, आनन्दघन, कृष्ण भट्ट, रामधन, हुक्म सिंह, कृपाराम, अन्तरयामी (परमहंस), गँगाराम कवि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवदत्त, सुक्खा सिंह, कान्ह सिंह बंगा, कोयर सिंह कलाल, माड़ूदास, ज्ञान सिंह कवि, अनाथ कवि, खज़ान कवि, कदम्ब-दास, कन्हैया, राय कान्ह सिंह रोपड़िया, नारायण सिंह कम्बोज, ईश्वर सिंह, रत्न सिंह भंगू जैमल सिंह, गणेशा सिंह, बेदी, हीरा सिंह, ज्वाला दास, देवीदास, नानक बख्श बनूड़ो, नाहर सिंह पेशकार, राजा प्रताप सिंह, प्रहलाद सिंह, बहाल सिंह, बाघ सिंह, बूड़ा मल्ल, मनसाराम, राम प्रकाश, वदन सिंह और हरिनाम सिंह आदि की गणना कर सकते हैं।

प्राचीन काल में हुए इन कवियों के अतिरिक्त बहुत से कवि ऐसे हैं जिनके सम्बन्ध में अभी पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। किन्तु धीरे-धीरे अनुसन्धान करते रहने से अनेकों अन्य रचनाओं का पता लगेगा इतना विश्वास के साथ कहा जा सकता है।

पंजाब में कविता की निरन्तर बहने वाली यह धारा आज भी उसी वेग से बह रही है तथा हिन्दी के कविता साहित्य में अपना पूर्ण योगदान दे रही है। आज इस प्रदेश को यह गौरव प्राप्त है कि इस पंजाब के अनेकों कवि अखिल भारतीय स्तर पर अपना महत्वपूर्ण स्थान बना रहे हैं। पिछले ५०–६० वर्षों में जिन कवियों ने सुन्दर कविताएँ लिखी हैं तथा जो लोक प्रिय भी हुई हैं, उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

श्री देवराज दिनेश :—आपको पंजाब का पहला राज कवि होने का गौरव प्राप्त है। कविता के क्षेत्र में आप बहुत लोकप्रिय हुए हैं। आपकी कविताओं में देश प्रेम और ओज के समान रूप से दर्शन होते हैं। आपकी कविताओं में 'भारत मां की लोरी' बहुत प्रसिद्ध हुई है। आपकी रचनाएँ आकाशवाणी एवँ देश के सम्मानित पत्रों में प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। एक लोकप्रिय कवि होने के साथ साथ आप एक सफल नाटककार एवं व्यंगकार भी हैं।

प्रो० परमानन्द शर्मा :—आपको भी पंजाब का राजकवि होने का सम्मान प्राप्त है। आपने वीर रस प्रधान सुन्दर काव्य की रचना की है। कई पुस्तकों पर आपको राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं। आप द्वारा रचित महाकाव्य "छत्रपति" और "वीर वैरागी" को बहुत ख्याती प्राप्त हुई है।

श्री शम्भू नाथ "शेष" :—आपका जन्म फरीदकोट में हुआ। आपके तीन काव्य संग्रह "उन्मीलिका", "सुवेला" और "बाल मेला" बहुत लोकप्रिय हुए। आपने सुन्दर रूबाइयां भी लिखी थीं। आपकी रूबाइयों की विशेषता यह है कि उनमें मधु प्याला और साकी बाला की अधर पिपासा न होकर स्वस्थ्य जीवन का चिंतन है। आपकी गज़लें चिंतन प्रधान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री उदय शंकर भट्ट:—यद्यपि आपका जन्म पँजाब में नहीं हुआ किन्तु साहित्य साधना का अधिक समय पंजाब में व्यतीत हुआ इस लिये इन्हें हम यहीं का मानते हैं। आप अखिल-भारतीय ख्याति प्राप्त नाटककार एवं कवि हैं। संस्कृत पर भी आपको समानाधिकार प्राप्त था। आपकी कविता में दार्शनिकता की पुट भी विद्यमान होती है। रचनाओं में 'राका' 'विसर्जन', काव्य संग्रह, विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी :—आप भी भट्ट जी की भांति पंजाब के मूल निवासी न होते हुए भी अधिक समय पँजाब में रहने के कारण यहीं के माने जाते हैं। आप की रचनाओं में छायावाद, रहस्यवाद, देश प्रेम और मर्म व्यथा सभी के दर्शन होते हैं। कवि होने के साथ साथ एक सफल नाटककार भी हैं। प्रेमी जी की कविताओं को बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

श्री चिरंजीत :—आपका जन्म अमृतसर में हुआ। आप कवि, गीतकार एवं पत्रकार के रूप में हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। आपने कुछ कहानियां भी लिखी हैं। बाल साहित्य (जिसकी हिन्दी में बहुत कमी है) की ओर भी आपने विशेष ध्यान दिया। इन सब क्षेत्रों में आपका योगदान यद्यपि है किन्तु विशेष ख्याति आपको कवि के रूप में ही प्राप्त हुई है।

देवेन्द्र सत्यार्थी :—सत्यार्थी जी का प्रिय विषय लोकगीत हैं। लोक-गीतों के इकट्ठा करने में आपने बहुत परिश्रम किया है। कुछ देर आप भारत सरकार के प्रसिद्ध पत्र "आजकल" के सम्पादक भी रहे। आपके काव्य ग्रन्थों में "गिद्धा" और "रथ के पहिए" लोक प्रिय कहे जा सकते हैं। कवि होने के साथ साथ आप संस्मरण लेखक, कथाकार के रूप में भी हिन्दी जगत के सामने आए।

श्री मदन लाल मधु:—आजकल आप विदेश में रह कर साहित्य साधना कर रहे हैं। आपकी कविता को बहुत लोक प्रियता प्राप्त हुई है। आपकी गीतमय कविताएँ बहुत मधुर होती हैं। आप की कविताओं में हृदय की भावना मुंह बोलती प्रतीत होती है। आपकी कविताओं का सग्रंह, 'उन्माद' नाम से प्रकाशित हुआ। स्टेज पर आपकी कविताओं को बहुत लोक-प्रियता प्राप्त हुई।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क:—आप यद्यपि उपन्यासकार एवं नाटककार के रूप में अधिक लोकप्रिय हैं किन्तु पिछले दिनों आप द्वारा रचित कविता सग्रंह "सड़कों पे ढले साये" को बहुत ख्याति प्राप्त हुई।

इन लोकप्रिय कवियों के अतिरिक्त डा० जयनाथ नलिन, श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक, श्री उदय भानु हंस, प्रो० खुशीराम शर्मा वशिष्ठ, श्री त्रिलोकी नाथ रंजन, श्री ओं प्रकाश आनन्द, प्रो० सुरेश, श्री प्रा० महेन्द्र प्रताप, श्यामा चरण, श्री वास्तव,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० योगेन्द्रबख्शी, सर्वश्री सत्यानन्द वासिल, विजय निर्बाध (सम्पादक, पंजाब केसरी), श्रीमती शकुन्तला, श्री वास्तव, श्रीमती सुदर्शन बाहरी, सत्यादत्ता शर्मा, श्री मनसाराम चंचल, प्रो० शैबाल, सर्वश्री द्वारिकादत्त उत्सुक, हिमानी कस्तूरी कश्यप, अनिल राकेशी, नन्द किशोर रजनीश, शिवदत्त सूद, प्रो० मथुरादत्त पान्डे, प्रो० लालचन्द जेतली, सर्वश्री प्रेम पाल शर्मा, सी० डी० गान्धी, आज्ञाराम प्रेम, राजदीप, देवकी साजन, प्राण जसराई, ब्रह्मदत्त, हुमा हरनालवी, भूरि श्रवा शास्त्री, रणदेव पण्डित, तुलसीदास दिनेश आदि उदीयमान कवि भी अपनी अपनी सुन्दर कविताओं द्वारा हिन्दी कविता को योगदान दे रहे हैं।

कविता साहित्य को निरन्तर भरपूर करने वाले ऊपरलिखित कवियों के अतिरिक्त असंख्य ऐसे भी कवि हैं जिनका परिचय स्थानाभाव के कारण या अन्य किन्हीं कारणों से नहीं दिया जा रहा किन्तु इस का यह भाव नहीं कि उनकी रचनाओं के प्रति हमारा उपेक्षा का भाव है। इन कवियों की साहित्य साधना का भी कविता साहित्य में अपना विशेष महत्व है।

पंजाब में रचित इस विशेष एवं विशाल कविता साहित्य को देख कर हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इस प्रदेश में हिन्दी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत काव्य में श्री कृष्णचन्द्र और भीमसेन का हास्य विनोद

o

शाम्भवी दत्त शास्त्री

जैमिनीयाश्वमेध पर्व को महाभारत का परिशिष्ट कह सकते हैं क्योंकि इसमें महाभारत के युद्ध की समाप्ति के बाद पाण्डवों द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ का ही वर्णन है। इसके प्रणेता व्यासदेव के प्रधान शिष्य महर्षि जैमिनि हैं। श्रीमद् भागवत में इनके सम्बन्ध में कहा है— 'सामगो जैमिनि कवि:' जैमिनि सामवेद के आचार्य थे। उनके इस काव्य में संस्कृत के अन्य काव्यों की तरह वीर रस और शान्त रस ही विशिष्ट रूप से मिलते हैं।

श्रीमद् भगवद्गीता में योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र के दिव्यरूप के दर्शन होते हैं। श्रीमद् भागवत में कंस शिशुपाल आदि अनेकों वीरों का संहार करने वाले युद्ध-विद्या विशारद एक शूरवीर के रूप में दृष्टिगोचर होता है। महाभारत युद्ध के सूत्रधार परम राजनीतिज्ञ वही श्रीकृष्णचंद्र कितने विनोदप्रिय थे यह जैमिनीयाश्वमेध पर्व के कतिपय प्रसंगों से स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त उनसे इस बात की पुष्टि भी हो जाती है कि संस्कृत काव्य में जहां वीर और शान्त रस का ही आधिक्य है वहां हास्य रस का भी अभाव नहीं वह प्रचुर मात्रा में मिलता है।

ये प्रसंग द्वितीय, तृतीय, नवम और दशम अध्यायों में आते हैं; जिनमें श्रीकृष्ण चन्द्र और भीमसेन का वार्तालाप ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी पत्नियों में हुए वार्तालाप अथवा अन्य साधारण स्त्रियों की व्यंग्योक्तियों में मिलते हैं। ये इस बात का प्रमाण हैं कि सहृदय व्यक्ति के मनोविनोद में युद्धादि विषम परिस्थितियां बाधक नहीं हो सकतीं। वह ऐसी परिस्थितियों में रहता हुआ तनिक भी म्लान नहीं होता प्रत्युत अपनी हास्यछटा बखेरता हुआ दूसरों को हंसाता है और दूसरों की हास्य रस पूर्ण बातें सुन कर स्वयं आनन्दित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत के युद्ध के आरम्भ में सामने खड़े हुए अपने भाई बन्धुओं को देख कर अर्जुन के हृदय में मोह जगृत हुआ। उसने उन पर शस्त्र उठाना अधर्म और महापातक समझ कर युद्ध न करने का विचार किया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र ने ही उसे क्षात्र धर्म का उपदेश देकर कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर किया और उसे पाप से बचाया। परन्तु महाराज युधिष्ठिर को महाभारत युद्ध के पश्चात् पितामह भीष्म और कर्ण आदि बड़े-बड़े महारथियों के महाप्रयाण के बाद प्राप्त हुआ राज्य भयावह प्रतीत देने लगा। महाभारत के युद्ध में हुए नर-संहार जन्य पाप का पश्चात्ताप होता है और उसका पश्चात्ताप करने के लिये व्यास जी ने उन्हें अश्वमेध यज्ञ करने की सम्मति दी।

एक दिन भीमसेन से यज्ञ के सम्बन्ध में उन्होंने कहा—भाई ! हितचिन्तक मित्र और सब सम्बन्धी परलोक सिधार गये। धन हमारे पास नहीं, दुःखों से उद्धार करने वाले श्री कृष्ण चन्द्र द्वारिका पुरी में हमसे बहुत दूर हैं। ऐसी स्थिति में कौन हमारा हित करेगा, क्योंकि—

बहु विघ्न करो याग स्तस्माच्छोचामि पाण्डव ! ।
उपहास्यास्पदं यास्ये यद्यपूर्णो भविष्यति ॥

पाण्डुपुत्र भीम ! अश्वमेध यज्ञ में बहुत से विघ्न उपस्थित हो जाते हैं, इसी लिये मैं चिन्ता में पड़ा हूँ यदि यज्ञ सम्पूर्ण न हुआ तो संसार में मैं उपहास का पात्र बन जाऊँगा।

युधिष्ठिर के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि 'उपहास' यद्यपि हास्यरस के अन्तर्गत है क्योंकि उपहास कर्ता को दूसरे पर व्यंग्य कसते हुए आनन्द की उपलब्धि हो सकती है किन्तु कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो उपहास का पात्र बनना चाहे।

एक बार रात्रि के समय महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार सम्पन्न होगा इस तरह चिन्तातुर हुए श्रीकृष्ण चन्द्र को बार बार स्मरण करने लगे। वह भी उसी समय आ पहुँचे। आतिथ्य के अनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ करने का अपना मन्तव्य उनके सामने रक्खा। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा —

भीममन्त्रण राजेन्द्र क्रियते शोभनामतिः ।
नायं जानाति बह्वाशी किंचिन्मन्त्रं तथा मतिम् ॥

राजेन्द्र ! मालूम होता है भीमसेन की सम्मति से ही आपको यह सुन्दर बुद्धि उत्पन्न हुई है। अरे ! इन भोजन भट्ट को तो न किसी मन्त्र की ही जानकारी है और न इनकी बुद्धि ही उत्तम है।

स्थूलोदरः परं मन्दो जायते नात्र संशयः ।
विवर्णा राक्षसी भार्या विद्यते ऽस्य गृहे सदा।
तया हृता मतिश्चास्य तस्माद् वेत्ति न पाण्डवः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका उदर स्थूल होता है, निस्सन्देह वह मन्द बुद्धि होता है तथा इनके महल में सदा वर्णहीना राक्षसी भार्या हिडिम्बा निवास करती है । उसने इनकी बुद्धि हर ली है । इसी से भीमसेन कुछ भी नहीं जानते हैं ।

ईदृशस्याल्प बुद्धेश्च भवान् मन्त्रं करोति चेत्
तर्हि जातः परो यागो मन्त्री यस्य वृकोदरः ।।

इसलिये यदि आप ऐसे अल्पबुद्धि की सलाह पर चलेंगे तब तो भीमसेन जिनके मन्त्री हैं, उस आप जैसे यजमान का यह उत्तम यज्ञ हो चुका ।

विद्वानों का कथन है कि जो कामी, मूर्ख तथा स्त्री के वशीभूत हैं, उनकी सलाह सुखदायिनी नहीं होती । जो सदा जामाता श्वसुर के घर में रह कर उसका काम करता रहता है उसकी सम्मति भी कभी कार्यसिद्धि करने वाली नहीं होती । साथ ही भीमसेन तो केवल जरासन्ध हिडिम्ब और बकासुर से ही परिचित हैं, परन्तु आज कल तो और भी बहुत से बलवान क्षत्रिय नरेश उत्पन्न हो गये हैं । राजसूय यज्ञ के अवसर पर तो भीमसेन को उन नरेशों का दर्शन भी नहीं हुआ होगा, अतः अपने बल के घमण्ड में भरे हुए यह उन बहुत से राजाओं को जानते भी नहीं हैं ।

ये सब बातें जानबूझ कर समीप बैठे हुए भीमसेन को सुनाने के लिये कही गई थीं । जिससे वह कुछ न कुछ उत्तर दें । श्री कृष्ण चन्द्र के वचनों को सुन कर भीमसेन हँसने लगे और उनकी एक एक बात का युक्तियुक्त उत्तर देते हुए इस प्रकार बोले---जनार्दन ! आपने जो यह कहा कि उदर के स्थूल होने से लोग बुद्धिहीन हो जाते हैं तथा अधिक भोजन करने वाला मतिहीन होता है, यह सब सच है; परन्तु यह सब तो मैंने आपके शरीर में ही देखा है --

तवोदरे विश्वमिदं भाति सर्वं चराचरम् ।
स्थूलोदरः कस्त्वदन्यो बह्वाशी कस्तवाधिकः।।
ब्रह्मादयः सुरा सर्वे सरितः सागरादयः ।
सर्वाधारा दिशश्चैव किं न भाति तवोदरे ।।

जब यह सारा चराचर संसार आपके उदर में ही भासित होता है, तब आपसे बढ़ कर स्थूल पेट वाला दूसरा कौन है ? तथा आपसे बढ़ कर अधिक भोजन करने वाला भी और कौन है ? क्या ब्रह्मा आदि देवता, सारी नदियां सागर, सब को धारण करने वाली यह धरणी एवं दिशाएँ आपके उदर में नहीं समा जाती हैं ?

त्वत्तः स्थूलोदरः कश्चिन्न भूतो न भविष्यति
स भवान् मामकं भोज्य मुदरं च जनार्दन ।
शंसँल्लज्जां न चाप्नोषि त्वं वै मां भाषसे
मृषा ।

जनार्दन ! आपसे अधिक स्थूल उदर वाला न कोई हुआ है न कोई होगा ही । फिर आप मेरे अधिक भोजन करने तथा बढ़े हुए पेट की बात कहने में लाज का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव क्यों नहीं करते ? आप व्यर्थ ही मुझे बदनाम कर रहे हैं ।

कस्तु जाम्बवतीं भार्यां वानरीं माधवं विना ।
कुरुते रुक्मिणीं प्राप्य गुणज्ञः खलु केशवः ।
बराह मत्स्य कूर्माणां योनिः प्रियतमा तव ।

भला श्रीकृष्ण चन्द्र के अतिरिक्त कौन ऐसा पुरुष होगा जो रुक्मिणी सी स्त्री को पत्नी रूप में पाकर रीछ या वानर जाति की कन्या (जाम्बवती) को अपनी भार्या बनायेगा ? ऐसा तो गुणज्ञ केशव ही कर सकते हैं । आपको ही सूकर, मीन और कच्छप की योनियां अत्यन्त प्यारी हैं ।

वामनस्त्वं पुरा जातस्तस्माद् वक्रं प्रभाषसे ।

० ० ० ०

स्त्रीजितो न त्वदन्योऽस्ति देवानां त्वं महातरुम् ।
पारिजातं समुत्पाट्य स्त्री निमित्त मिहानयत् ।

पूर्वकाल में आप वामन रूप में अवतीर्ण हुए थे; इसी लिये ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी बातें कर रहे हैं । आपसे बढ़ कर स्त्री के वश में और कौन होगा । आप अपनी भार्या सत्यभामा के लिये देवताओं के महान वृक्ष पारिजात को उखाड़ कर देवलोक से भूतल पर उठा लाये ।

आपने श्वसुर के घर में रहने की बात कही क्या वह आपमें घटित नहीं होती? सुनिये——

क्षीराब्धौ सततं वासः श्वसुरस्य गृहे तव ।
एते रम्य गुणाःप्रोक्ताःवहवोऽन्येऽपितैरलम्।।

आप अपने श्वसुर के घर क्षीर सागर में सदा निवास करते हैं । इस प्रकार मैंने आपके थोड़े से सुन्दर गुणों का वर्णन किया है । यों तो आपके और भी ऐसे बहुत से गुण हैं; परन्तु उन सब के कहने से क्या लाभ ?

भीमसेन की ये बातें सुन कर श्रीकृष्ण चन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले——वीर! तुम धन्य हो ; तुम्हारी इन बातों से मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया है । परन्तु मैं एक बात पूछना चाहता हूं महाराज युधिष्ठिर किस लिये भयभीत होकर अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं ? यदि अपने सम्बन्धियों और बान्धवों का संहार करके अपने शरीर में पाप को प्रविष्ट हुआ मानते हैं तो यह चिन्ता व्यर्थ है । वे उस सारे पाप को मेरे हाथ में सौंप कर पवित्र हो जायें । मैं इनके सब पापों का नाश कर डालूंगा ।

तब भीम ने कहा——देव! आपके हाथ में यदि कोई थोड़ी सी वस्तु भी समर्पित की जाय तो वह बढ़ कर बहुत अधिक हो जाती है और ये महाराज इस बात को भली प्रकार जानते हैं; इसलिये धर्मराज युधिष्ठिर आपके हाथ में अपना पाप नहीं दे सकते; परन्तु यज्ञानुष्ठान से प्राप्त हुआ पुण्य ये आपको अवश्य समर्पित कर देंगे ।

यद्यपि श्री कृष्ण चन्द्र ने भीमसेन को 'मन्द बुद्धि' कह कर उसकी हँसी उड़ाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी परन्तु उसने मधुर हास्यपूर्ण युक्तियुक्त उत्तर देकर उन्हें निरुत्तर कर दिया। यह था श्रीकृष्ण चन्द्र और भीमसेन का पारस्परिक हास्य विनोद यह उनको ही आनन्द देने वाला नहीं था प्रत्युत सुनने वाले सभी आनन्द विभोर हो उठे।

o o o o o

इसके बाद भी जब दोनों मिले हैं तो यह हास्य धारा प्रवाहित होती रही है। एक दिन द्वारका पुरी में श्रीकृष्ण चन्द्र को भोजन कराती हुई रुक्मिणी आदि पटरानियां परस्पर हँस रही थीं। उस समय —

सत्यभामा स्मितं कृत्वा कृष्णं वचनमब्रवीत्।
साम्प्रतं भोजनं कृष्ण समीचीनं सुशिक्षितम्।
गोपालत्वं परित्यज्य तक्रपानं तथोदकम्।
ईषन्नग्नोभवान् भूत्वा दुग्धं पक्वं तु यः पुरा।
पीत्वा च धावसेऽरण्ये कालिन्दी तीर संस्थितः।
गोपालानां यदन्नानि हरसे तत्तु विस्मृतम्॥
इदानीं मानुषं धर्मं जानाति सकलं भवान्।
धर्मपुत्रस्य संगत्या विज्ञातं भवताखिलम्॥

सत्यभामा ने मुस्करा कर श्री कृष्ण चन्द्र से कहा——महाराज! इस समय आपने ग्वालेपन को छोड़ कर मठा और जलपीना छोड़ कर अच्छी तरह भोजन करना सीख लिया। पहले तो आप थोड़ा नग्न होकर औटाया हुआ दूध पीकर वन में गायों के पीछे दौड़ते फिरते थे। तथा यमुना-तट पर खड़े होकर ग्वालों का अन्न छीना करते थे। वह सब आपको भूल गया है। अब आप सब मानवोचित धर्म को जान गये हैं। इन सब बातों का ज्ञान आपको धर्मपुत्र युधिष्ठिर की संगति से हुआ है।

इस सत्यभामा के कथन में श्रीकृष्ण चन्द्र की बाल्यकाल की घटनाओं का उल्लेख करके 'ग्रामीण' न रह कर अब 'मानवोचित धर्म जानने वाला' कह कर कितना मृदु हास्य पूर्ण व्यंग्य किया है।

अभी वह भोजन कर ही रहे थे कि उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से श्री कृष्णचन्द्र को अश्वमेध यज्ञ में ले जाने के लिये भीमसेन वहां आ पहुँचे। उन्हें आते हुए देख कर श्रीकृष्ण चन्द्र ने नौकरानी से कहला कर भीमसेन को अन्दर आने से मना कर दिया।

किं वदिष्यति भीमोऽसा विति बुद्ध्या नराधिप।
कौतुकी भीमवचन श्रवणे सर्वदा हरि :॥

उन्होंने ऐसा इसलिये किया कि देखें, रोक दिये जाने पर ये भीमसेन क्या कहते हैं? क्योंकि उन श्री कृष्ण चन्द्र के मन में भीमसेन की व्यंग्यपूर्ण बातें सुनने के लिये बड़ी उत्सुकता रहती थी।

भीमसेन कब चूकने वाले थे। जब उन्हें भवन में प्रवेश करने से मना कर दिया तब वह

प्रहसन्नब्रवीद्राजन्! मेघगम्भीरया गिरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हंसते हुए भीमसेन मेघ के समान गम्भीर वाणी बोले ।

महर्घं किल धान्यानां मेघो राष्ट्रे न वर्षति ।

सैरन्ध्रि ! यह तो बतलाओ जो श्री कृष्ण चन्द्र एकान्त में बैठ कर इस प्रकार भोजन कर रहे हैं । क्या इस राज्य में मेघों ने जल की वर्षा नहीं की है ? जिससे अन्न महँगा हो गया? अथवा किसी राक्षस ने इनके पुत्रों और पौत्रों का बल पूर्वक संहार कर डाला है, या ये श्रीहरि स्त्रियों के साथ ही भोजन करते हैं ।

भीमसेन इस प्रकार कह ही रहे थे कि भोजन करते हुए श्री कृष्णचन्द्र ने विनोद के लिये फेनियों को चबाना आरम्भ किया जिससे जोर-जोर की आवाज़ होने लगी । फिर पापड़ चबाने लगे, उससे और भी जोर से शब्द होने लगा । इसके बाद वे औटाया हुआ दूध पीने लगे जिससे गले में 'गट-गट' शब्द होने लगा । उस समय भीमसेन को चिढ़ाने के लिये उन्होंने होठों की विचित्र ही भाव भंगी बना ली । तब भीमसेन उस शब्द को सुन कर और यह सब देख कर कहने लगे —अरे ! जो पहले मठा पीने के ही अभ्यासी थे, वे इस समय औटाया हुआ दूध कैसे पी रहे हैं ? मैं उस दाई को भी नहीं जानता, जिसने इनके गले को बढ़ा दिया हो । यदि पता लग जाय तो उस पापिनी दाई की नाक ही काट लेनी चाहिए अथवा उसका वध कर डालना ही उचित है । न जाने उसने इनके गले में अंगूठा डाल कर उसे बढ़ाया था या मूसल अथवा हल डाल कर । परन्तु जब श्रीकृष्णचन्द्र ने यह सब अनसुना कर दिया तब भीमसेन फिर बोले —

वटकः किं गले लग्नो गदया योथयाम्यहम् ।
धिक् धिक् तर्कं मदीयं वै यस्य कण्ठे महीधरा।
दृश्यन्ते प्रलये नित्यं विशमाना निरर्गलम् ।
वटकस्य वराकस्य गणना कात्र कीर्त्यते ।
तेनाभ्यासेन गोविन्द मा कुटुम्बं प्रभक्षय ।।

क्या तुम्हारे गले में बड़ा अटक गया है ? क्या मैं आकर उसे गदा से मसल दूं ? 'नहीं, नहीं' मेरे तर्क को धिक्कार है ! धिक्कार है !! क्योंकि प्रलय काल में जिनके गले में बड़े बड़े पर्वत बिना किसी प्रकार की रुकावट के प्रविष्ट होते हुए देखे जाते हैं, वहां इस बेचारे वटक (बड़े) की क्या गणना की जा सकती है। परन्तु गोविन्द ! उस प्राचीन अभ्यास के कारण कहीं अपने कुटुम्बियों को ही मत निगल जाना ।

हरे ! दूर देश से यहां आये हुए मुझ भीमसेन को ही कहीं न खा जाना, नहीं तो तुम्हारे उदर में पहुँच कर मैं सुखदायक सिद्ध नहीं होऊँगा कि क्योंकि मेरा गमन नीचे की ओर नहीं होता । मैं सदा ऊपर की ओर ही जाने वाला हूं। ऐसी दशा में तुम्हारे सिर की ओर ही जाऊँगा और वहां प्रविष्ट होकर चराचर विश्व को देखूंगा । उस समय लोग आपको ही दोषी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठहराते हुए कहेंगे कि महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से पाण्डुपुत्र भीमसेन बहुत बड़ी आशा लेकर अकेले ही आये थे, उन्हें श्रीकृष्ण ने खालिया। मेरे बिना आश्रय-हीन हुई माता कुन्ती इस संसार में जीवित रह कर क्या करेंगी। इसलिये मेरे साथ-साथ आप उन्हें भी खाकर सुखी हो जाओ। जिसकी धर्मराज युधिष्ठिर ने सदा रक्षा की है, ऐसे मुझ भीमसेन को आज तुम्हारे द्वारा खाया गया सुन कर तुम्हारी बहन सुभद्रा तुम्हें राक्षस समझेगी, फिर वह किससे अपना दुःख निवेदन करेगी ?

प्रलय काल में आप ही सब का संहार करते हो, अतः आपको कोई दोष नहीं लगता; क्योंकि बाद में सृष्टिकाल में ब्रह्मा रूप से आप सब की सृष्टि भी कर देते हो। परन्तु महाराज ! सृष्टिकाल में इस भीमसेन की सृष्टि मत करना और यदि मुझे उत्पन्न ही करना हो तो व्यर्थ में ही अपना दास न बनाना।

भीमसेन की ये बातें सुन कर मन में मुदित हुए श्री कृष्ण चन्द्र मुसकराते हुए कहने लगे —भीमसेन ! तुम्हारा स्वागत है। महाराज युधिष्ठिर कुशल पूर्वक तो हैं न ? दूसरों को मान देने वाले वीर ! वाले वीर आओ, तुम मेरे साथ बैठकर भोजन करो।

यह सुन कर भीमसेन बोले—

तृप्तोऽसि कृष्ण पश्चान्मां परिपृच्छसि सादरम्।

श्रीकृष्ण ! पहले आप खाकर भली भान्ति तृप्त हो लिये, अब बाद में आदर पूर्वक मुझे खाने के लिये पूछ रहे हो। यह अच्छा स्वागत है।

ऊपर भीमसेन द्वारा "अपने कुटुम्बियों को मत निगल जाना" "भीमसेन को ही कहीं न खा जाना" अथवा श्री कृष्णचन्द्र को राक्षस कहना अनुचित सा प्रतीत देता है किन्तु श्री कृष्णचन्द्र ही नहीं प्रत्युत अन्य व्यक्ति भी उन्हें मन्दबुद्धि समझते थे। इसीलिये तो श्री कृष्ण चन्द्र उनके इस प्रकार के साधारण शब्दों की ओर ध्यान न देकर उनके आन्तरिक भावों को अच्छी तरह समझते थे और उनकी व्यंग्योक्तियों का रसास्वादन करते थे।

भीमसेन को भले ही मन्दबुद्धि कहा गया हो परन्तु भोजन के समय तो खाने की ही चर्चा हो सकती है। इसीलिये उन्होंने प्रायः सभी बातें भोजन के सम्बन्ध में की हैं। यद्यपि इनमें कुछ कर्कशता अवश्य प्रतीत देती है परन्तु भीमसेन हास्य-विनोद में भी कभी श्री कृष्ण चन्द्र के पर-ब्रह्म रूप को नहीं भूले। इसीलिये व्यंग्योक्ति द्वारा सांसारिक बन्धनों से छुटकारा अर्थात् मुक्ति पाने के लिये उनसे कह रहे हैं।

इसके अतिरिक्त भीमसेन की बातों में श्रीकृष्ण चन्द्र को भी एक प्रकार की रसानुभूति होती थी। यही कारण है वह उनकी बातों को अनुचित नहीं मानते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भोजनं कुरु मानद' अर्थात् दूसरों को सम्मान देने वाले भोजन कीजिये। इसमें श्री कृष्ण चन्द्र के वचन से ही इस बात की पुष्टि हो जाती है कि भीमसेन दूसरों का सम्मान करने वाले थे। इसी लिये उन्हें इस विशेषण से सम्बोधित किया गया है।

० ० ० ०

अश्वमेध यज्ञ में जाने के लिये श्री कृष्ण चन्द्र की ओर से डौंडी पिटवाई गई। सब लोग तैयार होकर द्वारकापुरी से इन्द्र-प्रस्थ की ओर चल पड़े। यात्रा में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति अनेक तरह के वाहनों पर सवार हुए जा रहे थे तीव्र वेग से चलने वाले वाहनों को मार्ग नहीं मिल रहा था।

शम्भल्येका तदा वृद्धा प्रहसन्ती सखी जनैः।
प्रोवाच धावमाना सा वृथा किं क्रियते श्रमः।
अविवेकी हरिश्चायं न धनं सम्प्रदास्यति।
सन्तुष्टोहि भवेद्येषांतेषां हरति वै धनम्॥

उस समय एक बुढ़िया कुट्टिनी दौड़ती हुई आई और अपनी सखियों के साथ हंसती हुई कहने लगी—प्यारी सखियो क्यों व्यर्थ परिश्रम कर रही हो ये श्री कृष्ण चन्द्र तो विवेक शून्य हैं। तुम्हें धन नहीं देंगे; क्योंकि ये जिन पर प्रसन्न होते हैं उनका सारा धन हर लेते हैं।

इस प्रकार कह कर बैल पर सवार हुई वह वृद्धा कुट्टिनी ज्यों ही आगे बढ़ी, त्यों ही उसका बैल रास्ते में ऊंट को देख कर भागने लगा। उसने उस कुट्टिनी को अपनी पीठ से नीचे गिरा दिया। उसे गिरी हुई देख कर 'प्रहसन्तिस्म सैनिकाः' सभी सैनिक हंसते हुए कहने लगे—'इस दुष्टाने अभी अभी भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र की निन्दा की है, इसलिये अपने उस दुष्कर्म के कारण ही यह बैल की पीठ पर से पृथ्वी पर गिरी है।'

इसमें व्यक्त किया गया है यदि किसी की सेवा की जाय तो वह उसके बदले में कुछ न कुछ अवश्य देता है, किन्तु इनकी सेवा करने वाले को तो सेवा का फल निर्धनता रूप में मिलता है। यह कितना अच्छा कटाक्ष है।

इस तरह यात्रा करते हुए धूप अधिक देख कर श्री कृष्णचन्द्र ने अपने नगर से थोड़ी ही दूर पर विश्राम करने के लिये पड़ाव डाल दिया।

तं भीमसेनःसम्प्राह वासुदेवं विनोदकृत्।

उस समय विनोद करने वाले भीमसेन ने श्रीकृष्ण चन्द्र जी से कहा—महाबाहु श्रीकृष्ण! मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इन सब स्त्रियों के स्वामी प्रायः आप ही हैं; क्योंकि ये मालिन, तेलिन, नाइन और कुट्टनी आदि सभी स्त्रियां अपने हृदय में जैसा आपको समझती हैं वैसा अपने पतियों को नहीं मानतीं।

भीमसेन की यह बात सुन कर श्री कृष्ण चन्द्र कहने लगे।

भवान् गृह्णातु सततं पौरुषं चेद् वृकोदर।
स्थूलोदरं भीमसेनं वरं वरय शोभने॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वं तु शम्भलि गच्छाशु भीमं दन्तविवर्जिते ।

वृकोदर ! यदि तुम में निरन्तर पुरुषार्थ हो तो तुम ही इन सब को रख लो । इस प्रकार भीमसेन से कह कर वे उस कुट्टनी से बोले—'शोभने ! तू इन बड़े पेट वाले भीमसेन को अपना पति स्वीकार कर ले । बिना दांतों वाली कुट्टनी तू शीघ्र ही भीमसेन के पास चली जा।

भीमसेन कब चुप रहने वाले थे। श्री कृष्ण चन्द्र के वचन सुन कर—

भीमस्तु प्रत्युवाचेदं राक्षसी मे गृहे प्रिया ।।
वारयिष्यति मा यातु भक्षयिष्यति तां हि सा ।
तस्मात् कृष्णगताः सन्तु सर्वा दन्तविवर्जिताः।।

भीमसेन ने कहा—श्री कृष्णचन्द्र ! मेरे घर में मेरी राक्षसी पत्नी हडिम्बा रहती है 'यहां मत आ' ऐसा कह कर वह इसे मना कर देगी और यदि नहीं मानेगी तो वह इसे खा जाएगी । इसलिये बिना दाँतों वाली सभी स्त्रियां आप श्री कृष्णचन्द्र को ही प्राप्त हों ।

एक बात और भी है जिनका चित्त आप श्री कृष्ण चन्द्र में आसक्त है, उनके लिये सब जगह सुख ही सुख है । आपकी रुक्मिणी आदि सती साध्वी पत्नियों का मन एक मात्र आपमें ही आसक्त रहता है, इसलिये वे आपके साथ इन स्त्रियों को देख कर भी ईर्ष्या नहीं करेंगी । इससे आप भगवान् केशव ही इन सब स्त्रियों को ग्रहण करके प्रसन्न हों, क्योंकि आपके घर में सब पत्नियों में परस्पर सौतिया डाह नहीं देखी जाती । जब कि ऋक्षराज की पुत्री जाम्बवती भी आपकी पटरानी है । वह भी किसी अन्य पत्नी के प्रति ईर्ष्या भाव नहीं रखती । इससे स्पष्ट विदित होता है जो लोग आप का आश्रय लेकर व्यवहार में प्रवृत होते हैं उन्हें सब प्रकार से सुख ही प्राप्त होता है । फिर वे इस पृथ्वी तल पर गतिहीन कैसे हो सकते हैं ।

इस प्रकार भीमसेन की व्यंग्यपूर्ण बातें सुन कर श्री कृष्ण चन्द्र ने कहा—भीमसेन ! ये सब बातें तुम ठीक कह रहे हो इनमें कोई सन्देह नहीं परन्तु —

स्थान भ्रष्टाञ्जनां श्चैवोद्धर्ता तु पवनात्मजः
तस्माद्याहि भीमसेनं समानय समान्तिकम् ।।

स्थान भ्रष्ट लोगों का उद्धार करने वाले तो पवनपुत्र भीमसेन ही हैं । इसलिये शम्भलि ! तू भीमसेन के पास जा और उन्हें मेरे पास ले आ ।

उस कुट्टनी को आदेश देकर श्रीकृष्ण चन्द्र जब कुछ आगे बढ़ते हैं तब एक दाई बहुत वेग से चलने वाले ऊंट की पीठ से पृथ्वी पर गिर पड़ी और श्री कृष्ण चन्द्र से प्रार्थना करने लगी—प्रभो ! मैं बालकों के जन्म समय में परिचर्या करने वाली दाई हूं, अतः आप मेरा उद्धार करने की कृपा करें । मैं सब यदुवंशियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूतिका हूं । केवल आपकी माता ने ही मुझे छोड़ दिया है, क्योंकि —

देवकी त्वां तु सुषुवे नाहूतास्मि तदैव तु ।
आत्मान मात्मना देव सृजस्येते च यादवाः ।
तथा सृजन्ति नात्मानं तेन जीवामि
माधव ।।

देव ! जिस समय आपका जन्म हुआ था उस समय देवक देवी ने मुझे नहीं बुलाया था । प्रभो ! आपतो अपने आपको स्वयं प्रकट कर लेते हो, परन्तु इतनी कृपा अवश्य करना ये सब यदुवंशी भी आप की तरह मेरी सहायता के बिना स्वयं प्रकट न होने लग जाएँ । नहीं तो मेरा काम ठप्प हो जाएगा, और मैं अपना जीवन निर्वाह कैसे कर सकूंगी ।

तब श्री कृष्णचन्द्र ने उस दाई को उठाने के लिये भीमसेन को आज्ञा दी, क्योंकि उस समय वसुदेव जी सामने आ गए थे । उन्हें देख कर श्री कृष्णचन्द्र और भीमसेन को विवश होकर अपना हास्य विनोद छोड़ कर उनके स्वागत की ओर ध्यान देना पड़ा ।

उपर्युक्त श्री कृष्ण चन्द्र और भीमसेन के हास्य विनोद प्रसंगों में जाम्बवंती और हिडिम्बा राक्षसी के पत्नी होने की पुनरुक्ति अवश्य हुई है परन्तु स्थान एवं प्रसंग भेद होने के कारण वह इतनी अखरती नहीं । उसका निर्वाह हो जाता है । हास्य का शुद्ध सात्विक रूप स्थिर रहा है और उसमें मर्यादा का पूर्ण रूपेण पालन हुआ है । कहीं किंचिन्मात्र भी कलुषता नहीं आने पाई । जहां भीमसेन श्रीकृष्ण चन्द्र के मधुर व्यंग्यों का उत्तर देते रहे हैं वहां उनके भगवद्रूप में उनकी अपार श्रद्धा भी व्यक्त होती रही है । कुट्टनी और दाई का उपहास भी उनके दिव्य रूप में आस्था रखता है । भले ही वे छोटी जाति की हों किन्तु वह अपने पावन रूप को छोड़ कर अति हसित या अपहसित रूप धारण नहीं करता । केवल व्यंग्योक्तियों तक ही सीमित रहा है।

इस प्रकार यह हास्यविनोद संस्कृत काव्य में अपना विशेष महत्त्व रखता है। संस्कृत में हास्य रस का अभाव देखने वालों को अपनी प्रचुरता का प्रमाण दे रहा है और उन का भी मनोविनोद करने की क्षमता रखता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रसाद-काव्य में प्राकृतिक-रहस्यवाद"

कृष्णा देवी

प्रकृति-रहस्यवाद एक ऐसी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है जिसमें कवि को प्रकृति किसी अव्यक्त सत्ता की अभिव्यक्ति प्रतीत होती है। उसके समस्त अवयव उस चिरन्तन सत्य के प्रतिरूप अतः उसके किसी न किसी गुण को प्रकाशित करते लक्षित होते हैं। महाकवि प्रसाद भी ऐसे ही प्रकृति-रहस्यवादी कवि प्रमाणित किये जा सकते हैं क्योंकि उन्होंने प्रकृति सौन्दर्य को ईश्वरीय रचना का अद्भुत समूह माना है। उनका समस्त काव्य ऐसी अभिव्यक्तियों से भरपूर है जिनमें कवि ने प्रकृति में ही उस विराट रूप ईश्वर के दर्शन किये हैं।

कविवर प्रसाद के लिये प्रकृति जड़, मूक और प्राणहीन नहीं अपितु सजीव, सप्राण और उस अलौकिक सत्य की आभा युक्त है। उनकी काव्य-यात्रा के प्रथम चरण में अर्थात् "चित्ताधार" और कानन-कुसुम की कविताओं में वे कभी तो जिज्ञासा-परक और कुतूहल-भरे प्रश्न् करते दृष्टिगत होते हैं :—

"तारागण! क्यों गगन में हंसत मन्द हीमन्द"

कलरव करते हुए विहग और कुसुमों से सुशोभित लताओं से वे सहसा पूछ उठते हैं :—

"गा रहे हैं विहंगम किसके आने की कथा
* * * *
हैं लताएं सब खड़ी क्यों कुसम की माला लिये"

और कभी घोषित करते हैं कि इस जगत का आंगन उसी की ज्योति से ज्योतित है :—

"यह विराट संसार तासु प्रकट रूप है
या में अंगन की आभा रजत अनूप है
* *
लीला उसी की जग में सब में वही समाया!"

समस्त विश्व कवि के लिये ईश्वर का अनन्त मन्दिर बन जाता है :—

जिसके हैं आराम प्रकृति कानन ही सारे
जिस मन्दिर के दीप इन्द्र दिनकर औ तारे"

इस मन्दिर के समस्त उपकरण सागर, नदी, लहर चांद और तारे आदि उस प्राकृति पद्धति के अंशुमाली का सगीत और गुणगान सुनाते हैं :—

"विमल इन्द्र की विशाल किरणें
प्रकाश तेरा बता रही हैं......"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन उपकर[illegible]
सत्ता का आभास तो हो जाता है परन्तु साक्षात्कार नहीं । इसी कारण वह फिर उसके विषय में परिचित होने के लिये उत्सुक होता है । कभी-कभी तो उस प्यारे की अस्पष्ट झांकी पा भी लेता है :—

"खड़े विश्व जनता में प्यारे
हम तुमको पाते हैं "

पर वह झलक क्षणिक थी, अस्थायी थी । कवि इस महानील परम व्योम में, अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान होने वाले के विषय में यह जानना चाहता है कि वह कहां है ? कैसा है ? उसको खोजने का प्रयास करता हुआ कैसी विवशता से अनायास ही :—

"अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को...."

की रट लगा उठता है। यदि कहीं संयोग से उस चित्त चोर का पता चलता है तो पुकार उठता है :—

"खोलो प्रियतम खोलो द्वार"

अत्यधिक अनुनय विनय से यदि उसका प्रियतम उसके सामने आता है तो भी प्रत्यक्ष रूप में नहीं अपितु घूंघट डाल कर :—

"शशि मुख पर घूंघट डाले
आंचल में दीप छिपाये "

इसी कारण वह उसके "शशि मुख" के स्थान पर उसकी निर्मल शीतल-

[illegible] तुष्ट होता है,
अतः प्रकृति से इतना ही जान पाता है :—

"हे विराट ! हे विश्व देव ! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान
मन्द गम्भीर धीर स्वर संयुत
यही कर रहा सागर गान "

इतना ही नहीं उसे यह भी कहना पड़ता है :—

"हे अनन्त रमणीय कौन तुम
यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता"

कवि उस अनन्त का साक्षात्कार करने में तो चाहे असमर्थ रहा हो परन्तु यह नितान्त सत्य है कि प्रकृति के विस्तृत प्रांगण के अवलोकन से प्राचीन भारतीय सिद्धान्त" सृष्टि के अनेक व्यक्त पदार्थों में एक ही अव्यक्त मूल द्रव्य है" के आधार पर अपना सर्ववाद का दर्शन निर्धारित करने में व पूर्ण सफल रहा है। तभी तो वह जड़ चेतन सभी में एक ही तत्त्व विद्यमान पाता है :—

"एक तत्त्व की प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन "

उसे कभी जड़ चेतन और चेतन जड़ बन कर सृजन प्रलय का अभिनय करते अनुभव होते हैं और कभी वे प्रकृति को ही चिद् ब्रह्म की शक्ति और "चिति का विराट वपु' मान कर कह उठते हैं :—

"चिति का विराट वपु मंगल
वह सत्य सतत चिर सुन्दर"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी भावना के आधार के आधार-भूत वे प्रकृति के अणु अणु को जीवित पाता है और अपने ही उर की चाह का दर्शन करता है। 'झरना' की मधुर लहरी में भी उसे कुछ कुछ गहरी बात छिपी प्रतीत होती है, जलद सामान्य जलद न रह कर जीवनद है क्योंकि वह जगज्जीवनमृत को जिलाता है :—

"अम्बर पथ आरूढ़ कृषक गन को हरषावत
लोक दृष्टि तें सब ही लखत जब तुम आवत"

चेतना का आरोप करने पर कवि के मन में प्रकृति के प्रति साहचर्य की भावना भी स्वाभाविक ही थी। विचार-विनिमय और भावों का आदान-प्रदान भी कवि और प्रकृति के बीच प्रचुर मात्रा में मिलता है। कभी वह 'किरण' से सरलता पूर्ण पूछता है :—

"किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज
रंगी हो तुम किसके अनुराग"

और कभी रात्रि को अभिसारिका नायिका मान कर प्रश्न करता है कि वह हांफती हुई किस के पास अभिसार के लिये जा रही है :—

"किस दिगन्त रेखा में इतनी
संचित कर रही सिसकी सी सांस
यों समीर मिस हांफ रही हो
चली जा रही किसके पास"

अतः कवि और प्रकृति के बीच विचारों और भावों के आदान-प्रदान, अनुनय-विनय, हास-विलास आदि के रुचिर उदाहरण इनके काव्य में प्राप्य हैं।

ऐसी चेतन प्रकृति का सान्निध्य प्राप्त करने के उपरान्त महाकवि प्रसाद को रहस्य द्रष्टाओं की भांति ही उससे अलौकिक सन्देश सुनने की इच्छा हुई। उन्होंने प्रकृति से अपना मुख अनावृत करके बोलने का आग्रह किया। फलतः उनके स्नेहल आग्रह से सोहवत्सला प्रकृति बोलने को उद्यत हुई और उन्होंने उससे जीवनोपयोगी एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के आदर्शों को संकित किया। जीवनादर्श के क्षेत्र में उनको उषा और सन्ध्या के आंगन में जीवन के हास-अश्रुमय होने का आभास मिलता है, मानव जीवन की वेदी पर सुख-दुख नाचते प्रतीत होते हैं और मालती कुंज में चन्द्रिका और अन्धेरी को मिलते देख कर वह मन में सुख दुःख दोनों के स्थित होने का भाव प्राप्त करता है :—

"लिपटे सोते थे मन में सुख दुःख दोनों ही ऐसे
चन्द्रिका अन्धेरी मिलती, मालती कुंज में
जैसे"

'लहर' में कवि को उठती-गिरती हुई लहरों के द्वारा जीवन के उत्थान-पतन का आभास मिलता है। कामायनी में जीवन के सुख दुःख मय होने के तथ्य का प्रतिपादन किया गया है जैसे रात्रि के पश्चात् नवल प्रभात अवश्यं भावी है उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख के उपरान्त सु[illegible] मेव होता है :—

"दुःख की पिछली रजनी बीच विकसता
सुख का नवल प्रभात
एक परदा यह झीना नील, छिपाये हैं
जिसमें सुख गात"

आध्यात्मिक क्षेत्र में कवि प्रकृति से जगत की नश्वरता एवं शाश्वतता दोनों की शिक्षा ग्रहण करता है। जीवन की क्षण-भंगुरता का उद्घाटन कैसी मार्मिकता से किया गया है :—

"जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील
घन माला में
सौ दामिनी सन्धि सा सुन्दर क्षण भर रहा
उजाला में"

समरसतावादी प्रसाद ने अपने सामरस्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन भी प्रकृति [illegible] है :—

"नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता
कारण जलधि समान
व्यथा से नीली लहरों बीच छिपाये है
मणिगण दुर्निमाह द्युतिमान"

अस्तु! प्रसाद जी ने प्रकृति रहस्यवादी की भांति प्रकृति को ईश्वर का विराट रूप मान कर, उसके प्रत्येक रूप खंड को परम सुन्दर का प्रतीक मान कर उसके साहचर्य की उत्कट अभिलाषा प्रकट की है और उससे अनेक प्रकार के बहुमूल्य अलौकिक सन्देश प्राप्त करने का प्रयास किया है। दूसरे शब्दों में उन्होंने अपनी रहस्यात्मक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से की है इसमें कोई सन्देह नहीं।

12726....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकों एवं पाठकों से
विशेष निवेदन

*रचना सफेद कागज़ पर एक ओर टाइप किये सुवाच्य अक्षरों में लिखी होनी चाहिए तथा सामग्री यथा सम्भव सरल और सुबोध होनी चाहिए।

*अनुवाद या लिप्यन्तर भेजते समय मूल लेखक की अनुमति भेजना न भूलें ।

*रचना की प्राप्ति सूचना प्रायः १५ दिन में भेज दी जाती है। अस्वीकृत रचनाएं लौटाने एवं उनकी सूचना भेजने का नियम नहीं है। लेखक के आग्रह पर विशेष परिस्थितियों में उसकी रचना उसे लौटाई जा सकती है ।

*सामग्री के संशोधन एवं प्रकाशन के विषय में सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा, परन्तु लेखक के सभी विचारों में सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं ।

*रचना के आरम्भ और अन्त में अपना पूरा पता और नाम लिखना न भूलें ।

रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए ।

*'जन–साहित्य' एवं 'सप्तसिन्धु' की एक प्रति का मूल्य क्रमशः ५० पैसे और वार्षिक चन्दा ६ रुपये है ।

*ये पत्रिकाएं डी. पी. आई. पंजाब एवं मध्यप्रदेश द्वारा पंजाब एवं मध्यप्रदेश के सभी स्कूलों, कालेजों तथा लाइब्रेरियों के लिए स्वीकृत हैं।

*'सप्तसिन्धु' पत्रिका में शोधविषयक लेख छपते हैं और दूसरी पत्रिका 'जनसाहित्य' में सृजनात्मक साहित्य छपता है ।

*ये पत्रिकाएँ आपकी अपनी हैं, इनके सुधार के लिये अपने अमूल्य सुझाव भेजते रहें ।

*पत्रिकाओं से सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार का पत्र-व्यवहार निदेशक, भाषा विभाग, हरियाणा, पटियाला से करें न कि किसी व्यक्तिगत नाम से।

* वार्षिक चन्दा मनीआर्डर द्वारा भेज कर आज ही ग्राहक बनें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SAPT SINDHU
November, 1966

R. No. P. 318

अपनी सृजनात्मक क्षमताओं के पोषण के लिए पढ़िए

जन साहित्य

(अपूर्व हिन्दी मासिक)

अनूठे गीत, मनोरञ्जक तथा सरस कहानियाँ, सामाजिक एकांकी प्रहसन, व्यंग्य-विनोद एवं सरस लेखों का अद्भुत संकलन

एक प्रति—५० पैसे

वार्षिक छः रुपए

आज ही ग्राहक बनिए पत्र व्यवहार के लिए लिखें

निदेशक, भाषा विभाग, हरियाणा, पटियाला

डा० परमानन्द एम० ए० पी-एच. डी, डायरैक्टर भाषा विभाग, हरियाणा, पटियाला द्वारा प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी डिपार्टमेंट, पंजाब, पटियाला से छपवा कर प्रकाशित किया गया।

सम्पादक—डा० परमानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri